Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222 ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रेमरंजन अनिमेष की रचनाओं पर केन्द्रित

● वर्ष-16 ● अंक 35 ● अप्रैल - जून 2023 ● पूर्णांक 73 ● मूल्य 100 रुपए 35
● संपादक - डॉ. सतीश पांडेय

देवेश ठाकुर

रचना-यात्रा के सात दशक

जन्म : 23 जुलाई, 1933, नानी के गाँव पैठानी (अल्मोड़ा, उत्तरांचल) में

रचना संसार

उपन्यास : भ्रमभंग, प्रिय शबनम, काँचघर, इसीलिए, अपनाअपना अकाश, जनगाथा, गुरुकुल, शून्य से शिखर तक, अंततः, शिखर पुरुष, जंगल के जुगनू, कातर बेला, जीवा, देवता के गुनाह, संध्या छाया, स्वप्न दंश, व्यक्तिगत, मारिया, कैम्पस कथा, स्मृतियों के कोलाज,

शीघ्र प्रकाश्य : तीसरी लड़ाई, ऐसा भी होता है, अपने अपने अंतर्द्वंद्व

काव्य : मयूरिका, अंतरछया, अवकाश के क्षणों में, कविताएँ (संपूर्ण कविताएँ)

कहानी : सिर्फ संवाद, फैसला तथा अन्य कहानियाँ

समीक्षा : नयी कविता के सात अध्याय, नदी के द्वीप की रचना प्रक्रिया, मैला आँचल की रचना प्रक्रिया, हिन्दी कहनी का विकास, साहित्य की सामाजिक भूमिका, साहित्य के मूल्य, आलेख

शोध : प्रसाद के नारीचरित्र (पीएच. डी.), आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ, हिन्दी साहित्य तथा साहित्येतिहास : अंतरानुशासनों का अनुशीलन (विश्वविद्यालय अनुदान अयोग की विशिष्ट परियोजना के अंतर्गत)

संपादन : कथाक्रम1, कथाक्रम2 (कुल 175 कहानियाँ), कथावर्ष1976, कथावर्षद्ध1977, कथावर्ष1978, कथावर्ष1979, कथावर्ष1980, कथावर्ष1981, कथावर्ष1982, कथावर्ष-1983, कथावर्ष1992, कथावर्ष1994, हिन्दी की पहली कहानी, रचना प्रक्रिया और रचनाकार, प्रेमचंद साहित्य के अध्येता : डॉ. कमल किशोर गोयनका किशोर साहित्यः दो सहेलियाँ (कहानी संग्रह), ममता (उपन्यास)

समाज और राजनीति : आजादी की आधी सदी और आम आदमी (तीन खंडों में)

जीवनी : बुद्धगाथा

आत्मकथा : मैं यों जिया (आरंभिक अंर्तयात्रा, चंदन वन के बीच, इस यात्रा में) (तीन खंडों में) इसके अतिक्त 6 लोकप्रिय अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद। 1500 से अधिक लेखों, शोधपत्रों, कहानियों, कविताओं, पुस्तक समीक्षाओं और स्तम्भ लेखों का प्रकाशन।

ISSN-2250-2335 Reg. No. MAHHIN/2008/26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की त्रैमासिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रबंध संपादिका :
डॉ. रोहिणी शिवबालन
प्रधान संपादक-प्रकाशक :
डॉ. देवेश ठाकुर
संपादक :
डॉ. सतीश पांडेय
संयुक्त संपादक :
डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट
संपादकीय सहयोग :
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा
संतोष कुमार यादव

संपादकीय-संपर्क :
बी-23, हिमालय सोसाइटी,
असल्फा,
घाटकोपर (प.), मुंबई-400 084.
Email: sameecheen@gmail.com
website-www.http//:
sameecheen.com

विशेष :

'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

परीक्षक विद्वत मंडल : (Peer Review Team)

1) डॉ. राम प्रसाद भट्ट
भारत-विद्या विभाग,
हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, हैम्बर्ग, जर्मनी
2) प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
3) प्रो. (डॉ.) वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विवि.,
वाराणसी, (उ. प्र.)
4) डॉ. नरेन्द्र मिश्र
प्रो. हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू मैदानगढ़ी,
दिल्ली110068
5) प्रो. (डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय,
मुंबई
6) प्रो. (डॉ.)अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई
विश्वविद्यालय, मुंबई
7) प्रो. (डॉ.) सदानंद भोसले
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सवित्रीबाई फुले पुणे
विद्यापीठ, पुणे
8) प्रो. (डॉ.) शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कर्नाटक
विश्वविद्यालय, धारवाड़
9) डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.) मुंबई-400 086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

• वर्ष-16 • अंक 35 • अप्रैल-जून-2023 • पूर्णांक 72 • मूल्य 100 रुपए

सहयोग : एक प्रति रु. 100/-, वार्षिक रु. 400/-, पंच वार्षिक रु. 2000/-

सीधे समीचीन के खाते में भेजने के लिए : खातेधारक का नाम : **समीचीन** / sameecheen
A/C No. 60330431138, Bank of Maharashtra,
Dr. Ambedkar Road, Dadar, Mumbai. IFSC : MAHB0000045

अनुक्रमणिका

1. अपने तईं
   प्रेम रंजन अनिमेष विशेषांक ही क्यों? - डॉ. सतीश पांडेय 07-14
2. प्रेम रंजन अनिमेष : परिचय अब तक 15-17
3. कविता रोशनाई का काम करती है- प्रेम रंजन अनिमेष 18-19
4. आत्मकथ्य : मुझमें बसा बिहार - प्रेम रंजन अनिमेष 20-22
5. बचे हुए आदमी का संस्मरण - नंदकिशोर नवल 23-23
6. हामिद का चिमटा - अनामिका 24-26
7. प्रेम रंजन अनिमेष को कुछ मत कहो, हो सके तो ध्यान
   से सुनो- विजय कुमार तिवारी 27-36
8. नेपथ्य के अँधियारे को रोशन करती कविताएँ - विपिन चौधरी 37-46
9. अँधेरे में आँखें गड़ाये एक अदृश्य लौ की धाह पर - शंकरानंद 47-51
10. अनिमेष की कविताओं में बुझ गए बारूद की गंध नहीं,
    धड़कते जीवन का ताप है ! -राहुल राजेश 52-55
11. मानुष गंध को सहेजती कविताएँ - श्रीकांत द्विवेदी 56-61
12. मनुष्यता की महानता के पक्ष में - अंचित 62-63
13. प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँः दैनंदिन बदलावों
    का लेखा -डॉ. ऋषिकेश मिश्र 64-69
14. प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ : मनन एवं मूल्यांकन
    - डॉ. रवि कुमार गोंड़ 70-75
15. आत्मीयता के आत्मीय कवि : प्रेम रंजन अनिमेष - चेतन कश्यप 76-81
16. शब्दों के हर स्पंदन में प्रेम -आलोक कुमार 82-85
17. प्रेम रंजन अनिमेष की कविता का लोकपक्ष - सत्येन्द्र पाण्डेय 86-92
18. लोक मर्यादा के कवि : प्रेम रंजन अनिमेष - डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला 93-96
19. संवदेना में धड़कता जीवन लोक - सुरेश चन्द मीणा 97-98
20. प्रेम रंजन अनिमेष की कविता शृंखलाएँ -अमेय कान्त 99-108
21. स्नेह, विश्वास और संघर्ष के साथ अगले दिन की सोच
    सहेजे स्त्री-जीवन- डॉ. रीता दास राम 109-113
22. एक सच्चे सर्जक का परकाया प्रवेशः ब्रह्माण्ड की
    सफाई करती स्त्री का बिंब - मुकुल अमलास 114-119
23. प्रेम रंजन अनिमेष की कविता में स्त्रीत्व और वात्सल्य
    - डॉ. प्रोमीला 120-126
24. एक बच्चे की तरह से देखना - अमृता 127-131

पुस्तक-समीक्षा

25. प्रेम रंजन अनिमेष का कविता संग्रह 'मिट्टी के फल'
    - राजेन्द्र कुमार 132-133
26. दूध से भारी और पीड़ा से भरी 'मिट्टी के फल' - ओम निश्चल 134-138

27. मिट्टी से जुड़ी संस्कृति का महाआख्यानः मिट्टी के फल
- अरविन्द कुमार यादव 139-148
28. जीने के लिए चाहिए सारे के सारे औजार...: 'मिट्टी के फल'
- प्रफुल्ल कोलख्यान 149-152
29. निजी त्रासदी से ऊपर उठकरः संगत - गीता शर्मा 153-154
30. 'अँधेरे में अंताक्षरी' - प्रदीप मिश्र 155-158
31. 'बिना मुँडेर की छत' : कविता में वृतांत, वृतांत में कविता
- आलोक यात्री 159-159
32. 'बिना मुँडेर की छत' में प्रेम रंजन अनिमेष की रचनाधर्मिता
- डॉ. सत्यवती चौबे 160-168
33. कविता में नई बेचैनी : बिना मुँडेर की छत - ओम निश्चल 169-173
34. चिर-परिचित अनुभवों को बाँचती कविताएँ - अर्पण कुमार 174-179
35. पत्रों के साथ हर पते पर पहुँचता प्रेम रंजन अनिमेष का काव्य :
'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र और कुछ साक्ष्य' - सच्चिदानंद विशाख 180-184
36. अच्छे आदमी की कविताएँ - दिनेश अहिरवार 185-191
37. ऊँट मुसकुराता है तो मरुथल में होती है बारिश - प्रतापराव कदम 192-196
38. जीवन की धूपछाँव में फूलती फलती अनिमेष की 'अमराई'
- जनार्दन मिश्र 'जलज' 197-202
39. अभावों में भी भाव रचता प्रेम रंजन अनिमेष का कविता-संग्रह
'साइकिल पर संसार' -चंद्रकांत सिंह 203-204
40. अभिनव अनुभव संसार सिरजता प्रेम रंजन अनिमेष का
'लोकशास्त्र' - संजीव रंजन 205-213
41. काल से होड़ लेता प्रेम रंजन अनिमेष का सार्वकालिक
कविता-संग्रह 'संक्रमणकाल' - शैलेश कुमार सिंह 214-218

गजलकार अनिमेष :

42. थोड़े अच्छों को खराबों ने बचा रक्खा है...' - प्रदीप कान्त 219-223
43. जीवन के करीब पहुँचने का प्रयास करती हैं प्रेम रंजन अनिमेष
की गजलें - के.पी. अनमोल 224-226
44. ऊँचे मेयार का एक शायर : प्रेम रंजन अनिमेष - आतिश इंदौरी 227-229

कथाकार अनिमेष : एक मूल्यांकन

45. एक मधुर सपना - राजेंद्र यादव 230-230
46. लड़की जिसे रोना नहीं आता - अर्चना वर्मा 231-236
47. समय और समाज की सबरंग कहानियाँ - चेतन कश्यप 237-242
48. समाज और सिस्टम की सड़ाँध पर सवाल करती कहानियाँ
- प्रकाश कान्त 243-251
49. माँएँ, माँएँ और माँएँ - देवेन्द्र राज अंकुर 252-255

50. स्त्री संवेदना के अप्रतिम चितेरे प्रेम रंजन अनिमेष
- उषाकिरण खान 256-257
51. प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में स्त्री - डॉ. ममता पंत 258-265
52. उत्कृष्ट एवं कालजयी रचनाओं के प्रणेता प्रेम रंजन अनिमेष
-गुरबख़्श सिंह मोंगा 266-268
53. दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना... राकेश बिहारी 269-272
54. आख्यान की नयी जमीन तैयार करता 'विस्फोट'
- शशिभूषण मिश्र 273-277
55. नटुआ नाच : मानवता के पक्ष की अभिव्यक्ति - डॉ. रीना सिंह 278-284
56. सर्वसाधारण की असाधारण महागाथाएँ
- अलका अग्रवाल सिगतिया 285-290
57. लोक से जुड़ी मार्मिक कहानियाँ - वंदना बाजपेयी 291-295
58. अंतरतम तक उतरने वाले अन्यतम शब्दसाधक प्रेम रंजन
अनिमेष - सुशील कृष्ण गोरे 296-302
59. सामाजिक विषमताओं की पुरजोर अभिव्यक्ति : प्रेमरंजन के
उपन्यास -प्रोफेसर उषा मिश्रा 303-310
60. राजभाषा का राजपाट : 'दि हिन्दी टीचर' पर टिप्पणी
- राजेन्द्र राव 311-311
61. 'स्त्रीगाथा': स्त्री-अस्मिता का अविरत अन्वेषण
- डॉ. नियति कल्प 312-318
62. गहरे मानवीय सरोकारों से भरी 'चंद खिलौनों की दास्तान...'
- चंदकला त्रिपाठी 319-321
63. 'सात सहेलियाँ खड़ी खड़ी' अर्थात पितृसत्ता के दुर्ग द्वार पर
एक साझा दस्तक - कविता 322-326
64. सार्थक सिने संभवनाओं से भरा प्रेम रंजन अनिमेष का
कथा-संसार-विनय रंजन 327-343

साक्षात्कार :

65. प्रेम रंजन अनिमेष के साथ चेतन कश्यप के कुछ सवाल-जवाब 344-362
66. कविता हृदय में कंघी करती है : प्रेम रंजन अनिमेष से
कुणाल सिंह की बातचीत 363-369

अपने तईं

प्रेम रंजन अनिमेष विशेषांक ही क्यों?

- डॉ. सतीश पांडेय

कवि-कथाकार प्रेम रंजन अनिमेष समकालीन हिन्दी रचनाकारों में अत्यंत ही संभावनाशील, विशिष्ट एवं चर्चित युवा हस्ताक्षर हैं। उन्होंने कविता, ग़ज़ल, कहानी, उपन्यास, संस्मरण आदि विधाओं के अतिरिक्त बाल-कविताएँ और बाल-उपन्यास भी लिखे हैं। मुख्यतः अपनी कविताओं और कहानियों के लिए वे अधिक चर्चित रहे हैं। ब्लॉग 'अखराई' के जरिए भी वे निरंतर अपनी रचनाशीलता का परिचय देते रहे हैं। उनका मानना है कि अच्छा कवि होने के लिए अच्छा आदमी होना अनिवार्य होता है। इसी लिए उनकी कविताओं में जीवन का स्पंदन साफ-साफ महसूस किया जा सकता है। उनकी कविता हमें अपने आसपास से जोड़ती है। वह हमें सामान्य जनजीवन का सब कुछ दिखाती है– हमारा भाव, हमारा सुख-दुख, हमारा संघर्ष, हमारी बेबसी, लाचारी, और हमारे जीवन का अंतरंग संसार भी।

यह समय सामाजिक एवं मानवीय सम्बन्धों के विशृंखलित-विघटित होने का ही नहीं बल्कि एकल परिवार की बढ़ती अवधारणा के कारण निकट पारिवारिक संबंधों और उनसे जुड़ी संवेदनाओं के भी खत्म होने का भयावह समय है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में भागता आदमी इन सब से अलग-थलग पड़ता जा रहा है। रोजगार की तलाश में गाँवों से विस्थापित एवं शहरों में एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त युवा पीढ़ी की इस पीड़ा को समकालीन कवियों ने बड़ी शिद्दत से अनुभव किया है। इसी लिए अनेक समकालीन कवियों ने माँ या पिता को लेकर मानवीय चिंताएँ एवं कोमल संवेदनाएँ व्यक्त की हैं। कहा जा सकता है कि इन कवियों की कविताओं में वात्सल्य की वापसी हुई है। इन कवियों में प्रेम रंजन अनिमेष का नाम अग्रणी है क्योंकि इन्होंने माँ, पिता, बहन और बच्चों आदि को केंद्र में रखकर पूरा कविता-संग्रह लिखा है।

उनका पहला ही कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' पाठकों एवं समालोचकों के बीच काफी लोकप्रिय रहा है। इसमें इन्होंने बचपन के बहाने जीवन और जगत की विभिन्न स्थितियों को व्यापकता प्रदान की है। इनका दूसरा संग्रह 'कोई नया समाचार' घर में नए शिशु का स्वागत है, जिसमें बाल-मन की सहज और विलक्षण अभिव्यक्ति हुई है, जो सूरदास के बाद अपने ढंग की अनूठी कृति है। इस संग्रह की एक कविता है 'पहला नाम' जिसमें माँ और बच्चे के बीच संबंधों की जो महीन डोर उसे सबसे पहले जोड़ती है, वह भूख मिटाने वाली और त्यागमूर्ति की है -

बच्चे ने जाना / माँ / चूल्हे की आग का / दूसरा नाम है /
बच्चे ने जाना / माँ त्याग का दूसरा नाम है /
माँ का पहला नाम / ढूँढ़ रहा है बच्चा ...

इसी तरह बड़ी दीदी को याद करती एक छोटी-सी किंतु बड़ी ही मार्मिक कविता है 'अब के सावन..' जिसमें सम्बन्धों की नमी महसूस की जा सकती है-

क्या कहीं / कोई आँख नम है? / अबकी राखी में /

मेरी कलाई पर / एक धागा कम है ...

कविता संग्रह 'संगत' विदा होते पिता का जीवन-आख्यान है। यह संग्रह इस अर्थ में विशिष्ट है कि इन कविताओं में पिता के जीवन के अंतिम वर्षों में उनके साथ व्यतीत किए गए आत्मीय पलों के मर्मस्पर्शी चित्र हैं। सम्बन्धों के विघटन के लिए कुख्यात समय में पिता के साथ बिताए गए क्षणों को कवि ने जिस अंतरंगता और मार्मिकता के साथ व्यक्त किया है, उससे एक उम्मीद बँधती है। 'संगत' संग्रह के फ्लैप पर लिखी ये पंक्तियाँ कवि की सम्यक दृष्टि की ओर ही इशारा करती हैं- 'आज का युग जहाँ संयुक्त पहले ही तिरोहित हो गया है और परिवार भी बिखरते-बिसरते जा रहे हैं, अनिमेष की कविताओं का यह आत्मीय संसार उसके बरअक्स भावों, जुड़ावों और संवेदना से धड़कता एक ऐसा जीवन हमारे सामने लाता है जिसमें हृदय अब भी इतने विशाल हैं जो अपने-अपनों के अलावा औरों को भी सहज अपना बनाने और अपनाने को उमगते हैं।'

सम्बन्धों को बचाए रखने की उसकी छटपटाहट ही उससे गालियों पर भी कविता लिखवा लेती है-

और हालाँकि समाजशास्त्र / उतना ही जानता हूँ जितना /
पेड़ की जड़ें / मगर यह भी लगता है कि / जब कहीं नहीं रहेंगे /
तो गालियों में ही बने रहेंगे रिश्ते!

इस तरह ये कविताएँ जहाँ घर-गृहस्थी, सघन वात्सल्य और अन्य पारिवारिक-सामाजिक रिश्तों की स्मृतियाँ जगाती हैं तथा मनुष्य को एक बेहतर मनुष्य बनने का संबल प्रदान करती हैं, वहीं प्रेम की अभिव्यक्ति भी इनमें गुनगुनी धूप की तरह विविध रूपों में व्यक्त हुई है। इनके यहाँ प्रेम का छायावादी अतींद्रिय रूप नहीं है। रोजमर्रा की आपाधापी में प्रेम भरे कुछ अलक्षित क्षणों को कवि अपनी स्मृति-चेतना में सहेजता है, जहाँ कुंठा के लिए कोई स्थान नहीं है। यहाँ स्त्री सिर्फ एक देह के रूप में नहीं व्यक्त हुई है बल्कि उसका मन भी प्रकट हुआ है। 'सौ वसंत' कविता में स्त्री के ऐसे ही रूप-सौन्दर्य का वर्णन देखा जा सकता है-

सौ वसंत होते / एक स्त्री में / उसके भीतर / जब फूल खिलते /
तो दुनिया भर उठती है / अनूठी खुशबू से / उस सुवास का काम है /
खींचना अपनी ओर / दिल को दिल तक लाना / और तुम्हारा
उसे सींचना संजोना सजाना ... (सौ वसंत)

आज के बाजारवादी समय में जहाँ किसी भी तरह पैसा कमाना और जीवन की भौतिक सफलताओं को हासिल कर स्वयं को विजेता समझना आदमी की मूल प्रवृत्ति बन गयी हो, वहाँ प्रेम जैसी कोमल एवं त्याग पर आधारित मनोवृत्ति को बचाए रखने को तरजीह देना अधिक मानवीय होना है। अनिमेष जी की कविताओं में प्रेम का यही रूप प्रकट हुआ है-

मैं किसी गाँव किसी कस्बे दूर देहात वाले /छोटे स्टेशन की तरह रहूँगा
तुम तेज रफ्तार गाड़ी की तरह गुजरना /
कुछ ऐसे की पढ़ा भी न जा सके मेरा नाम ... (कुछ ऐसे)

प्रेम का एक रूप उस मासूमियत से प्रेम वाला भी होता है जहाँ निश्छलता होती है।

प्रेम उदात्त भावनाओं की ओर ले जाता है जहाँ छल-कपट के लिए कोई स्थान नहीं होता। ऐसा रूप बचपन में सहज ही परिलक्षित होता है। अनिमेष जी इस बचपन का साहचर्य चाहते हैं, उनसे प्रेम कराते हैं-

लौटा हूँ तो देखता हूँ / कलम खुली पड़ी है / बिना ढक्कन /
तारीखें नहीं तिथि दर्शक की / दाढ़ी बनाने का सामान जैसे तैसे /
गायब है मूँछें कतरनेवाली छोटी कैंची.../
जान जाता हूँ बच्चे आये थे यहाँ मेरे बाद .../
... शौक से करते / मेरे होते / मुझे भी लेकर साथ
(नन्हों से नन्हीं सी शिकायत)

प्रेम की ऐसी अभिव्यक्ति तभी संभव है जब वह मानवीय मूल्यों पर आधारित हो। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं के केंद्र में एक सामान्य मनुष्य है, जिसमें वही जीवन स्पंदित होता है जिससे हम रोज-ब-रोज रू-ब-रू होते हैं। इसी लिए उनकी प्रेम संबंधी समझ भी सीधी-सादी एवं सरल है। उनके यहाँ 'प्रेम और युद्ध में सब कुछ जायज है' वाली कहावत लागू नहीं होती। इसीलिए वे कहते हैं- प्यार के बारे में सोचते / अक्सर माँ की कही / एक बात याद आती/ नौ तो जानता / पर छौ कहाँ ... (अबोध)

प्रेम रंजन जी की कविताओं में बदलते पारिवारिक-सामाजिक रिश्तों के साथ-साथ लोक जीवन की अनेक छाया-छवियाँ मौजूद हैं। ये रचनाएँ हमारे समय और समाज की जीवंत दस्तावेज हैं। इसीलिए इनमें वर्तमान समय के बदलावों के प्रति गहन चिंताएँ ही नहीं हैं बल्कि आज की विसंगतियों-विडंबनाओं, उलझनों और सपनों-संघर्षों को भी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है। वे अपनी खुली आँखों से समाज का हर कोना-अँतरा झाँक आते हैं। उनकी कविता में बढ़ई, लोहार, कुली, धुनिया सब हैं। उन्होंने सबसे कुछ न कुछ सीखा है। इसी लिए उन सबके ऋण बड़ी ही विनम्रता से स्वीकारते हैं-

जिन-जिनके ये हुनर / सबका आदर / सबकी बाकी है गुरु दक्षिणा /
सबसे सीखा आँख बचाकर /
चरवाहों के चैन और हाटवालों की हड़बड़ी के बीच /
सोचता हूँ छू सकूँ जीवन को जितनी कोरों से

कवि का लोक जीवन से सहज जुड़ाव है। सामान्य से अतिसामान्य के प्रति भी वह सजग है। वह अपनी मिट्टी के छूटने का डर व्यक्त करते हुए कहता है कि आज मिट्टी की हांडी, चूल्हा, दीया, घड़ा, गुल्लक हमसे दूर होते जा रहे हैं। इस लोक से उनके जुड़े होने का उल्लेख केदारनाथ सिंह जी ने भी अपनी एक टिप्पणी मे इस तरह किया है - 'मिट्टी के फल' का यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है। मिट्टी यहाँ कोई कामचलाऊ मुहावरा नहीं, जीवन-यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म है, जिसे कवि अपनी पाँचों उँगलियों अर्थात पाँचों इन्द्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है - यहाँ तक कि कवि की एक कविता के ही साक्ष्य से कहें तो इसमें 'कानी उँगली' की भी सक्रिय भूमिका होती है। 'बिना मुँडेर की छत' कविता संग्रह के फ्लैप पर भी उनके लोक से जुड़े होने का स्पष्ट संकेत दिया गया है- 'प्रेम रंजन अनिमेष भारतीय लोक की जड़ों में

जीवित जिजीविषा के गायक हैं। उनकी कविताएँ हमारे आसपास फैली उन चीजों तक पहुँचती हैं, जिन्हें हमने अब देखना लगभग बंद कर दिया है लेकिन इसके बावजूद वे दुनिया को चलाये रखने में अपनी भूमिका निभा रही हैं।'

इस तरह अनिमेष जी जीवन की छोटी-छोटी बातों में, उपेक्षित और अनचीन्हे विषयों पर कविताएँ लिख कर उनमें जीवन के सूत्र ढूंढते हैं। 'रेजगारियाँ', 'बरसों बाद गाँव आये नौजवान की डायरी', 'तीलियाँ', 'छाता,' 'बेकार की कविताएँ, 'अकेला आदमी', पैदल की कविताएँ', 'सफल आदमीगाड़ी', 'वह आदमी कभी भी मारा जा सकता है', 'नहीं', 'मर्ज', 'मध्यस्थ', 'पसीना', 'चाय', 'रजतपट', 'स्वगत', 'दुखड़े', 'दाढ़ी बनाते हुए', 'वे नर मर चुके' जैसे विषय इस संदर्भ में देखे जा सकते हैं। कविता के संदर्भ में प्रेम रंजन अनिमेष की अपनी अलग धारणा रही है। उनके अनुसार कविता मनुष्य के जीवन को सरल बनाती है तथा उसके संघर्षों और समस्याओं को भी व्यक्त करने का उपक्रम रचती है। मानवीय संवेदनाएँ उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण रही हैं, जहाँ वे आपाधापी भरे और सिर्फ स्व के बारे में सोचने वाले लोगों के बीच ठिठक कर किसी का हालचाल पूछना चाहते हैं, रुक कर किसी अजनबी को राह बताना चाहते हैं या किसी वृद्ध को सड़क पार कराना चाहते हैं। उन्हें लगता है कि इसी एक मिनट में ही मनुष्य होने का अर्थ छिपा हुआ हैः

एक मिनट के लिए / किसी का हाल पूछने रुकूँगा / और बारिश में घिर जाऊँगा /
एक मिनट / राह बताने लगूँगा अजनबी को / और गाड़ी छूट जाएगी /
एक मिनट थमकर / एक वृद्ध को सड़क पार कराऊँगा /
और काम पर कट चुकी होगी मेरी हाजिरी / फिर भी चलते-चलते / ठिठकूँगा /
एक पल के लिए / कि चौबीसो घंटे में अब / इसी एक मिनट में /
बची है जिंदगी (ठिठकना)

कवि स्वार्थी बने लोगों को अपनी दृष्टि व्यापक और मानवीय बनाने का संकेत करता है। वह ऐसा छाता लेना चाहता है जिसके नीचे आकर सब लोग लोग सुरक्षित हो जाएँ। यदि कोई बरसात में भीगे तो वह हो, उसका अकेलापन- इस शहर के लोगों के पास जो छाता है / उसमें कोई एक ही आता है / इसलिए / सोचता हूँ / मैं लूँगा / तो लूँगा आसमान / कि जिसमें सब आ जाएँ / और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन!

कविता की सार्थकता उसकी जनपक्षधरता में मानने के कारण ही प्रेम रंजन अनिमेष की दृष्टि में कविता तीन पैसे के चिमटे की भाँति है जिससे रोटियाँ सेंकने वाले हाथों को जलने से बचाया जा सके -कविता मेरे लिए / तीन पैसे का चिमटा है / जिसे मोल लिया था मैंने / बचपन के मेले में / कि जलें नहीं रोटियाँ सेंकने वाले हाथ / कि दूसरों को दे सकूँ अपने चूल्हे की आग!

रोटियाँ पकाने वाले हाथ की चिंता करने वाला कवि लोगों को अपने चूल्हे की आग बाँटना चाहता है। इस तरह वह लोकमंगल के लिए जनमानस के क्रांतिकारी तेवर को धार देना चाहता है। अभाव, लाचारी और भूख से पीड़ित सामान्य जन की पीड़ा कवि शिद्दत से अनुभव करता है लेकिन वह जानता है कि इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार

ताकतों के विरुद्ध संघर्ष किए बिना कोई बदलाव संभव नहीं है। इसी लिए 'आखिर किसके लिए' कविता में वह स्पष्ट संकेत करता है कि जूझना और सामना करना ही एकमात्र उपाय है-

केवल कामना करने से / तो नहीं / कि भरसक जूझने /
सामना करने से / सुनिश्चित होती / शांति

भयानक अंधकार के इस दौर में सामान्य जन की लड़ाई तभी लड़ी जा सकती है जब लोगों में चेतना की उजास फैले। यही कारण है कि प्रेम रंजन 'अँधेरे में माचिस की तलाश में एक कविता' शीर्षक से कविता लिखकर लोक में संघर्ष की चेतना जिलाए रखना चाहते हैं। वे आजमाना चाहते हैं कि दियासलाई की आखिरी तीली में अब भी कितनी आग बची है। जन में चेतना भरते हुए वे कहते हैं -

'या फिर इस बीच हो ऐसा / कि मेरी सोच की रगड़ से ही /
पैदा हो कोई चिनगारी / और इस रात में भर जाए रोशनी!'

कवि व्यवस्था में बदलाव की शुरुआत न्याय की पोशाक बदलने से करना चाहता है क्योंकि न्याय व्यवस्था की पोशाक काली अधिक है और सफेद बहुत कम। इसके बावजूद उसका व्यवस्था विरोध कहीं से भी मानवीयता का पक्ष नहीं छोड़ता है। 'मदद' जैसी कविता में बहुत सुंदर बिम्ब है। एक सिपाही झुक कर एक बच्चे के जूते का फीता बाँधता है और इस दौरान सारा यातायात रुक जाता है। वे कहते हैं- सिपाही ने बहुत दिनों से बाँधा नहीं था / किसी बच्चे के जूते का फीता / सो देर लगी उसे.../ किसी बच्चे की तरह / चाहता हूँ मैं / ताकत झुके तो इस तरह / रास्ता रुके तो इस तरह।

कवि यह मानता है कि सत्ता सदैव संयमित, संवेदनशील, निष्ठावान और विचारवान व्यक्ति के हाथ में होनी चाहिए लेकिन वर्तमान राजनीति अनेक तरह की विद्रूपताओं और विसंगतियों से ग्रस्त है। वर्तमान राजनीति एक व्यवसाय में बदल गयी है, जहाँ हर कोई जनता के नाम पर अपने शुभ-लाभ की सोचता है। धर्म-जाति सत्ता हथियाने के रास्ते बन गए हैं। स्वहित देश हित से बड़ा हो गया है। लूट का माल मिल-बाँट कर खाया जाता है और पीड़ितों, निर्बलों तथा वंचितों की परवाह करने वाला कोई नहीं है। किसी के आड़े न आने में ही सबकी भलाई है। इसी लिए कोई किसी से टकराता नहीं- 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' कविता इस समूचे शोषण तंत्र को उधेड़ती और अंदर तक झकझोरती है। इन राजनेताओं की कथनी और करनी का भेद मिट गया है और विदूषक की भाँति देश हित के नाम पर मसखरी जारी है- जो सिंहासन पर है / विदूषक मालूम होता है / शासक की हत्या कर जो बैठ गया गद्दी पर / आतिशबाजियों की कौंध में झिलमिलाता / बच्चों के कल का सन्नाटा...

आज जिस तरह से मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है, अच्छाई की परिभाषा ही बदल गयी है। आज कुछ बुरा न करना ही अच्छा करना है। ऐसे में किसी को रास्ता बता देना, फूल को न तोड़ना, किसी अनजान को देखकर महज मुस्कुरा भर देना भी मायने रखता है। अनिमेष जी का मानना है कि कविता जीवन में जो जीवंत है, उस तक पहुँचती है और दुनिया को बेहतर बनाने के संघर्षों को संबल प्रदान करती है। वह सोच को वृहत्तर तथा संवेदना को महत्तर बनाते हुए सार्थक और सकारात्मक परिवर्तन लाने

का प्रयास करती है। दुनिया को बेहतर बनाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील कवि अनिमेष ढेर सारी चिट्ठियाँ एक साथ लिखे जाने की हिमायत इसी लिए करते हैं- चिट्ठियों में / सब अच्छे होते हैं / एक चिट्ठी / कितनों को अच्छा कर देती है / उसने सोचा / इसी तरह / लिखी जायें / ढेर सारी चिट्ठियाँ / तो अच्छी हो जाये सारी दुनिया।

कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' की पहली ही कविता है 'बच्चे की स्लेट पर लिखे कुछ सवाल'। इस कविता में उन्होंने जिस भयावह भविष्य का अंदेशा व्यक्त किया है, वह बेचैन करने वाला है। पर्यावरण का संकट आज पूरी मानवता के लिए सबसे बड़ा संकट है। प्रेम रंजन अनिमेष ने इस कविता में इस भयावह संकट से ग्रस्त समूची मानवता के सामने खड़े अनिश्चित भविष्य के प्रति सवाल खड़ा किया है। यह पूरी कविता सवालों में है और वे सवाल बेहद गंभीर हैं। वे बच्चों की स्लेट पर हैं यह और भी चिंता की बात है क्योंकि बच्चों का बचपना छिन रहा है और उन्हें जो विरासत में मिल रहा है, वह मुश्किलों भरा अधिक है। इसी लिए ये प्रश्न अधिक चुभते हैं-

क्या सच में एक दिन / स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल में /
और खाली बाँस के खोल में साँस की हवा /
क्या बस जुगनुओं में रह जाएगी सच की लौ /
और उर्वर मिट्टी केंचुओं के बिल में /

यह पूरी कविता इसी तरह के कठिन सवालों से भरी है। अनिमेष जी उन खतरों से वाकिफ हैं कि बाजार के लिए हर चीज एक उत्पाद भर है जिसका मूल्य मुनाफा देना है। अब प्राकृतिक संसाधन भी वस्तु में तब्दील होते जा रहे हैं। हवा, पानी और मिट्टी ही नहीं यह खतरा सच की लौ तक से भी जुड़ा है। इन सब के लिए मुश्किल खड़ी हो गयी है और बच्चों का जीवन इनके बिना कैसे संभव है। ऐसा ही एक और वैश्विक संकट कोरोना के कारण भी सम्पूर्ण मानवता के सामने आ खड़ा हुआ था। इसके संदर्भ में कवि अनिमेष की चिंता 'संक्रमणकाल' संग्रह की कविताओं में देखी जा सकती हैं। कठिन और चुनौतीपूर्ण समय में देश और दुनिया के स्तर पर अभूतपूर्व उथल-पुथल की शिनाख्त करती ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता-जगत में अपनी तरह की अनूठी है।

प्रेम रंजन अनिमेष एक सजग कवि ही नहीं, एक समर्थ गजलकार भी हैं। जीवन की अनेक कोमल संवेदनाओं को इन्होंने बड़ी ही कुशलता से अपनी गजलों में व्यक्त किया है। इनमें बच्चों के सवाल भी हैं। अनिमेष जी का विश्वास है कि 'एक बच्चे के सवालों से बनी है दुनिया / जिसको इक माँ के जवाबों ने बचा रक्खा है /' इन गजलों में बच्चों के मासूम सवाल ही नहीं आज के ज्वलंत प्रश्न भी हैं। अन्नदाता किसान की समस्याएँ ऐसे ही ज्वलंत मुद्दों में से एक है- 'इस दफा भी फसल पिछली बार-सी है / खेत सूखे जख़्म.सबके सब हरे हैं /'

सांप्रदायिकता आज की ऐसी ही एक और विकट समस्या है, जिससे आजादी के बाद सामान्यजन लगातार अभिशप्त होता रहा है और स्वार्थी राजनेता इसे अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उपयोग में लाते रहे हैं। राजनेताओं के इस छद्म को अनिमेष जी ने सार्थक अभिव्यक्ति दी है-

सारे चेहरे हैं एक से झुलसे /
मजहबों का जुनून क्या देगा।
अल्फाज कम हैं उनकी महारत के वास्ते।
जो मुल्क बाँटते हैं सदारत के वास्ते।।

इसी तरह अनिमेष शहरों के रिश्तों के कच्चेपन का भी उल्लेख करते हैं-

पहली बरसात में रस्ते ये उघड़ जाते हैं /
शहर के रिश्ते हैं बनते ही बिगड़ जाते हैं।

ऐसे कठोर और संवेदनहीन समय में जिजीविषा हमारे लिए संजीवनी बन कर न सिर्फ संघर्ष के लिए प्रेरित करती है बल्कि दुनिया को बदलने का साहस भी जगाती है-

क्या क्या नहीं हुआ किसी बेबस के साथ रात /
फिर सुबह सुर्खियों ने खबर भर बना दिया /
पानी था जिनमें ऐसी कुछ आँखों ने मिल के साथ /
सहरा को धीरे धीरे समुंदर बना दिया /

प्रेमरंजन अनिमेष की गजलों से गुजरते हुए यह साफ दिखाई देता है कि इनकी संवेदना हाशिए पर डाल दिए गए लोगों के साथ खड़ी है। इसी लिए वे विकास के नाम पर चकाचौंध का प्रतीक बनी इंडिया के बदले भारत की चिंता करते हैं-

हर ओर दिख रहा है चमकदार इंडिया /
अब कौन सोचता कहीं भारत के वास्ते।

साहित्य-जगत में प्रेमरंजन अनिमेष का कद तब और भी बढ़ जाता है जब हम उनकी कहानियों से रूबरू होते हैं। उनकी कहानियाँ 'एक मधुर सपना' और 'पानी पानी' हिंदी की अग्रणी कथा पत्रिकाओं 'हंस' एवं 'कथादेश' द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। उनके कहानी संग्रह 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'माई रे...', 'एक मधुर सपना', 'एक स्वप्निल प्रेमकथा', 'उसने नहीं कहा था', 'पानी पानी', 'नटुआ नाच' आदि शीघ्र प्रकाश्य हैं। साथ ही 'स्त्रीगाथा', 'परदे की दुनिया', 'किसी असमय की बात है', 'दि हिंदी टीचर', 'दंतकथा' एवं 'जीवन अनंत' आदि उपन्यास ईबुक के रूप में चर्चित हैं। इनकी संस्मरण की पुस्तक 'अगली दुनिया की पहली खबर' भी शीघ्र प्रकाश्य हैं।

बच्चों के लिए उनकी कविता पुस्तक 'माँ का जन्मदिन', प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित हुई है, जिसके लिए उन्होंने आठ पंक्तियों के अनूठे शिल्प का प्रयोग किया है। उनके और बाल कविता संग्रह 'आसमान का सपना', 'कच्ची अमिया पकी निंबोलियाँ', 'कुछ दाने कुछ तिनके' तथा 'मीठी नदी का मीठा पानी' और बाल उपन्यास 'एक हाथ का हाथी' और 'बोलने वाली मछली' भी उल्लेखनीय हैं।

अपने समय के ऐसे प्रतिभा सम्पन्न रचनाकार का सही-सही मूल्यांकन होना बार-बार जरूरी लगता रहा है। उनके लेखन पर केन्द्रित 'समीचीन' का यह अंक आपके सामने है। इस अंक की घोषणा के बाद से ही कई साहित्यिक मित्रों के उलाहने आने लगे थे। खास तौर पर उनके समकालीनों की छटपटाहट समझ आने लगी थी किन्तु

'समीचीन' की यही नीति रही है कि युवा साहित्यकार हों या साहित्यिक गुटबाजी अथवा खास विचारधारा के चौखटे वाले समीक्षकों की राजनीति या अन्य किन्हीं कारणों से उपेक्षित अन्य कोई रचनाकार, उनकी रचनाधर्मिता का सही-सही मूल्यांकन किया जाए। इसी लिए थोड़ा विलंब से ही सही लेकिन उनकी सभी रचनाओं के साथ-साथ उनकी रचनाशीलता की मूल संवेदना एवं दृष्टि को विवेचित-विश्लेषित करने का प्रयास करने वाला यह अंक प्रस्तुत है। आपकी पाठकीय प्रतिक्रियाएँ अपेक्षित है। अस्तु।

- **सतीश पांडेय**

प्रेम रंजन अनिमेष

सातवें दशक के उत्तरार्ध में आरा (भोजपुर, बिहार) में जन्मे प्रेम रंजन अनिमेष हिंदी कविता और कथा जगत के सर्वाधिक संभावनाशील और सशक्त हस्ताक्षरों में उल्लेखनीय हैं। उनकी रचनाएँ इसलिए भी नयी हैं क्योंकि वे हर बार कुछ नया करने का साहस करते हैं। उनके पहले कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' ने जहाँ सुधी साहित्य-मर्मज्ञों और पाठकों का एक साथ ध्यान खींचा, वहीं बचपन के बहाने जीवन-जगत के व्यापक फलक को स्पर्श करते दूसरे संग्रह 'कोई नया समाचार' को सूर के बाद पहली बार बाल-मन के इतने सहज जीवंत विलक्षण और बहुआयामी रूप उजागर करने वाली अनूठी कृति माना गया। उनके अगले कविता संग्रह 'संगत' में पिता के जीवन के अंतिम वर्षों के दौरान उनके साथ के जैसे गहन, आत्मीय और मर्मस्पर्शी चित्र हैं, वैसे हिंदी कविता ही नहीं वरन विश्व कविता में भी दुर्लभ हैं। उनके ताजा काव्य संग्रहों 'अँधेरे में अंताक्षरी' और 'बिना मुँडेर की छत' को भी पाठकों और आलोचकों दोनों ने सराहा है। उनके अगले काव्य संग्रह 'कुछ प्रमाणपत्र', 'प्रश्नकाल शून्यकाल', 'अवगुण सूत्र', 'नींद में नाच', 'माँ के साथ', 'साइकिल पर संसार', 'मरुकाल का मेघदूत', 'संक्रमणकाल', 'आज राज समाज', 'कविताएँ जिनसे झगड़ती हैं कहानियाँ', 'स्त्रीसूक्त', 'स्त्रीपुराण स्त्रीनवीन', 'अकथ कथाएँ', 'कुछ स्त्रीगीत', 'लड़कियाँ सब जानती हैं', 'अंतरंग अनंतरंग', 'नयी कवितावली', 'जीवन शृंखला' आदि प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं।

महामारी के दौरान, उससे पहले और बाद के देश और विश्व परिदृश्य में रचित अनिमेष की अद्यतन कृति 'संक्रमणकाल' एक अद्भुत कविता पुस्तक है। कठिन और चुनौतीपूर्ण समय में देश और दुनिया के स्तर पर अभूतपूर्व उथल-पुथल की शिनाख्त करती ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता-जगत में अपनी तरह के अनूठे इस संग्रह को चिरकालिक व वैश्विक महत्व का बनाती हैं। समकाल से उत्सुत होकर सर्वकाल को संबोधित करती ये कविताएँ सदी की सबसे बड़ी त्रासदी कही जाने वाली महामारी का मानवीय और सृजनात्मक अभिलेख तो हैं ही, उससे जूझ कर उबरने के संघर्ष और अनाहत जिजीविषा की महागाथा भी!

'अभिनव छंद', 'पाखी', 'तीलियाँ', 'हमारे समय के लिए कुछ गीत', 'नव गीतांजलि', 'नयी पहेलियाँ', 'नयी दोहावली' सरीखे छांदिक प्रयोग करने वाली रचनाएँ इस सतत सृजेता के निरंतर योगधर्म और नवोन्मेषी सृजनात्मक मन-मानस के कुछ और उदाहरण हैं। साहित्य को सबके हित का सर्वार्थ साधन मानने वाले अनिमेष के लिए कोई भी विधा अस्पृश्य नहीं है। अपनी मुक्तछंद या छंदमुक्त कविता के नयेपन के लिए माने जाने वाले अनिमेष अगर ग़ज़ल या गीत कहते हैं तो वह भी उस तेवर और महारत के साथ कि जिंदगी इन्हीं विधाओं के नाम करने वाले भी दंग रह जाते! अनिमेष के अनुसार अच्छे कवि या साहित्यकार के यहाँ प्रायः रचना स्वयं अपना रूपाकार निर्धारित करती है और यही आदर्श स्थिति भी है क्योंकि ऐसे में खुद लेखक का भी एकतरफा फैसला या एकाधिकार नहीं चलता। कविता के साथ-साथ अन्य विधाओं और विधानों में भी अविरत अनुसंधान एक नैसर्गिक वरदान-सा उन्हें प्रवृत्त रखता है, जिससे वे

रचनात्मकता की नयी मिट्टी वाली उर्वर जमीन तैयार करते हैं।

ई-बुक के रूप में वेब पर उपलब्ध कवि की वृहद कविता श्रृंखलाएँ 'अच्छे आदमी की कविताएँ' एवं 'अमराई' आज की दुनिया में सीधे-सादे अच्छे मनुष्य के जीवन संघर्ष के साथ-साथ उसकी जीवंतता व अच्छाई तथा प्रकृति व संस्कृति के सहजीवन को अक्षुण्ण रखने की अप्रतिहत चेष्टा का हार्दिक अभिलेख हैं। आधुनिक हिंदी कविता की एक दूसरे से मुक्त कविताओं के संकलन की परिपाटी से अलग ये कविताएँ अपने आप में स्वतंत्र होते हुए भी एक गहरे अंतःसूत्र से जुड़ी हैं और इस तरह एक नया प्रस्थान विंदु रचती हैं।

देश की प्रायः सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अनिमेष 'ऊँट', 'साइकिल', 'खेल', 'आवाजें', 'अनकही', 'काव्यसूत्र', 'नये कवि की कवितावली', 'नींद में कुछ कविताएँ', 'रात और फुटपाथ', 'वृत्त अनंत', 'लोकशास्त्र', 'रेजगारियाँ', 'एक लड़की का खंडकाव्य', 'स्त्री प्रत्यय', 'अधराई', हार्दिक', 'बारिश के बाद', 'एक और वर्षा वर्णन', कुछ जलचित्र कुछ जलचिह्न', 'साक्ष्य', 'बरसों बाद गाँव आये नौजवान की डायरी', 'कुछ विदागीत', 'साक्ष्य', 'तीलियाँ', 'बेकार की कविताएँ, 'अकेला आदमी', आदमी', पैदल की कविताएँ', 'सफल आदमीगाड़ी', 'वह आदमी कभी भी मारा जा सकता है', 'नहीं', 'मर्ज', 'मध्यस्थ', 'पसीना', 'चाय', 'रजतपट', 'स्वगत', 'दुखड़े', 'दाढ़ी बनाते हुए', 'वे नर मर चुके', 'बची हुई आत्मा का संगीत', 'रक्त संबंध', 'जीवन पर्व' जैसी अपनी लंबी कविता श्रृंखलाओं के लिए भी जाने जाते हैं, जो उन्हें अपने समकालीनों में विशिष्ट बनाती हैं।

बच्चों के लिए उनकी कविता पुस्तक 'माँ का जन्मदिन', प्रकाशन विभाग, प्रकाशित हुआ है, जिसके लिए उन्होंने आठ पंक्तियों के अनूठे शिल्प का प्रयोग किया है। उनके और बाल कविता संग्रह 'आसमान का सपना', 'कच्ची अमिया पकी निंबोलियाँ', 'कुछ दाने कुछ तिनके' तथा 'मीठी नदी का मीठा पानी' और बाल उपन्यास 'एक हाथ का हाथी' और 'बोलने वाली मछली' भी शीघ्र आने वाले हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष को वर्ष 2004 में युवा कविता के प्रतिष्ठित 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। अनिमेष की कहानियाँ 'एक मधुर सपना' और 'पानी पानी' हिंदी की अग्रणी कथा पत्रिकाओं 'हंस' एवं 'कथादेश' द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं और उनकी कई अन्य कहानियाँ भी प्रकाशित पुरस्कृत हुई हैं। उनके कहानी संग्रह 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'माई रे...', 'एक मधुर सपना', 'एक स्वप्निल प्रेमकथा', 'उसने नहीं कहा था', 'थमी हुई साँसों का सफर', 'पानी पानी', 'नटुआ नाच', 'एक रात की बात', 'इतना अच्छा कोई' तथा 'अबोध कथाएँ' आदि शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं। साथ ही 'स्त्रीगाथा', 'परदे की दुनिया', 'नौशीन', 'सदानीरा', 'सत्य सार्थक सर्वदा', 'किसी असमय की बात है', 'दि हिंदी टीचर', 'मूर्धन्य ष', 'वर्जित प्रदेश', 'द एविडेंस', 'द पॉजिटिव्स', 'टियरलेस', 'wow', 'ललनायें', 'अमृतकन्या', 'दागगाथा', 'दंतकथा' एवं 'जीवन अनंत' जैसे उपन्यास तथा संस्मरण की पुस्तकें 'अगली दुनिया की पहली खबर' एवं 'कुछ दिन और भी।

उनकी कविताओं के बांगला, पंजाबी, मराठी, उर्दू आदि कई भारतीय भाषाओं के साथ-साथ जर्मन और अंग्रेजी में भी अनुवाद हुए हैं और उन्होंने अग्रणी अमरीकी कवि विलियम कार्लोस विलियम्स एवं नोबल पुरस्कार प्राप्त आयरिश कवि सीमस हीनी की कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया है।

संगीत की नैसर्गिक प्रतिभा से परिपूरित अनिमेष के दो रिकॉर्डेड अलबम 'माँओं की खोयी लोरियाँ...' एवं 'धानी सा' हैं जिनमें अल्फाज के साथ-साथ तर्ज और आवाज भी उनकी अपनी है। ग़ज़लों का एक और अलबम 'एक सौगात' गायिका रंजना झा द्वारा स्वरबद्ध है।

जीवन की लगभग अनदेखी रह जाने वाली छोटी-छोटी वस्तुओं, घटनाओं, स्थितियों को भी उनकी पूरी अर्थवत्ता और जीवंतता के साथ लेखन में ले आने वाले अपनी तरह के अनूठे और अप्रतिम इस रचनाकार के पास वृहद वितान और विशद विहंगम दृष्टि भी है, जो उन्हें अपने समकालीनों में विशिष्ट बनाती है। इसकी एक बानगी पच्चीस उपन्यासों - उपन्यासिकाओं की उनकी वृहद शृंखला है जिसकी प्रारंभिक कृतियाँ इस समय प्रकाशन के क्रम में हैं।

निश्चय ही अनिमेष एक ऐसे सच्चे और स्वप्नदर्शी सृजेता हैं जिनके पास साकार करने के लिए सृजन संभावनाओं का विस्तृत संसार है और जिनसे न केवल हिन्दी साहित्य बल्कि समस्त साहित्य जगत को बहुत आशाएँ हैं!

(स्थायी आवासः 'जिजीविषा', राम-रमा स्मृति कुंज, प्रोफेसर रमाकांत प्रसाद सिंह स्मृति वीथि, विवेक विहार, हनुमाननगर, पटना 20)
वर्तमान पताः एस-3/226, रिजर्व बैंक अधिकारी आवास,
गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई 400063

कविता रोशनाई का काम करती है

- प्रेम रंजन अनिमेष

जैसे बच्चे बोलकर पढ़ते हैं, अपने भीतर कोई 'ऊँचा सोचता' है-कविता यही सुनी जा सकने वाली सोच है। मेरी कोशिश रहती है कि जीवन में जो जीवन्त है - भीतर तक झलकता और स्पन्दित - उसे छूने की कोशिश करूँ। कविता में जीवन की हलचल हो, पारदर्शी कोशिका के जीवद्रव्य की छलमलाहट - सी! एक ईमानदारी - जीवन के प्रति, मूल्यों और सम्बन्धों के प्रति, संवेदना के प्रति। हाथ की मेहँदी की तरह उसमें मानवीय सच रचा हो उसकी विसंगतियाँ, विडम्बनाएँ, उलझनें, उसके सपने। कविता का हमारे जीवन-संघर्षों से गहरा रिश्ता है। वह हमारे वृहत्तर संघर्षो को ताकत देती हैं और उनसे अपनी ताकत सँजोती हैं। वह छालेवाले पैरों का महावर है।

आज हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जहाँ संवेदना का आकाश और साझीदारी का अवकाश निरन्तर सिकुड़ता जा रहा है। इसी को बनाना और बचाना अब की कविता की चुनौती है। कविता हमारी उस संवेदना का परिष्कार करती है जो हमें दूसरों की ओर उन्मुख करती है, उनके सुख-दुख का साझीदार बनाती है। मेरी कविता (नेह युद्ध) में एक दृश्य है - स्त्री गोद के शिशु को दूध पिला रही है और उसके केश देख रही है। कविता भी यही काम करती है। एक साथ सींचने और सँजोने, बनाने और बचाने का काम - जो कुछ भी मूल्यवान है जीवन और मनुष्यता में। मनुष्य को बेहतर मनुष्य दुनिया को बेहतर दुनिया - कम-से-कम ऐसा करने की एक ईमानदार कोशिश उसमें होती है। अच्छी कविता पढ़नेवालों, सुननेवालों और उससे भी पहले लिखनेवाले को माँजने का काम करती है। इसीलिए मैं मानता हूँ किसी अन्य विधा में हो न हो, अच्छे कवि का प्रथमतः और अन्ततः सहृदय या अच्छा आदमी होना जरूरी है। कविता भीतर की रोशनी है। इसलिए अपना शीशा झलकता होना चाहिए कि वह रोशनी साफ हो और दूर तक जाए!

जीवन, जगत और मनुष्यता कविता के सरोकार हैं तथा इनका शुक्ल पक्ष ही कविता का ध्येय, उसका पक्ष। उसके मूल में हमेशा एक गहरा मूल्यबोध होता है। इस अर्थ में हर अच्छी और सच्ची कविता गहरे स्तर पर राजनैतिक और समाज-नैतिक होती है। कविता गहरी साँस है। उसका आवर्त बहुत बड़ा है और कुछ भी उसके लिए अस्पृश्य नहीं। वह अन्ततः एक आपसदारी है। एक गहरी आपसदारी- जिसमें धूल-मिट्टी, पानी-प्रकृति, पेड़-पक्षी, जीव-निर्जीव सब शामिल हैं। एक बड़ी रिश्तेदारी जिसमें कोई दूर का नहीं! एक अनथक अविकल अटूट जीवनराग।

अच्छी कविता का कोई तय सूत्र नहीं होता। पर हर समय ऐसा होता है कि कविता के कुछ तय सूत्र अधिक प्रचलित हो जाते हैं। आज के कवि की शायद यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वे इस कठिन और जटिल समय में कविता को सम्भव करने के सारे उपकरणों, तमाम औजारों का उपयोग कर रहे हैं। किसी आग्रह विशेष से मुक्त सृजन की पूरी विरासत को संयत और सुलझे ढंग से आत्मसात कर उसके बीच नई राह निकालने की कोशिश।

हर नई कविता कुछ बिलकुल नया हमारे सामने रखती है या एकदम नई तरह।

कविता का काम वह है जो वही कर सकती है। जो किसी और विधा या विधि से उस रूप में सम्भव नहीं जो जीवन की सियाही है वही कविता की रोशनाई। और कविता का काम रोशनाई का काम। कविता जीवन का पर्णहरिम है। वह हरे पत्तों की तरह हमेशा सूर्य की ओर देखती है सिर उठाकर। लेकिन साथ-साथ अपनी जड़ों, अपनी मिट्टी, अपनी नमी, अपने अँधेरे को भी समझती रहती है। रात की ओस जहाँ सबेरे की पहली किरण से मिलती है, कविता होती है!

कविता में नया लिखना नया करना ही होता है। और इस अर्थ में 'नया कवि' होना गौरव की बात होती है। कोशिश यही है कि सही अर्थों में 'नया कवि' वन सकूँ। स्नेह व प्रोत्साहन किसी नए रचनाकार को अभिनव संकल्प एवं ऊर्जा के साथ सृजनशील होने की प्रेरणा तेते हैं। प्रतिष्ठित 'भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार' को मैं इसी रूप में सविनय लेता हूँ- बड़ों के स्नेह, प्रोत्साहन और आशीर्वाद की तरह। इस परिवार का हिस्सा होना एक समृद्ध गौरवशाली परम्परा से जुड़ना है। यह पुरस्कार कविता की शक्ति और उसके प्रति गहरे विश्वास को और दृढ़ करता है।

मुझमें बसा बिहार...

- प्रेम रंजन अनिमेष

बचपन और परिवेश :

जन्म आरा (भोजपुर) में हुआ। दसवीं तक की पढ़ाई भी वहीं जैन स्कूल में हुई। फिर आगे पटना महाविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय में। घर में माहौल पझाई लिखाई का था। पिता श्री रमाकांत प्रसाद सिंह बीएस कॉलेज दानापुर में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे और साहित्य व पुस्तकों के अनन्य प्रेमी। खुद भी लिखा करते और पत्र पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। बड़े भैया शरद रंजन शरद भी लेखना और पत्रकर्म से जुड़े। बड़ी दीदी जो हिंदी की प्राध्यापिका बनीं और मझले भैया संगीत सीखा करते। माँ की कहन और कहावतों में तो अक्षर-अक्षर कविता कूट कर भरी थी जैसे। सो यही परिवेश और संस्कार पाया बचपन से। आँखें खुली तो और कोई चल-अचल संपत्ति तो नहीं पर चारों ओर किताबें ही किताबें। यहाँ तक कि पिताजी के बिस्तर पर भी उनसे ज्यादा जगह उनकी किताबों के लिए होती। याद है एक साल गर्मी की छुट्टी में जब पाँचवीं या छठी कक्षा में रहा होऊँगा एक साथ अमृतलाल नागर के उपन्यास 'बूँद और समुद्र' एवं 'अमृत और विष' और मोहन राकेश की इक्यावन कहानियाँ पढ़ गया। इसका एक कारण संभवतः यह कि तब मनोरंजन के साधन सीमित थे। खासकर हमारे आरा वाले उस किराये के पुरातन बसेरे में जहाँ बिजली भी नही थी और दिये व लालटेन की रोशनी में हम पढ़ाई करते। बाबा (दादाजी) भी पेशे से अधिवक्ता भले थे किंतु आत्मा से अध्ययनार्थी। संस्कृत हिंदी अंग्रेजी तीनो भाषाओं की गहरी समझ रखने वाले। झूठे मुकदमों के विरोधी और सच्चाई व ईमानदारी के पैरोकार। दसवीं पास करने के बाद घरवालों ने शादी कर देनी चाही तो गाँव छोड़कर चले आये आगे पढ़ाई के लिए। बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपनी पढ़ाई पूरी की और उसके बाद गाँव के हर हित नाते को अपने साथ रखकर पढ़ाने का प्रयास किया। तो इस तरह पढ़ना न केवल हमारे भीतर रचा बसा हुआ था अपितु हमारे मन रमाने का साधन भी वही कहम बचपन से अपनी नन्हीं - हस्तलिखित पत्रिकाएँ निकालते जिनमें रचनाएँ भी हमारी होतीं। पिताजी देखते तो उछाह से उन्हें अपनी जेब में रख लेते और मित्र परिचितों को दिखाते। इससे हमारा हौसला और बढ़ता।

सृजन का उर्वर प्रदेश :

बिहार सदा से कविता और रचनातमकता का उर्वर प्रदेश रहा है। विद्यापति, भिखारी ठाकुर, दिनकर, बाबा नागार्जुन जैसी अनेक विभूतियों ने सृजन की इस अलख को जगाये रख प्रेरणास्त्रोत की भाँति इस पुण्यधारा को सतत प्रवहमान रखा है। मैं सौभाग्यशाली समझता हूँ अपने को कि कॉलेज की पढ़ाई के लिए जब पटना आया तो वहाँ के सभी सुधी साहित्यकारों का सहज स्नेह व मागदर्शन मुझे मिला। अरुण कमल जी तो मेरे गुरु ही रहे हैं, उनके अलावा श्रद्धेय नंदकिशोर नवल, आलोक धन्वा एवं मदन कश्यप सरीखे साहित्य मर्मज्ञों की अगाध आत्मीयता व सतत पथप्रदर्शन ने सदैव प्रोत्साहित किया। मैं चाहता हूँ ऐसा सौभाग्य हर उभरते रचनाकार को मिले!

नया संग्रह :

नवीनतम प्रकाशित कविता संग्रह 'बिना मुँडेर की छत' है जो राजकमल प्रकाशन से आया है और पिछले वर्ष विश्व पुस्तक मेले के दौरान लोकार्पित हुआ। बहुत ही खुशी की बात है कि पाठकों और साहित्य मनीषियों ने एक स्वर में सराहा और हाथों हाथ लिया है इसे। 'मिट्टी के फल', 'कोई नया समाचार', 'संगत', 'अँधेरे में अंताक्षरी' के बाद यह मेरा पाँचवाँ कविता संग्रह है। इनके अलावा 'अच्छे आदमी की कवितायें' ईबुक के रूप में हिंदी समय की वेबसाइट पर उपलब्ध है। बच्चों के लिए कविताओं की किताब 'माँ का ज्न्मदिन' प्रकाशन विभाग से प्रकाशन की प्रक्रिया में है। पहला कहानी संग्रह 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था' भारतीय ज्ञानपीठ में प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। एक अत्यंत अनूठी उपन्यासिका ..... (स्त्रीगाथा) एक अरसे से तैयार है। अब प्रेम भारद्वाज भाई ने वादा किया है कि बहुत जल्द 'पाखी' में इसे प्रकाशित करेंगे। दो और उपन्यासों, संस्मरण, नाटक व अन्य कविता व कहानी संग्रहों की पांडुलिपियाँ भी प्रतीक्षा में हैं प्रकाश में आने की। हिंदी में साहित्यिक प्रकाशन इतना सरल नहीं और हर साहित्यकार को इस जद्दोजहद से गुजरना होता है।

कविता का काम :

अच्छी रचना जीवन में जो जीवंत है, उस तक पहुँचती है... दुनिया को बेहतर करने के संघर्षों से संबल प्राप्त करती है और उन्हें अपनी शक्ति देती है। कविता सोच को वृहत्तर, संवेदना को महत्तर और संवेदना मनुष्य को मनुष्यतर कर सार्थक और सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। सिर के बालों को तो सभी सजाते हैं... दिमाग पर सबकी कंघी चलती है... कविता अपनी उँगलियो से दिल में कंघी करती है... संवेदना को सहेजने सँवारने का प्रयास करती है।

अच्छी कविता सच्ची कविता :

अच्छी कविता या किसी भी रचना का कोई तय सूत्र नहीं होता। उसमें एक सांद्रता, समग्रता और सक्षमता होती है जिसे हर कवि और हर कविता अपनी तरह से संभव करते हैं। यह एक सूझ होती है जो समय के साथ विकसित होती है। वस्तु और वास्तु का क्या अनुपात होगा उसमें यह अच्छी रचना अपने लिए स्वयं तय करती है। कविता है तो उसमें 'कवितापन' आवश्यक है छंदमुक्त कविता में तो और भी क्योंकि गद्य और बोलचाल की आंतरिक लय के अलावा उसका वह कवित-सत्व... उसकी वह आत्मा ही उसे कविता बनाती है!

साहित्य कला की और विधाओं में शायद ऐसे काम चल जाये पर मैं मानता हूँ अच्छा कवि होने के लिए अच्छा आदमी होना अनिवार्य है। कवि को अन्य विधाओं से भी वास्ता रखना चाहिए... उनमें रचने का प्रयास भी करना चाहिए क्योंकि विधाओं की आवाजाही कवि के कैनवस को फैलाती है और उसकी संवेदना और सृजनशीलता का विस्तार करती है। और जैसा कभी-कभी हँसी ठिठोली में कहा करता हूँ उसे जरूरत से ज्यादा शरीफ और पाक-साफ होने से भी बचाने का काम करती है।

सोच के ठहराव और संवेदना की गहराई के साथ-साथ गतिशीलता प्रवाहमयता रचनाकार के लिए जरूरी होती है। मन के भीतर उतरने के साथ-साथ बाहर सफर

करना... सजग सक्रिय रहना... दुनिया को भली भाँति भरपूर देखना और समझना मेरे खयाल में सच्चा सिरजनहार पदातिक होता है। खूब पैदल चलना कवि और कविता दोनों की ही सेहत के लिए लाभकारी है।

वर्तमान परिदृश्य :

हिंदी कविता की ही नहीं हिंदी और इस पूरे प्रदेश के लिए मुझे चिंता है। किसी दिक्भ्रम और संकुचित सोच के तहत हिंदी शिक्षण और हिंदी के जरिये ज्ञानार्जन पूरी हिंदी पट्टी से समाप्तप्राय होता जा रहा है। हिंदी हृदय प्रदेशों में हिंदी माध्यम के विद्यालय नाममात्र के रह गये हैं। इन तथाकथित हिंदी माध्यम स्कूलों मे भी केवल हिंदी ही हिंदी में पढ़ाई जाती है। बाकी विषय वहाँ भी अंग्रेजी में ही पढ़ाये जाते। इस सूरते हाल में यह सोचकर जी सिहरता है कि आज के ये बच्चे गुरुत्वार्षण, लघुत्तम महत्तम समापवर्त्य, समुच्चय, फलन, तरणक, नितलक सदृश अनगिन हिंदी व देशज पदों की अर्थध्वनि और उनकी अनुगूँजों से पूरी तरह वंचित व कटे हुए रह जायेंगे। जब अपनी भाषा से इस तरह काटकर उन्हें रखा जा रहा तो कविता से वे सहज स्वाभाविक रूप कैसे जुड़ पायेंगे जो 'भाषा के भीतर की भाषा मानी जाती है? साहित्य सोच व संवेदना आज के अभिभावकों की प्राथमिकता नहीं बल्कि रोजगार है। न जाने कैसे यह गलतफहमी उनके जहन में बैठ गयी है कि अंग्रेजी ही उद्धार कर सकती है। यदि यही सच होता तो फ्रांस जर्मनी जापान चीन आज इतना आगे नहीं होते!

अपनी जमीन और अपनी जड़ों से जुड़ाव :

हिंदी में लिखकर और वह भी कविता लिखकर गुजारा दूभर है। कविता रोटी नहीं हो सकती इसलिए रोटी के लिए कोई और रोजगार करना पड़ता है। इसलिए भी कि बिना किसी दबाव के अपने मन का रचा जा सके। अपनी मिट्टी में अपनी रोटी मिल सके इससे बड़ा सौभाग्य क्या? लेकिन यह हर एक को नसीब कहाँ होता? जिस तरह पेट और रोटी की चिंता बिहार के मजदूरों को दिल्ली पंजाब और जाने कहाँ कहाँ लिये जाती है यही गमे रोजगार मुझे भी पहले कोलकाता और अब मुंबई लेता आया है। मगर कहीं भी जाऊँ कहीं भी रहूँ अपनी जमीन अपनी मिट्टी मुझमें रची बसी है! अपने ही शब्दों मे कहूँ तो :

माने कभी न हार
मुझमें बसा बिहार...!

संपर्क : एस-3/226, रिजर्व बैंक अधिकारी आवास,
गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई 400063

बचे हुए आदमी का संस्मरण : प्रेम रंजन अनिमेष

– नंदकिशोर नवल

पटने में 1968 में जनमे प्रेमरंजन अनिमेष पटना विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. हैं और फिलहाल भारतीय रिजर्व बैंक में एक अधिकारी, लेकिन वे कवि हिंदी के हैं और वह भी ऐसे कि उनकी कविता में न अंग्रेजियत है, न अफसरी की कोई बू। वे हमारे निहायत सुपरिचित परिवेश के कवि हैं और उनके पास कविता रचने के लिए जो भाषा है, कच्ची मिट्टी की तरह, वह भी हमारे लिए उतनी ही सुपरिचित है।

अनिमेष की खूबी यह है कि वे कविता में बड़े-बड़े नहीं, बल्कि छोटे-छोटे विषय लेते हैं, लेकिन इस तरह उन्हें प्रस्तुत करते हैं कि उनमें छिपी हुई बड़ी बात प्रकट हो जाती है। इस दृष्टि से उनकी कविता सभ्यता-समीक्षा है, जिसका आधार है गहन मानवीय संवेदना। हर पीढ़ी के कवि कविता को अपने ढंग से परिभाषित करते हैं। अनिमेष के अनुसार 'कविता / एक बचे हुए आदनी का / संस्मरण' है, जिसका संबंध उस आदमी से है, जिसने आदमी को बचाने के लिए अपने को बचाने का आखिरी मौका भी छोड़ दिया है।

उनकी कविताओं में एक प्यारी प्रगीतात्मकता है, जिसका सर्जनात्मक पहलू यह है कि वे कविता में वही कहते हैं, जो गद्य में नहीं कहा जा सकता। स्वभावतः उनमें आधुनिक जीवन के अनावश्यक व्यौरे और संदर्भ नहीं आते। लेकिन उनकी कविता यह माँग करती है कि उसे उसके पूरे विन्यास में समझा जाए और उनकी प्रत्येक उक्ति को उचित महत्त्व दिया जाए। वैसे वे एक मजेदार कवि भी हैं। अनिमेष की छिटपुट कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं, इसलिए वे नवीनतम पीढ़ी के एक कवि के रूप में जाने हुए हैं, लेकिन चूँकि उनकी तरफ हमारा ध्यान अभी पूरी तरह से नहीं गया, हम 'कसोटी' की कवि श्रृंखला का आरंभ उन्हीं की दस एकदम नई कविताओं से कर रहे हैं, जो सर्जनात्मकता से भरपूर हैं और अपनी ताजगी में बेमिसाल। हमारा विश्वास है, आगे आनेवाले दिनों में वे अपनी पीढ़ी के बहुत ही समर्थ कवि के रूप में उभरेंगे और हिंदी कविता की समृद्धि में योग देंगे।

हामिद का चिमटा

- अनामिका

सरल होना बहुत कठिन है, बहुत कठिन है दो बिन्दुओं के बीच की लघुतम दूरी साध पाना - सम्बन्धों में हो या कविताओं में। यह पिकासो के ही वश का है वह एक पूर्ण शून्य खींच सके! पूर्ण शून्यों, पूर्ण घटों का समुच्चय हैं प्रेमरंजन अनिमेष की कविताएँ! अधजल गगरी ही छलकती है! पूर्ण कुम्भ, जीवन-द्रव से लबालब भरा घट मौन से घिर जाता है, मौन हो जाता है। मौन से घिरी कविता में शब्द ओस की लय में रह-रहकर गिरते हैं। इनका सौन्दर्य यह है कि ये गिरते दिखाई भी नहीं देते, अचानक हरे पन्नों पर एक मूक कँपकँपाहट की तरह प्रकट हो जाते हैं।

समकालीन कविता में वात्सल्य की वापसी हुई। दैनन्दिन व्यवहार की छोटी-से-छोटी चीजों को उड़ान-बिन्दु (टेक-ऑफ प्वाएण्ट) बनाकर अंतरिक्ष तक ले जाने की प्रवृत्ति भी नब्बे के बाद की कविता में उभरी। अनिमेष उस कविता के प्रतिनिधि स्वर हैं! चूँकि यह समय घनघोर विस्थापन का समय था, दुष्यन्त के रथ की पीली पताका की लय में सबका मन पीछे की ओर ही मुँह किए फड़फड़ा रहा था : पीछे छूटे घर, माई-बाबू, परिजन-पुरजन, गली-चौराहे, ददिहाल-ननिहाल-ससुराल के सारे सम्बन्ध, नाइन, बुआ, मेहतरानी, काकी, परब-त्योहार, मुहावरे-कहावतें-गालियाँ, लोकगीत और तमाम गाथायें - सब-के-सब बेहतर पढ़ाई और नौकरी की तलाश में दिल्ली-कलकत्ता-बम्बई चले बबुआ के पीछे कविता में भी दौड़ते दीख जायेंगे आपको - खासकर बिहार से विस्थापित कवियों (मदन कश्यप, बद्री नारायण, संजय कुंदन, निलय उपाध्याय और प्रेम रंजन 'अनिमेष' के यहाँ, चूँकि वहाँ का लोकजीवन अब भी समृद्ध है और पूरा मुहल्ला एक संयुक्त परिवार।

बिहार की स्थिति भारत में करीब-करीब वही है जो विश्व में भारत की। शर्मसार करती राजनीतिक खबरें भकजोगार होकर टीवी पर खेल पसारती हैं और परदेस में बगलें झाँकता हुआ आदमी कविता में एक नया चैनल खोल लेना चाहता है - बायस्कोप जैसा कोई चैनल जहाँ कुछ ठोस और सुखद भी हो, और फिर एक बड़ी पींग लेने लगते हैं केन्द्रीय बिम्बः आकाश से धरती तक, स्मृतियों से सपनों तक, यथार्थ से फैंटेसी तकः

''इसलिए / सोचता हूँ, / मैं लूँगा / तो लूँगा आसमान /
कि जिसमें सब आ जायें / और बाहर खड़ा भींगता रहे / बस मेरा अकेलापन''

खासकर अनिमेष की कविताओं में शब्द कभी ओस की बूँदों की तरह एक-एक कर, कभी आषाढ़ की बूँदों की तरह मंद्र फुहियों की लय में झड़ते हैं और जैसा पहले कहा, झड़ते हुए वे दिखाई भी नहीं देते तो ऐसा लगता है कि अचानक कहीं से प्रकट हो गये, एक बूँद पलक पर गिरी, एक कंधे पर, तो लगा कहीं गहरे एक सुखद स्पन्दन उतर गया है। ठिठक-ठिठककर शब्दों का गिरना सलज्ज मनुहार का एक अलग सौन्दर्य-शास्त्र रचता है, जहाँ कोई जल्दी नहीं है, कोई जोर-जबर्दस्ती नहीं।

बीसवीं सदी की आरम्भिक आपाधापी में 'सिक हरी ऐण्ड डिवाइडेड एम्स' (रुग्ण हड़बड़ी और छितराये मन्सूबों) पर कई कविताएँ लिखी गईं। उस समय का एक

लोकप्रिय गीत था -

'इट इज दिस लाइफ / इफ फुल ऑफ केयर
वी हैव नो टाइम / टु स्टैण्ड ऐण्ड स्टेयर'

डेविस की इस कविता का अवसाद इक्कीसवीं सदी में और गहराना ही चाहिए था क्योंकि प्रगतिहीन गति, अनवरत चक्रीय गति का सिलसिला जनजीवन में सघनतर हुआ है, पर उर्वर लोक-साहित्य की पृष्ठभूमि से आये अनिमेष जैसे कवि मनुष्य की मनुष्यता और समस्त जड़-चेतन से मानवीय अंतर्संबंधों के अनंत को आलोकित करते हुए सहज भलमनसाहत के नन्हे कृत्यों में भी जीवन का उत्कर्ष अन्वेषित करते रहे हैं: 'ठिठकना' कविता 'कैसे आना हुआ'- जैसी नागर सम्वेदना की कविता का सबल प्रतिपक्ष रचती हुई जो संकोच करती है, उसमें गाँधीवादी प्रतिकार की मीठी धमक तो है ही, ब्लेक के 'सॉन्स ऑफ इनोसेंस' का भी असर्शन है- 'सॉन्स ऑफ एक्सपीरिएंस' की पृष्ठभूमि में। ब्लेक की तरह अनिमेष भी बच्चों को नैतिक परिष्कार का अवलम्बन मानते हैं: 'बच्चे की स्लेट पर' कुछ मासूम सवाल हैं जिनकी अर्थव्याप्ति मेटाफिजकल है।

'मदद' कविता में जूते का फीता बंधवाने के लिए टैफिक पुलिस के पास बच्चा रुकता है और अनिमेष कहते हैं:

''चाहता हूँ मैं / ताकत झुके तो इस तरह, / रास्ता रुके तो इस तरह!''

उनकी एक कविता 'हामिद का चिमटा' है, जहाँ वे कहते हैं कि कविता उनके लिए तीन पैसे का चिमटा है, जिसे उन्होंने बचपन में मोल लिया था। पहली बार साड़ी पहनती बच्ची पर भी एक प्यारी-सी कविता है अनिमेष की और वात्सल्य के दूसरे सिरे पर खड़ी माँ (और माँ की पीढ़ी की स्त्रियों पर तो उन्होंने एक-एक पूरी व्यंजक श्रृंखला ही लिखी है। बचपन में जो घर आती थी, उस 'मेहतरानी' के पान पर भी एक कविता है। दुनिया के सारे दुर्गन्धों पर भारी पड़ती उसके पान की ठाठदार गमक हमें अभी भी विह्वल करती है।

इसी तरह शब्दों के भीतर बसी गालियों की आदिम गंध का जायजा लेती कविता 'गालियाँ' गालियों का एक अलग रंग उजागर करती है, जैसे कोई लोक-नर्तकी गत-भाव में आगे बढ़ती-बढ़ती पलटकर देखे और उसका एक नया, बिल्कुल अप्रत्याशित तेवर सामने आये:

''और हालाँकि समाजशास्त्र / उतना ही जानता हूँ जितना /
पेड़ की जड़ें / मगर यह भी लगता है कि / जब कहीं नहीं रहेंगे /
तो गालियों में ही बने रहेंगे रिश्ते!''

झिनझिनी', 'हकलाहट', 'खरटि' आदि मनुष्य के साथ ही पैदा हुए होंगे, पर वे व्यंजक काव्य-संवेदनाओं का वाहक भी हो सकते हैं- यह नब्बे के पहले शायद ही किसी ने सोचा होगा! 'नाचीज' होने का एहसास आदमी में उपेक्षित कृत्यों और हाशिये पर पड़ी चीजों के प्रति अलग तरह की संवेदनाएँ जगा गया! अनिमेष के यहाँ ऐसी बहुतेरी व्यंजक कविताएँ हैं।

बादलों में जैसे बिजली चमकती है, अनिमेष की राजनीतिक चेतना की 'कौंध, उनका प्रतिरोधी स्वर पूरी धमक के साथ उजागर है, 'सत्याग्रह', 'अनापत्ति प्रमाणपत्र'

आदि कविताओं में:

''क्या अपत्ति हो सकती है भला किसी को / यदि शब्दों से अर्थ छीन लिए जायें जैसे / आदमी से अधिकार / काम से अधिक हों बेकार और हौसलामंदों / से अधिक लाचार../ नहीं कोई आपत्ति / न्यायालय हो जायें न्याय के नीलामघर / संसद बेमकसद बहसों का कोषागार / आदमी चलता-फिरता संग्रहालय/ ऐतिहासिक भूलों का...!''

'नीची छतों', 'नुक्कड़ नाटकों' की बहार वाला बिहार 'जुलूस के अंतिम आदमी' की व्यथा-कथा जानता है। वहाँ लालटेन की लौ में पढ़कर जटिल प्रतियोगी परीक्षाएँ पास करते हुए परदेस में नौकरी पाना, घर बसाना, सद्गृहस्थ की तरह घर-बाहर सब साधना कवि-मन के लिए इतना आसान भी नहीं! पिछली पीढ़ियों के ज्यादातर हिंदी कवियों ने जिस तरह का निरंकुश जीवन जिया, वह उनकी स्वप्नजीविता के अनुकूल ही था! उनसे ज्यादा घुटन झेली घर-गृहस्थी चलाने वाले विस्थापित कवियों ने जिन्हें आठ से आठ तक की नौकरी करनी थी और कठिन ट्रैफिक से जूझकर वापस घर आना था। हमारी पीढ़ी के ज्यादातर कवि ऐसे ही थे तो उनके वाक्यों में अलग तरह का सर्जनात्मक तनाव है जो रात के तीसरे पहर उठकर अंधेरे में तीरंदाजी का अभ्यास करते धनुर्धरों के तीरों में होता है। काँपते हुए-से धुँधलके में थकी उँगलियों से चलाकर भी तीर निशाने पर साध लेना खासकर अनिमेष की एक बड़ी विशेषता है! वाक्संयम पूरा है, कहीं स्फीति नहीं, पर वाक्य इतने नुकीले हैं कि शायद ही कभी निशाना चूकते हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष को कुछ मत कहो हो सके तो ध्यान से सुनो

– विजय कुमार तिवारी

प्रेम रंजन अनिमेष को कुछ मत कहो– हो सके तो खूब ध्यान से सुनो, देखो और समझने की कोशिश करो। कोशिश भी कहाँ करनी पड़ती उतनी– यह कवि तो सहज स्वयं खुलता जाता है और सहज शब्दावली में सारा दृश्य उपस्थित कर देता है! चमत्कृत होना ही है क्योंकि उसकी छोटी से छोटी कविता का आसमान बड़ा है। यह किसी अतिरेक में नहीं कह रहा और न ही किसी पूर्व परिचय की पृष्ठभूमि में। कवि का परिचय तो कविताएँ हैं और वही मूल्यांकन का एकमात्र आधार। मेरा आकलन भी प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं के आधार पर ही है। हम कभी पटना में मिले थे। मेरा पटना-प्रवास 1982 से 1992 तक था। अनिमेष तब विद्यार्थी थे, मेरी नौकरी शुरू हो गयी थी और हम सभी साहित्य की ओर उन्मुख और आकर्षित हो रहे थे। यह कहना उचित ही होगा कि उस समय पटना का साहित्यिक माहौल सारी संगतियों-विसंगतियों के बावजूद जमा-जमाया और युवाओं को प्रोत्साहित करने वाला था– शानदार विरासत और संभावनाशील भविष्य को सँजोता। उस वक्त के अधिकांश युवा मित्र आज बड़े प्रतिष्ठित रचनाकार हैं और साहित्य की परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। उन्हीं में से एक अग्रगण्य नाम है – प्रेम रंजन अनिमेष, जिनका रचनाकर्म व लेखन हर विधा में अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है।

'भारत भूषण अग्रवाल' पुरस्कार से सम्मानित प्रेम रंजन अनिमेष के खाते में अनेक कविता संग्रह, कहानी संग्रह, उपन्यास, बाल-काव्य संग्रह और विश्व साहित्य से अनुवाद आदि हैं। विभिन्न विधाओं में बहुत से संग्रह शीघ्र प्रकाश्य हैं और यूट्यूब पर भी उन्हें अक्सर सुना जा सकता है। 'बिना मुँडेर की छत' कविता संग्रह के प्रथम फोल्डर पर उनके सन्दर्भ में छपी टिप्पणी को उद्धृत करना उचित ही होगा : 'प्रेम रंजन अनिमेष भारतीय लोक की जड़ों में जीवित जिजीविषा के गायक हैं। उनकी कविताएँ हमारे आसपास फैली उन चीजों तक पहुँचती हैं जिन्हें हमने अब देखना लगभग बंद कर दिया है लेकिन इसके बावजूद वे दुनिया को चलाये रखने में अपनी भूमिका निभा रही हैं। ये कविताएँ न किसी बड़े परिवर्तन का आह्वान करती हैं और न ऊँची हाँक लगाकर कुछ ऐसा करने को कहती हैं, जो हमें हमारे अतीत से काटकर किसी नये अनोखे संसार में स्थापित कर दे– भले ही वह कितना भी सुन्दर, कितना भी अद्भुत, कितना भी पूरा क्यों न हो। ये कविताएँ हमें अपने इसी अधूरे संसार में रच-बसकर जीने के सूत्र थमाती हैं। इसके दुखों की सुन्दरता, इसके अभावों का मोहक आकर्षण, इसकी विसंगतियों के भीतर छिपी आंतरिक लय और हर हाल में मौजूद उम्मीद, वे चीजे हैं जिन पर लगता है कवि को आज के दावों-वादों की बड़बोली दुनिया में सबसे ज्यादा यकीन है।' उसी फोल्डर में आगे लिखा गया है– 'कहने की आवश्यकता नहीं कि यही यकीन इस देश का सबसे बड़ा संबल आज भी है जब हर तरफ किस्म-किस्म के उद्धारकर्ता अपने-अपने ढंग से अपना-अपना उद्धार कर रहे हैं।' उपर्युक्त टिप्पणी से

हो सकता है कोई सहमत-असहमत हो, परन्तु प्रेम रंजन अनिमेष की लोक भाव दृष्टि और लोक चिन्तन की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति को नकार नहीं सकता। उनकी कविताएँ किसी नारे की तरह शोर नहीं मचातीं और न किसी तरह के झंडे का वहन करती हैं, बल्कि चुपके-चुपके अपना काम करती रहती हैं। यह हमारे नजरिये पर निर्भर करता है कि हम उनकी कविताओं में क्या देख पाते हैं और उन्हें कैसे ग्रहण या आत्मसात करते हैं। समझना तो यह है कि उनकी कविताएँ हमें दुनिया का कौन सा सच दिखाती हैं और उन्हें पढ़कर संवेदना, मानवता और करुणा उभरती है कि नहीं। वस्तुतः हर कवि अपनी-अपनी तरह से कविता की व्याख्या करता है, दुनिया को समझता है और मानवता का स्वरूप गढ़ता है। मतभेदों के बावजूद सत्य तो एक ही होता है जिसे कवि ही यथार्थतः व्यक्त कर पाता है। कवि-कथाकार प्रेम रंजन अनिमेष के सृजन-संसार को जानने-समझने के लिए भी उनकी तरह एक साथ सूक्ष्म व वृहत्तर दृष्टि तथा बारीक और बड़ी सोच जरूरी है– जिससे उस सच का साक्षात्कार संभव है।

कवि के बिम्ब ऐसे उभरते हैं कविताओं में मानो अपने आप में कोई अनमोल अनूठा चिन्तन या सहज स्वयं संपूर्ण जीवन दर्शन! 'बच्चे की स्लेट पर लिखे कुछ सवाल' कविता देखिए - 'क्या सच में एक दिन / स्वच्छ जल रह जायेगा केवल नारियल में / और खाली बाँस के खोल में साँस की हवा।' इसी कविता का समाहार देखिए– 'क्या सच में एक दिन / झींगुरों के पास ही रह जायेगी पुकार / और चिड़ियों को भी / सुबह होने का पता नहीं चलेगा?' 'कैसे आना हुआ' कविता की पंक्तियों के प्रश्न झकझोरते हैं और उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि आना ही पड़ता है। 'छाता' कविता में कवि की वृहत्तर, महत्तर और मनुष्यतर सोच-समझ का वितान देखिए - जिनके सिर ढँकने के लिए/ छतें होती हैं / वही रखते हैं छाते / हर बार सोचता हूँ / एक छत का जुगाड़ करूँगा / और लूँगा एक छाता/ इस शहर के लोगों के पास जो छाता है / उसमें कोई एक ही आता है / इसलिए सोचता हूँ / कि मैं लूँगा / तो लूँगा आसमान/ कि जिसमें सब आ जायें / और बाहर खड़ा / भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन...। 'मिट्टी के फल' संग्रह की 'गालियाँ' कविता की प्रश्नाकुलता देखिए – अब ये ठीक-ठीक पता नहीं/ कि आदिम लोग / कौन सी गालियाँ देते थे / या देते भी थे या नहीं / शास्त्रीय साहित्य की / सबसे बड़ी चूक है / कि वह हमें / उस जमाने की गालियों की / जानकारी नहीं देता। कवि के इस चिन्तन पर आज की पीढ़ी विचार करने के लिए बाध्य है जो गालियों के अलग अदेखे भाव और सन्दर्भ प्रस्तुत करता है।

अनिमेष जी की कविताएँ कभी-कभी कहानियों की तरह लगती हैं, जिनमें पूरे दृश्य उभरते हैं। 'आवागमन' में रिक्शा है, रिक्शे पर दो औरतें हैं, एक रोये जा रही है, दूसरी सान्त्वना देती है, सड़क पर जाम है। अक्सर देखा जाता है ऐसा दृश्य। सब कुछ रुका हुआ है, सान्त्वना देना और रोना भी। धीरे-धीरे रिक्शा आगे बढ़ता है– और फिर छूटा सूत्र पकड़कर / बिलखना शुरू कर देती है स्त्री...। वैसी ही कविताएँ हैं : नर्तक ने बताना चाहा 'लाल', जूते का मुँह, लौंग –जिनके बिम्ब चमत्कृत करते हैं। 'दो ईंटों का चूल्हा' कविता की जीवन्तता देखिए - दो ईंटों का चूल्हा/ वे कहीं भी लगा लेते हैं / दो ईंटों का चूल्हा / वे कहीं भी हटा लेते हैं / हवा जलाती है / दो ईंटों के चूल्हे

को / बारिश बचाती है / दो ईंटों के चूल्हे को / दो ईंटों के चूल्हे पर / यह शीत भरी रात जगी है / दो ईंटों के चूल्हे पर / शहर भर की आँख लगी है। उनकी कविताओं में भाव, अर्थ और मर्म के संस्तर हैं, संवेदनायें हैं, ममता, करुणा और प्रेम है – भोजपुरी के शब्द, बोली, लोक और भाषा का समस्त भाव संसार लिये। कवि की सूक्ष्म दृष्टि का पैनापन झलकता है इन सारी कविताओं में।

'गोशाला में खड़ी कार' कविता पर वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह जी की टिप्पणी, प्रेम रंजन अनिमेष के रचनात्मकता की एक झाँकी प्रस्तुत करती है। कविता की कुछ पंक्तियों का उल्लेख करते हैं केदारनाथ सिंह– 'देखता हूँ पाँव मोड़कर बैठी एक हृष्ट-पुष्ट गाय को एक चकमक कार में बदलते', और फिर लिखते हैं – कविता की मूल प्रकृति को समझने की शायद यह सबसे विश्वसनीय कुंजी है। उनका काव्य-मानस ऐसे चकित-विस्मित करने वाले दैनंदिन बदलावों को चुपचाप दर्ज करके चलने वाला एक ऐसा संवेदनशील यंत्र है, जिससे मामूली से मामूली हरकत भी छूटने नहीं पाती। अनिमेष अपनी कविता का यह मायालोक इस तरह रचते हैं कि पाठक को भी उसका हिस्सा बना लेते हैं और फिर वह उसका महज गवाह नहीं रह जाता, एक अजब ढंग से मानो उसका सर्जक बन जाता है। यही बात उनकी कविता को विशिष्ट बनाती है और समकालीन कविता के सारे औजारों के इस्तेमाल के बावजूद, सबसे अलग भी।' केदारनाथ सिंह जी अपनी टिप्पणी में आगे लिखते हैं - 'मिट्टी के फल' का यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है। मिट्टी यहाँ कोई कामचलाऊ मुहावरा नहीं, जीवन-यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म है, जिसे कवि अपनी पाँचों उँगलियों अर्थात पाँचों इन्द्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है - यहाँ तक कि कवि की एक कविता के ही साक्ष्य से कहें तो इसमें 'कानी उँगली' की भी सक्रिय भूमिका होती है। अनगिनत वस्तु-सन्दर्भों की छवियों से भरे इस संकलन में सबसे अधिक कविताएँ माँ पर हैं और एक सुखद आश्चर्य यह कि हर बार माँ एक नयी माँ है।'

कवि केदारनाथ सिंह लिखते हैं– 'इस संकलन की कविताओं में एक गहरा पूर्वी रंग है, जिसे सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। बोध के इसी धरातल के भीतर से 'गालियाँ' जैसी सशक्त कविता पैदा होती है, जो इस संकलन की और शायद इधर के पूरे काव्य-परिदृश्य की एक अद्भुत कविता है। दिनों दिन अतिशय शालीन होती जाती भाषा के दंश को जानने वाला कवि ही यह कह सकता है- भाषा विज्ञानी नहीं मैं/ लेकिन जाने क्यों लगता है/ किसी जुबान को धार देने के लिए / लौटना होगा अपनी गालियों के पास।

'भारतीय ज्ञानपीठ' प्रकाशन से वर्ष 2004 में प्रेम रंजन अनिमेष का अगला काव्य संग्रह 'कोई नया समाचार' छपा। 'भरोसा' कविता की गहराई देखिए- दस्तक दो / तो सबसे छोटे को / दो आवाज / भले ही वह शिशु हो / चलना नहीं जानता हो अभी / जो सबसे छोटा है उसी से / सबसे अधिक उम्मीद है / दरवाजों के / खुलने की....। इस संग्रह की कविताएँ छोटी-छोटी हैं मगर इनके बिम्ब इतने पारदर्शी कि उनमें सब-कुछ दिखायी देता है– कुछ भी छूटता नहीं। कवि की भाषा में हिन्दी के साथ-साथ भोजपुरी, उर्दू, अंग्रेजी और स्थानीय बोलियों के शब्द उनके काव्य को अलग ऊँचाई पर ले जाते

हैं। उनकी कविताओं में माँ बार-बार आती है और हर बार उसका आलोक चमत्कृत करता है। कवि को बच्चे के साथ बड़ा होना है और महसूसना भी बड़ा होते हुए। माँ की तरह बच्चा भी बार-बार आता है अनिमेष की कविताओं में और अपनी उपस्थिति से सभी तरह की उम्मीदें जगाता है। 'पहुँच' कविता में बच्चे की उड़ान देखिए- ऊँची है मन्दिर की घण्टी / ऊँचा, ऊँचा और ऊँचा/ उछल रहा है बच्चा/ उस तक पहुँचने के लिए/ सोचता, काश थोड़ा बड़ा होता/ बड़ा होता तो वह/ ईश्वर की घण्टी बजा देता। कवि उम्मीद व संभावनाओं से भरा है और हर बच्चा उसकी उम्मीद को बढ़ाता रहता है। कविताओं के शीर्षक भी कम चमत्कृत नहीं करते और कुछ शब्दों में संभावनाओं तथा घटनाओं के बड़े दृश्य उभार लाते हैं– जैसे कोई बच्चा अचानक बड़ा दिखता हुआ खड़ा हो गया हो! यह अनिमेष की दृष्टि की विराटता है और भाव का प्रवाह भी। यह दौर बचने-बचाने का है क्योंकि संघर्ष बड़ा है और कवि बार-बार दुहाई देता है। कैलाश वाजपेयी सटीक बात बताते हैं अनिमेष के लिए और लिखते हैं- 'इतने बर्बर समय में कोई कवि अपनी संवेदना और मासूमियत को बचाये रख सका- यह सोचकर हैरत होती है। मगर इस संग्रह की रचनाएँ कुछ ऐसी ही हैं।'

साल 2016 में आया प्रेम रंजन अनिमेष का काव्य संग्रह 'अँधेरे में अंताक्षरी' उनकी साहित्यिक विकास-यात्रा का एक और उदाहरण है। पुस्तक को उन्होंने अपनी आजी और बाबा को समर्पित किया है। केदारनाथ सिंह जी जिस पूर्वी रंग की बात करते हैं, अनिमेष के सृजन में भरा पड़ा है और उनका भाषा-संस्कार खूब रंग लाता है। 'आमंत्रण' और 'स्वीकार' जैसी कविताओं की सहजता देखिये। कितना अपनत्व भरा है इन सरल शब्दों में! 'आना/ अगर हो सके/ न हो सके तब भी आना/ आना/ अच्छे मौसम में/ अच्छे मौसम के लिए/ आना/ आना जब रास्ते खुले हों/ कोई रास्ता न हो/ तब भी आना/ आना अगर याद रहे/ भूल जाओ/ तो भूले-भटके/ आना/ दुनिया देखकर/ दुनिया देखे/ इस तरह आना/ आना/ जो हो कोई बात/ कुछ भी न हो साथ/ तो यों ही/ खाली हाथ/ क्या है मेरे कहने में/ मगर आना/ जो रहा अनकहा/ उसी के लिए/ आना/ मैं राह देखता/ यहीं रहूँगा/ बिना बताये/ बगैर खबर किये/ आना/ एक दिन/ उस समय/ जब मैं/ नहीं रहूँगा।' पूरी की पूरी कविता बहुत कुछ कहती है –भर आयेगा हृदय आत्मीय जनों का, इस आत्मीयता से, इस आमंत्रण से! किसी गहरे कवि में ही ऐसे भाव उभर सकते हैं। वैसे ही कवि अपने आने की आश्वस्ति देता है- आऊँगा/ जरूर/ धूप की तरह सीधे न आ सका/ तो बौछार की तरह मुड़कर/ नहीं तो हवा सरीखा/ ढूँढ़ता भटकता/ किसी रास्ते/ गंध की मानिंद किसी सूरत/ देर हो गयी तो/ बंद आँखों में/ सपने सा/ आऊँगा जरूर/ भोर हो गयी तो/ किरणों की नोक पर/ ओस बनकर। एक ही वस्त्र, एक दिन ऐसे ही, डोर, कोरापन... – अनिमेष की हर कविता हमें अपने आसपास से जोड़ती है और सब कुछ दिखाती है– हमारा भाव, हमारा संघर्ष, हमारी बेबसी, लाचारी, सुख दुख और हम सबका जीवन संसार। कविता कवि को अलग तरह की दृष्टि देती है जो अत्यन्त सहजता से मन-मस्तिष्क में प्रवेश कर जाती है। शब्द-चयन, भाव-चयन सब कुछ कितना सहज है अनिमेष के लिए! कहीं कोई दूर की कौड़ी खोजने नहीं जाना है– परिदृश्य जाना-पहचाना है और उसके रंग भी। आँख आना, चौखट पर

अजनबी पवाईयाँ, जूता, टिकोले आदि में सबके भीतर की स्थितियाँ हैं। कवि माँ को नहीं भूलता– हर संग्रह में माँ पर कविताएँ हैं और हर रंग-रूप में। 'प्रणाम' कविता की व्यापकता और संस्कार में कवि बहुत कुछ संकेत कर देता है। कवि की कविताओं में माँ के साथ बच्चों की, दूब पर भोर की ओस की, आसपास फैली सारी हरियाली और प्रकृति की, और सबके भीतर धड़कते स्पंदन की जैसी जीवंत, भावपूर्ण और अर्थसिक्त उपस्थिति है, कहीं अन्यत्र एक साथ ऐसी मिसाल बहुत कम मिलती है। 'स्वर' जैसी कविताएँ कवि के प्रयोगधर्मी स्वभाव का संकेत देती हैं। उस कड़ी में 'मानुषगंध', 'स्त्रीगंध' को भी देखा जा सकता है। 'अँधेरे में अंताक्षरी' रोमांच की कविता है –संघर्ष की और मार्मिक भावों से भरी हुई। हर बार अँधेरे से निजात पाने का सुन्दर उपाय है अंताक्षरी। सुखद समवेत है यह, जिसमें छोटे-बड़े सभी शामिल होते हैं। किसी के गीत के अंतिम शब्द पर कुछ सूझ नहीं रहा, सामने हार जाने का खतरा है- तभी रसोई से/ आटा गूँथना छोड़/ दबे पाँव वह आयी/ उस खतरनाक मौन को सुनकर/ टूटते-छूटते सुरों को चुनकर/ दोनों हाथ सने थे/ कोहनी से आँखों पर झूलती लटों को/ सहेजती झुकी/ उसके होंठ मेरे कान से लगे/ इस तरह कि कोई न सुने/ कहा जो उसने मैं भी सुन कहाँ सका/ बस थोड़ी-सी नमी जरा-सी धाह/ एक अबूझ चाह/ और उसी से/ बिसरा हुआ कुछ याद आया/ इस तरह उसने मुझे बचाया। कवि अनिमेष सहज स्थितियों व चुनौतियों में कविता ढूँढ़ लाते हैं– सघन करुणा-आत्मीयता-प्रेम-स्नेह के साथ, जो पढ़ने-सुनने वालों को अपना बना लेती है।

'बिना मुँडेर की छत' उनका नवीनतम प्रकाशित काव्य संग्रह है जो कुछ वर्ष पूर्व राजकमल प्रकाशन से आया है। इसमें 77 कविताएँ हैं। पूर्वी रंग-रूप के साथ भोजपुरी, उर्दू और हिन्दी में रची-बसी कविताओं में अभिव्यक्ति उनकी लोक के प्रति निष्ठा का ही प्रतिफल है। ऐसा संयोग कम ही देखा जाता है और वह भी इतनी विविधता के साथ। मुझे नहीं मालूम कि प्रेम रंजन की कविताओं को लेकर हिन्दी साहित्य जगत में कितना कुछ हुआ है या कितने लोगों का ध्यान गया है। हाँ, उनको पढ़ते हुए लगता है कि उन्हें और अधिक पढ़ा जाना चाहिए और उनकी कविताओं पर गहन विचार-विमर्श जरूरी है। प्रेम रंजन सशक्त कवि हैं, उनके अनेक संग्रह छप चुके हैं और निश्चित ही उन्होंने अपना एक मुकाम तय किया है। जीवन-जगत के साथ गहरे जुड़ाव के साथ कहन की आत्मीयता और सहजता उन्हें सबसे अलग अनूठा बनाती है। वे भीड़ से अलग हैं और इसलिए भी इतने महत्वपूर्ण। अनिमेष जिन विम्बों का चयन करते हैं, वे सबके सब हमारे आसपास हैं, लेकिन उनकी कविताओं में आते अलग अनूठे प्रतीत होते हैं। लगता है, इस तरह इन्हें पहले कहाँ किसी ने देखा, कब सोचा? इसलिए उनकी कविताओं के स्वर प्रिय व रुचिकर लगते हैं और उनका प्रवाह बना रहता है – पाठकों को अपने साथ लिए चलता हुआ।

कविता कवि की स्थानीयता, देशज परम्परा से जुड़ी होती है– वह उसके भीतर होती है और बाहर भी, तभी सृजनशीलता की सक्रियता से उसका उभार होता है। इसमें संवेदना के सारे सन्दर्भ सम्बद्ध होते हैं। अनिमेष के इस संग्रह की पहली कविता 'नवान्न' की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति देखिये– नये कवि, तुम्हारे पास नया क्या है?

उत्तर है– नयी है मेरी कलम / इसकी रोशनाई / नया यह कोरा पन्ना। आगे कवि विस्तार से बताता है- नयी आँख के नये पानी में तिरता सपना, नये पंखों में भरी नयी हवा, नये तिनके की नयी सजावट, नयी मिट्टी के नये गन्ने का नया रस, उसका नया पाग जिसे अभी-अभी चखा है...! नयी है कवि की बेचैनी, छटपटाहट, नयी हूक, कूक और नयी चहक, अदेखा, अजाना और कवि का नया अनकहा, दुख भी यहाँ नया-नया जन्मा है और उसकी धमक नयी है, उसकी किलक नयी है। कविता के नयेपन को शायद ही किसी ने इससे बेहतर अभिव्यक्त किया हो कहीं! इसीलिए यह कवि ऐसा अप्रतिम अद्वितीय है।

'निब' कविता में कवि उम्मीदों से भरा है –

चलते-चलते टूट जाने पर
लग जायेगा मेरी जगह कोई नया

पहली गली, पहली कक्षा का पहला पाठ कवि भूलता नहीं, बार-बार लौटता है उनकी ओर– वे जो जीवन के शाश्वत स्रोत हैं। 'सुबह होने को है' कविता में उजास की तैयारी है और अगवानी भी– जहाँ सब कुछ मधुर, जीवन्त और प्रकाशित हो उठता है। 'मनुष्यता' कविता में छाता, तलवों में चिपकी घास और मिट्टी, भीतर के विचार, पोंछना और बिसुकी गाय आदि से बिम्ब कवि की मनुष्यता और किसी भी तरह उसे सँजोने-सहेजने- सँवारने की सोच सामने रखते हैं। ये प्रश्न हैं हम सबके जीवन में और हमसे इनके प्रति संवेदना की अपेक्षा की जाती है। 'पिता चाहते' कविता का पुरुषार्थ और प्रेम देखिए– उन्होंने बस हमें चाहा / और उसी चाहत से / हम बने / हमें इसका अफसोस नहीं है। झटास, झींसी बरसात के शब्दचित्र हैं– प्रकृति और जीवन, दोनों की वृष्टि सृष्टि के। कवि की स्पष्ट समझ है कि प्रकृति को भी आदमी का साथ चाहिए। 'निनाव' भी एक अद्भुत कविता है। इस तरह की अनूठी कविताओं का चलता फिरता कोश है मानो यह कवि! जीभ के इस बहुत बेचैन करने वाले रोग ने भला कब सोचा होगा कि वह एक दिन किसी कवि की कविता का विषय होगा। लेकिन अनिमेष इसे इस तरह साधते संभव करते हैं, कि लगता है ऐसा पहले क्यों नहीं हुआ या सोचा गया! कविता कहाँ से कहाँ पहुँचती है, जरा देखिये और सराहिये –

केवल जीवन के शहद से भी कहाँ तृप्ति
मधुरता में भी नहीं मुक्ति
हर मिठास में है कुछ तिक्ति

'भरा सा पूरा सा' कविता में कवि किसी लड़की के सफल वैवाहिक जीवन की कामना करता है और सुख-समृद्धि के भाव रचता है। सारे बिम्ब अद्भुत और स्नेहसिक्त हैं। 'राह में बहन का घर' सहज आत्म-अनुभव जैसा है। बहुत कम शब्दों में बहुत अधिक कह जाने वाली है यह कविता। एक साथ संलिप्तता और निर्लिप्तता, सापेक्षता और निरपेक्षता अनिमेष की खूबी है और यही आत्मीय संबंधों पर इतनी शिद्दत और ठहराव से रची इन सधी कविताओं को विशिष्ट बनाती है।

काव्य वस्तु-विषयों का चयन और फिर उनका निर्वाह बेजोड़ है इस कवि का - अनुसंधान से संधान पर्यन्त! 'खरार्टे' का मनोविज्ञान, उसका स्वभाव-प्रभाव इसी

शीर्षक की कविता में पूरी संजीदगी से उभरा है। 'हकलाहट' की समस्या वाले व्यक्ति के साथ कवि का संवाद रोचक है और सारगर्भित भी। 'अँधेरे में माचिस की तलाश में एक कविता' में बहुत कुछ है – कोशिश, तलाश, प्रयास, संभावनाएँ और चुनौतियाँ। कवि को उम्मीद है –

या फिर इस बीच हो ऐसा / कि मेरी सोच की रगड़ से ही /
पैदा हो कोई चिनगारी / और इस रात में भर जाये रोशनी।

'एक किसान की शहर में रहने वाले बेटे के लिए वसीयत' बड़ी मार्मिक कविता है। इससे पहले शायद ही किसी पिता ने इससे अच्छी वसीयत लिखी हो अपने बेटे के नाम! अनिमेष की आँखों से कोई कोना छूटता नहीं– चाहे दृश्यों का हो या फिर भावनाओं का। 'ठिठोली' अनिमेष की भावपूर्ण छंदोबद्ध रचना है जिसके प्रश्न अनूठे हैं। 'अरजी', 'पाती' और 'मन्नत' जैसी गेय कविताओं में बेटियों का अपने पिता से आग्रह-संवाद बहुत मार्मिक है– गहरी संवेदना से भर देने वाला और अंदर तक झिंझोड़ने वाला। सारे तर्क बेधक हैं और उतनी ही करुणा जगाने वाले हैं। बेटियों के मनोभाव द्रवित और विह्वल करते हैं।

'अलाव' कविता की संरचना अद्भुत है- कोई बात नहीं/ अच्छा लगा सबने कहा/ कोई बात नहीं आ जाओ/ संयोग देखो/ किसी का कुछ नहीं जला/ उस रात/ सबने तापी/ मेरे ही जज्बों की आँच। 'कृतज्ञता' कविता में कवि किसी के घर जाकर लौट आता है। उस परिस्थिति की भावानुभूति देखिये– दरवाजा न खुला/ चला आया / पर कहना गलत होगा/ कि मिल न सका/ मैं मिला घर की कई आहटों से/ भेंट हुई जैसी नहीं हुई थी अरसे से/ आना सार्थक हुआ/ कृतज्ञ हूँ तुम्हारा। ऐसा देखना समझना क्या, सोचना भी सबके बस की बात नहीं! यह तो इस कवि सा कोई निश्छल मन और स्वच्छ पारदर्शी हृदय वाला व्यक्ति ही कर सकता है।

'मान' कविता की परिस्थितियों से गुजरना बहुत कुछ खुलने-सिमटने जैसा है- कोई है जिसे याद हूँ/ लेकिन मैं भूल गया हूँ/ कुछ हैं / जिन्हें मैं नहीं जानता/ पर वे मुझे/ जानते हैं। किसी और को मान हो सकता है इसका, लेकिन कवि को यह यह बात अंदर ही अंदर मथती और सालती है। 'भरोसा' न केवल एक कविता, अपितु जीवन सूत्र है आज के समय के लिए। भरोसा तो करना ही होगा, बिना भरोसे के कुछ भी नहीं होने वाला- भरोसा रखना होगा/ कि नई माँओं के सीने में उतरेगा दूध/ नये फूलों से उमगेगी गंध/ चाहे कुछ हो कभी/ धोखा नहीं देगी आँखों की नमी। कवि ने आगे लिखा है– कुछ भरोसों की रेजगारी/ चाहिए गाढ़े दिनों के लिए/ इसके बिना/ प्यार नहीं किया जा सकता/ गीत नहीं रचे जा सकते/ जूझा नहीं जा सकता जीवन में। 'उम्मीद की एक कविता' में कवि संकेत करता है कि किस-किस से उम्मीद है। ये सारे बिम्ब उम्मीद जगाते हैं। रात, चाहत, ठोड़ी, कुहनियाँ, भवें जैसी कविताओं में कवि के अद्भुत अभिनव प्रयोग की झलक मिलती है। सीखने की बात है कि ऐसे विषय भी कविता के हो सकते हैं।

'रिक्शे पर हँसी' सामाजिक सरोकार,उन्मुक्तता, उत्साह, प्रश्नाकुलता, चिन्तन और प्रेम को एक साथ पिरोये हुए कविता है। रिक्शे पर तीन लड़कियाँ, वह भी हँसती-मुस्कराती हुई, कवि के किसी कल्पनालोक में नहीं बल्कि भीड़ भरी सड़क पर हैं और

हँस रही हैं कि कोई कवि कविता लिख रहा है। 'हवाई चप्पल' भावना, संवेदना, हास्य, लाचारी और ठसक से भरी कविता है। कवि की दृष्टि ही है जो हवाई चप्पल, आलू दम, इलायची, नीची छतें जैसे विषयों पर इतनी सहज, सुन्दर और सार्थक कविताएँ संभव करती है। कवि का ध्यान हमेशा श्रम करने वाले मोची, धुनिया, फेरीवाला, रिक्शेवाला, होटल में काम करने वाला बच्चा, ट्यूशन मास्टर और गाय दूहने वाले जैसे मेहनतकश आम जन पर रहता है। 'सिरजनहार' कविता में वह बताता है –

जो सिरजता है / अपने लिए / कहाँ /अरजता है...

'द्रुतगामी में बच्चा' संभावनाओं, संघर्षों, मृदुलताओं के साथ गिरने-सम्हलने की कविता है। इतने सारी उलझनों और हलचलों के साथ बच्चा जूझ रहा है और उनके बीच खेल और मुसकुरा रहा है। 'युक्ति' बिलकुल ही नयी भाव-भूमि और कहन वाली सघन प्रेम कविता है, जो उस गहरे प्रेम से आगे बढ़कर सम्पूर्ण जीवन-जगत को सुन्दर और बेहतर बनाने की उदात्तता रचती है– वह भी केवल कुछ पंक्तियों में। विश्व में प्रेम और विरह की बहुतेरी कविताएँ हैं, महत्वपूर्ण और स्मरणीय भी, लेकिन इस जोड़ और वितान की कोई कविता दुर्लभ है। यह गहन अनुभूति है, मानो कोई लुप्तप्राय फूल या वनस्पति नये रूप-रस-गंध के साथ उपस्थित हो प्रेम और कविता में –

सँवारता हूँ दुनिया को मैं
तुम्हारे हाथ से....

कवि 'झाँइयाँ' कविता में विपन्नता और संतप्त परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए कहता है –

तुम्हारी आँखों के करीब रहना चाहता था
पर इस तरह तो नहीं

'सहयात्रा', 'असह-यात्रा' और 'राह में रह जाना' में यात्राओं से जुड़े सन्दर्भ हैं; और कहीं न कहीं सर्वसाधारण की जीवनयात्रा से जुड़ी हैं ये कविताएँ। सबकी अलग-अलग परिस्थिति है और मनोविज्ञान भी। कवि बड़ी गूढ़ बात कहता है इनके जरिये- कोई जानना चाहे/ तो बताना/ कि पहुँचे हुए लोगों से कई बार/ बड़ी होती हैं उनकी यात्रायें / जो रास्ता तय नहीं कर पाये...।

'दृष्टि' कविता के तथ्य और प्रश्न नये नहीं है, लेकिन नया है कवि का चिन्तन, जिससे असहमत होने की गुंजाइश बहुत कम है। सबकी अपनी-अपनी दृष्टि है, इसे स्वीकार करना ही चाहिए। 'अपना बाजार' व्यंग्य और यथार्थ की कविता है। 'बाजार में इन्तजार' कविता में बदलते समय की हैरानी-परेशानी है और समय के सन्दर्भ में सब कुछ के खो जाने का भय भी। 'रुँधा राग' में हास-उपहास के साथ अंतरतम का हाहाकार है और जीवन का सत्य भी। गधा भी कवि की कविता में आता है तो जीवन की समझ बनकर। 'कुत्ते की नींद' और 'कछुआ' कविताओं के माध्यम से कवि के प्रश्न झकझोरते हैं। इन दोनों प्राणियों के इत्मीनान से मनुष्य के इत्मीनान की तुलना क्या संभव है?

आम-अनाम लोगों की संवेदनाएँ, अनुभूतियाँ, असुविधाएँ, गाड़ियों और सीटियों का शोर – अनिमेष ने अपनी कविता 'रेल की पटरियों के किनारे जिनके घर हैं' में सब कुछ

बड़े जीवन्त रूप में प्रतिबिम्बित किया है। 'झिझक' और 'खिल्ली' महीन कताई-बुनाई वाली कविताएँ हैं, जिनका मनोविज्ञान किंचित भिन्न है– थोड़ा व्यंग्य और हास्य का पुट लिए हुए। 'पुरखे' और 'फिर भी' गहन भाव-विचार की कविताएँ हैं। 'झुर्रियों में हँसी' कविता की गहरी संवेदना और जीवन-सिंचित अनुभव देखिए– सतत अनहद निनाद सी/ झुर्रियों के झुरमुट में झिलमिलाती हँसी/ यही तो जीवन दर्शन/ एक जीवन में/ कई जीवन कई दर्शन। विषय और कथ्य ही नहीं, काव्य सौष्ठव, शैली व कहन भी अनिमेष के कवित्व को समकालीनों से अलग और अग्रगण्य करते हैं, जहाँ जीवन मानो स्वतः एक स्वर की तरह उभरता है।

कविता की कस्तूरी की पहचान कवि ने कर ली है, और हृदय के भीतर के उस खरे चुम्बक की भी, जिससे वह खिंची चली आती है जैसे! इस 'चुम्बक' की संभावना तलाशते कवि का आनंद देखिए- चुम्बक की दीवानगी में/ बहुत आगे जाकर/ महसूस हुआ यह/ कि सबसे खरा चुम्बक/ अपने भीतर/ तब से प्रतीक्षा है/ देखें कब तक पक कर निकलेगी/ दिल में अरसे से चुभी यह कील-। 'चाँद पर चना' एक और अद्भुत कविता है, जिसमें जीवन की तलाश है– अभावों के बीच उसकी संभावना के साथ- इतना जीवन जब इस एक नन्हे पौधे में/ उतने बड़े उस पिंड पर/ जीवन नहीं मिलेगा कैसे! पूरी कविता बहुत कुछ कहती है। कवि का कहना है - मालूम है मेरे विचार/ रहने नहीं देंगे इस धरती पर/ कैद कर/ भेज दिया जायेगा मुझे/ चाँद के काले पहाड़ पर। 'झ पर झूठमूठ दो कविताएँ' अपनी तरह की अनूठी अभिव्यक्ति है। यहाँ कवि द्वारा शब्दों की पहचान और उनके साथ खेलना चमत्कृत करता है। यह भी एक नूतन प्रयोग है, परन्तु भाव-संवेदनाओं के साथ। ऐसे ही चिन्तन-भाव की कविता है– 'कविता और शहतूत'। 'एक दिन' कविता वर्तमान की भयावह दुश्चिंताओं के बीच भविष्य के विश्वास का चिन्तन है- एक दिन/ विश्वास भर/ होगा संघर्ष/ और संघर्ष के साथ/ अगले दिन की सोच। 'दूधियापन' व 'जीवन-राग' की स्थितियाँ, भावनाएँ और इच्छाएँ कवि की मानवीय समझ दिखाती हैं। 'बिना मुँडेर की छत' कविता के नाम पर ही यह संग्रह है। कवि को ऐसे विन्यास वाले घरों से खूब परिचय है– वहाँ के रचे-बसे जीवन का और वहाँ के सच का भी। अनूठा बिम्ब विधान है इस कविता का-

बिना मुँडेर की छत पर / बिल्ली के बच्चे सा / सोया है सच / आर पार

'नुक्कड़ नाटक' कविता में पटना के गाँधी मैदान का कोना जीवंत हुआ है, जो हम सब के लिए भिखारी ठाकुर रंगमंच रहा है। शुरूआती दौर में हम सबने देखे हैं वहाँ नुक्कड नाटक। कविता में गाँधी मैदान वैसा ही है– जीवन और कला के साजो सम्मान से भर हुआ... पात्रों, किरदारों और दर्शकों को एकाकार करता! 'सवेरे का सपना' कवि की सद्भावनाओं की कविता है, जिसमें कुम्हार, मोची, जुलाहा, मिस्त्री, हकीम, सब हैं और सबकी यही भावना है- किसी पर न व्यापे दुख कहीं हो न शोक / हर तरफ हर पल हो हँसता खेलता / और जीवन में घुल जाये/ अक्षरों की अमरता! 'पाँत' कविता अनिमेष की अपने पूर्ववर्ती महान कवियों –महाप्राण निराला, प्रसाद, पन्त, महादेवी, बच्चन, अज्ञेय, केदार, मुक्तिबोध, शमशेर, नागार्जुन के प्रति समर्पण है। कवि ने उन सभी के साथ हुए पत्र-व्यवहार, मिलने-जुलने, उनके दिशानिदेर्शों और उनसे प्राप्त प्रेरणा

प्रोत्साहन को बड़ी श्रद्धा से अपने पहले कविता संग्रह के प्रकाशन पर याद किया है। ऐसे भावों की कविताएँ हमेशा याद की जाएँगी।

'निःशब्दभेदी' में कवि सर्वत्र मौन, भय व संत्रास (हाहाकार है सबके भीतर / पर स्वर नहीं) के बीच एक निःशब्दभेदी बाण के रूप में कविता की कल्पना और उसका संधान करता है। हालात, खतरों और चुनौतियों के प्रति कवि पूरी दुनिया को आगाह करता है और अपनी पीड़ानुभूति व संवेदना से सबको जोड़ता है। उसकी कविता बन जाती है निःशब्दभेदी बाण और अँधेरे में नव जागरण गान! 'वापसी का टिकट' कवि के गूढ़ चिन्तन की कविता है। ऐसा होता ही है हमारे जीवन में, हमारी यात्राओं में और दुविधा बनी रहती है। 'इच्छा' कविता में कवि की महत इच्छाएँ हैं। कवि किसी पेड़ की तरह सबके काम आने की भावनाओं से भरा है और कभी नहीं चाहता उसके चलते किसी को कोई असुविधा हो। संग्रह की अंतिम कविता 'पृथ्वी उम्मीद से है' बड़े फलक को सामने लाती है। सधे हुए अंदाज में कवि किसी स्त्री के रूप में 'उर्वरा' पृथ्वी के संभावनाओं से भरे लक्षण चित्रित करता है– ऐसे माहौल में, जहाँ 'कहीं कुछ भी अच्छा नहीं है'। यहाँ अर्थ के कई संस्तर हैं, जो प्रायः परिलक्षित होते हैं अनिमेष की कविताओं में और एक कवि के रूप में उनकी उत्कृष्टता सिद्ध करते हैं। आगत के प्रति आशा और उछाह के साथ अनिमेष कहते हैं :

मुझे लगता / उम्मीद से है पृथ्वी / और सारे ग्रह नक्षत्रों /
पूरी आकाशगंगा को / अभी यह बात बता देनी चाहिए...

इस तरह देखा जाए तो प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ बहुत उम्मीद जगाती हैं। वे जन आकांक्षाओं, अप्रतिहत आशाओं, शाश्वत मूल्यों और मानवीय संवेदनाओं के कवि हैं और मानवता के पक्ष में खड़ी होती हैं उनकी कविताएँ। उनकी भाषा-शैली में प्रवाह है, गति के साथ जरूरी ठहराव भी, चिन्तन स्पष्ट और सोच सर्वसमावेशी। भीतर कोई बेचैनी है, लेकिन धैर्य और सधी स्थिरता भी, जिसे तार्किक अंत तक पहुँचाना चाहते हैं और वे अपनी इस कोशिश में कामयाब भी होते हैं। कहना सही ही होगा कि उन्होंने अपनी कविताओं से, अपने समग्र लेखन से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है और उनसे अभी बहुत सारी उम्मीदें हैं।

टाटा अरियाना हाऊसिंग,टावर-4 फ्लैट-1002
पोस्ट-महालक्ष्मी विहार-751029
भुवनेश्वर, उडीसा, भारत

नेपथ्य के अँधियारे को रोशन करती कविताएँ

- विपिन चौधरी

बहुसंवेदी अनुभवों से परिचित करवाने वाली विधा कविता अपने समय और समाज के साथ-साथ स्वयं कवि के व्यक्तित्व को भी परिलक्षित करने का काम करती है। कविता के लिए उन मानीखेज शब्दों और बिम्बों की तलाश जिसमें कवि की अनुभूतियाँ पूरी तरह से रम सके कवि के रचनाकर्म का ही एक हिस्सा है। एक परिपक्व उम्र में पहुँच जाने के बाद कवि, भावों की तीव्रता में बहने से यथासंभव बचने, शब्दों को कृपणता से बरतने और अपनी काव्य-शैली और कथ्य को संपन्न करने का प्रयास करता है। ये चुनौतियाँ ही उसके रचनात्मक सफर को सघनता प्रदान करती हैं।

सृजन के संवेदनात्मक पशोपेश से गुजरते हुए शब्दों को बरतने का हुनर, किसी सुविचारित दुरूहता का शिकार हुए बिना सरल भावों को शब्दों में पिरोने और पहली ही नजर में बींध लेने वाली काव्य-पंक्तियों का सृजन करने वाले कवि प्रेम रंजन अनिमेष की छवि संवेदनशील भावों को सहजता से प्रस्तुत करने वाले कवि की है। ये सब गुण मिलकर उनकी कविताओं को विशिष्टता प्रदान करते हैं। एक बिम्ब में गूढ सार को प्रस्तुत करने वाली उनकी इस छोटी सी कविता को देखिएः

गेंदड़े में / खुसी हुई है सुई / माँ होगी / यहीं कहीं''।

इस कविता में एक छोटी-सी सुई ने माँ की मौजूदगी का पता दे दिया है। वैसे घर के हर कोने में माँ की छाप नजर आती है। ढेरों जिम्मेदारियों को संभालने वाली माँ कई कामों को एक साथ अंजाम देती है। अक्सर वह पहले काम को बीच में छोड़ कर दूसरा काम पूरा करने के लिए आगे बढ़ जाती है। पूरी उम्र अवैतनिक श्रम में रत स्त्री के दैनिक कामों का लेखा-जोखा करना वाकई मुश्किल है। अंग्रेजी उपन्यासकार, लघु कथा लेखक, कवि और पत्रकार रूडयार्ड किपलिंग की प्रसिद्ध पंक्ति है, भगवान हर जगह नहीं हो सकते इसलिए उन्होंने माँ को बनाया। कवि की संवेदनाओं में माँ का विशेष स्थान है, उनके लगभग हर कविता संग्रह में माँ पर केंद्रित ढेरों कविताएँ शामिल हैं। माँ कैसे पूरे ब्रह्मांड को संभालने का माद्दा रखती है और कैसे सदियों से माँ को भुलाने की प्रथा जारी हैः

माँयें बच्चों को नहलायें / माँयें बूढ़ों को बहलायें / माँयें /
अमृत घूँट पिलायें / माँयें / भूली हुई कलायें /(माँयें)

माँ सुई की घड़ी की तरह बिना रुके काम में जुटी रहती है। माँ जो किसी की पत्नी, किसी की माँ, बहू, भतीजी, चाची, दादी, नानी, ताई, काकी, साली और किसी की बेटी है, उसे सभी रिश्तेदारियों और उनसे जुड़ी परंपराओं को भी निभाना है और वह कभी अपने द्वारा निभाए जाने वाले दायित्वों पर कोई अहसान भी नहीं जताती :

सीने से लगाये उसे / उसके बालों में उलझाये आँखे और उँगलियाँ /
यह माँ है / सींचती और सँजोती एक साथ / ओट दिये एक हाथ /
दूसरे से लौ उकसाती / एक ही वक़्त /
सहेजती भीतर बाहर / रचती और बचाती। (नेह युद्ध - कोई नया समाचार)

इतने कर्मों में रत माँ खुद को ही भूली रहती है। उसे अपने जन्म की तारीख भी

मालूम नहीं होती। मगर अपने आसपास के लोगों के जन्मदिन उसे खूब याद रहते हैं :

माँ को अपना जन्मदिन याद नहीं / उसे याद है दूध का हिसाब /
याद हैं धोबी को दिए जाने वाले कपड़े / याद हमारी स्कूलफीस /
खूब अच्छी तरह याद / पिताजी की चाय में चीनी का अनुपात /
बस अपना जन्मदिन ही याद नहीं(माँ को याद नहीं)

नवें दशक में हिन्दी साहित्य में अपनी विशिष्ट लोक संवेदनात्मक पहचान के साथ प्रेम रंजन अनिमेष का पहला कविता संग्रह- मिट्टी के फल, प्रकाशन संस्थान से आया था। संग्रह के ब्लर्ब पर वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह ने लिखा, 'मिट्टी के फल' का यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है। मिट्टी यहाँ कोई काम चलाऊ मुहादिए नहीं, जीवन-यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म है, जिसे कवि अपनी पाँचों उंगलियों अर्थात पाँचों इंद्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है। वर्ष 2001 में प्रकाशित इस कविता संग्रह में जीवन की छोटी-छोटी चीजों से जुड़ी सूक्ष्म अनुभूतियाँ दर्ज हैं, जहाँ स्वयं कवि का अपना निजीपन और वैश्विक सरोकार भी एक साथ शामिल हैं। 'छाता' शीर्षक कविता में सहृदय कवि के इन्हीं संस्कारों से परिचय मिलता है :

इसलिए / सोचता हूँ / मैं लूँगा / तो लूँगा आसमान /
कि जिसमें सब आ जाएँ / और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन।

कवि की संवेदना में दूसरों के दुख-दर्द को समझने की कुवत, प्राकृतिक संवर्धन के प्रति गंभीर सोच परिलक्षित होती है, जिसकी झाँकी इस कविता-अंश में भी देखी जा सकती है :

रास्ते पर पड़ा है / एक पाँव का जूता / क्या दूसरे पाँव का /सकुशल है सही-सलामत / घर पहुँच गया है / या है इसी तरह किसी राह पर? (एक पाँव का जूता)

यह कवि की अपनी सूक्ष्म चेतना के विस्तार के चलते ही संभव हो सका है कि वह ब्रह्मांड की ढेरों गतिविधियों के जरिए मानवीयता को अपने भीतर जज्ब करते हुए नित-नवीन अनुभवों को अपने नजरिए से आत्मसात करता है -

अन्तिम समय तक / गर्भ में कर फेरता रहा शिशु /
जैसे घट के भीतर कुंभकार! (अंतिम समय तक)

वर्ष 2004 कवि के लिए विशेष तौर पर शुभ साबित हुआ। इसी वर्ष उनका दूसरा कविता संग्रह 'कोई नया समाचार' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ और इसी वर्ष हिन्दी की पत्रिका (नया ज्ञानोदय) में प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ कविता के रूप में उनकी कविता, इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू लगाती स्त्री' को वर्ष 2004 का भारत भूषण पुरस्कार दिया गया। कविता के क्षेत्र में दिए जाने वाले इस महत्वपूर्ण पुरस्कार के उस वर्ष के निर्णायक थे कवि, आलोचक और रंगमंच के प्रतिष्ठ व्यक्तित्व नेमिचन्द्र जैन। उन्होंने प्रेम रंजन अनिमेष की कविता के चयन की संस्तुति के तौर पर लिखा प्रेम रंजन अनिमेष की कविता 'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' कुछ नाटकीय मुहावरे में आज की जिन्दगी की एक हास्यास्पद पर क्रूर विडंबना का बयान करती है। अनिमेष के संवेदना तन्त्र में इतना लचीलापन और भाषा में इतनी सहजता है कि वो दैनन्दिन और कालातीत जाले में भागती हुई मकड़ी और ग्रह-नक्षत्रों के बीच झोल के सम्बन्ध को देख सके और

उसे दूसरों तक पहुँचाना चाहे। यद्यपि कवि को लग रहा है कि कुछ भी यहाँ नहीं रहेगा, फिर भी सरकती हुई धूल फाँकते हुए दृश्य से बाहर आ सकने की उसकी क्षमता हिन्दी की युवा कविता की एक सार्थक सम्भावना की ओर इशारा करती है।

पुरस्कार की घोषणा के बाद युवा पीढ़ी के एक संभावनाशील कवि के रूप में उनकी कविताओं की तरफ सबका ध्यान आकर्षित होना ही था। पाठकों के साथ समीक्षकों और आलोचकों ने उनके दोनों कविता संग्रहों (मिट्टी के फल और कोई नया समाचार) की कविताओं में प्रयुक्त सरल भाषा और मार्मिक काव्य अभिव्यक्तियों को खूब सराहा :

बिछड़ते समय / बदल लिए थे हाथ मैंने / अब रहूँ कहीं भी / मेरा हाथ तुम्हारे पास / स्पर्श करता तुम्हें / सोच में / सम्भालता चेहरा तुम्हारा / नींद में थपकाता / पोंछता आँसू / देता धूप में ओट। (युक्ति)

प्रेम रंजन अनिमेष के दूसरे कविता-संग्रह- 'कोई नया समाचार' की कई कविताओं में नवजात शिशु के आगमन से उत्पन्न नई अनुभूतियाँ और उसकी माता-पिता के ममत्व से जुड़े ढेरों बिम्ब शामिल हैं, जिसमें एक कवि अपने नवजात शिशु के जरिए जीवन को नए सिरे से समझने के प्रयास में है:

इस दुनिया की / जो छवि है मेरे भीतर / उसमें एक स्त्री के वक्ष की तरह /
थामे हुए हैं / नन्हें शिशु हाथ (छवि)

इस संग्रह पर प्रख्यात कवि कैलाश वाजपेयी ने लिखा था, इतने बर्बर समय में कोई कवि अपनी संवेदना और मासूमियत को बचाये रख सका- यह सोचकर हैरत होती है। मगर इस संग्रह की रचनाएँ हैं कुछ ऐसी ही। नैसर्गिक भाव से लिखी गई ये कविताएँ जुगनू की तरह मन के अंधेरे कोनों को रोशन करती हैं। सरल शब्दों में सूक्ष्म भावों को पिरोने के अतिरिक्त प्रेम रंजन अनिमेष अपनी कविताओं में उस लोक और जनपद को सामने लाते हैं जिसका नाता जन साधारण के दिनचर्या की गतिविधियों से जुड़ी सौंधी महक से जुड़ता है। लोक से जुड़ी हर संवेदना व्यक्तिगत न होकर सामूहिक हो जाती है जिसमें कवि का मन अधिक रमता है :

चरवाहों के चैन और हाटवालों की हड़बड़ी के बीच /
सोचता हूँ छू सकूँ जीवन को जितनी कोरों से / और फिर यह चाह भर नहीं /
यही शर्त / ज़िंदा रहने की / इत्ते से वक़्त और बित्ते से आकाश में। (साज बाज)

लोक व जनपद से जुडी उनकी कविताएँ एक ऐसे रचना संसार का निर्माण करती हैं जहाँ संभावना का तत्व हमेशा विद्यमान रहता है। लोकभाषा व जीवन की मिठास से परिपूर्ण उनकी कविताओं में जीवन की उन महीन संवेदनाओं से सामना होता है जिनको बरतने की समझ इस भौतिक और निष्ठुर संसार में कम होती जा रही है क्योंकि उनके जीवन में इन संभावनाओं की जगह नहीं है जबकि एक समाज को हृदयविहीन बनने से रोकने के लिए इन्हीं मूल्यवान संवेदनाओं की जरूरत है। उन्हीं संवेदनाओं को उकेरने के लिए प्रस्तुत कवि के निकट नवीन बिम्बों का अद्भुत संसार है। ओट में कर दी गई संवेदनाओं के साथ मानवीय मूल्यों की उपस्थिति को दशार्ने वाले रूपकों को किस तरह से कविता में इस्तेमाल किया जाए इसकी समझ कवि को बखूबी है -

अब रहूँ कहीं / मेरा हाथ तुम्हारे पास / स्पर्श करता तुम्हें / सोच में /

संभालता चेहरा तुम्हारा / नींद में थपकाता / पोंछता आँसू देता धूप में ओट /
हृदय चाहता / कि समा जाये उसमें / सारी मनुष्यता(युक्ति)

रूपकों को कविता में सलीके से बिठाने के हुनर के साथ बहुत सारे जीवन अनुभव कविताओं के उस संसार का निर्माण करते हैं जिसमें विचरण करता हुआ कवि अपनी उस समांतर दुनिया को जीता है जिसका निमार्ता कोई और नहीं वह स्वयं है :

कवि इतना बड़ा / मनुष्य ही नहीं / पशु पक्षी / पेड़ पौधे भी / - /
पूरी प्राणीयता / संपूर्ण सप्राणता।(कवि हृदय)

खुद को भूली स्त्रियों को लक्षित करके लिखी गई कविताएँ :

प्रेम रंजन अनिमेष की अधिकतर कविताएँ आधी आबादी की उन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्हें अपने जन्म की तारीख भी नहीं मालूम, यहाँ तक कि जीवन के दैनिक व्यवहार में पूरी तरह से डूबी ये स्त्रियाँ अपना असली नाम तक भूल चुकी हैं, और संकोची इतनी की पति का नाम भी अपने होंठों पर नहीं लाती हैं-

आज इतनी बदल गयी / दीन दुनिया / फिर भी लगता कैसा /
होंठों पर नहीं लाना / नाम अपने आदमी का? (ए जी)

आज के आधुनिक दौर में जहाँ स्त्रियों के सशक्तिकरण को लेकर खूब ढोल पीटा जाता है, स्त्रियों के शिक्षित और समाज में सक्रिय होने की बात की जाती है, वहीं हमारे आस-पास की ढेरों स्त्रियाँ ऐसी हैं जिन्होंने पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों की सेवा सुश्रुषा में अपने आप को भुला दिया है। ऐसी ही एक स्त्री, कवि की जननी है, जिनको सबकी सेवा-सुश्रुषा करते देख कर वे बड़े हुए हैं, वहीं से उन्होंने संवेदनशीलता ग्रहण की है और माँ के असीम धैर्य और उनकी महत्ता को जाना है :

माँ / नहीं तो कौन भला / सिखलाता इस तरह / कि शब्द से अर्थ /
अर्थ से भाव बाद / हाँ में भी ना / मुमकिन है और / ना में भी हाँ।। (भावार्थ)

एक दूसरी कविता में माँ उन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्होंने खुद को इस कदर भुला दिया है कि उसके ही बच्चे को त्याग के नाम पर और चूल्हे की आग के स्मरण से अपनी माँ की याद आती है। कवि द्वारा पहला नाम' शीर्षक से लिखी कविता इस सच को दोहराती है-

बच्चे ने सुना / माँ / त्याग का / दूसरा नाम है /
बच्चे ने जाना / माँ / चूल्हे की आग का / दूसरा नाम है /
माँ का पहला नाम / ढूँढ़ रहा है बच्चा।

समाज में जिस तरह से एक स्त्री का जीवन अपने सर्वस्व को होम करने वाला है, उसी के अंतर्गत एक बच्चे को यही समझ मिलती है कि 'माँ' होने का अर्थ ही त्याग है। माँ यानि अपने प्रति निसंग रहने वाली स्त्री। बड़ा होने पर यही बच्चा अपने बहनों, पत्नी और बेटियों से भी इसी 'त्याग' और 'समर्पण' की उम्मीद करता है।

मन को आर्द्र कर देने वाली ये कविताएँ कहीं न कहीं समाज और उसकी सोच पर अब भी कुंडली मार कर बैठी हुई पितृसत्ता का पदार्फाश और प्रतिकार करती हैं। बड़ी चालाकी से स्त्री-पुरुष के लिए अलग-अलग खाँचे निर्धारित कर दिए गए हैं और इसी आधार पर यह संरचना दबे पाँव आगे बढ़ती और फलती-फूलती चली जाती है। इसी

संरचना को अपने कंधों पर ढोती हुई स्त्री को सामाजिक मयार्दाओं, परंपराओं की आड़ में दबाने के यत्न आज भी जारी हैं।

वहीं एक माँ के लिए घर की चारदीवारी ही उसका संसार है, घर से बाहर उसका कोई अस्तित्व ही नहीं। बच्चों के साथ छुपन छुपाई का खेल खेलती माँ को लगने लगता था कि वह सचमुच में अपने भाई के घर जा रही है। जहाँ बरसों बाद एक दो दिन के लिए उसका जाना होता था। माँ के लिए यही यात्रा तय थी बस उसके संसार की खिड़की इन्हीं दो-तीन जगह खुलती थी।

छुपना / माँ के लिए / जाना था / जल्दी ही हममें से कोई /
किसी मुश्किल से उलझ जाता / कोई चीज किसी से टूट जाती /
या किसी की हँसी छूट जाती / और निकल आना पड़ता माँ को /
अपने नेपथ्य से! (माँ का नाटक)

माँ के जीवन को देख कर ही कवि स्त्री संसार के कितने ही ढँके छुपे सच को जान सका। कवि ने साक्षात देखा कि खिलखिलाती स्त्रियाँ कैसे अपने मन में शोले छुपाए रखती है और उसकी दिनचर्या इतनी सरल नहीं है, जितनी दिखाई देती हैः

एक दिन ऐसे ही / गया रसोई में / और पाया वह दहक रही /
जैसे बरक जायेगी खाल / लगा कि कोई / कैसे रह सकता है यहाँ /
एक पल भी / वह स्त्री / जाने कितने मौसमों से वहीं / रहती आई थी। (पकना)

स्त्री जीवन की अनेक परतें प्रेम रंजन अनिमेष ने अलग की हैं। स्त्री के प्रति उनकी असीम संवेदना ने ही उन्हें स्त्रियों के बारे में इतना सोचने का अवसर प्रदान किया है और यह समझने की आँख दी है कि सिर्फ.सीता ही नहीं हर स्त्री अपने जीवन में कई बार अग्नि परीक्षा से गुजरती है :

एक साधारण औरत / हर सुबह हर शाम /
देती है अग्नि परीक्षा! (गोबर लिपा चूल्हा)

कवि के शीघ्र प्रकाशित कविता संग्रह, 'माँ के साथ ' और 'नींद में नाच' की कई स्त्री केंद्रित कविताओं के अलावा सभी संग्रहों में स्त्री जीवन के अनेक बिम्ब देखने को मिलते हैं। उनके अनेक कविता संग्रह प्रस्तावित हैं, जिनमें एक लड़की का खंडकाव्य, स्त्री सूक्ति, स्त्री-पक्ष, स्त्री पुराण स्त्री नवीन, अकथ कथाएंः कुछ स्त्रीगीत, औरत तेरा क्या कहना, धड़कन की तरह और लड़कियाँ सब जानती हैं, शामिल हैं। इसी तरह 'संगत' संगत कविता-संग्रह प्रौढ़ और रुग्ण होते माता-पिता दोनों को लेकर लिखा गया है जिसमें एक बेटे के तौर पर बढ़ती उम्र और बीमारी की चिंता से जुड़े अनेक बिम्ब हैं।

नयी पकड़ ली है आदत इन दिनों / उठकर अकेले में / चढ़ा लेते /
कमरे में सिटकनी / इधर हम डरते / दरवाजा बंद कर भीतर से /
कहीं चले न जायें (कहीं)

रोजमर्रा के स्त्री जीवन की अनेक भंगिमाओं पर लिखी उनकी कविताओं को देखकर सचमुच ही आश्चर्य होता है कि एक पुरुष मन स्त्री समाज के प्रति कितना संवेदनशील है। स्त्रियों के अधिकारों के प्रति संवेदनशील कवि कहता है :

नींद में भी / चक्कर काट रही होगी / घूम रही होगी अपनी धुरी पर /
चाक पर धरी धरती सी / जब जागेगी / जब उठेगी / औरत / एक दिन /
पूरी नींद का हक माँगेगी। (नींद का हक)

इंसान की तथाकथित संवेदनशीलता और बढ़ती संवेदनहीनता पर कटाक्ष करती कविताएँ :

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ इंसान को अपने भीतर झाँकने को मजबूर करती हैं। सभ्य कहलाने वाले इंसान की स्वार्थी मनोवृत्तियों को उजागर करती ये कविताएँ इंसान के भीतरी सच को बयाँ करती हैं। ऐसी ही एक कविता में कवि ने समय के साथ रिश्तों में आए बदलाव की ओर इशारा किया है। भाई-बहन जो एक ही घर में बड़े हुए हैं, एक उम्र के बाद इतने अजनबी हो जाते हैं कि भाई अपनी बहन से मिले बिना ही उसके घर के सामने से चुपचाप निकल आता है -

रास्ते में पड़ता है / घर बहन का / पर गुजर जाते / अकसर उधर से /
इसी तरह / चुपचाप / मिले बिना / बगैर खबर किए / अपना / या दुनिया का /
कोई काम देखते / बहनें हमारे रास्ते में / नहीं आतीं (बहन का घर)

इसी तरह स्त्रियाँ अपने आप से बेखबर होकर तमाम कर्तव्यों को निभाती हैं मगर समाज और उसके नजदीकी लोग भी उसके दुख तकलीफों और मन को नहीं समझ पाए हैं :

एक अलग और गैर भाषा में / लिखी गयी उनके शास्त्र की किताबें /
अपनी स्त्रियों को समझने में / अधिक दूर तक मदद नहीं कर सकी
(स्त्रियों की बीमारियाँ)

बाजार के विकराल होने के संकेत देती कविताएँ : कवि द्वारा 'बाजार' शीर्षक से लिखी गई बहुत पहले किसी-किसी पत्रिका में पढ़ी थी। यह वह दौर था जब बाजार अपनी चमक-दमक के साथ शहर-शहर धमकने की तैयारी में था। आज के समय में हम अपने छोटे-छोटे कस्बों में रोज शो रूम को खुलता देखने के अभ्यस्त हो चुके हैं मगर उस समय हमें बिल्कुल पता नहीं था कि बाजार की संस्कृति इस तरह से हम पर हावी हो जाएगी। मगर तब भी बाजार रूपी बवंडर के आगमन से होने वाले बड़े परिवर्तन की आहटें सुनाई दे रही थीं जिसकी आशंका इस कविता में दर्ज हुई हैः

फिर एक बार फिर कर / उसी दुकान के सामने आता हूँ /
जहाँ अपने होने, उसे आने को कहा था / और ढीठ की तरह /
खड़ा हो जाता हूँ / खबर नहीं / मेरे पीछे / बदला जा रहा /
एक बूढ़ा आदमी / रो रहा है / बीच बाजार में / क्या उसका / कुछ खो गया?/
कुछ ले न सका / या जो लिया / काम का नहीं निकला / धोखा हुआ /
छला गया / ठगा गया / लुटा? बाजार में तो / ऐसा होता है / (बाजार में रोना)

नव उदारवाद मुक्त बाजार को लेकर आया जिसमें इंसान का विकास आर्थिक विक-ास के साथ आँका जाने लगा। मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में, समाज के वे लोग जिनके पास विपणन योग्य महारत हासिल नहीं हैं वे पीछे रह गए। अर्थ के नीचे सारे मूल्य दब गए कवि अपनी कविताओं में आने वाले समाज और समय की चिंता करता है।

मानवीय संवेदना की कविताएँ :

इंसान के बीच आपसी सौहार्द और मानवीय सरोकार प्रेम रंजन अनिमेष की अधिकतर कविताओं के विषय बने हैं, जिनमें कवि दूसरे मदद के लिए तत्पर रहता है जिसमें उसे भले ही जोखिम उठाना पड़े लेकिन वह मदद से पीछे नहीं हटता, ऐसी संवेदनशीलता उनकी कई कविताओं में देखने को मिलती हैः

एक मिनट के लिए / किसी का हाल पूछने रुकूँगा / और बारिश में घिर जाऊँगा /
एक मिनट / राह बताने लगूँगा अजनबी को / और गाड़ी छूट जायेगी /
एक मिनट थमकर / एक वृद्ध को सड़क पार कराऊँगा /
और काम पर मेरी हाज़िरी कट चुकी होगी / (ठिठकना)

अपने जीवन की आपाधापी में खर्च होते व्यक्ति के पास किसी दूसरे के लिए जरा भी समय नहीं है। उसे किसी की पीड़ाओं से कोई सरोकार ही नहीं रहा ऐसे में दूसरों के काम आने की सर्वोपरि भावना को कवि बार-बार दोहराता है। ऐसी ही एक कविता है 'कृतज्ञता' जिसकी कोमल अनुभूतियाँ इंसान की संवेदनशीलता को दर्शाती हैं :

थोड़ा-थोड़ा रुककर / दो दफे दी दस्तक / इससे ज्यादा / दखल देना /
खलल डालना मुझे लगता / जो नहीं मेरे स्वभाव में / दरवाजा न खुला /
चला आया / पर कहना गलत होगा / कि मिल न सका /
मैं मिला घर की कई आइटों से / भेंट हुई जैसी नहीं हुई थी अरसे से /
आना सार्थक हुआ / कृतज्ञ हूँ तुम्हारा।

जीवन के सफर में कई बार मनुष्य क्रूर विडम्बनाओं का सामना करता है। इन्हीं विडम्बनाओं को कवि बिना किसी शोर-शराबे से शालीनता से कविता में दर्ज. करते हैंः

बीमारी से बेकल बेहाल पिता / कभी रात की बेचैनी में / उठकर कहते /
लगता है / अब नहीं रहूँगा / आज चला जाऊँगा। /
'चुपचाप सुनता / कुछ नहीं कहता / बस सोने से पहले /
छुपा देता / उनकी चप्पलें /(रोकना)

प्रेम के उदात्त भाव से ओत-प्रोत कविताएँ :

कवि प्रेम में संपूर्णता चाहता है, आधी-अधूरी, बनावटी प्रेम-अभिव्यक्ति उसे सख्त नापसंद है। वह अपनी काव्यात्मक सृजनात्मकता की तरह ही प्रेम के रिश्ते में भी गंभीर स्थायित्व चाहता है। जीवन में प्रेम के चले आने की पुकार और फिर प्रेम करने की चाह को उन्होंने कलात्मक आयाम देने की कोशिश की है :

जैसे रंगमंच के अंधेरे में अभिनेता / इस तरह आ जाओ जीवन में /
ऐसे करो प्रेम / जैसे गायक लेता है / साँस(कला)

प्रेम के कितने ही स्वरूप को कवि शब्दों में बांधता है। इन प्रेम कविताओं की हर बानगी में प्रेम का माधुर्य है और साहचर्य के सुख की कामना है जिससे सराबोर होने के लिए ही ये कविताएँ लिखी गयी हैं -

बस रख दो / रच दो / गंध अपनी साँसों की / फिर जरूरी क्या /
किसी लिफाफे में भरना / उड़ा देना / बस इसी तरह / अपने होंठों की धाह से /

मैं तो रोज ही महसूस करता / हवा में / कितने सुवास पत्र तुम्हारे।
(खुशबू के खत)

प्रेम कई तरह की बंदिशें भी लेकर आता है। प्रेम में दीवाना हुआ प्रेमी अपनी प्रेमिका को बंधन में बाँधना चाहता है और उसकी हर चीज पर मालिकाना हक चाहता है लेकिन कवि का प्रेम मुक्त करता है, बांधता नहीं। कम से कम कविता में दर्ज.इन भावनाओं से तो यही मालूम होता है-

मैं नहीं जानता तुम हो कहाँ किस तरह
कोई कौन होता है तुम्हारे सपने भी तय करने वाला
तुम किसी खयाल की बंदिश नहीं। (निर्बंध)

कुछ जरूरी सवालों को सामने रखने वाली कविताएँ :

आज जिस तरह आधुनिक आचार-व्यवहार सौंधी चीजों को एक-एक कर निगलता जा रहा है, साफ हवा-पानी अब गुजरे जमाने की चीज हो गई है। वैश्विक महामारी से भी मनुष्य कुछ नहीं सीख पाया। चारों तरफ कंक्रीट के जंगल में रहने को मजबूर मनुष्य और समूचे प्राणी जगत के भविष्य को लेकर चिंता कई कविताओं में झलकती है, उनकी इस कविता में किया गया प्रश्न विचारणीय है-

क्या सच में एक दिन / स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल /
और खाली बाँस के खोल में साँस की हवा /
क्या बस जुगनुओं में रह जाएगी सच की लौ /
और उर्वर मिट्टी केंचुओं के बिल में / श्यामपट इतना बड़ा कोरा फैला हुआ /
और जरा सी खड़िया नहीं होगी / 'छुट्टी' लिखने के लिए भी /
क्या सच में एक दिन / झींगुरों के पास ही रह जाएगी पुकार /
और चिड़ियों को भी /
पता नहीं चलेगा सुबह होने का? (बच्चे की स्लेट पर लिखे कुछ सवाल)

आधुनिकता की दौड़ में सरपट भागता मनुष्य अपने हाथों सब कुछ खोता चला जा रहा है। घोषणा की जा रही है कि धरती पर मानव जाति के जाने के दिन नजदीक आते दिख रहे हैं मगर कवि उम्मीद की जमीन को नहीं छोड़ता :

एक दिन / हाहाकार को सोख लेगा संगीत / चुप्पी से निकलेगी भाषा /
पीड़ा से फूटेगी किलक / एक दिन / सच जितना / होगा सपना /
अँधेरे से बड़ी आँखें / तराजू के दोनों पलड़े / होंगे एक बराबर (एक दिन)

जिन सरोकारों से मनुष्य जीवन भर जुड़ा रहता है, वे अंत तक उसका साथ निभाते हैं। चाहे अनचाहे वो ही उसकी अंतिम परिणित बन जाते हैं :

माँ उलझी रही घर के कामों में / अन्तिम समय तक /
अन्तिम समय तक / चींटी चुनती रही शक्कर /
अन्तिम समय तक / केंचुए के शरीर में होती रही हरकत /
अन्तिम समय तक / एक पेड़ खड़ा रहा उठाए हाथ /
बोरसी में आग / आँखों में लौ / बची रही अन्तिम समय तक।
(अंतिम समय तक)

प्रेम रंजन अनिमेष जीवन में मधुरता को सींचने की इच्छा रखने वाले कवि हैं। संबंधों में स्नेह और प्रकृति से करीबी उन्हें प्रिय है, 'अमराई' शीर्षक से लिखी लंबी कविता में आम के बगीचे से जुड़े कई बिंब देखने को मिलते हैं। इसी तरह 'नारियल', कविता और 'शहतूत' शीर्षक से लिखी उनकी कविताएँ एक अलग जायका प्रदान करती हैं।

इसी तरह साइकिल के प्रेम में कवि ने एक पूरा संग्रह (साइकिल पर संसार) ही लिख दिया है, जिसमें साइकिल से जुड़ी ढेरों स्मृतियाँ और सामाजिकता और दर्शन भी जुड़े हुए हैं। उदाहरण स्वरूप इस कविता को देखा जा सकता है :

मिट्टी की यह देह / मिलेगी एक दिन / मिट्टी में /
हवा से बतियाती साइकिल / जायेगी क्या / हवा में?

यहाँ तक कि अपने कवि होने को भी वे साइकिल से जोड़ कर देखते हैं -

तब उसने / इस तरह सोचकर देखा / कि साइकिल पर जो हैं /
जिन्हें वह संभाले हुए / वही उसकी सोच हैं / उसकी कविताएँ /
उन्हें ही पूरी सावधानी / पूरी लग्न से / रचना गढ़ना सँजोना /
बढ़ाना और बड़ा करना है / साइकिल चलाते चलाते उसे लगा /
मानो असल में कवि वह उस दिन हुआ अंततः (साइकिल पर कवि)

बिना किसी शोर के राजनैतिक चेतना को उजागर करती कविताएँ :

कवि अनिमेष अपनी राजनैतिक संचेतना से भी अच्छी तरह से वाकिफ हैं मगर वे शांत स्वभाव से प्रतिरोध करते हैं जो किसी नारे की शक्ल में नहीं प्रदर्शित होता है। कुछ जलचित्र- कुछ जलचिह्न, बाढ़ से घिरे गाँवः शीर्षक से लिखी कविता के एक खंड में वे लिखते हैंः

आग धधक रही थी पहले से / फिर माटी पर / पानी फिरा /
पानी पर पवन / टूटा नहीं आसमान / सरकार का बयान (पंचनामा)

कोरोना की महामारी से जब देश दुनिया रुदन कर रही हो, सरकार अपने उतरदायित्व को संभाल नहीं पा रही हो, आम जनता में अविश्वास के बादल मंडरा रहे हों तो कवि का ऐसा सोचना कहीं से भी गलत नहीं ठहरता-

क्या यह महामारी भी कहीं / राजनीति / महाराजनीति? /
स्वजन्मा स्वयंभू विषाणु नहीं कोई / बल्कि सोची समझी नासमझी /
सर्वथा अनैतिक / रणनैतिक चाल किसी की /
विश्व बिसात पर विश्व विजय की। (सोच समझ)

महामारी के हृदयविदारक दौर पर लिखी उनकी कविता, जन पद यात्रा उन श्रमिकों की पीड़ाओं का, उन कथाओं का जिक्र करती है, जिन्हें मानवता की सबसे विकराल त्रासदी की तरह याद रखा जाएगा। समय चाहे जैसा भी हो गरीब गुरबों पर भी असामाजिक तत्वों की तिरछी नजर रहती है :

दो ईंटों के चूल्हे पर / यह शीत भरी रात जगी है /
दो ईंटों के चूल्हे पर / शहर भर की आँख लगी है (दो ईंटों का चूल्हा)

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं का सफर जब से शुरू हुआ है तब से उन्होंने

लगातार सहजता का दामन थामे रखा है। सोशल मीडिया की चमक-दमक और तात्कालिकता से दूर धैर्य के साथ अपने रचनाकर्म में रत इस कवि से युवा पीढ़ी को सीख लेनी चाहिए और समय रहते जान लेना चाहिए कि जीवन के हर क्षेत्र में ऐसी निश्छलता लाजमी है, जैसी इस कविता में प्रदर्शित की गई है -

जो साफदिल होगा / किसी शिशु की तरह / साफ होंगी आँखें उसकी /
निश्छल निर्दोष जीवंत / हालाँकि वह कहीं / दिखलाने की कोशिश करेगा नहीं /
सफाई अपनी / कपड़े उसके / होंगे मैले कुचैले /
क्योंकि आदत है / नेकी धूल में
अपने लिए नहीं / तो औरों के वास्ते / फिर भी झलकेंगी आँखें उसकी /
अपने पानी से / आँखों से झाँकेगा दिल / और दिल से आँखें /
और कुछ है भी कहाँ उसके पास / पर कोई रोता बच्चा सामने आयेगा /
तो एकटक देखता उसे / चुप हो जायेगा। । (निश्छलता)

अँधेरे में आँखें गड़ाये एक अदृश्य लौ की धाह पर

– शंकरानंद

नब्बे के आसपास जिन कवियों ने अपनी कविताओं से ध्यान खींचना शुरू किया उनमें प्रेम रंजन अनिमेष की गिनती अनिवार्य रूप से होती है। उनकी कविताओं की सबसे बड़ी खासियत उनका अपना मुहावरा है, जो उन्होंने शुरू में ही अर्जित कर लिया था। उनकी कविताओं में मनुष्य और मनुष्यता केंद्र में है। उनकी भाषा कविता की सबसे कोमल भाषा है। वे बहुत जोर से बोलना पसंद नहीं करते इसके बावजूद उनकी आवाज देर तक और दूर तक सुनाई देने वाली है। भाषा, बिम्ब, वस्तु और संवेदना के स्तर पर उनकी कविताएँ बहुत मौलिक, टटकी, जीवंत और विविधताओं से भरी हुई हैं। उनकी कविताओं में घर, परिवार, माँ, पिता, बच्चे और स्त्री की उपस्थिति महत्वपूर्ण है। ये वही सब हैं जो आज सबसे ज्यादा मुश्किल में हैं और खतरों से घिरे हुए हैं। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ जैसे हर उपेक्षित और संकटग्रस्त के पक्ष में एक मजबूत गवाही हैं।

नब्बे के दशक में जब उदारीकरण की शुरूआत हुई तो पूँजी के प्रपंच का खेल भी उसके साथ ही शुरू हो गया। श्रम की शक्ति की जगह आँकड़ों ने ली और सेंसेक्स के सूचकांक दुनिया की दिशा तय करने लगे। जाहिर है कि एक भयावह और अदृश्य दौड़ भी इसी के साथ शुरू हो गयी जिसने सबसे पहले मानव मूल्यों को ध्वस्त करना शुरू किया। इस अंधी दौड़ में सब कुछ पीछे छूटने लगा। इस अदृश्य रफ़्तार के साथ जो दौड़ सकते हैं, वे ही आगे बढ़ सकते हैं और जो रुकते हैं वे भीड़ के पैरों तले दब कुचल कर मरने के लिए अभिशप्त हैं। स्थिति इतनी भयावह है कि चलने की जगह 'ठिठकना' अब खतरनाक है। कविता लेकिन यही करती है। वह मनुष्य और मनुष्यता का साथ नहीं छोड़ सकती। प्रेम रंजन अनिमेष इस बात से भली भाँति परिचित हैं। वे जोखिम उठाते हैं। वे जानते हैं कि 'एक मिनट के लिए किसी का हाल पूछना' बारिश में घिरने का कारण बन सकता है। 'एक मिनट के लिए किसी अजनबी को रास्ता बताना' गाड़ी छूटने का कारण बन सकता है, एक मिनट के लिए 'किसी वृद्ध को सड़क पार कराना' काम पर हाजिरी कटने का कारण बन सकता है। इसके बावजूद वे ठिठकने के पक्ष में हैं क्योंकि वे जानते हैं कि अब चौबीस घंटे में 'इसी एक मिनट में जिंदगी बची' है। यह एक मिनट ही है जो मनुष्यता को बचा सकता है। इसलिए वे इस 'एक मिनट' के लिए हर मुश्किल से जूझने के लिए तैयार हैं। उनकी कविता के केंद्र में यही जोखिम है जो वे बार बार उठाते हैं। यह कविता हर रफ़्तार के विरोध की कविता है जो बताती है कि रफ़्तार की गति में पास की चीजों को भी देखना मुश्किल होता है। उसके लिए तो ठिठकना जरूरी है। जिन्दगी को ठिठक कर ही महसूस किया जा सकता है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कविता की एक बड़ी खासियत है कि वे बहुत छोटे-छोटे और मामूली विषयों पर होती हैं। लेकिन उनमे बात बड़ी गहरी और मारक होती है। उनके पहले कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' की पहली ही कविता है 'बच्चे की स्लेट पर लिखे कुछ सवाल'। इस कविता में उन्होंने जिस भयावह भविष्य का अंदेशा व्यक्त किया है वह बेचैन करने वाला है। यह पूरी कविता सवालों में है और वे सवाल बेहद गंभीर हैं।

वे बच्चों की स्लेट पर हैं यह और भी चिंता की बात है। वे बच्चे हैं लेकिन हमने उनका बचपना छीन लिया है। हमने विरासत में उन्हें मुश्किलें दी हैं तभी तो वे पूछते हैं –

क्या सच में एक दिन
स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल में /
और खाली बांस के खोल में साँस की हवा।
क्या बस जुगनुओं में रह जाएगी सच की लौ
और उर्वर मिट्टी केंचुओं के बिल में

यह पूरी कविता इसी तरह के मासूम सवालों से भरी है और वे सवाल उनके लिए बेहद जरूरी हैं। जब यह कविता लिखी गई होगी तब शायद पानी का संकट इतना गहरा नहीं होगा। आज लेकिन परिदृश्य बदल गया है। जो पानी लोगों के प्यास बुझाने के काम आता था, आज उसका हजारों करोड़ का व्यापार है। आने वाले समय में जिसकी जेब में पैसा होगा उसी की प्यास बुझेगी। यह तो एक उदाहरण भर है जो बताता है कि एक कवि के पास जो दृष्टि होती है वह दूर तक देखती है। यहाँ भी प्रेम रंजन अनिमेष उन खतरों से वाकिफ हैं। कवि को पता है कि बाजार के लिए हर चीज एक उत्पाद भर है जिसका मूल्य मुनाफा देना है। मशीनों के उत्पाद से जब यह मुनाफा कम पड़ गया तो इसके लिए प्राकृतिक संसाधन भी वस्तु में तब्दील हो गये। हवा, पानी, मिट्टी से होते हुए यह खतरा सच, पुकार और सुबह तक पहुँच गया है। ये सब मुश्किल में हैं और बच्चों की सबसे बड़ी चिंता यही है कि आखिर एक मनुष्य का जीवन इनके बिना कैसे संभव है। यह कविता अपने सवालों में बार बार उत्तर माँगती है लेकिन यह उत्तर कोई नहीं देता। क्योंकि ये अपराध किसी एक ने नहीं किये बल्कि इसे करने वाला धूमिल के शब्दों में कहें तो 'अपराधियों का संयुक्त परिवार' है। उनमें कोई जवाबदेही लेने के लिए तैयार नहीं। लेकिन कवि इससे मुक्त नहीं हो सकता। वह सच कहता है और उन बच्चों की तरफ से भी कहता है जो अभी अबोध हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की चीजों को देखने की जो दृष्टि है वह बहुत अलग है। दीखते को देखना तो बहुत आसान है। जो आसानी से दिखने लायक नहीं है वे उसे देखते हैं। एक कवि के पास जब यह नजर होती है तो उससे कुछ भी ओझल नहीं होता। इस देखने और पहचानने में भी कवि का काव्य विवेक इतना कोमल है कि वे 'लौकी को हल्के नाखून गड़ाकर' पहचानते हैं। नारियल को 'उसका पानी बजाकर' पहचानते है। घड़े को 'टुनका कर' और दूध को 'ऊँगली पर थिराकर' देखते हैं। ये सारी प्रक्रिया बहुत बारीक और संवेदनपरक है। इसके लिए धैर्य चाहिए। कवि के पास यह धैर्य है। इसीलिए वे चीजों को पहचाने के साथ मनुष्य को भी पहचानते हैं। उनके पास वह बेचैनी है जो 'अँधेरे में आँखे गड़ाये अदृश्य लौ की धाह' देखती है। उन्हें पता है कि इस मुश्किल वक़्त में नींद की नहीं जागने की जरूरत है – क्योंकि 'रात भर बेचैन जागने वाले ही अपनी धुरी पर नाचती उनींदी दुनिया को राह भटकने से बचाते' हैं। उनकी व्यग्रता 'सूर्य से पहले उठने की' भी है। उन्हें पता है कि एक कवि के पास करने को बहुतेरे काम होते हैं। उसे ही बोलना है और उसे ही 'किसी का साथ देने जाना' है। जिसके साथ कोई नहीं है, कवि उसके पक्ष में खड़ा है। उसे अपनी परवाह नहीं। वह तो दूसरों को

बारिश में भीगते देखकर भी व्यथित हो जाता है। इसीलिए सोचता है कि एक छत का जुगाड़ कर लूँगा और लूँगा एक छाता क्योंकि इस शहर के लोगों के पास जो छाता है उसमें कोई एक ही आता है। कवि की भावना कितनी विह्वल करने वाली है वह यहाँ देखने लायक है –

इसीलिए सोचता हूँ / मैं लूँगा तो लूँगा आसमान /
कि जिसमें सब आ जायें / और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन ।

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में कहने को बहुत बातें होती हैं। क्रिकेट, ऊँट, प्रमाणपत्र, पत्र, पिता सहित उन्होंने शृंखला में कई अविस्मरणीय कविताएँ लिखी हैं। उनकी काव्य प्रतिभा का सबसे सुन्दर उदाहरण बच्चों पर केन्द्रित उनकी कविताओं का संग्रह 'कोई नया समाचार' है। यह अपनी तरह का अनोखा संग्रह है। भारतीय ज्ञानपीठ से जब यह छपा था तब इसे पढ़ते हुए मैंने यही बार-बार महसूस किया कि इन कविताओं में जो नयापन है वह दुर्लभ है। नयेपन की जरूरत को साबित करती हुई उनकी एक कविता है 'सिरजनहार'। यह कविता बताती है कि बच्चे किसी भी चीज को बार बार देखने से ऊब जाते हैं। वे जानते हैं कि इस दुनिया का गणित पहले ही गड़बड़ा गया है। जो भूल गलती है उसे सही करने की जरूरत है। जब तक पुराना किनारे नहीं होगा तब तक नये के लिए जगह नहीं बन पायेगी। इसीलिए उन्हें सब कुछ नया चाहिए। बिलकुल जीवंत। पुराने खेल खेलने से, पुरानी लोरी सुनने से, पुरानी कथा सुनाने से, पुरानी जगह घुमाने से, एक ही चाँद बार-बार दिखाने से बच्चे बार-बार रोते हैं। रोना तो उनका हथियार है, जिससे वे किसी को भी परास्त कर सकते हैं। इसलिए अनिमेष कहते हैं 'जब तक नया नहीं रचोगे / रोता रहेगा बच्चा'। यह अनुभव सामान्य है लेकिन इसे जिस तरह व्यक्त किया गया है वह बताता है कि बच्चे का रोना कोई सामान्य घटना नहीं। वह एक जिद है जो नये के लिए है। बच्चों को सब कुछ नया और बदला हुआ चाहिए।

युद्ध, हिंसा, तबाही और बर्बरता के विपरीत कवि के मन में जो दुनिया की छवि है वह सबसे अलग है। 'इस दुनिया की जो छवि है मेरे भीतर/ उसमें एक स्त्री के वक्ष की तरह/ थामे हुए हैं इसे नन्हें शिशु-हाथ'। कवि को पता है कि इसी शिशु हाथ में ये पृथ्वी सुरक्षित रह सकती है। ये बच्चे ही हैं जो अपनी जिद पर सब कुछ संभव कर सकते हैं। उनके 'जूतों के फीते बाँधने के लिए' ताकत भी झुक सकती है, क्योंकि वे किसी से नहीं डरते। बच्चे तो मासूम होते हैं। उनमे छल प्रपंच नहीं होता। इसीलिए वे अपने जैसा ही सबको समझते हैं। ये कविताएँ उम्मीद की कविताएँ भी हैं जो बताती हैं कि इस दुनिया में जब तक बच्चे हैं तब तक इसका बुरा नहीं हो सकता। बड़ों की तरह वे सब कुछ स्वीकार नहीं कर लेते। इन्हें चीजें अपने हिसाब से चाहिए। नहीं है तो वे उसे अपने लायक बनाने की कोशिश में भी लग जाते हैं।

इस दुनिया को बनाने और बचाने में जितना हाथ बच्चे का है उतना ही हाथ एक स्त्री का भी है। 'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' प्रेम रंजन अनिमेष की चर्चित कविता है। यह कविता स्त्री के व्यक्तित्व और साहस को बहुत बारीकी से रेखांकित करती है। जैसा कि शीर्षक से ही स्पस्ट है, स्त्री झाड़ू दे रही है जो कि उसका रोज का काम है। खास यह है कि वह इस बहाने हर चीज पर जमी हुई धूल को साफ कर देना

चाहती है। वह जिसे 'घर की धूल समझ कर बुहार रही है / उसमें दरअसल एक पूरी शताब्दी या समूची सहस्राब्दी की धूल है'। उसे वह बहुत सामान्य तरीके से साफ कर रही है। वह चीजों को बदलना चाहती है। पूरे परिदृश्य से वह ऊब गई है, जहाँ हर चीज पर धूल बहुत है। यह धूल समय के साथ बढ़ती जा रही है लेकिन स्त्री भी हार मानने वाली नहीं। उसकी दुनिया में धूल के लिए कोई जगह नहीं है। मशीन, टीवी, किताबें छत, अधम कोनों से होते हुए वह ताक पर बैठे देवताओं पर की धूल भी साफ कर रही है। इस बीच मकड़ियाँ उजड़ रही हैं, उनके जाले टूट रहे हैं। 'स्त्री को घर बुहारकर भी चैन नहीं / कि अब दिख रहे हैं ग्रह नक्षत्रों के बीच के झोल / एक तिपाई के ऊपर दूसरी रख कर / वह खड़ी पंजों के बल उचक कर'। यह सब देख कर कवि को भरोसा है कि –

अब कुछ होने वाला है / कोई उलटफेर /
इस पूरी व्यवस्था में कुछ भी संतुलित नहीं /
पंजों पर खड़ी उस स्त्री के अतिरिक्त /
कुछ भी नहीं रहेगा / अभी थोरी देर में सब बदल जायेगा ।

यह पूरी कविता स्त्री के बहाने धूल और झाड़ू से होते हुए चीजों को बचाने, सजाने से लेकर उसे दुरुस्त करने की जद्दोजहद में बदल गई है। स्त्री के लिए उसकी दुनिया ही सब कुछ है। इस दुनिया को सही सलामत रखने के लिए वह किसी भी हद तक जा सकती है। कवि को भी पता है कि एक स्त्री के साहस से पूरा दृश्य बदल सकता है।

हिंदी कविता में प्रेम रंजन अनिमेष का स्वर भरोसे का है। उनकी कविताएँ जिजीविषा से भरी हुई हैं। सबसे बड़ी बात उनकी चीजों को देखने की क्षमता है। उन्हें पता है कि क्या देखना है और कितना देखना है। ये कला उनकी कविताओं में दिखती है। प्लेटफार्म टिकट, पहली बार साड़ी पहनना, हस्ताक्षर, दो ईंटों का चूल्हा, माँ के साथ, मिट्टी के फल, नींव, नन्हों से नन्हीं शिकायत, अँधेरे में माचिस की तलाश, हवाई चप्पल, राह में रह जाना जैसी कविताएँ उनकी दृष्टि की सम्पन्नता और बारीकी का उदाहरण है। ये कविताएँ छोटी छोटी चीजों से बनी हैं लेकिन इनके बिना जिंदगी ठहर सकती है, यह बात कवि को पता है। उन्हें पता है कि मनुष्य की दुनिया में चीजों के साथ भावनाओं की नमी का होना भी जरूरी है। यह नहीं होगा तो मनुष्यता का सोता ही सूख जायेगा। प्रेम, दया, करुणा की भाषा के बीच की इन कविताओं में जो समय दर्ज है वह भी हमारा ही समय है। कवि ने इसे नजरों से ओझल होने से बचा लिया है। यही कारण है कि ये कविताएँ बर्बरता का प्रतिपक्ष रचती प्रतीत होती हैं। ये बताती हैं कि 'बल तो बाहर से दिखता है / भीतर जैसे खोखला है सब कुछ'।

इस भयावह समय में जबकि घुप अँधेरा फैल चुका है, दुनिया युद्ध के मुहाने पर खड़ी है, अन्न से ज्यादा बजट दुनिया बारूद पर खर्च करती है, सांप्रदायिक शक्तियाँ अधिक हिंसक हो चुकी हैं और नृशंसता चरम पर है, अखबार सहित खबरों के तमाम माध्यम अब सच का साथ छोड़ चुके हैं– ऐसे मुश्किल समय में चैन से जीना कठिन है। संदेह और आशंकाओं के बीच मनुष्य अकबकाया हुआ देख रहा है जैसे यह सब कोई स्वप्न-दृश्य हो, जबकि यह हकीकत है। समाज को रास्ता साहित्य दिखाता है। वही

बताता है कि नहीं, अभी सब कुछ गलत नहीं हुआ है। कविता वह साहस देती है जो खेल को पलटने की गुंजाईश बना दे। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में हमारे समय का अँधेरा नहीं उसका उजाला है। भले वह उजाला मद्धिम हो लेकिन उसके होने से इनकार नहीं किया जा सकता। कवि को पता है कि अंतिम समय तक सम्भावना बची रहती है– जैसे 'बोरसी में आग / आँखों में लौ / बची रहती है अंतिम समय तक'।

- संपर्क-क्रांति भवन,कृष्णा नगर ,खगरिया-८५१२०४
मोबाइल-८९८६९३३०४९

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँः बुझे बारूद की गंध नहीं, धड़कते जीवन का ताप

-राहुल राजेश

हिंदी कविता के सघन प्रदेश में कितनी ही आवाजें हैं और कितनी ही तरह की आवाजें हैं, जिन्हें अलग-अलग चीन्हना किंचित कठिन है। उनमें भी कितनी ही आवाजें हैं, जो प्रायः या सर्वथा अनसुनी रह जाती हैं। अनसुनी रह जाएँ तो कोई बात नहीं, अनसुनी कर दी जाएँ तो अफसोस की बात जरूर है। यह अफसोस इसलिए भी और अधिक पीड़ादायक है क्योंकि हिंदी कविता में आज जो दौर चल रहा है और जो दौड़ चल रही है, उसमें अपनी गर्दन उचकाकर और अपनी आवाज और-और ऊँची कर शोर करने वाले कवियों की ही चर्चा करने और उन पर ही चर्चा आयोजित-प्रायोजित करवाने का चलन चल पड़ा है! ऐसे में जो कवि चुपचाप अपना काम करते रहते हैं और अपनी कविताओं में अपने समय, अपने देश-काल को बेहद संजीदगी से दर्ज करते चलते हैं, वे गुमनाम ही रह जाएँ या जानबूझकर दरकिनार और अंततः अनदेखा कर दिये जाएँ तो अचरज नहीं! लेकिन काव्यालोचना के इस षडयंत्रकारी और अविवेकी या फिर अतिरेकी दौर में भी पाठकों का काव्य-विवेक मरा नहीं है। और इसलिए वे भलीभाँति जानते हैं कि कौन कवि है और कौन काडर! किसकी कविताओं में मानुष गंध है और किसकी कविताओं में बुझ गये बारूद की गंध! किसकी कविताओं में जीवन का महाराग है और किसकी कविताओं में बस बकवादी झाग!

ओह, लेकिन उजाला कहाँ नहीं होता? वहाँ भी, जहाँ अँधेरा काई की तरह जम जाता है! वहाँ पहुँचकर भी उजाला अँधेरे की काई को छीलता रहता है! हाँ, एक ऐसे दौर में, जब विचारधारा की बास मारती कविताएँ और क्रांति की उल्टियाँ करती कविताएँ कविता के निरभ्र आकाश को कलुषित ही नहीं, दूषित करने में भी कोई कसर नहीं छोड़ रहीं; वहाँ प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ न केवल एक सुखद बयार की तरह हैं बल्कि वे एक औषधि की तरह भी हैं, जो काव्य-कर्म और काव्यालोचना, दोनों में व्याप गई इस व्याधि का उचित उपचार भी प्रतीत होती हैं!

ऊपर जितनी बातें मैंने अभी कही हैं, वह सब कहने की ताकत मुझे प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं से ही मिली है और यही प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं ताकत है! विचारधारा की आँधी में भी अपनी जमीन पर टिके रहने की ताकत! क्रांति का यूटोपिया रचने की बजाय जमीन से जुड़े रहने और जीवन से बँधे रहने की ताकत! केवल विचारों की बैशाखी के सहारे शब्दजाल बुनने की जगह, सीधे जीवन से अर्जित अनुभवों से अपनी कविताओं को सज्ज करने की ताकत! और केवल कोरी अवधारणाओं पर शब्दारोहण करने की बजाय, स्वानुभूतियों से अपनी कविताओं को भाषित करने का साहस!

एक ही पंक्ति में कहें तो प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में 'कनिंगनेस' नहीं है, बल्कि 'इनोसेंस' है! चालाकियाँ नहीं है, एक बाल-सुलभ उत्सुकता है और निर्मलता भी! और यह निर्मलता निरुद्देश्य भी नहीं है। उसमें जीवन को, दुनिया को बहुत बारीकी

से समझने-गुनने की सहज उत्सुकता भी है और बगैर किसी शोर-शराबे या बड़बोलेपन के इस जीवन और इस दुनिया को अपने तईं कुछ बेहतर करने की सदिच्छा भी है।

प्रेम रंजन अनिमेष के कविता-संग्रह 'अँधेरे में अंताक्षरी' को पढ़ते हुए मुझे तो बरबस यही महसूस हुआ, जो कुछ मैंने ऊपर कहा। प्रेम रंजन अनिमेष यह बहुत विनम्रता से कह भी जाते हैं 'हामिद का चिमटा' शीर्षक कविता में-

'कविता मेरे लिए / तीन पैसे का चिमटा है / जिसे बचपन के मेले में /
मोल लिया था मैंने / कि जलें नहीं रोटियाँ सेंकने वाले हाथ /
कि दूसरों को दे सकूँ अपने चूल्हे की आग!'

ऊपर उद्धृत इन पंक्तियों से हमें यह स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि कवि का प्रस्थान बिंदु क्या है? और उसके काव्य-कर्म की मौलिक आकांक्षा क्या है? स्पष्ट है कि उसकी आकांक्षा कविता के नाम पर पार्टी लिटरेचर और पार्टी पंफलेट लिखना नहीं, बल्कि रोजमर्रे के जीवन को और बेहतर करना है, जीवन के राग को और मुखर करना है, मधुर करना है। इसलिए कवि अपनी कविताओं में कोई क्रांति करने का दावा नहीं करता, बल्कि उसे अपने प्रयास से समाज की पारस्परिकता को और मजबूत करना है, लोकधर्मिता को और विस्तृत करना है। यहाँ इस बात पर अवश्य गौर किया जाना चाहिए कि कोई सिर्फ नारेबाजी में ही 'साथी हाथ बढ़ाना' कहकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता है, लेकिन कवि यहाँ बहुत व्यावहारिक होकर हाथ बढ़ाता है और अपने चूल्हे की आग पड़ोस के चूल्हे तक पहुँचाता है। इससे भी ज्यादा सुखद बात यह है कि यह बात कवि ने किसी विचारधारा में दीक्षित होने के बाद नहीं सीखी थी, क्योंकि यह कर्तव्यनिष्ठा उसने बचपन में ही सीख ली थी।

वैसे जो लोग विचारधारा में दीक्षित होने का दावा करते हैं, उन लोगों को भी पारस्परिकता का यह सलीका कहाँ आया? अन्यथा उनकी कविताओं में फासिस्ट, मौत का सौदागर, हिटलर वगैरह-वगैरह जैसे चलताऊ जुमलों और क्रांति के खोखले दावों और नारों की जगह, जीवन के धड़कते बिंब न होते? बासी और उबाऊ मुहावरों की जगह, जीवन के टटके और जीवन-ऊष्मा से गमकते दृश्य न होते? स्पष्ट है, ऐसे तमाम 'ओवर-रेटेड' कवियों की भीड़ से प्रेम रंजन अनिमेष बिलकुल अलग और अलहदा हैं। क्योंकि प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में बुझ गए बारूद की गंध नहीं, बल्कि धड़कते जीवन का ताप है! लेकिन आलोचना में यह सलीका और साहस कहाँ कि वह इस बात को रेखांकित करे!

'मिट्टी के फल' से अंकुरित होकर, 'कोई नया समाचार', 'संगत' 'अँधेरे में अंताक्षरी', और 'बिन मुंडेर की छत' तक की अपनी अनवरत काव्य-यात्रा में प्रेम रंजन अनिमेष ने बिना किसी विचलन के और बिना किसी प्रलोभन के, कविता में जीवन की धड़कन और जिजीविषा को बखूबी बचाए रखा है! और, इससे भी बड़ी बात कि वे न तो जीवन से हताश हुए हैं और न ही कविता को निराश किया है। पर इस बात की सुध शायद ही कभी किसी ने कायदे से ली हो! वैसे प्रेम रंजन अनिमेष ने 'आँख आना' शीर्षक कविता में अनदेखा करने की इस व्याधि को बहुत ही सहजता से उजागर कर दिया है -

'जो रहता चुपचाप / करता जाता काम /
हमारी आदत हम उसे / कर देते नजरअंदाज!'

मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि आज हम एक ऐसे दौर की गिरफ्त में रहने को अभिशप्त हैं, जब विरोध-प्रतिरोध के नाम पर और इससे ज्यादा इसकी आड़ में कविता में सिर्फ जुमलेबाजी और बेहद चलताऊ और घिस गए मुहावरों की रेलमपेल है! और इससे भी हास्यास्पद कि क्या युवा, क्या वरिष्ठ, अधिकांश कवियों-लेखकों का विपुल लेखन कुछेक अधकचरी, अपूर्ण, अपुष्ट और एक हद तक भ्रामक अवधारणाओं से प्रेरित और संचालित हो रहा है! मसलन- 'कवि-लेखक का काम 'व्यवस्था' का विरोध करना है!' उनसे मेरा सीधा सवाल है- आप किसका विरोध करना चाहते हैं? 'व्यवस्था' का यानी 'लॉ एंड ऑर्डर' का? या फिर आपको 'व्यवस्था' और 'कुव्यवस्था' में फर्क ही नहीं मालूम?

और एक बेहद मूर्खतापूर्ण धारणा खूब प्रचारित-प्रसारित कर दी गई है- 'कविता का काम प्रतिपक्ष रचना है!' किसका प्रतिपक्ष? कैसा प्रतिपक्ष? उसी लोकतंत्र का, जो जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का ही लोकतंत्र है? ओह, आप सीधे-सीधे क्यों नहीं कहते कि हमें लोकतंत्र को मजबूत करना है! सिर्फ हमें अपने अधिकारों के प्रति ही नहीं, अपने कर्तव्यों के प्रति भी उतना ही सचेत होना है? सिर्फ संविधान-संविधान नहीं रटना है, बल्कि अपना ईमान भी मजबूत करना है? लेकिन जब सिर्फ जुमलेबाजी ही एकमात्र मकसद हो तो सीधे-सीधे सच्चाई कौन कहे?

ऐसे घटाटोप में जब किसी को सत्य और तथ्य से वाकई कुछ लेना-देना ही नहीं है और मकसद सिर्फ हंगामा खड़ा करना है, तब यह देखकर बेहद आश्वस्ति होती है कि प्रेम रंजन अनिमेष अपने मूल कर्तव्य के प्रति बिलकुल सचेत हैं कि उन्हें सच के साथ चलना है, झूठ के साथ नहीं। इसलिए वे 'अँधेरे में अंताक्षरी' शीर्षक कविता में इतनी बड़ी बात कह जाते हैं -

'कविता साहस है सच की एक रेख खींचने का ।'

प्रेम रंजन अनिमेष वाम बनाम दक्षिण के 'बाइपोलर' और 'मायोपिक' डिसकोर्स में उलझकर रह जाने में विश्वास नहीं करते। क्योंकि उनका असली उद्देश्य अँधेरे को काटना है, सिर्फ और सिर्फ बहस करना नहीं! इसीलिए वे इसी कविता में एक जगह यह भी कहते हैं कि-

'एक-दूसरे के खिलाफ नहीं / दोनों पक्ष साथ (हैं) /
मिलकर अँधेरा काटने में ।'

सचमुच 'अँधेरे में अंताक्षरी' शीर्षक कविता सिर्फ अँधेरे में अंताक्षरी करते, बिजली आने की प्रतीक्षा करते बच्चों की कविता भर नहीं है, बल्कि यह बड़ों को एक कीमती सीख देती कविता भी है कि मिलकर अँधेरा काटो, कई-कई खेमों में बँटकर नहीं! इस दृष्टिकोण से यह एक बहुत ही सांकेतिक कविता है जो हमें अँधेरे में भी मिलकर रहना सिखाती है, मिलकर एक साथ गीत गाना सिखाती है और अलग-अलग नहीं, एकजुट होकर मुश्किलों का सामना करना सिखाती है!

इसी संग्रह में 'जूता' शीर्षक कविता भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह इस दौर में

व्याप गई संवादहीनता और संवाद करने की आदिम इच्छा और तड़प को बेहद बारीकी से रेखांकित कर देती है

'नया जूता / काटता है / शुरू-शुरू में / मानो बात करना चाहता हो /
उस आदमी से जो अभी-अभी / भीतर उसके उतरा है !'

लेकिन कवि इस कविता में जूता के बहाने समाज में आदमी की हैसियत देखकर रिश्ता बनाने या निभाने की चालाकी को भी बखूबी उजागर कर देता है-

'दरअसल जूता / आदमी का बूता है
और झुककर कोई पाँव नहीं / जूता ही छूता है !'

वैसे तो इस संग्रह में कुछ और कविताएँ हैं, जिनपर ठहरकर बात की जा सकती है, जैसे- लिफ्टमैन, एक ही वस्त्र, न्याय की पोशाक, टिकोले, आँख आना आदि-आदि लेकिन यहाँ मैं 'इस तरह' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर आपसे विदा लेता हूँ, जो कवि की सच्ची प्रतिबद्धता को पुनः परिभाषित कर देती है -

'इस तरह चाहता लिखना / शब्द अपने ही स्वेद से न मिटें /
व्यक्त होना ऐसे / कि समझें सब, सबका-सा न रटें !'

- ख-2/406, रिजर्व बैंक अधिकारी आवास,
गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई-400063.
मो. 9429608159.

मानुष गंध को सहेजती कविताएँ

- श्रीकांत द्विवेदी

हम जितना आधुनिक हो रहे हैं, उतना ही अपनी जड़ों से दूर भी होते जा रहे हैं। आधुनिकता के पाश में हर आदमी जकड़ा हुआ है। इसकी जकड़ बहुत गहरी और विस्तृत है, जिसकी परिधि से बच निकलना बहुत ही दुष्कर है। इस किलेबंदी को भेदना आसान नहीं होता। धीरे-धीरे अब गाँव में भी इसकी जड़े न सिर्फ फैल रही हैं अपितु मजबूत भी हुई। त्येक व्यक्ति मजबूरी के कारण या भौतिक सुख-संसाधन की चाह में अपने जगह से पलायन को अभिशप्त है। इससे गुजरते हुए हम अपने जीवन के कई सन्दर्भों से कटते जा रहे हैं या नवीनीकरण के नाम पर उन सन्दर्भों को मनमाने ढंग से विकृत कर रहे हैं। आधुनिकता की आड़ में हम अपनी संस्कृति और जीवन मूल्यों को त्यागते जा रहे हैं। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा है। कविताएँ भी इससे अछूती नहीं रहीं। इसके प्रभाव से कविताओं की छवि भी धूमिल हुई है। इसी ओर संकेत करते हुए कवि गोरख पाण्डेय अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं - 'इस दौर में कुछ लोगों ने आधुनिकता के नाम पर कविता को आम समाज से काट दिया है और समाज में वह बदनाम सी हो गयी है। हमें कविता को फिर से समाज की कविता बनाना होगा ताकि हमारा समाज अपनी छवि अपनी कविता में देख सके।'[1] ऐसे कठिन समय में सच्चा कलमकार ही इतने आत्मविश्वास के साथ यह बात कह सकता है। वही है जो अपनी कलम से कविता और समाज दोनों की सच्ची छवि दिखा सके।

प्रेम रंजन अनिमेष अपनी कविताओं से कुछ ऐसा ही काम करते हुए नजर आते हैं। वे अपनी कविताओं से छोटी-छोटी स्मृतियों की छाँह निर्मित करते हुए व्यक्ति को उसकी जड़ों की तरफ ले जाने का प्रयास करते हैं। उनकी कविताएँ लोक और परम्परा का सुन्दर समन्वय हैं। उनमें गत और आगत तथा समकाल एवं सर्वकाल एक साथ धड़कते हैं। आज के इस दौर में जब हम नितांत स्वार्थ से प्रेरित हैं और किसी के दुःख, असुविधा या मानसिक उलझन को समझने से काफी दूर हैं, ऐसे में लघुतम को भी महत्तम मान देने वाले इस कवि की वृहत्तर, महत्तर और मनुष्यतर सोच और महत्वपूर्ण हो उठती है। यह इस बात का साक्ष्य है कि आज के इस आधुनिक समाज में उदारमना व्यक्ति भी हैं, जो दूसरे की असुविधा की चिंता कर रहे हैं। 'मनुष्यता' कविता इसका सुन्दर उदाहरण है। इस कविता में प्रेम रंजन अनिमेष बड़ा मोहक बिम्ब रचते हैं। छाता, जो वर्षा से बचाते हुए सहजमना व्यक्ति को गंतव्य तक सुरक्षित पहुँचा देता है, वह उस भीगे हुए छाते को किसी ऐसी जगह रखना चाहता है जहाँ दूसरों को असुविधा न हो। आज के समय में ऐसे दृश्य कम दिखाई पड़ते हैं।यह हमारे समय की बड़ी विडम्बना है कि प्रयोग के बाद किसी वस्तु या इनसान को बड़ी आसानी से भुला दिया जाता है या दरकिनार कर दिया जाता है। इस पर कवि का सहज स्वभाव बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। वह कोई एक स्थान चाहता है जहाँ इस्तेमाल के बाद उसको सुरक्षित रखा जा सके -

सारी सफाई सजावट के बाद / कहाँ रहे वह पोंछना / जिसने पूरे घर को पोंछा'[2]

इस यांत्रिक युग में जब हम सब किसी मशीन की तरह व्यवहार कर रहे हैं, यंत्रवत जीवन जी रहे हैं- ऐसे में कवि हर वह स्मृति बचा लेना चाहता है, जिससे वह बहुत

गहरे जुड़ा है। स्मृतियों के झरोखों से वह नवागतों को अतीत की झाँकी दिखाता है और अपने समवयस्कों को भी जीवन की जड़ों और उसके शुक्ल पक्ष की ओर जाने का एक सुखद निमंत्रण देता है। अँधेरे की ओढ़नी में जुगनुओं की तरह वह उन प्रेरणास्पद पलों की चमक टाँक देना चाहता है। आज के इस मोबाइल प्रधान परिवेश ने नवयुवकों को इससे वंचित कर रखा है। खुले परिवेश का स्थान बंद कमरों ने ले लिया है। आज का युवा उन दिनों के खेलों और प्राकृतिक संस्पर्श से काफी दूर है। ऐसे में प्रेम रंजन हमें यह एहसास दिलाते हैं कि हमारे जीवन में अपनी माटी की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण है। आज के वंचित बचपन और यौवन को प्रकृति के सुखद और मोहक रूप का वह एहसास ही नहीं मिल पा रहा है, जिसे कवि या उसके बाद की पीढ़ी ने महसूस किया। उन्हें वह संयोग ही नहीं मिला कि ऐसी स्मृतियों के सहचर हो सकें। कवि लिखता है-

वह नहीं किसी की गाँठ में / और जड़ों में बहुत कम /
मिट्टी नहीं माँजती हमें अब / और हम नहीं गढ़ते उसे /
पहली बूँदों के पड़ते / घर से उठती नहीं वह सोंधी गंध /
और काँच के ये बच्चे / नहीं जानते उसका स्वाद'[3]

आज के इस अवसरवादी समय में भी कवि के लिए जरूरी और महत्वपूर्ण है सम्बन्ध। वह प्रकृति से हो या कि मनुष्य से या फिर अन्य जीवों से। ऐसे में कवि हर वह संबंध बचा लेना चाहता है, जो उसे मनुष्यता के निकट लाता है। कन्नी काटने वाले समय में भी कवि के भीतर सारे सम्बन्धों को सहेजने की चेतना बलवती है। वह भी अब जब तथाकथित दुनियादार या सयाने अपने जाने-पहचाने लोगों से भी बस इस लिहाज से बचना चाहते हैं कि उनसे फिलहाल कोई मतलब नहीं या उनकी बातें उबाऊ लगती हैं या कि बोलने-बतियाने में समय नष्ट होगा। दुनिया की निरर्थक बातें ही होंगी। ऐसी स्थिति में आदमी है और यह तब बनती है, जब कोई सामने वाले को अपने से कमतर आँकता है और उससे बचकर निकलना चाहता। ऐसे लोगों पर चुटकियाँ लेते हुए कवि लिखता है -

अभी इतना भी / बड़ा नहीं हुआ / कि न हो इतना खयाल /
कोई मिले और आगे बढ़ जाऊं कतराकर / देखकर मुसकराकर हाथ हिलाकर /
निकल जाऊँ उसकी बातों के बीच से / रास्ता बनाकर... [4]

प्रेम रंजन अनिमेष ऐसे कवि हैं, जिनका विश्वास व्यक्ति और समाज दोनों में है। आज के संकुचित होते सामाजिक संबंधों में कवि किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं बल्कि उन सबके विषय में सोचता है जो अकेलेपन के शिकार हैं और इस स्वार्थी युग में अपने एकाकी जीवन से संघर्ष कर रहे हैं। वर्तमान समाज में - जो पूँजीवादी व्यवस्था के आगे लगभग हथियार डाल चुका है- कवि एक आशा का संचार करता हुआ दिखायी पड़ता है। वह केवल अपने बारे में नहीं सोचता बल्कि वह अपने जैसे उन तमाम व्यक्तियों के विषय में विचार करता है जो उसकी ही भाँति अपने अकेलेपन को पछाड़ने की कोशिश कर रहे हैं। कवि लिखता है -

इसलिए सोचता हूँ / कि मैं लूँगा / तो लूँगा आसमान /
जिसमें सब आ जायें / और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन...[5]

यह अकेलापन ही बंजर होने की पहचान है और जीवन में सहज प्रवाह अवरुद्ध होने की निशानी। निश्चिन्तता ठहराव को पोषित करती है। ऐसे ठहराव से कवि का चिंतित होना मानव जाति को जगाने के लिए बड़ा कदम है। मानव समाज इन चिंताओं से गुजरते हुए ही अपने विकास को निर्धारित कर सकता है। जीवन में चिंता का न होना भी उसकी कृत्रिमता का ही द्योतक होता है। चिंता होने से ही चिंतन संभव है और यह चिंतन ही हमारे विकास का मार्ग प्रशस्त करता है। जहाँ मनुष्य को हर काम बड़े सलीके से करना होता है। स्वयं को व्यक्तिगत रूप से और सांसारिक सफलताओं के हित व्यवस्थित करने की चाह व्यक्ति को उसकी नैतिक जिम्मेदारी से विमुख करती है। वह अपना स्वाभाविक रूप छिपाये हुए, मुखौटा ओढ़कर आगे बढ़ने को ही अपना विकास मान लेता है और किसी भी तरह आगे बढ़ने की होड़ चाहे-अनचाहे अपने जीवन दर्शन, परम्परिक मूल्यों, अतीत की सुखद-समृद्ध सम्बन्धों-स्मृतियों को पीछे छोड़ता जाता है। यही उसके कटते जाने की निशानी है। व्यक्ति से समाज और समाज से देश सब विरत हो रहा है। ऐसी अवस्था के लिए भवानी प्रसाद मिश्र लिखते हैं -

तुम बंजर हो जाओगे / यदि इतने व्यवस्थित ढंग से रहोगे /
यदि इतने सोच समझकर / बोलोगे चलोगे / कभी मन की नहीं कहोगे
सच को दबाकर झूठे प्रेम के गाने गाओगे /
तो मैं तुमसे कहता हूँ, तुम बंजर हो जाओगे!'[6]

कवि इस बंजर होने की स्थिति से चिंतित तो है, किन्तु बंजर होने के कारणों के साथ ही बचाव का रास्ता भी सुझाता है। वही उपाय करते हुए व्यक्ति, समाज और देश को बंजर होने से बचाया जा सकता है। कवि के समाधान को उपरोक्त पंक्तियों में सहज ही देखा जा सकता है। इसी समाधान को प्रेम रंजन अनिमेष भी कारगर मानते हुए, लोक एवं प्रकृति के माध्यम से अपनी बात कहते हैं।

लोक हमें हर स्थिति में परखने की दृष्टि प्रदान करता है। प्रेम रंजन उस लोक को गहरे तक अपने भीतर समाहित किये हुए हैं, जो इस बात का भी प्रमाण है कि वह किस सीमा तक जन और जमीन से जुड़े हैं। उतना ही गहरा जुड़ाव अपनी माटी के साथ भी है। इसी ओर संकेत करते हुए कवि केदारनाथ सिंह लिखते हैं- 'यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है। मिट्टी कोई कामचलाऊ मुहावरा नहीं, जीवन यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म है, जिसे कवि अपनी पाँचों उँगलियों अर्थात पाँचों इन्द्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है।'[7] प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ इस वाक्यांश को शब्दशः चरितार्थ करती हैं।

कवि प्रेम रंजन अनिमेष लोक व्यवहार की व्यापक समझ रखते हैं। वे जानते हैं कि लोक में मुँडेर युक्त छत का क्या महत्व है। आज की पीढ़ी इसके महत्व को जान पाने से वंचित है। उसने उन दृश्यों का कभी सामना भी नहीं किया है। जीवन के वे पक्ष उनके लिए एक अनजान, अबूझ पहेली-से बन कर रह गये हैं। अनिमेष बिना मुँडेर की छत के वे तमाम दृष्टान्त सामने रखते हैं जो आज दिखाई पड़ रहे हैं और कहीं न कहीं भीतर एक जगाते हैं-

बिना मुँडेर की छत पर / बिल्ली के बच्चे सा / सोया है सच /

आर पार - / मुझे लगता है जो / फिसल जायेगा / मेरी पुकार पर...[8]

प्रेम रंजन अनिमेष अपने कवि कर्म में लोक राग को कभी नहीं छोड़ते। इसके जरिये वे गहरी से गहरी बात भी कह जाते हैं। लोक जीवन में आज भी सहज प्रवाह विद्यमान है, जो प्रकृति से निकटता का परिचायक है। कवि इसका चुनाव इसलिए भी करता है कि वह बनावटी जीवन के समक्ष, लोक जीवन को कहीं अधिक महत्वपूर्ण मानता है।

सिल बाहर / चूल्हा बाहर / जब तक मौसम की न पड़े मार /
या कोई ना हो इस तरह लाचार / घर के आगे खुले में ही /
जागता सोता पूरा परिवार / भीतर बस / कुछ पानी कुछ पक्षी /
जीने के चंद जरूरी औजार'[9]

यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि यहाँ जीवन की सहजता और लय है, किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं। यह अनाहत जीवनधारा ही लोक का हृदय है। इसके सन्दर्भ में हितेश कुमार सिंह लिखते हैं- 'यह कवि की जीवन-दृष्टि ही है कि वह तथाकथित आधुनिकतावाद के बहाव में कभी नहीं बहा। लोक का साथ कवि ने इसलिए नहीं पकड़ा कि वह उससे मनोविलास चाहता था, बल्कि अपने जीवनानुभव से उसने यह परखा कि लोक परम्परा के बिना सार्थक जीवन संभव नहीं।'[10] प्रेम रंजन का कवि रूप इसे ही वरीयता देता है। वह कहीं भी इसको छोड़ते हुए नहीं दिखायी पड़ता।

कवि उस सहज जीवन की बात तो करता ही है साथ ही वह उस दृष्टि का भी भेद खोलता है, जो उस सहजता पर आँख गड़ाए रहती है। सिल और चूल्हे का बाहर होना सहज है, किन्तु उस पर कुदृष्टि किसकी है यह बताना बड़े साहस का काम है।यह साहस अनिमेष दिखाते हैं। वे तथाकथित उस सभ्य समाज का चरित्र उजागर करते हुए लिखते हैं -

दो ईंटों के चूल्हे पर / यह शीत भरी रात जगी है /
दो ईंटों के चूल्हे पर / शहर भर की आँख लगी है[11]

कवि ऐसे ही नहीं आमजन या सामान्यजन की बात करता। उसे लोगों की परख है। वह आम और खास का फर्क बखूबी जनता है। कवि कई प्रसंगों से अपने अनुभवों को साझा करता है। मानव पहचान के उसके अपने मानक हैं। वह अनेक वस्तुओं एवं धातुओं को परखने के तरीके से मानव पहचान की भी एक मुकम्मल दृष्टि विकसित करता हैं। कवि बताता है कि मनुष्य की सही पहचान उसकी आँखों की पुतलियों से होती है। ऐसी मान्यता भी है कि मनुष्य की आँखें सदैव सत्य को अपने भीतर छिपाये रहती हैं। कवि कहता है -

पहचानने की कोशिश करता हूँ / अपने आसपास हर कुछ / खरा खरा /
कि आदमी की पहचान कर सकूँ / आँखों की पुतलियाँ देख[12]

कवि यह मानता है कि सत्ता सदैव संयमित, संवेदनशील, निष्ठावान और विचारवान व्यक्ति के हाथ में होनी चाहिए। ऐसे ही हाथों में जनता का भविष्य सुरक्षित होता है। आने वाली पीढ़ियाँ उससे सीख ले सकेंगी। वर्तमान राजनीति कई प्रकार की विद्रूपताओं से ग्रसित है, जहाँ निर्णय दलगत और जातिगत आधार पर लिए जाते हैं। देश हित से बड़ा अपना हित है। कवि इससे भी बड़ा खतरा उनको मानता है जो देश हित के नाम

पर मसखरी करते हैं।

जो सिंहासन पर है / विदूषक मालूम होता है /
शासक की हत्या कर जो बैठ गया गद्दी पर /
आतिशबाजियों की कौंध में झिलमिलाता / बच्चों के कल का सन्नाटा[13]

यही खतरा व्यक्ति को पलायन के लिए भी मजबूर करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह अपने परिजन, गाँव और सगे संबंधियों से दूर हो जाता है- जहाँ से वापस आने का मन होते हुए भी न आने को विवश है-

अब भी उसकी पेटी में / किताब के पन्नों के बीच /
रखा हुआ है टिकट वापसी का / जिसे बीच बीच में निकालकर /
देख लेता है / एक लम्बी यात्रा पर / निकलना चाहता बहुत दिनों से...[14]

इस स्थिति के सन्दर्भ में वरिष्ठ आलोचक सेवाराम त्रिपाठी की टिप्पणी रेखांकित की जा सकती है। वे लिखते हैं- 'आधुनिक जीवन शैली एक तरह से हमारा परदेश है। यह कृत्रिमताओं का एक डरावना संसार है। इसमें जीवन की धड़कन नहीं है। कई बार हम न देश के रह पाते हैं, न विदेश के, पूरी तरह त्रिशंकु होते है।'[15]

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ बहुत ही आसानी से बहुत ही गंभीर और गहरी बात कह जाती हैं। वह अपनी कविताओं में अनावश्यक ढंग से जटिल शब्दों का प्रयोग नहीं करते। उन्होंने जनता की भाषा में जनता के भाव को व्यक्त करने की चेष्टा की है। उसमें वह बहुत सफल भी हैं। वे उसी शब्दावली का इस्तेमाल करते हैं जो सबको समझ में आती है। अनिमेष जीवन को देखते जीते उसे रचने की साध रखते हैं। जीवन ही यथार्थ और नये ढंग का अनुभव देता है। इसी अनुभव को कवि शब्दों में उतारता है -

चाहता हूँ बहुत दिनों से / जिंदगी / लखता रहूँ तुम्हें /
और लिखता रहूँ / बिना ताके कागज और कलम की ओर[16]

यहाँ कवि स्पष्ट संकेत करता है कि रचनाओं की खुराक उसे कहाँ से मिलती है। इसीलिए वह जिन्दगी की ओर आशान्वित दृष्टि से देखता रहता है। प्रेम रंजन अनिमेष आज की नब्ज को पकड़ने वाले कवि हैं। जिनकी कविताओं में जितनी चिंता लोक की है, उतनी ही समाज और देश की भी। इन कविताओं से गुजरते हुए इस बात का आभास बराबर मिलता है कि अनिमेष सहज चेतना के कवि हैं। उनकी कविताएँ लोक के रस, रूप, गंध को सहेजने वाली हैं। इस सन्दर्भ में नागार्जुन याद पड़ते हैं -

बहुत दिनों के बाद / अबकी मैंने जी भर भोगे /
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श / सब साथ-साथ इस भू पर'[17]

कवि और उसकी कविता की यह विशेषता है कि वह बड़ी कुशलता से अपनी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर लेती है। कवि ने अनेक अनछुए पहलुओं को अपनी लेखनी से जीवंत और प्राणवान किया है। कुछ ऐसे विषय भी हैं जो या तो भुला दिये जा रहे हैं या उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। कवि की ऐसी कई कविताओं को आसानी से चिन्हित किया जा सकता है, यथा- गालियाँ, झाइयाँ, मूँगफली, सिल, निब आदि अनेक कविताएँ हैं। अनिमेष की कविताओं से गुजरते हुए बरबस अपने गाँव-जवार के परिवेश, संस्कार, रहन-सहन, बोली-बानी आदि का स्मरण हो आता है। कवि की यह

विशेषता उसे कई कवि-पूर्वजों की अगली कड़ी के रूप में जोड़ती है। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ हमारे परिवेश, समाज और देश की उन कई चीजों तक ले जाती हैं, जो अब केन्द्रीय पटल से लगभग नदारद हैं। मगर इसके बावजूद वे संसार को चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर कर रही हैं। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में न सिर्फ सम्बन्धों समवेदनाओं व स्मृतियों की धरोहर है, वरन अपने समय और समाज का यथार्थ भी है। इस लिहाज से यह कहना गलत न होगा कि, लोकजीवन और लोकभाव को पुनर्रचित करता है यह कवि और उसकी कविताएँ।

सन्दर्भ :

1. लोक चेतना वार्ता- सं.-गोपाल प्रधान एवं रविरंजन, अंक 5-6, जुलाई 2017, पृ. -186
2. अनिमेष, प्रेम रंजन- बिना मुँडेर की छत, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, 2017, पृ.16
3. वही, पृ.-20
4. वही, पृ.-65
5. अनिमेष, प्रेम रंजन - मिट्टी का फल, प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली, 2001, पृ.-13
6. मिश्र, भवानी प्रसाद - गाँधी पंचशती, पृ.-265
7. अनिमेष, प्रेम रंजन - मिट्टी का फल, प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली, संस्करण-2001, पृ.-फ्लैप कवर
8. अनिमेष, प्रेम रंजन - बिना मुँडेर की छत, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, संस्करण- 2017, पृ.-143
9. वही, पृ.-96
10. वागर्थ - एकांत श्रीवास्तव, अंक-260, मार्च- 2017, पृ.49
11. अनिमेष, प्रेम रंजन - मिट्टी का फल, प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली संस्करण-2001, पृ.-88
12. वही, पृ.-18
13. अनिमेष, प्रेम रंजन - बिना मुँडेर की छत, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली, संस्करण-2017, पृ.-108
14. वही, पृ-157
15. वागर्थ - शम्भूनाथ, अंक 323, अक्टूबर 2022, पृ.-90
16. अनिमेष, प्रेम रंजन - मिट्टी का फल, प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली, संस्करण-2001, पृ.-125
17. जोशी, राजेश- सं. - नागार्जुन रचना संचयन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली संस्करण-2017, पृ.-31

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर - 712202.

मनुष्यता की महानता के पक्ष में : प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं पर कुछ नोट्स

- अंचित

'कैसे आना हुआ?
पूछता है फूल तितली से
कैसे आना हुआ?'

कविता का सम्भव होना किसी एक प्रकार से नहीं होता- और यह भी तय बात है कि किसी सजग कवि की निर्मिति परंपरा और पूर्ववर्ती कवियों से संवाद के बिना सम्भव नहीं। हर नये कवि को निष्ठा से उन सभी कवियों का अध्ययन करना होता है, जिनके लोहे से उसकी अपनी धार बनी है। यह भी सत्य है कि यह अध्ययन जीवन पर्यंत चलता है। आप अपने से पहले के कवियों की कविताओं से तो सीखते ही हैं- उनकी रचनाशीलता और रचना-प्रक्रिया से भी बहुत कुछ हासिल होता है।

हिंदी कविता के संदर्भ में, और बिहार तथा उसमें भी पटना से सम्बंधित स्थानिकता के संदर्भ में, सिर्फ.इस लिहाज से भी प्रेम रंजन अनिमेष वह महत्वपूर्ण कवि हैं, जिनके अध्ययन के बिना किसी नये कवि के लिए इन दोनों संदर्भों में एक स्पष्ट सोच बना पाना मुमकिन नहीं है। इसलिए सबसे पहले यह कहना चाहिए कि अनिमेष उस संवेदना के हिमायती हैं जो अब मनुष्यता से छीन ली गयी है। पूँजीवादी मूल्यों से पटी हुई ज़िंदगी, एक अंधी रेस में भागते लोग और कई बार तो रुकना चाहने पर भी न रुक पाना- ऐसे में अपने संघर्षों के रहते दूसरों के लिए एक मिनट ठहर पाना या इसकी इच्छा करना ही शायद कवि की निर्मिति का बीज है। 'ठिठकना' दूसरे के पुकारने पर एक पल रुकने को कहते हैं। कवि के पहले संग्रह 'मिट्टी के फल' की यह कविता महानगरीय स्थूलताओं के बीच एक सूक्ष्म संवेदन का द्योतक है -

'फिर भी चलते चलते / ठिठकूँगा / एक पल के लिए /
कि चौबीस घंटे में अब / इसी एक मिनट में / बची है ज़िंदगी'

ज़िंदगी बचाने के सजग आग्रह से जुड़ा यह विचार कि छोटे-छोटे बदलाव और छोटे-छोटे कदम से दुनिया बेहतरी की ओर बढ़ेगी, अनिमेष की कविताओं को वर्तमान हिंदी कविता परिदृश्य में अलग पहचान देता है। यहाँ एक आम तौर पर न मिलने वाली कोमलता है, और एक ऐसी अंतरंगता जो बाह्य से अंतर्जगत तक कवि ने रची है और जिसके सहारे वह दुनिया बदलना चाहता है। फिर येट्स की पंक्ति- ktread softly because you tread on my dreams! जैसा भाव बना रहता है।

यह भी अद्भुत है कि अभी जहाँ हर तरफ स्थूल आग्रह और क्रूर बड़बोलेपन की बहुतायत है, एक सुबह दफ़्तर जाते हुए किसी को रुक कर समय बता देने भर का इशारा उत्तर आधुनिक विभाजकों से ऊपर मनुष्यता की महानता और उसके एक होने को पुनर्स्थापित करता है। ध्यान रहे कि यह स्थापन किसी आदर्श अतीत की कल्पना से निर्देशित नहीं हो रहा, बल्कि उसकी जटिलताओं को संकेतित और रेखांकित करते हुए है। नई दुनिया की कल्पना कवि के लिए कहीं से आदर्श नहीं है, बल्कि कशमकश से

भरी है और अधूरी भी। लेकिन निर्माण तत्पर है और अचेत नहीं है- मनुष्यता में उसका भरोसा बना हुआ है और वहाँ से भी अपने कारक लेता है, जहाँ पारम्परिक ढंग से सत्ता-बोध होता है। यही द्वन्द्व तो अच्छी कविता के मूल में होता है-

'सिपाही ने बहुत दिनों से बाँधा नहीं था / किसी बच्चे के जूते का फीता /
सो देर लगी उसे.../ किसी बच्चे की तरह / चाहता हूँ मैं /
ताकत झुके तो इस तरह / रास्ता रुके तो इस तरह'

यही कवि का पक्ष है जो बार-बार अनेक कविताओं में विभिन्न रूपों से प्रकट होता है, बिना किसी शोर के। कवि की उम्मीदों के साथ जितने भी आग्रह हैं, सब नए से हैं और नए के प्रति भी। वह लगातार नवोन्मुख है और इस विचार से भरा हुआ कि नयी नस्लें जो दुनिया देखेंगी, उसमें भी उन दुश्चक्रों के उलझाव होंगे जो पुराने हैं और जिनसे शोषण का तंत्र पैदा होता है तथा जिसका विरोध करना ही कविता का काम है। फिर यह भी कि रचनात्मक संवेदना उन स्मृतियों को भी पकड़े, जिनकी रोशनी में बहुत कुछ संचित है वर्तमान और भविष्य के लिए - 'छूटती नहीं / पहली गली / जीवन के मोड़ों पर / बार बार / करते उसे पार...'

अनिमेष की कविता को समझने के लिए उनके 'माइक्रो विजन' को समग्रता में आत्मसात करना पड़ता है, जो उनकी कविताओं में हर तरफ व्याप्त और अनुस्यूत है। पूर्णता इसी दृष्टि में आती है और तब इन कविताओं का धैर्य समझ में आता है तथा यह बात भी कि असाधारण कुछ अलग से पैदा नहीं होता, वह रोजमर्रा की अतिसाधारणता से ही बनता है- उसमें वैसे ही छिपा रहता है, जैसे एक पूरा संसार मनुष्य जाति से छिपा हुआ है, जैसे मोती खोजने के लिए नदी के तल तक जाना होता है।

मनुष्यता की जिस महानता के पक्ष में प्रत्येक कविता पंक्तिबद्ध खड़ी है, उसी महानता का एक आयाम, मानव जीवन की लघुता और उसमें निहित लक्ष्यों से भी परिलक्षित होता है। इस महानता के पक्ष में अपना कर्तव्य क्या होगा, इस प्रश्न का अन्वेषण और उसकी व्यावहारिकता, दोनों का संधान आवश्यक है। यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर हर पीढ़ी के कवि को खोजना होता है, हर लोक और काल में तलाश करना पड़ता है उसे।

बौद्ध और जैन दर्शनों में कई जगह देह की सीमा और उसके उद्देश्य बार-बार विचारवस्तु बनते हैं। वहाँ लेना नहीं है, एक लौकिक-वृहत के प्रति आस्था रखते हुए, बल्कि निःस्वार्थ न्योछावर करना है, नख से शिख तक, देह का पोर पोर! यह दर्शन इस बात को भी प्रतिपादित करता है कि मनुष्य का बाह्यावरण नहीं, अपितु उसकी अंतश्चेतना अर्थात मनुष्यता महत्वपूर्ण है। ऐसा ही उदात्त भाव अनिमेष की कविताओं में है, जिसे 'बिना मुँडेर की छत' संग्रह की कविता 'नारियल' में महसूस किया जा सकता है -

'कुछ भी जाया नहीं हुआ / सब काम आया चाम से अस्थियों तक /
इससे अधिक क्या होगा किसी का / जीना भला सार्थक!'

- मोबाइलः 70916 74623

प्रेमरंजन अनिमेष की कविताएँ: दैनंदिन बदलावों का लेखा

-डॉ. ऋषिकेश मिश्र

समकालीन कविता का आरंभ तो 1975 से होता है, लेकिन इक्कीसवीं शताब्दी में समकालीन कविता का जो परिवेश है, वह बीसवीं शताब्दी के अंतिम पच्चीस वर्षों से थोड़ा भिन्न है। इक्कीसवीं शताब्दी के पूर्व जो समकालीन कविता है, उसमें एक छोर पर आपातकाल का दंश है, तो दूसरी ओर सूचना-क्रांति का विस्फोट है, तो तीसरी ओर भूमंडलीकरण, उदारीकरण और पश्चिमीकरण जैसे जिन्नात भी हैं। रोते-बिलखते जिनके गुण एवं दोषों को इक्कीसवीं शताब्दी का पहला दशक समाप्त होते-होते कमोबेश हमने अपना लिया। इस अपनाने के पीछे संभवतः यह भय भी था कि यदि कहीं हमने विश्वग्राम का विरोध किया तो विश्व-विकास की धारा में हम पिछड़ जाएँगे। पश्चिम के आचार-विचार, संस्कार और संस्कृति के घटाटोप ने हमारी भाषा, पहचान, संस्कृति एवं मूल्यों पर भीषण तुषारपात किया। तथापि आज भी पश्चिम के इन पदबंधों को लेकर हमारी स्थिति बड़ी द्वंद्वपरक है। न तो उसे हम पूरी तरह अपना पा रहे हैं और न अपना भव्य एवं स्वर्णिम छोड़ पा रहे हैं। हाँलाँकि हमारा अपना जो कुछ भी भारतीय था, वह कहीं न कहीं हमारी मूठ से बेतरह छीज रहा है। इक्कीसवीं शताब्दी के समकालीन कवियों ने इन छीजते मूल्यों पर अपनी गहन दृष्टि डाली है। ऐसे कवियों में जिन कवियों ने अपनी उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज कराई है, उनमें प्रेमरंजन अनिमेष का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है।

अनिमेष जी की कविताएँ समकालीन समय को अपनी तरह से रचती हैं। कविता का गढ़न उनका अपना है। इस गढ़न के लिए औजार उनके अपने और औरों से अलग हैं, जिससे वे अपनी खुली आँखों से समाज का हर कोना-अँतरा झाँक आते हैं। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु, समाज के प्रत्येक जीव एवं हर स्तर के मनुष्य से हम कुछ न कुछ सीखते हैं। यह सीख हमें आंदोलित करती है। हमारे यत्र-तत्र-सर्वत्र ज्ञान का अंबार है। रचनाकार इन्हीं से अपनी कविता की जमीन तैयार करता है। रचनाकार की सूक्ष्म दृष्टि इस अंबार में से अपने मतलब का विषय ढूँढ़ लेती है। बस रचनाकार की दृष्टि सुलझी हुई, चिंतनपरक, तार्किक, वैज्ञानिक, संवेदनशील और पूर्वाग्रह से मुक्त होनी चाहिए। प्रेमरंजन की कविता में बढ़ई, लोहार, कुली, धुनिया सब हैं। उन्होंने सबसे कुछ न कुछ सीखा है। वे अपनी कविता के लिए अपने आस-पास से जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, जिनसे उन्होंने कविता का हुनर सीखा है, जिन्होंने उनके काव्य सृजन के लिए संवेदना की जमीन तैयार की उसके ऋण को वे पूरी विनम्रता के साथ स्वीकार करते हैं:

जिन-जिनके ये हुनर / सबका आदर / सबकी बाकी है गुरु दक्षिणा /
सबसे सीखा आँख बचाकर / चरवाहों के चैन और हाटवालों की हड़बड़ी के बीच / सोचता हूँ छू सकूँ जीवन को जितनी कोरों से / और फिर यह चाह भर नहीं /
यही शर्त / जिंदा रहने की / इत्ते से वक़्त और बित्ते से आकाश में /
मारने या मरने के लिए काफी है / एक चोट एक धार /

जीने के लिए चाहिए सारे के सारे औजार ![1]

देखा जाए तो किसी भी काल के कवि की एक ही मंशा होती है, समाज की अवस्थिति जैसी भी है वह और स्वस्थ एवं सुगढ़ हो जाए। हाँ, औजार उसके अपने होते हैं। उसकी दृष्टि वहाँ पहुँचती है, जहाँ और लोग चूक गए होते हैं। यहीं कवि अपने एवं औरों के बीच एक सीमा रेखा खींचता है। यही उसकी रचनात्मकता है, मौलिकता है। यही साहित्य की जनपक्षधरता भी है। अनिमेष की दृष्टि में कविताः

कविता मेरे लिए / तीन पैसे का चिमटा है / जिसे मोल लिया था मैंने /
बचपन के मेले में / कि जलें नहीं रोटियाँ सेंकने वाले हाथ /
कि दूसरों को दे सकूँ अपने चूल्हे की आग ! [2]

आज के बदलते हुए परिवेश में मनुष्य अपने से बाहर जाकर सोच ही नहीं पा रहा है। बस उसका अस्तित्व न भीगे, उसकी अस्मिता पर किसी तरह की आँच न आए। अन्य संसारी लोगों के कष्टों से उसे कोई लेना-देना नहीं। शहर में सभी परस्पर अजनबी हैं। सभी जरूरत के साथी हैं। इस स्वार्थपरता ने मनुष्य को नितांत एकाकी बना दिया है। हमें इस एकाकीपन को समाप्त करना है। रचनाकार की दृष्टि विराट होती है। वह तो एक ऐसा आसमान चाहता है, जिसके नीचे आकर सभी सुरक्षित हो जाएँः

इस शहर के लोगों के पास जो छाता है / उसमें कोई एक ही आता है /
इसलिए / सोचता हूँ / मैं लूँगा / तो लूँगा आसमान / कि जिसमें सब आ जाएँ /
और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन ![3]

आज हमारे पास किसी के लिए भी समय नहीं है। हर बात पर हम कहते हैं 'एक मिनट' पर इस एक मिनट के दौरान बहुत पिछड़ जाने का भय हमारे भीतर समाया होता है। इसी भय ने हमारे ठहराव को समाप्त कर दिया है। हमारे जीवन से स्थिरबुद्धि का लोप हो गया है। अब किसी का हालचाल पूछने के लिए रुकना, किसी अजनबी को राह बताना या किसी वृद्ध को सड़क पार कराना बेमतलब और बेमानी है। अब हम न एक मिनट के लिए भी न रुकना चाहते हैं और न किसी को रोकना। लेकिन हम भूल जाते हैं कि इसी एक मिनट में ही मनुष्य होने का अर्थ छिपा हुआ हैः

एक मिनट के लिए / किसी का हाल पूछने रुकूँगा / और बारिश में घिर जाऊँगा /
एक मिनट / राह बताने लगूँगा अजनबी को / और गाड़ी छूट जाएगी /
एक मिनट थमकर / एक वृद्ध को सड़क पार कराऊँगा /
और काम पर कट चुकी होगी मेरी हाजिरी / फिर भी चलते-चलते /
ठिठकूँगा / एक पल के लिए / कि चौबीसो घंटे में अब /
इसी एक मिनट में / बची है जिंदगी [4]

दरअसल यह समय ही रिश्तों की छीज का है। गैर तो छोड़िए, खून के रिश्तों को सहेजने के लिए भी हमारे पास समय नहीं है। बहनें अपने भाई पर सबसे अधिक विश्वास करती हैं। उसे विश्वास है कि किसी भी परिस्थिति में उसका भाई उसके साथ खड़ा रहेगा। लेकिन अब जब बहन अपने ससुराल चली गई तब अपनी दुनिया में रमने के बाद बहन से मिलने के लिए भाई के पास समय नहीं है। आज संबंधों के रक्षासूत्र ढीले पड़ गए हैं। यद्यपि बहन का घर भाई के रास्ते में ही हैः

रास्ते में पड़ता / घर बहन का / पर गुजर जाते / अक्सर उधर से /
इसी तरह / चुपचाप / मिले बिना / बगैर खबर किए / अब / अपना /
या दुनिया का / कोई काम देखते / बहनें / हमारे रास्ते में / नहीं आतीं...! [5]

हमारी परंपरा अतिथि देवो भव की परंपरा रही है। हम अतिथियों की राह तकते थे। उनके न आने पर उनसे शिकायत करते थे। अब न तो निस्स्वार्थ भाव से किसी का किसी के यहाँ आना-जाना होता है और न कहीं कोई पलक-पाँवड़े बिछाए बैठा है। जब तक हमारा प्रवेश विश्वग्राम में नहीं हुआ था तब तक हम रिश्तों को सँभालते थे। सुख-दुख में सहभागी होते थे। अब किसी के आने पर मेजबान आने का कारण 'कैसे हुआ आना' पूछ बैठता है। बस 'ऐसे ही', 'चला आया' कहने मात्र से छुटकारा नहीं मिलता। अवश्य आने के पीछे कोई न कोई स्वार्थ है। मेजबान इसी उधेड़बुन में रहता है। आज की तारीख में बिना बताए किसी के यहाँ जाना असभ्यता का लक्षण माना जाता हैः

सोचता रहा था कई दिनों से / हवाओं को आवाज दूँ ऐसे ही /
बैठूँ लहरों के करीब ऐसे ही / अकारण मिलूँ किसी से आधी रात /
जाऊँ किसी के घर ऐसे ही / मगर पूछे जाने पर 'आना हुआ कैसे' /
कह दूँ 'ऐसे ही' / तो होगा यह सबसे खतरनाक जवाब / कैसे हुआ आना /
पूछता हूँ हर साँस से / हर मुस्कान से / हर धूल सनी सोच से /
उसके पहले दूध-दाँत से / उसके पहले बोल से / कैसे आना हुआ–पूछता /
दुनिया के नवागंतुक से / झेंपता वह झेंपता मैं![6]

भारतीय संस्कृति प्रश्नों की संस्कृति रही है। वैचारिक स्वतंत्रता रही है। आज दिक्कत यह है कि सवाल तो हैं, किंतु उत्तर नदारद हैं। विडंबना यह है कि इन प्रश्नों के उत्तरदायी भी हम ही हैं। प्रश्न पूछें तो किससे? प्रकृति ने भारतवर्ष को बहुविध संपन्न किया है। अतीत में इसी प्राकृतिक एवं भौगोलिक संपन्नता के कारण हमें किसी देश में जाना नहीं पड़ा। किसी देश पर चढ़ाई नहीं करनी पड़ी। आज सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरण संकट की है। जल, जंगल जमीन और जानवर के अस्तित्व पर खतरा मँडरा रहा हैः

क्या सच में एक दिन / स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल में /
और खाली बाँस के खोल में साँस की हवा /
क्या बस जुगनुओं में रह जाएगी सच की लौ /
और उर्वर मिट्टी केंचुओं के बिल में /
श्यामपट इतना बड़ा कोरा फैला हुआ / और जरा-सी खड़िया नहीं होगी /
'छुट्टी' लिखने के लिए भी / क्या सच में एक दिन /
झींगुरों के पास ही रह जाएगी पुकार / और चिड़ियों को भी /
पता नहीं चलेगा सुबह होने का...?[7]

इक्कीसवीं सदी के इस कवि ने नए उपमान गढ़े हैं। झाड़ू का काम है गंदगी को बुहारना। आज गंदगी कुछ इस तरह फैली है कि हमें नजर ही नहीं आती। गंदगी भी लक-दक करते कुछ इस रूप में हमारे सामने आती है कि उसे अपने से दूर करना तो दूर की बात, हम उसे गले लगाने के लिए उत्सुक दिखाई देते हैं। इक्कीसवीं सदी की पहली सुबह, कवि झाड़ू लगाती हुई स्त्री को देखता है। जिस नई शताब्दी की सुबह वह

अपना घर बुहार रही है, उसके पीछे सहस्राब्दी की धूल है। भौतिक सुख-सुविधाओं का अंबार है। इक्का-दुक्का किताबें भी हैं, जो धूल से सनी हुई हैं। गंदगी बौद्धिक है, इसलिए डिजिटल युग में किताबों के लिए जगह कहाँ। आज की व्यवस्था में सर्वत्र एक होड़ मची है, जो दूसरों को पछाड़ सकता है वह विकास (?) की राह में आगे होगा, फिर चाहे कितनी भी गंदगी ओढ़नी पड़े, कोई फर्क नहीं पड़ताः

जिसे वह घर की धूल समझकर / बुहार रही उसमें दरअसल है /
एक पूरी शताब्दी / या समूची सहस्राब्दी की धूल / जमीन के ऊपर /
खाली छत ही नहीं कई तहें हैं / वह सबको साफ कर रही बारी-बारी.../
इस पूरी व्यवस्था में कुछ भी संतुलित नहीं /
पंजों पर खड़ी उस स्त्री के अतिरिक्त / कुछ भी यही नहीं रहेगा /
अभी थोड़ी देर में / बदल जाएगा सब...। [8]

हिंदी भाषी प्रदेश विशेषकर पूर्वांचल में गालियों की एक परंपरा रही है। विवाहादि सुखद अवसर बिना गालियों के संपन्न नहीं होते थे। अब भी कहीं-कहीं गालियाँ दी जाती हैं। कहते हैं गालियाँ असभ्यता की निशानी हैं, लेकिन इस असभ्यता में एक मिठास थी। प्रेम था। इस तथाकथित सभ्य समाज में हम अनुभव कर सकते हैं कि सभ्यता का भी अपना दंश है। आज हम सभ्य और खाऊ लोगों से अधिक परेशान हैं। यहाँ वीरेन डंगवाल की एक कविता याद आ रही हैः

खाते हुए मुँह से चपचप की आवाज होती है? / कोई गम नहीं /
वे जो मानते हैं बेआवाज जबड़े को सभ्यता /
दुनिया के सबसे खतरनाक खाऊ लोग हैं।[9]

गालियों का भी अपना एक शास्त्र है। वे हमें आदिम प्रवृत्तियों की ओर ले जाती हैं। आभिजात्य समाज ने अपनी रचनाओं से गालियों को बेदखल कर दिया। गालियों में हमारे मानवीय रिश्ते तो थे ही, मानवेतर आपसदारी भी थी। गालियाँ निरीह लोगों का हथियार थीं। सभ्य क्या हुए हमसे हमारी गालियाँ भी छिन गईं। ठेठपन छिन गयाः

भाषाविज्ञानी नहीं मैं / लेकिन जाने क्यों लगता है /
किसी जुबान को धार के लिए / लौटना होगा अपनी गालियों के पास /
और हालाँकि समाजशास्त्र उतना ही / जानता हूँ जितना पेड़ की जड़ें /
मगर यह भी लगता है / कि जब कहीं नहीं रहेंगे /
तो गालियों में ही बचे रहेंगे रिश्ते / क्या यह सच नहीं /
कि आत्मीयता का सबसे मधुर और जीवंत छंद /
मंडप की थाल पर / दी गई गालियों में है![10]

साहित्य की प्रतिबद्धता और सार्थकता अपनी सर्जनात्मक आपत्ति दर्ज कराने में है। यह प्रतिबद्धता बतौर नागरिक भी होनी चाहिए। दुर्भाग्य है कि हमारी व्यवस्था में एक सड़ांध फैली है, लेकिन उस सड़ांध से किसी को कोई आपत्ति नहीं। एक आर्थिक असमानता है। अवसर सीमित लोगों के पास हैं। काम से अधिक बेकार लोग घूम रहे हैं। घर के अभाव और कड़वाहट के पीछे घर के बाहर की शक्तियाँ हैं। अब कोई राजा नहीं है, जो वेश बदलकर प्रजा का हाल ले। जिन्हें अवसर मिला है वे मिल-बाँटकर

खा रहे हैं। प्रजा रोती रहे, अपनी बला से। अपराधी विक्ट्री का साइन लिए जेल से बाहर निकलता हैं। उसके पीछे अनुगतों का एक हुजूम होता है। जिम्मेदारी कोई लेने के लिए तैयार नहीं है, सभी एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते हैं। एक-दूसरे को अधम बताते हैं। जनता को कर्तव्य तो बताए जाते हैं, लेकिन उन्हें अधिकारों से वंचित रखा जाता है। प्रेमरंजन की कविता 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' पूरे समकालीन समय को बेपरदा कर देती हैः

नहीं कोई आपत्ति / न्यायालय हो जाएँ न्याय के नीलामघर /
संसद बेमकसद बहसों का कोशागार /
आदमी चलता-फिरता संग्रहालय ऐतिहासिक भूलों का /
नहीं, कोई आपत्ति नहीं / भूखे तथाकथित सम्मान पकाएँ /
शोहदों को जनप्रतिनिधि बनाएँ /
देश विश्व के मानचित्र पर उभरे सबसे बड़ा बाजार कहाए /
प्यार इतना सहज कि चलते-फिरते किसी के साथ किया जाए /
और खुशी इस तरह सुलभ कि उसे खोजते /
चिकने-चुपड़े अदाकार झोंपड़ों तक आएँ /
धर्म ऐसा सायादार कि उसकी आड़ में किसी पर किया जा सके प्रहार /
गाड़ियाँ इतनी विलंबित कि प्लेटफॉर्म पर इंतजार हो सामूहिक त्योहार।[11]

कवि युगद्रष्टा होने के साथ-साथ भविष्यद्रष्टा भी होता है, इसलिए वह निराश नहीं होता। उसे मालूम है कि एक दिन स्थितियाँ अवश्य बदलेंगी। संघर्ष होगा। सोच बदलेगा। सभी बाँहें समान होंगी। इस बदलाव में कविता अपनी महत्तर भूमिका निभाएगी-

एक दिन / हाहाकार को सोख लेगा संगीत / चुप्पी से निकलेगी भाषा /
पीड़ा से फूटेगी किलक / एक दिन / सच जितना / होगा सपना /
अँधेरे से बड़ी आँखें / तराजू के दोनों पलड़े / होंगे एक बराबर /
इस बाँह के बराबर वह बाँह। [12]

बहुत कुछ बदला है, बदल रहा है। कुछ वरेण्य, तो कुछ त्याज्य। जो हमारे लिए त्याज्य है उसमें हो रही बढ़ोत्तरी किसी भी दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं है। लेकिन प्रेमरंजन का कवि निराश नहीं है। उसका भरोसा टूटा नहीं है, न वह पूरी तरह निराश ही है। साहित्यकार निराश होता भी नहीं, क्योंकि वह जानता है कि समय का चक्र बदलेगा। जो नौनिहाल हैं उन्हें आवाज देने की आवश्यकता है, उन्हें प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। उन्हें बताने कि आवश्यकता है कि समाज में सत्य, शिव और सुंदर से बढ़कर कुछ नहीं है। फिर से सुख का नवल प्रभात होगा। बिना भरोसे के कुछ भी तो नहीं हो सकता। हाँ, जो पूरी तरह से संसार के साँचे में ढल गए हैं, उनसे कवि को कोई उम्मीद नहींः

दस्तक दो / तो सबसे छोटे को / दो आवाज / भले ही वह शिशु हो /
चलना नहीं जानता हो अभी / जो छोटे हैं / उन्हीं से /
सबसे अधिक उम्मीद है / दरवाजों के / खुलने की.../

इस तरह हम देख सकते हैं कि कवि प्रेमरंजन अनिमेष समाज में हो रहे बदलावों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ पकड़ते हैं। दरअसल आज जिस तरह पारस्परिक गर्मजोशी

खत्म हुई है वह भारतीय संस्कृति और मानवता के बेहद खतरनाक है। माँ, पिता को लेकर जैसे चित्र कवि ने अपनी कविता में खींचे हैं वैसे चित्र समकालीन कविता में दुर्लभ हैं। उत्तर आधुनिक और मशीनी युग में जिस तरह से बच्चे अपना बचपन खो रहे हैं वह चिंताजनक है। अपनी इसी संवेदनशीलता के कारण कवि सामाजिक दृष्टि से अत्यंत उर्वर मिट्टीवाली जमीन तैयार करता है। छोटी से छोटी चीज को भी अपनी कविता में लाकर कवि अनिमेष उसे इस तरह से प्रासंगिक बना देते हैं कि वह अपने आप में अनूठा है। यह समाज के प्रति उनकी विषाद और गहन दृष्टि के कारण संभव है। एक बात ध्यान देने की है कि कवि बदलावों का लेखा अवश्य प्रस्तुत करता है, परंतु वह आश्वस्त है कि जो धर्म, समाज, साहित्य अथवा राजनीति में बेठीक है वह एक दिन अवश्य ठीक होगा।

संदर्भ :

1. साज-बाज, प्रेमरंजन अनिमेष, मिट्टी के फल, पृष्ठ-15
2. हामिद का चिमटा, प्रेमरंजन अनिमेष, https://www.hindwi.org/poets/prem-ranjan-animesh/kavita
3. छाता, प्रेमरंजन अनिमेष, मिट्टी के फल, पृष्ठ 13
4. ठिठकना, प्रेमरंजन अनिमेष, मिट्टी के फल, पृष्ठ-52
5. रास्ते में घर, प्रेमरंजन अनिमेष, https://www.hindwi.org/poets/prem-ranjan-animesh/kavita
6. कैसे आना हुआ? प्रेमरंजन अनिमेष, मिट्टी के फल, पृष्ठ-10
7. बच्चे की स्लेट पर लिखे कुछ सवाल, प्रेमरंजन अनिमेष, मिट्टी के फल, पृष्ठ 9
8. इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री, प्रेमरंजन अनिमेष उर्वर प्रदेश (पृष्ठ 288) संपादक, अन्विता अब्बी, राजकमल प्रकाशन, संस्करण - 2010
9. पी.टी.ऊषा, इसी दुनिया में, कविता वीरेन, पृष्ठ-81
10. गालियाँ, प्रेमरंजन अनिमेष, मिट्टी के फल, पृष्ठ-37
11. अनापत्ति प्रमाणपत्र, प्रेमरंजन अनिमेष, https://www.hindwi.org/poets/prem-ranjan-animesh/kavita
12. एक दिन, प्रेमरंजन अनिमेष, https://www.hindwi.org/poets/prem-ranjan-animesh/kavita
13. भरोसा, प्रेमरंजन अनिमेष, कोई नया समाचार, पृष्ठ-10

-हिंदी विभागाध्यक्ष,
साकेत कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय
काटेमानिवली, कल्याण(पूर्व), ठाणे, महाराष्ट्र-421306

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ : मनन एवं मूल्यांकन

- डॉ. रवि कुमार गोंड़

कवि, कथाकार प्रेम रंजन अनिमेष का जन्म 1968 में आरा, भोजपुर, बिहार में हुआ था। उनकी विद्यालय स्तर तक की शिक्षा आरा के जैन स्कूल में हुई थी। उसके बाद उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य में स्नातकोत्तर की डिग्री पूरी की। उन्हें वर्ष 2004 का प्रतिष्ठित 'भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें कई सम्मानों से सम्मानित किया जा चुका है। बचपन से ही उनका मन साहित्य और संगीत में रहा है और उन्होंने लगभग सभी विधाओं में लेखन कार्य किया है जैसे - कविता संग्रह : कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र, प्रश्नकाल शून्यकाल, अवगुण सूत्र, नींद में नाच, मिट्टी के फल, माँ के साथ, 'अच्छे आदमी की कविताएँ' एवं 'अमराई', कोई नया समाचार, संगत, अँधेरे में अंताक्षरी, बिना मुँडेर की छत आदि। उनके द्वारा कई कहानी संग्रह भी लिखे गये हैं जैसे- 'एक स्वप्निल प्रेमकथा', 'पानी पानी' तथा 'माई रे...', 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'एक मधुर सपना'। उपन्यासकार प्रेम रंजन अनिमेष ने स्त्री के संघर्ष को उकेरने का कार्य अपने उपन्यासों में किया है और समाज को टटोलने का कार्य बखूबी किया है। उनके द्वारा लिखे हुए उपन्यास इस प्रकार से हैं - 'स्त्रीगाथा', 'परदे की दुनिया', 'नौशीन', 'दि हिंदी टीचर', 'द एविडेंस'। वह एक कुशल बाल-साहित्य लेखक भी हैं। उन्होंने बालमन के मनोविज्ञान को अपनी रचनधर्मिता में शामिल किया है। उनके द्वारा लिखी हुई बाल पुस्तक है- 'कुछ दाने कुछ तिनके', 'कच्ची अमियाँ पकी निंबोलियाँ', 'माँ का जन्मदिन', 'आसमान का सपना', 'मीठी नदी का पानी'।

कवि प्रेम रंजन अनिमेष समसामयिक लेखन परम्परा में विशिष्ट स्थान रखते हैं। आज लेखन के क्षेत्र में संस्मरण लेखन का कार्य बाधित हो चुका है, जिसकी भरपाई करने का कार्य प्रेम रंजन अनिमेष ने बखूबी किया है। उनके द्वारा लिखे गये संस्मरण बड़े ही प्रभावी हैं जैसे- 'अगली दुनिया की पहली खबर' तथा 'कुछ दिन और'। उनके कई गीत संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें जीवन की तमाम बेचैनियों को बयान किया गया है। उनके प्रमुख गीत संग्रह हैं जैसे - 'पहला मौसम', 'धानी-सा', 'बातें बड़ी छोटी बहर', 'कोई अपना सा', 'तो इश्क मस्ताने', 'हमारे समय के लिए कुछ गीत' एवं 'नयी गीतांजलि' और गजल संग्रह, पत्थरों के पड़ोस में' एवं 'देर तक और दूर तक' आने वाले। प्रेम रंजन अनिमेष आलोचना के क्षेत्र में काफी पकड़ रखते हैं। वह आलोचना की बारीकियों से अच्छी तरह से वाकिफ हैं। उनकी आलोचनात्मक दृष्टि बड़ी पैनी है। उनके कुछ आलोचनात्मक पुस्तकें हैं जैसे - 'चौथाई' एवं 'ऊँचा सोचना'। एक नाटककार के रूप में भी उन्हें आप देख सकते हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं जैसे- 'प्रथम पुरुष मध्यम पुरुष अन्य पुरुष' जो पाठकों के बीच काफी प्रसिद्ध रहा है। प्रेम रंजन अनिमेष न केवल एक अच्छे साहित्यकार हैं बल्कि एक कुशल सम्पादक भी हैं। उन्होंने कवि अरुण कमल की प्रतिनिधि कविताओं का संपादन और नोबल पुरस्कार

प्राप्त आयरिश कवि सीमस हीनी तथा अमरीकी कवि विलियम कार्लोस विलियम्स की कविताओं का अनुवाद भी किया है। इसके साथ ही साथ इनकी कई कविताओं का जैसे 'मिट्टी के फल' तथा 'कोई नया समाचार' (कविताएँ) बांग्ला, पंजाबी, अंग्रेजी और जर्मन आदि भाषाओं में अनुवाद भी हो चुका है। प्रेम रंजन अनिमेष ने अलबम 'माँओं की खोई लोरियाँ' और 'धानी सा' को अपनी आवाज में स्वरबद्ध भी किया है और इनकी एक अल्बम का नाम 'एक सौगात' है, जो मन को अन्दर से बेचैन करती है। यह एक ब्लॉगर भी हैं। ऑनलाइन इनके ब्लॉग को पढ़ा भी जा सकता है। इनके ब्लॉग का नाम है - 'अखराई' (akhraai.blogspot.in), एवं 'बचपना' (bachpna.blogspot.in)।

कवि प्रेम रंजन अनिमेष जीवन को न सिर्फ जीते हैं बल्कि वह जीवन के तमाम उन पहलुओं पर विचार-विमर्श करते हैं, जो मनुष्य के अन्दर चेतना पैदा करती है। इनकी कविताएँ मानव को अंदर तक झकझोरती हैं, उसे चिंतन करने पर मजबूर करती हैं। उन्होंने अपनी कविता 'जन्म प्रमाण पत्र' में जीवन बोध को परिभाषित करने और जीवन के सच को उद्घाटित करने का सात्विक प्रयास किया है। कवि प्रेम रंजन अनिमेष लिखते हैं -

तुम्हारी किलकती रुलाई / दुनिया में पहुँच गयी /
पर तुम्हारा आना / अभी प्रमाणित होना / कागज पर /
कागज का यह कारोबार / तुम्हारे पिता को घबड़ाता /
कोई कागज बढ़ नहीं पाता / बिना कुछ रंगीन पंख लगाये /
सबके लिए हो तुम / पर उनके लिए / तुम्हारा होना / अभी बाकी है /
धरती पर उतर चुके / मगर पन्ने पर / उतरना है।[1]

कवि प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में जीवनबोध का दर्शन होता है। जीवन के प्रतिष्ठित मूल्यों को कागज पर उकेरने का कार्य उन्होंने किया है। जीवन की जीवनतता का सही बोध उनकी कविताओं में दिखाई पड़ता है। कागज और जीवन का जिस प्रकार से कवि ने तार्किक ढंग से वर्णन करते हुये पाठकों को सोचने पर विवश किया है वह न केवल काबिले तारीफ है बल्कि समाज को आईना दिखाते हुये जीवन के महत्त्व को परिभाषित करने का कार्य करता है। कवि प्रेम रंजन अनिमेष अपनी कविता 'जन्म प्रमाण पत्र' में लिखते हैं-

वह कागज हर जगह ढूँढा जायेगा / और उसके लिए / जाना होगा उनके पास /
जो बेचते हैं कागज / कागज के मोल / हरे कागजों के मोल /
कागज के कुछ टुकड़ों पर / साबित कर देंगे वे कुछ भी / कि ईश्वर है /
हो चुका नया जन्म उसका / कागज नहीं / तो कोई अस्तित्व नहीं /
कोई प्रमाण / अनसुना / तुम्हारा रोना / अजाना / तुम्हारा होना /
आ तो गये यहाँ / मगर दाखिल होने नहीं दिया जायेगा /
सोचता पिता तुम्हारा / जायेगा / किसी तरह /
तुम्हारे होने का प्रमाणपत्र बनवायेगा / इस तरह / जन्म से ही /
शुरू हो जायेगा दुष्चक्र / स्रोत से ही / जल में / मिलने लगेगा मैल ...। '[2]

कवि प्रेम रंजन अनिमेष उन कवियों में से आते हैं, जिन्होंने समाज में फैली बुराइयों को दूर करने का कार्य किया है। उनकी कविताओं में एक खनक है, तेज है और हृदय को कंपित करने देने वाला, अंदर तक उथल-पुथल मचा देने वाला शाब्दिक शक्ति है। कवि की कविता समाज को विवश करती है निर्माण पथ पर आगे बढ़ने के लिए। जीवन के अदहन पर धीमी आँच में मनुष्य की मनुष्यता को पकाने का कार्य कवि प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। वह इक्कीसवीं सदी की बात करते हैं, जहाँ आज समूचा विश्व प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ चुका है लेकिन आज भी सुबह झाड़ू देती स्त्री की महत्ता को स्वीकार नहीं करता है। एक स्त्री जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन मनुष्य के जीवन को सुरक्षित रखने के लिए संघर्ष की आग में तपा दिया, आज वही मानव उसके कार्य को हेय दृष्टि से देखता है। कवि प्रेम रंजन अनिमेष अपनी कविता 'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' में लिखते हैं कि -

इस दृश्य का यह शीर्षक क्यों? / क्या इसमें झाड़ू और स्त्री को /
नहीं होना चाहिए / या होना भी था तो नहीं एक साथ / या फिर /
झाड़ू हो भी / तो झाड़ू की तरह नहीं / इस सदी में / जैसे गंदगी है /
पर गंदगी की तरह नहीं / बहरहाल, इस बहस से बेखबर /
सुबह-सुबह उठकर / झाड़ू देने में जुट गई है स्त्री /
क्या उसे खयाल है कि यह / इक्कीसवीं सदी की सुबह है /
और जिसे वह घर की धूल समझकर / बुहार रही उसमें दरअसल है /
एक पूरी शताब्दी / या समूची सहस्राब्दी की धूल / जमीन के ऊपर /
खाली छत ही नहीं कई तहें हैं / वह सबको साफ कर रही बारी-बारी।[3]

कवि प्रेम रंजन अनिमेष इक्कीसवीं सदी में स्त्री' की विडम्बना को समझते हैं और समाज की समाजिकता को भी। स्त्री होने का दंश आज भी स्त्री झेलती आ रही है। पुराणों से लेकर वर्तमान तक की कथाओं में स्त्री के प्रति कितना न्याय किया गया है, कवि को भलीभाँति मालूम है। स्त्री की चेतना, सचेतना का बयान उन्होंने अपनी कविताओं में बखूबी किया है। एक झाड़ू देती स्त्री जो किताब से लेकर घर के प्रत्येक सामान और प्रत्येक क्षेत्र को साफ करती हुई उसे सुंदर एवं स्वच्छ बनाती है, आज उसी स्त्री की प्रगति को लोग रोक रहे हैं। झाड़ू देती स्त्री सोचती है कि इसी तरह से अगर यह देश साफ और सुंदर हो जाए तो कितना अच्छा होता। स्त्री के प्रति समाज में लोग क्या दृष्टिकोण रखते हैं और उसे किस रूप में चित्रित करते हैं, इसका वर्णन भी कवि प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी कविता 'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' में बहुत ही सटीक ढंग से किया है। वह लिखते हैं कि -

किताबें बहुत कम हैं / पर धूल उन पर बहुत / कई मशीनें हैं कई सामान /
अभी टी.वी. के पर्दे पर झाड़ू फेरा / और देखा कि दृश्य साफ आ रहा पहले से /
इस बीच एक लड़का आता शिकायत करने /
कि पड़ गया है कुछ उसकी आँखों में /
हेर देती उसकी भी किरकिरी / यह काव्यात्मक न्याय ही है /
कि वही फूलझाड़ू फिर रहा / ताक पर बैठे देवताओं पर /

जिससे साफ हुई थी घर के अधम कोनों की झाड़न /
मकड़ियाँ भागती हुई अपने जालों से / ले जा रहीं उसे दूसरी तरफ /
हाथ ऊपर कर उछल-उछल कर भेदती सारे व्यूह /
वह उचकती तो कुछ और ऊपर खिसक जाता आसमान /
पैरों की धमक से धरती सरकती नीचे और ऊँचा उठना है उसे ये जंजाल समेटने के लिए/
घर बुहार कर भी चैन नहीं / कि अब दिख रहे हैं ग्रह-नक्षत्रों के बीच के झोल /
एक तिपाई के ऊपर दूसरी रखकर / वह खड़ी पंजों के बल उचक कर /
मुझे लगता अब कुछ होने वाला है / कोई उलटफेर /
इस पूरी व्यवस्था में कुछ भी संतुलित नहीं / पंजों पर खड़ी उस स्त्री के अतिरिक्त /
कुछ भी यही नहीं रहेगा / अभी थोड़ी देर में / बदल जाएगा सब.../
सरक रही धूल खाँसता हुआ / बाहर आ जाता मैं दृश्य से।'[4]

कवि प्रेमरंजन अनिमेष एक प्रबुद्ध कवि हैं। उनकी कविताओं में गाँव-जवार की बातों का समावेश देखा जा सकता है। रिश्तों की आहटों का चित्रण उन्होंने बहुत बारीकी के साथ किया है। संबंधों की कीमत क्या होती है तथा मानव जीवन में उसकी क्या प्रासंगिकता है, इसका चित्रण उनकी कविताओं में बारीकी के साथ समाहित है। कवि बहन के प्रेम और उसकी उदात्त कर्मनिष्ठा, भाव प्रवणता को चित्रित करते हुए वह 'बहन का घर' कविता में लिखता है -

रास्ते में पड़ता है / घर बहन का / पर गुजर जाते / अकसर उधर से /
इसी तरह / चुपचाप / मिले बिना / बगैर खबर किए / अपना /
या दुनिया का / कोई काम देखते / बहनें हमारे रास्ते में / नहीं आतीं।'[5]

दिन प्रति दिन लोग स्वार्थी होते जा रहे हैं। जन प्रतिनिधि लोग जनता से बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। उनसे बड़े-बड़े वादे करते हैं और आकाशचारी सपनें दिखाते हैं लेकिन जब उन सपनों को साकार करने का समय आता है तो वह अपने वादे भूल जाते हैं। उसके बाद जनता अपने को ठगी-सी महसूस करती है। बाढ़ पीड़ित लोग जब बेघर हो जाते हैं। जब उनके अपने ही उनके सामने बाढ़ में बह जाते हैं, मर जाते हैं तो उस समय वह जिंदा होकर भी जिंदा नहीं होते बल्कि जिंदा लाश बन जाते हैं। भूख से व्याकुल बच्चों की चीख-पुकार कोई सुनने वाला नहीं होता है। औरतें दहाड़े मार-मारकर दुहाई देती हैं और मदद माँगती हैं लेकिन जब तक उनकी मदद होती है तब तक उनके घर का चिराग बुझ चुका हुआ होता है। कवि प्रेमरंजन अनिमेष 'बाढ़ से घिरे गाँव' काव्य संग्रह में निहित कविता 'सवाल' में लिखते हैं -

कितना कुछ धुला / कितना बह गया / इस बारिश में /
मगर कहाँ बहे / जस के तस रहे / औरतों के आँसू /
भूखों की लाचारियाँ / आम अवाम की परेशानियाँ...।'[6]

कवि प्रेमरंजन अनिमेष आगे फिर सरकार की व्यवस्था पर करारा चोट करते हुए कविता 'व्यवस्था' में व्यंग्य के माध्यम से लिखते हैं -

बाँध पर ठहरे / लोग इतने / जाने कब से / सरकार ने / बाँध ये /

शायद इसीलिए बनाए / एक ओर / इतना पानी / कि डूब जाएँ /
गाँव के गाँव / दूसरी तरफ / राहत ही राहत / धूप में भी ठण्डी छाँव...!'[7]

कवि प्रेमरंजन अनिमेष दलित, पीड़ित और शोषितों के हक और हकूक की बात करते हैं। उनकी कविताएँ दहकती अंगारें हैं, जिसके अन्दर मजलूमों के न्याय की गुहारें छिपी हुई हैं। मजदूरों की करुण-क्रंदन आवाज कवि को विचलती कर देती है। उसकी चीत्कार उसे सोने नहीं देती। वह उनके अधिकारों के लिए खड़ी नजर आती है। कवि ने मजदूरों की अकथ कथा को वर्णित करते हुये जन-संदेश देने का कार्य किया है। जो हाथ आपको घर बनाकर देते हैं, कंपनियों में कार्य करते हुए आपको खाना, कपड़ा, मकान और भौतिक आदि संसाधन प्रदान करते हैं, आज वही मजदूर दर-दर भूखे, प्यासे भटक रहा है। यह बात पूरे मानव समाज को कटघरे में खड़ी करती है। कवि प्रेमरंजन अनिमेष काव्य संग्रह 'जनपद यात्रा' (पैदल पैदल निकल पड़े मजदूरों की अकथ कथाएँ) में निहित कविता 'पीर पराई' में लिखते हैं कि -

थे रास्ते निषिद्ध / द्वार अवरूद्ध / मगर पुकार मिट्टी की /
निकल पड़े इसलिए / पैदल पैदल ही वे / जिन्हें कहीं था दिया गया /
घर न रास्ता / पगडंडी या पटरी पकड़े / गाँव खेत जंगल जंगल /
बेबस व्याकुल विह्वल / इस उम्मीद में / कि शायद आखिर /
पहुँच सकें फिर / कभी जहाँ से चले / सुन इस बारे में जागी /
कवि की कविताई / लिख लिख इतनी / धूम मचाई /
तालाबंदी के चलते / वातानुकूल भवनों से अपने / प्रस्तुतकर्ता खबरनवीस जो /
थे सजीव / जम कर गरजे बरसे /
पहले से टूटे / विपक्ष के / नेतागण भी / अवसर पाकर /
टूट पड़े फिर / सत्ता को क्या क्या कहते / उसकी ऐसी तैसी करते /
काश / कि इसके बदले / कवि नेता और पत्रकार ये / ऐसा करते /
कुछ पग कुछ पल / उनके संग चलते / उनके संग जलते /
तब शायद वह पीड़ा सच्ची / तनिक समझ में आती /
अभी परे / जो बहुत परे उनसे...।'[8]

इस प्रकार से हम देखते हैं कि कवि प्रेमरंजन अनिमेष की कविताएँ समाज के गरीब तबके, शोषितों और पीड़ितों के लोगों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनके द्वारा रचित काव्यों में एक तरफ स्त्री विमर्श का जयघोष है तो वहीं दूसरी ओर ग्रामीण जीवन की त्रासदी, मजदूरों का पलायन, पीड़ा, भय, आक्रोश, संघर्ष आदि का चित्रण निहित है। उनकी कविताएँ समाज को आईना दिखाने का कार्य करती हैं और लोगों के अधिकारों के लिए जूझती हुई दिखाई देती हैं। उनकी कविताओं में जनता द्वारा भोगा हुआ यथार्थ दर्ज है। कवि की कविताएँ जन-जन के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुये, जनता को सुनहरा भविष्य समर्पित करती हैं।

सन्दर्भ :

1. http://akhraai.blogspot.com/2011/11/blog-post.html
2. http://akhraai.blogspot.com/2011/11/blog-post.html

3. अन्विता अब्बी, संपादक , उर्वर प्रदेश, रचनाकार : प्रेमरंजन अनिमेष, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण -2010, पृष्ठ 288
4. अन्विता अब्बी, संपादक , उर्वर प्रदेश, रचनाकार : प्रेमरंजन अनिमेष, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण -2010, पृष्ठ 288
5. http://kavitakosh.org/ kk/बहनकाघर/प्रेमरंजनअनिमेष
6. http://kavitakosh.org/kk/बाढ़सेघिरेगाँव/प्रेमरंजनअनिमेष
http://kavitakosh.org/kk/बाढ़सेघिरेगाँव/प्रेमरंजनअनिमेष
7. http://bizooka2009.blogspot.com/2020/06/blog-post.html'

अन्य स्रोत :

1. https://www.hindisamay.com/writer/प्रेम-रंजन-अनिमेष-prem-ranjan-animesh.cspx?id=232
2. http://kavitakosh.org/kk/प्रेमरंजनअनिमेष
3. sahityaganga.comप्रेम-रंजन-अनिमेष/
4. https://rajkamalprakashan.com/author/prem-ranjan-animesh
5. http://www.anubhuti-hindi.org/chhandmukt/p/premranjan_animesh/Index.htm
6. https://www.hindwi.org/poets/prem-ranjan-animesh/all
7. samwed.com/katha-samved-8-prem-ranjan-animesh/6233

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (ICSSR)
हिंदी विभाग, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
टैब शाहपुर, छतरी, जिला - कांगड़ा (हि.प्र.) 176206

आत्मीयता के आत्मीय कवि : प्रेम रंजन अनिमेष

चेतन कश्यप

तबीअत इन दिनों बेगाना-ए-गम होती जाती है
मिरे हिस्से की गोया हर खुशी कम होती जाती है
वही है ज़िंदगी लेकिन 'जिगर' ये हाल है अपना
कि जैसे ज़िंदगी से ज़िंदगी कम होती जाती है - जिगर मुरादाबादी
ऐ मेरे दिल कहीं और चल
गम की दुनिया से दिल भर गया - शैलेन्द्र

ऊपर उद्धृत की गई पंक्तियाँ हमारे ही मनोभावों को उजागर करती हैं। आज की इस दुनिया में आदमी हर तरह से परेशान है। उसकी जिंदगी से जिंदगी ही गायब होती जा रही है। और कहने को सबकुछ है उसके पास। सारी सुख-सुविधाएँ, सारी शानो-शौकत, फिर भी उसका मन भागने को करता है इस दुनिया से - ऐ मेरे दिल कहीं और चल...! विरोध, प्रतिरोध, क्षोभ हो तो फिर भी ठीक है, लेकिन अब तो आदमी जीवन से ही उदासीन होता जा रहा है। उदासीनता से बड़ी कोई सजा ही नहीं है। आदमी खुद अपने को ही सजा दे रहा है, मगर क्यों? बचपन से हमने एक रटी-रटायी बात सुनी है - मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, पर हमने यह बात गुनी कितनी, पता नहीं! शायद हम 'यथार्थ' के पीछे इतना भागे कि यह भूल ही गए कि यथार्थ सिर्फ संत्रासपूर्ण ही नहीं, जीवन से भरा, हरा-भरा, खिला-खिला भी हो सकता है। प्रेम रंजन अनिमेष इसी हरे-भरे, खिले-खिले यथार्थ को पकड़ने वाले कवि हैं। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में जीवन का स्पंदन आप साफ-साफ महसूस कर सकते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परिवार, नाते, संबंधों से बंधा। लेकिन आधुनिकता की अंधी दौड़ में भागता आदमी इन सब से अलग-थलग पड़ता जा रहा है। जबकि हमारे डीएनए में ही हैं संबंधों के सूत्र। इस अलग-थलग पड़ते आदमी और उसकी सिकुड़ती दुनिया में अगर कोई कवि लगातार अपने संग्रहों को अपने रिश्तों को समर्पित कर रहा है तो इसके क्या माने हो सकते हैं? यही कि वह अपने नातों को और उनको समर्पित अपनी कविताओं की मार्फत आदमीयत को बचा लेना चाहता है। अपनी भी और इस दुनिया की भी। प्रेम रंजन अनिमेष के पाँच कविता संग्रह अब तक प्रकाशित हैं। एक नजर उनके 'समर्पण' को देखें -

कवि नहीं / कविता मैं जिनकी / सबसे पहले /
माँ- बाबूजी को ...(मिट्टी के फल)

संग्रह 'कोई नया समाचार' का समर्पण ढेर सारे बच्चों को और उनकी तरफ से दुनिया के सारे बच्चों को समर्पित है। और ढेर सारे बच्चे भी संभवतः कवि के घर-परिवार के ही बच्चे हैं। 'अंधेरे में अंताक्षरी' आजी और बाबा को समर्पित है। 'बिना मुँडेर की छत' पिता जी और माँ को। उनका सबसे बड़ा संग्रह 'संगत' उन्होंने समर्पित किया है अपनी फूआ को। उनके ब्लॉग पर चर्चा किया गया आने वाला संग्रह 'नींद में नाच' समर्पित है बहनों को।

यह अनायास नहीं हो सकता कि कवि को समर्पण के समय अपने नाते-रिश्तों की

याद आती है। संबंध कवि की आत्मा में रचे-बसे हैं। 'कोई नया समाचार' घर में नए शिशु का स्वागत है तो 'संगत' विदा होते पिता का जीवन- आख्यान। ये दोनों संग्रह तो पूरी तरह से कवि के निजी संबंधों पर केंद्रित हैं। उनके बाकी तीनों संग्रहों में कवि के संबंधों की ऊष्णता और हरीतिमा फैली हुई है। प्रेम रंजन अनिमेष 'ब्लॉग' पर भी अपनी कविताएँ साझा करते हैं। उन कविताओं से गुजरते हुए भी आप कवि की और उसकी कविता के बहाने अपने निजी संबंधों की तरलता को महसूस कर सकते हैं। संग्रहों और ब्लॉग को मिलाकर इनकी करीब 620-25 कविताएँ हैं। 'संगत' की सारी 219 और 'कोई नया समाचार' की सारी 84 कविताओं के साथ- साथ करीब 360-65 कविताएँ ऐसी हैं जिनमें कवि संबंधों का जिक्र करते हैं, उनसे संबोधित होते हैं, उन संबंधों के बारे में चर्चा करते हैं।

माँ आती हैं बार-बार। बहनें याद आती हैं। पिता तो 'संगत' में आद्योपांत संगत में हैं। बीच में पत्नी का भी रूप है, पति का भी रूप है, भाई भी आते हैं, पुरखे भी। 23 दिसंबर 2014 के ब्लॉग में अपनी बड़ी दीदी को याद करते कवि अनिमेष की बहन का घर कविता देखिए -

रास्ते में पड़ता है / घर बहन का / पर गुजर जाते / अकसर उधर से /
इसी तरह / चुपचाप / मिले बिना / बगैर खबर किये / अपना / या दुनिया का /
कोई काम देखते / बहनें हमारे रास्ते में / नहीं आतीं।

इस कविता को पढ़ते हुए हर व्यक्ति जिसकी बड़ी बहन हो या जिसने किसी से बड़ी बहन का स्नेह पाया हो, इस कविता में व्याप्त एक क्षमा-याचना और अपनी मजबूरियों में बँधे होने की चुभन की अनदेखी नहीं कर सकता। मन भींग-सा जाता है जैसे बारिश में नहाई हुई गहरी हरियाली। इसी तरह 31 अगस्त 2021 के ब्लॉग में एक कविता है 'बहन का रास्ता'। उसकी पंक्तियाँ देखें -

संगिनी वाम / तो माँ जैसे / हो गयी दक्षिण / बहनें जाने / चल रहीं कबसे /
बुद्ध की तरह / बरतते बताते / निभाते दिखाते / रास्ता / बीच का...

अबके इस एकल-एकाकी जीवन में यह बीच का रास्ता जैसे 'अतिक्रमण' की चपेट में आता जाता है। कविता हमें चेताती है और बताती है, बहनों का होना कितना जरूरी है। बड़ी दीदी को याद करती एक छोटी-सी किंतु बड़ी मार्मिक कविता 'अबके सावन..' पढ़िए और महसूस कीजिए नमी को जो अंदर छा जाती है -

क्या कहीं / कोई आँख नम है? / अबकी राखी में /
मेरी कलाई पर / एक धागा कम है ...

22 अप्रैल 2015 के ब्लॉग की कविता है 'एक ब्याह में न जा पाने पर...' जो कवि के अपनी छोटी दीदी की बड़ी बेटी की शादी में न पहुँच पाने की कसक साथ लिए हुए लिखी गई कविता है। यह गौर करने की बात है कि प्रेम रंजन अनिमेष की कविता में संबंध अपनी पूरी धज के साथ उपस्थित होते हैं–बड़ी दीदी, छोटी दीदी, छोटी दीदी की बड़ी बेटी। कुछ- कुछ उन दिनों की याद दिलाते हुए जब घरों के चूल्हे अलग नहीं हुए थे। जब संबंधों को निबाहना प्राथमिकताओं में था। आज तो फोन पर बात करना भी दूभर होता जा रहा है। हर बार बात बाद में फुर्सत से बात करने की बात पर काट

दी जाती है।

हम सब अपनी माँओं के पास बार-बार लौटते हैं। माँ की यादों के पास, माँ की बातों के पास। कवि का भी माँ को याद करना उतना ही स्वाभाविक है। कवि अनिमेष जिस तरह माँ को याद करते हैं, वह एकबारगी पढ़ने वाले को अपनी माँ तक ले जाता है। उनकी दो पंक्तियाँ देखिए -

क्या दवा वक्त से ले ली होगी / घर में माँ कितनी अकेली होगी

यह हमारे युग का कटु-सत्य है जो कवि अनिमेष की पंक्तियों से झाँक रहा है। सारे लोग ही अप्रवासी हो गए हैं। घर तो सबका पीछे छूट चला है, घर जो होता है अपने माता-पिता का। हमारा स्थायी पता। एक ऐसा समय जीवन में आता है जब माता-पिता विदा हो जाते हैं लेकिन ऐसा कौन-सा मन है जो इसे स्वीकार कर पाता है तमाम उम्र? अनिमेष भी कहते हैं -

बात इतनी बेमानी / आज तक किसी ने / नहीं कही /
संसार का सबसे बड़ा झूठ है / कि माँ अब नहीं रही...

हमने सबने कभी न कभी यह बात सुनी है अपने से बड़ों से, खासकर माँ से कि उम्र चाहे जो भी हो, उनके सामने तो हम बच्चे ही हैं। प्रेम रंजन अनिमेष इसी बात को कविता बना देते हैं -

कहती– हो जाओ चाहे कितने बड़े
इतने बड़े तो कभी हो नहीं सकते बच्चे
कि छुपा लें / हाल अपना / अपनी माँ से ...

ब्लॉग पर ही यह जानकारी मिलती है कि 'माँ के साथ' नाम से एक अप्रकाशित संग्रह है माँ पर लिखी गई कविताओं का। शायद किसी प्रकाशक की कृपादृष्टि के इंतजार में। माँ प्रेम रंजन अनिमेष के हर कविता संग्रह में उपस्थित हैं और इन कविताओं से गुजरते हुए आप इस बात को लक्षित कर सकते हैं कि बिना झंडा उठाए हुए भी 'स्त्री विमर्श' की बातें की जा सकती हैं। 'कोई नया समाचार' संग्रह की एक ऐसी ही एक कविता 'पहला नाम' द्रष्टव्य है -

बच्चे ने जाना / माँ / चूल्हे की आग का / दूसरा नाम है /
बच्चे ने जाना / माँ त्याग का दूसरा नाम है /
माँ का पहला नाम / ढूँढ़ रहा है बच्चा ...

इस कविता के भाव के विस्तार में चलें तो हमें आसानी से यह खयाल आ जाता है कि स्त्रियों को हम उनके नाम से कहाँ बुलाते हैं अभी भी! वे अभी भी किसी की बहू, किसी की माँ के नाम से ही परिचय पाती हैं। थोड़ा और पहले की बात करें तो ऐसे नाम ध्यान में आते हैं - रामपुर वाली, महेसी वाली आदि। और अभी भी, इस 'अल्ट्रा मॉर्डर्न सोसायटी' में स्त्रियों के लिए पति का टायटिल लेना क्यों आवश्यक है? ऐसे बहुत सारे प्रश्न ये कविताएँ हमसे पूछती हैं। हमें सोचने को मजबूर करती हैं। 'अँधेरे में अंताक्षरी' संग्रह की कविता 'माँ को याद है' कुछ ऐसे ही प्रश्न हमारे सामने छोड़ जाती है। कविता की कुछ पंक्तियाँ देखें -

माँ को अपना जन्मदिन याद नहीं .../ उसे सब याद है / सब कुछ / पूरा पूरा...!

ऐसा नहीं है कि स्त्रियों को किसी रिश्ते के नाम से बुलाना सिर्फ नकारात्मक अर्थों में ही हो। यह संबंधों की अत्मीयता को जीवंत बनाए रखने का साधन भी हो सकता है। 'संगत' संग्रह की पहली कविता इसकी पुष्टि करती है -

गोल दादी ...! / अम्मा को वे पुकारते / गोलू की दादी /
हमारी माँ कहते होंगे पहले / कहते ही थे याद है /
अच्छा है इस तरह / रिश्तों को जो सबसे छोटे हैं /
उनसे जोड़ना उनसे बाँधना / सबसे पुराने के साथ सबसे नया

प्रेम रंजन अनिमेष के प्रकाशित कविता-संग्रहों में आकार के हिसाब से सबसे बड़ा संग्रह 'संगत' है। अपने फलक और संवेदना के विस्तार के आधार पर इसे महाकाव्यात्मक कहना अनुचित भी नहीं होगा। पिता के अंतिम दिनों में, बीमार पिता की देखभाल करते, जीवन को समझते-परखते कवि की कविताएँ उतरी हैं। हालाँकि बीमार पिता के अंतिम दिनों के कष्ट, उनकी अशक्तता, परिवार खास तौर पर माँ के द्वारा अनथक सेवा-सुश्रुषा को अंकित करती हैं ये कविताएँ, फिर भी ये निराशा की कविताएँ नहीं हैं। संग्रह की भूमिका में कवि ने लिखा भी है- ' इन्हें शोकगीत भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनमें जीवन अधिक है।' हमारे समाज में आम तौर पर पिता के प्रति बच्चों का और बच्चों के प्रति पिता का प्रेम अव्यक्त ही रह जाता है। 'संगत' अव्यक्त की अभिव्यक्ति है। और यह एकरेखीय या एकरसता से नहीं जीवंतता से भरी हुई अभिव्यक्ति है। कविताओं से गुजरते हुए पाठक स्वयं को भी उसी परिवेश में किसी कोने में बैठा हुआ-सा पाता है। पिता के चले जाने के बाद की एक कविता है 'मौजूदगी'। कितनी शिद्दत से पिता को याद करता है कवि और कितनी खामोशी से! -

तसवीर में / पिताजी हैं / पिताजी अब सिर्फ / तसवीर में हैं /
यह भी / कह सकता हूँ कैसे

'संगत' संग्रह की 219 कविताओं से गुजरना जीवन के एक दौर से गुजरना है। माता, पिता, पुत्र, पुत्री, पति-पत्नी, जीवन- मृत्यु, स्मृति-विस्मृति, नाते-रिश्ते, बुढ़ापा, अशक्तता, किसी का होना- नहीं होना, जाने कितनी मनः स्थितियों से पाठक गुजरता है। संग्रह का नाम भी संगत शायद इसीलिए रखा गया है कि जीवन में हर चीज की संगत आसपास की हर चीज से होती है। संग्रह के फ्लैप पर लिखी ये पंक्तियाँ हमें कवि और उसकी कविता दोनों के बारे में ही एक सम्यक दृष्टि प्रदान करती हैं - 'आज का युग जहाँ संयुक्त पहले ही तिरोहित हो गया है और परिवार भी बिखरते - बिसरते जा रहे हैं, अनिमेष की कविताओं का यह आत्मीय संसार उसके बरअक्स भावों, जुड़ावों और संवेदना से धड़कता एक ऐसा जीवन हमारे सामने लाता है जिसमें हृदय अब भी इतने विशाल हैं जो अपने-अपनों के अलावा औरों को भी सहज अपना बनाने और अपनाने को उमगते हैं। '

कवि की सरलता और संवेदनशीलता से प्रभावित होकर उनके दूसरे कविता संग्रह 'कोई नया समाचार' के फ्लैप पर कैलाश वाजपेयी लिखते हैं- 'इतने बर्बर समय में कोई कवि अपनी संवेदना और मासूमियत को बचाये रख सका- यह सोचकर हैरत होती है। मगर इस संग्रह की रचनाएँ हैं कुछ ऐसी ही।'

'कोई नया समाचार' में कवि बच्चों की और उसके आसपास की दुनिया में प्रवेश करता है बहुत बारीक नजर के साथ, बड़े हल्के हाथों। कवि पाठक को बच्चों के हाथों में पहुँचा देता है अपनी कविता 'हाथ' के साथ -

कहीं भी जाऊँ / छू लेता है / एक अजाना बच्चा /
दुनिया सचमुच / एक बच्चे के हाथ से / कितनी छोटी है!

इस कविता को पढ़ते हुए केदारनाथ सिंह की कविता बरबस याद आती है -

उसका हाथ / अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा /
दुनिया को / हाथ की तरह गर्म और सुंदर होना चाहिए।

एक मुलायमियत का एहसास भला किसे नहीं होगा, ऊपर की दोनों कविताओं को पढ़कर लेकिन कवि अनिमेष दुनिया से बेखबर भी नहीं हैं। संग्रह में आगे की एक कविता 'महक' में वे कहते हैं -

अब जो चूमता हूँ उसे / होठों से नहीं लगती / कच्चे दूध की महक /
अब वहाँ / अकसर मिलती है / बारूद की महक

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं को पढ़ते हुए बार-बार इस बात पर आपका ध्यान जाता है कि नाते-रिश्तों की अहमियत कवि और उसकी कविता में बहुत है। हर रिश्ते को कवि बड़ी अत्मीयता के साथ याद करता है और उतनी ही आत्मीयता के साथ उन्हें अपनी कविता में स्थान देता है। 'संगत' संग्रह की भूमिका में तभी वह कहते हैं 'जो लोग अच्छे होते हैं उन्हें ही इतने अच्छे स्वजन मिलते हैं- लोग कहा करते।' अपनी कविताओं में संबंधों के बार-बार आने पर बातचीत के क्रम में उन्होंने एक बार कहा था 'इनमें वे संग्रह भी हैं जिन्हें मैं 'आत्मीयता की वृहद्त्रयी' कहता हूँ और एक सुचिंतित व्यापक दृष्टि के साथ जिनका सृजन किया हैः 'माँ के साथ' (पांडुलिपि प्रकाशन की प्रक्रिया में), 'संगत' (पिता से जुड़ी कविताएँ) तथा 'कोई नया समाचार' (बच्चों के बहाने जीवन-जगत के बड़े फलक को उकेरती कविताएँ)! मैं समझता हूँ दिनों दिन विश्व और देश में भी तेजी से तिरोहित होते जा रहे 'संयुक्त' और विच्छिन्न होते जा रहे 'परिवार' की पृष्ठभूमि में ये अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं।' आज के इस जटिल समय में जब छोटी से छोटी बात भी जटिलताओं से भरी हुई है, कवि अनिमेष सहज सरलता की राह पर चलते नजर आते हैं। समय जटिल हो तो कविता को सरल होना ही चाहिए। एक और बात यह भी है कि अपने आसपास रोजमर्रा के जीवन में नित हमारा सामना गलाकाट प्रतिद्वंद्विता से होता है। मनुष्यता के लिए जमीन सिकुड़ती जा रही है। ऐसे समय में कवि अनिमेष की कविताएँ एक ताजगी लेकर हमारे सामने उपस्थित होती हैं, उसी ओस की बूँद की तरह जिसका जिक्र पाब्लो नेरुदा करते हैं -

कविता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा/ यदि वह/
ओस की एक बूँद को बचा न सके।

कवि एकान्त श्रीवास्तव कहते हैं 'यह बूँद हमारे हृदय की तरलता का द्योतक है। यह बूँद हमारी संवेदनशीलता का द्योतक है। ओस की एक बूँद- जिसके बिना कविता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।' प्रेम रंजन अनिमेष के पास निश्चित ही ओस की ऐसी बूँदों की कमी नहीं।

ऐसा नहीं है कि प्रेम रंजन अनिमेष सिर्फ मानवीय संबंधों से ही आत्मीय संबंध बनाए रखते हैं। वे कहते हैं 'वैसे भी, मानवीय संबंध कला साहित्य का आधार हैं! वे मानवीय संबंध जो मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं, जिनमें मनुष्य मात्र ही नहीं, मनुष्य के समस्त प्राणीयता, प्रकृति व जड़ चेतन, पिंड व ब्रह्मांड से संबंध शामिल हैं।' अपने आसपास की साधारण वस्तुओं के प्रति भी वे वैसी ही दृष्टि रखते हैं। उनकी कुछ कविताओं के शीर्षक ही इसकी तस्दीक कर देते हैं। जैसे- 'जूता', 'टिकोले', 'अनानास', 'मसहरी', 'गुल्लक', 'निब', 'एक पाँव का जूता', 'खरार्टे', 'अलाव', 'कुत्ते की नींद', 'कछुआ', 'पृथ्वी उम्मीद से है' आदि। एक दूसरी विशेषता प्रेम रंजन अनिमेष के लेखन की है- उनका श्रृंखलाबद्ध-कविताओं का लिखना। 'दाढ़ी बनाते हुए कुछ कविताएँ' 'अच्छे आदमी', 'अमराई', 'ऊँट' आदि ऐसी कई श्रृंखला-कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। उनकी श्रृंखला-कविताओं पर भी अलग से विचार किया जाना चाहिए। प्रेम रंजन अनिमेष ने गजलें और गीत भी लिखे हैं। उनमें से कुछ की संगीतमय प्रस्तुति वे यूट्यूब चैनल पर करते भी हैं। उनकी जो कविताएँ छंदोबद्ध नहीं भी हैं, खासकर उनकी परवर्ती कविताएँ, उनका सस्वर पाठ करने पर उनमें अंतर्निहित गेयता को आसानी से लक्ष्य किया जा सकता है। इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

अब थोड़ी बात आज के कविता के परिदृश्य पर भी, प्रेम रंजन अनिमेष के बहाने से ही। ऐसा क्यों है कि गंभीर कविता (गंभीर; बोरियत से भरी नहीं!) मंच से गायब ही हो गई है। मंच पर जो बचा है, ज्यादातर मसखरापन ही बचा है। अर्थशास्त्र का एक प्रसिद्ध सिद्धांत है 'बैड मनी ड्राइव्स आउट गुड मनी।' वैसी ही स्थिति हिन्दी-कविता में भी बनती जा रही है।

अपनी पुस्तक 'वह हँसी बहुत कहती थी' में राजेश जोशी लिखते हैं कि 'हिंदी में अच्छा काव्य पाठ करने वाले कवियों के उदाहरण कम हैं।' बरसों पहले बच्चन जी की कविताओं का अमिताभ बच्चन ने पाठ किया था जो एक रिकॉर्ड के रूप में 'बच्चन की आवाज में बच्चन' के नाम से आया था। उसके कवर पर बच्चन जी की उक्ति थी कि 'कविता लिखना कला है तो कविता पढ़ना भी कला है।' इस बात की ओर भी कवियों को ध्यान देने की जरूरत है, खासकर तब जब कविता छंद से दूर हो गई है और उसमें गेयता का अभाव हो गया है। ऐसे में कविता का पाठ, उसकी अदायगी और भी महत्त्व रखने लगे हैं। एक दूसरी बात यह भी है कि किसी 'वाद' या 'पंथ' के मंच से जुड़ा होना कवि के लिए कितना जरूरी है? कविता को ही मौका दिया जाना चाहिए। वैसे भी कवि का एक ही 'वाद' और 'पंथ' होता है- सच्ची संवेदना का।

बहरहाल, प्रेम रंजन अनिमेष अपनी सहज-सरल संवेदना के साथ कविता की राह पर चलते चलेंगे और उनके लिखे हुए का बहुत बड़ा भंडार जो अब तक प्रकाश में नहीं आया है, पाठकों - काव्य-रसिकों के सामने जल्द ही आएगा ऐसी आशा है।

शब्दों के हर स्पंदन में प्रेम

(प्रेम रंजन अनिमेष का स्नेहिल कविता संसार)

- आलोक कुमार

'अक्सर कविता का अर्थ उसमें नहीं होता जो कहा जा रहा होता है, बल्कि वहाँ होता है जहाँ वह शब्दों के इर्द-गिर्द एक आलोक-वृत्त बुनता है- भाषा के भीतर एक और भाषा में।'

- निर्मल वर्मा (रचना की जरूरत)

प्रेम रंजन अनिमेष की प्रेम कविताएँ अपने भाव में अनेक आयामों के साथ हमारे सामने आती हैं जिनकी चर्चा निर्मल वर्मा करते हैं। प्रेम कविताएँ स्वभावतः यथार्थ में होते हुए भी ट्रांसेंडेंटल होती हैं। प्रेम हमें उदात्तता की ओर ले जाता है। हम हमेशा मासूमियत से प्रेम करते हैं। एक ऐसी चेतना से प्रेम करते हैं, जिसमें निश्छलता होती है। दरअसल मनुष्यता ऐसी चेतना है, जो सहज ही निष्कपटता और निश्छलता की ओर आकर्षित होती है, उसी में जीवन का अद्भुत सौंदर्य देखती है और उसके साहचर्य के लिए ललकती है :

लौटा हूँ तो देखता हूँ / कलम खुली पड़ी है / बिना ढक्कन /
तारीखें नहीं तिथि दर्शक की / दाढ़ी बनाने का सामान जैसे तैसे /
गायब है मूँछें कतरनेवाली छोटी कैंची.../
जान जाता हूँ बच्चे आये थे यहाँ मेरे बाद .../
... शौक से करते / मेरे होते / मुझे भी लेकर साथ (नन्हों से नन्हीं सी शिकायत)

प्रेम अगर अनश्वर है तो वह इसलिए है कि उसमें मासूमियत के प्रति अनन्यता की चाह है। गोयथे ने कहा हैः ही we are our own demons, we expel ourselves from our paradise. चालाकी और कूटनीति सीखना इस संसार में परिपक्वता अर्जित करना हो सकता है लेकिन हम इस उपक्रम में मासूमियत रूपी स्वर्ग से दूर होते चले जाते हैं। प्रेम का प्राप्य प्रेम ही है। वह क्षणिक भी हो सकता है और शाश्वत भी क्योंकि प्रेम जितना दिव्य है, उतना ही मानवीय :

आना / अगर हो सके / न हो सके / तब भी आना /
आना / अगर किसी से मिलने आओ / किसी से न मिल पाओ / तो चले आना /
आना /अच्छे मौसम में /अच्छे मौसम के लिए आना... (आमंत्रण)

प्रेम का कवि संसार के साथ-साथ जीवन और उसके सत-सार का अनुरागी होता है, इसलिए उसका प्रेम-दर्शन सर्वसमावेशी होना सहज है। कवि के लिए यहाँ कुछ भी त्याज्य नहीं है। वह मानवीय दुर्बलताओं को भी सहज प्रेम की तरह 'स्वीकार' करता है। प्रेम रंजन अनिमेष की प्रेम कविताएँ वायवीय नहीं हैं। यहाँ प्रेम गुनगुनी धूप की तरह विद्यमान है, हमारे बीच खाली अंतराल को भरती हुई। इन कविताओं की पृष्ठभूमि में घर-गृहस्थी, संसार, सघन वात्सल्य और कई स्मृतियाँ हैं जो मनुष्य को एक बेहतर मनुष्य बने रहने में अदृश्य संबल का कार्य करती हैं। दुनिया बदल रही है और मानवीय संबंध भी। बदलते परिवेश के साथ जो खालीपन आया है वह सिर्फ इस भौतिक दुनिया

में ही नहीं बल्कि भाषा में भी आया है। इसे लेकर कवि की टीस लाजिमी हैः

स्वचालित हो गया है यह दौर / और छीज गया है बहुत इस दौरान /लोग कितने कुछ से अनजान / जो कभी / हुआ करती थी उनकी पहचान / जुताई / कोड़ाई / बोआई .... / पर ये खेती के किसानी के / चरण पैदावार के / शहर क्या / नहीं पता / अब तो कईयों को / नयों नयों को गाँवों में भी ... (जीवंत)

हिंदी में स्त्री-पुरुष संबंधों पर कविताएँ लिखने में कवियों (अशोक वाजपेयी को छोड़कर) ने खासा संकोच किया है। हिंदी की प्रेम कविता छायावाद के रहस्यवादी घटाटोप से मुक्त हुई तो अज्ञेय की काल्पनिक प्रेम कविताओं में अटक गई, जहाँ पुरुष का दंभ छिप नहीं पाया। अकविता की यौन कुंठाओं से मुक्त होकर हिंदी की प्रेम कविता बाद में एक स्वस्थ धरातल पर आती है। शमशेर हिंदी कविता में ऐंद्रिकता लेकर आये और उन्होंने प्रेम कविता को एक चाक्षुष रूप दिया। लेकिन समकालीन कविता और आगे जा चुकी है जो स्त्री को उसके समूचे अस्तित्व में ग्रहण करती है। मंगलेश डबराल की निम्न कविता इसकी बानगी है -

बाहर एक बाँसुरी सुनाई देती है / एक और बाँसुरी है / जो तुम्हारे भीतर बजती है / और सुनाई नहीं देती / एक दिन वह चुप हो जाती है / तब सुनाई देता है उसका विलाप / उसके छेदों से गिरती है राख /

स्त्री को सिर्फ एक देह नहीं बल्कि उसके मन को भी देखने की प्रवृत्ति आधुनिक कविता में आयी है। उसकी खुशियाँ, पीड़ा और रूमान सबकुछ अभिव्यक्त करने की क्षमता आज के कवि रखते हैं क्योंकि वे पूर्वग्रहों से मुक्त हैं। आज हिंदी की प्रेम कविता जिस धरातल पर खड़ी है वह काफी परिपक्व है। यहाँ न तो कोई संकोच है और न ही अतींद्रियता :

चुंबनों की / चवन्नियाँ कितनी ही डालीं / गुल्लक में / तेरे दिल के /
इस तरह कि वह / भर आया / उतराया इतराया / खनखन करता /
अपने मन में / अपनी धुन में / ज्यों बौराया /
और कहे तू / निरा बचपना / वह प्यार / चार पैसे का !(प्रेम अनमोल)

इस संदर्भ में धर्मवीर भारती की यह कविता स्मरण हो आती हैः

ये शामें, सबकी सब शामें.../ जिनमें मैंने घबरा कर तुमको याद किया /
जिनमें प्यासी सीपी-सा भटका विकल हिया /
जाने किस आने वाले की प्रत्याशा में /
ये शामें / क्या इनका कोई अर्थ नहीं? / वे लम्हे / वे सूनेपन के लम्हे /
जब मैंने अपनी परछाई से बातें की / दुख से वे सारी वीणाएं फेकीं /
जिनमें अब कोई भी स्वर न रहे / वे लम्हे / क्या इनका कोई अर्थ नहीं?'

2.

प्रेम आज प्रतिरोध का हथियार है- नृशंसताओं के विरुद्ध। आज तो मुक्त और आवारा पूंजी का जमाना है। देश में जब 80 प्रतिशत से ज्यादा पूंजी बिना आधार के भटक रही है, तो संबंध कैसे स्थायी और आधारवान हो सकते हैं? पिछले तीन दशकों में श्रम के क्षेत्र से जो चीज समाप्त हुई है वह स्थायी नौकरी है। यह कांट्रैक्ट सर्विस का

समय है। ठेकेदारी और अनुबंध पर श्रम को खरीदा जा रहा है। इसका सीधा असर प्रेम संबंधों पर पड़ा है। मनुष्य का जीवन आज अनिश्चितताओं से भर गया है। आज के इस भंगुर समय में जो अमानवीयता की पदचाप है, उस खतरे की आहट प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में सुनाई पड़ती है। अनिमेष अपनी कविताओं में प्रेम की शाश्वतता की तलाश में हैं, जहाँ बदलाव तो है लेकिन उसके भीतर अंतःसलिला स्थायित्व है - अनुराग का।

कविता यथार्थ को उसी रूप में नहीं रखती जैसा वह दिखता है बल्कि उसे भाषा में सृजित करती है- एक ऐसी भाषा में जो मनुष्य के भावों से जुड़े कई आयाम खोलती है और उसे सोचने पर विवश करती है। निर्मल वर्मा लिखते हैं -

'... यहाँ (कविता में) शब्द सिर्फ माध्यम नहीं है, इसलिए हम बार-बार उसके पास लौटते हैं क्योंकि यदि शब्दों के बीच कविता ने अपना सत्य पाया है, तो इसी सत्य ने पहली बार कविता के शब्दों को शब्द होने की मर्यादा से पुष्ट किया है।'

अनिमेष की कविता 'सौ वसंत' में कला के इसी रूप और सौंदर्य के दर्शन होते हैंः

सौ वसंत होते / एक स्त्री में / उसके भीतर / जब फूल खिलते /
तो दुनिया भर उठती है / अनूठी खुशबू से / उस सुवास का काम है /
खींचना अपनी ओर / दिल को दिल तक लाना / और तुम्हारा
उसे सींचना संजोना सजाना ... (सौ वसंत)

प्रेम हमें वर्जनाओं से मुक्त करता है। मनुष्य सिर्फ सामाजिक-राजनीतिक प्राणी नहीं है, उसकी अंतःचेतना में मानवोपरि प्रज्ञा भी निवास करती है। प्रेम में अनन्यता और त्याग के भाव इसके प्रमाण हैं। लेकिन इसकी शुरुआत गंभीरता और मौन से होती है। लघु में वृहत् को देखने, रोजमर्रा की आपाधापी में अलक्षित क्षणों को कीमती सिक्के की तरह अपनी स्मृति-चेतना के गुल्लक में सहेजने की प्रेरणा हमें प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं से मिलती है।

यह सूचना की जटिलता का दौर है। स्वयं होशियार बनने और बिना किसी लाग-लपट जीवन की सफलताओं को विजेता की तरह जीतते चले जाने का दौर। आँसू और ठहराव अब कमजोरी की निशानियाँ हैं। संक्षिप्त, सरलीकृत रास्ता अपनाकर सबकी नजरों में आना और सबसे आगे निकलना सफलता के लक्षण बन गये हैं। आज की सयानी दुनिया सत्ता और प्रभुता का अनुसरण करती है। इसलिए आज के दौर में प्यार ने भी अपने मूल्य बदल लिये हैं। परंतु कविता मनुष्य की चेतना को एक ठहराव में ले जाती है जहाँ जीवन के बचे हुए मूल्य होते हैं, जो बाजार के तूफानी ताप से वाष्पित होने से बचे होते हैं। कवि मूल्यों के उसी शीतल जल तक पाठक को ले जाता है :

मैं किसी गाँव किसी कस्बे दूर देहात वाले / छोटे स्टेशन की तरह रहूँगा
तुम तेज रफ्तार गाड़ी की तरह गुजरना /
कुछ ऐसे की पढ़ा भी न जा सके मेरा नाम ... (कुछ ऐसे)

प्रेम हमें एक अलग और अधिक सार्थक संसार की ओर ले जाता है। जीवन में जिस ऊब और निरर्थकता बोध की चर्चा अस्तित्ववादी करते हैं उससे प्रेम और करुणा ही मुक्ति दिला सकते हैं। प्रेम को किसी भाषा की दरकार नहीं होती, वह जीवन में ही

अपने अर्थ खोलता है -

गहरे प्यार में / डूबते उतराते / कहता जा रहा / निरर्थक अनर्गल /
तुम इसका कोई / अच्छा सा अर्थ लगा लेना...(सार्थक)

साहित्य को मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में ही व्याख्यायित किया जा सकता है। चाहे हम परंपरा का मूल्यांकन कर रहे हों या सामाजिक उपादेयता की माप कर रहे हों, यदि हम मनुष्यता का आधार खो देते हैं तो साहित्य के मर्म को नहीं छू सकते हैं। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ इसी समझ और संदर्भ की माँग करती हैं। इन कविताओं के केंद्र में एक सामान्य मनुष्य है जो न तो किसी दार्शनिकता में उलझा है और न ही किसी आध्यात्मिकता में, जहाँ रोजमर्रा की अनुभूतियाँ नेपथ्य में खो जाती हैं। इन कविताओं के शब्दों में स्पंदित जीवन वही जीवन है, जिससे हम रोज-ब-रोज रू-ब-रू होते हैं, लेकिन उस तरह नहीं जिस रूप में यह अपनी तरह का यह अभूत अनूठा कवि -

प्यार के बारे में सोचते / अक्सर माँ की कही
एक बात याद आती / नौ तो जानता /पर छौ कहाँ ...(अबोध)

ये प्रेम कवितायें पाठक को चौंकाती नहीं बल्कि धीरे-धीरे ऐसी दुनिया में ले जाती हैं जो वैसे तो हमारे आस-पास ही होती है लेकिन फिर भी हमसे दूर रह जाती है या हम उससे कटते जाते हैं। हमारी चेतना और अनुभूति के बीच एक आत्मीय संबंध बनाना ही इन कविताओं का उद्देश्य है। अनिमेष की प्रेम कवितायें जीवन के उदात्त क्षणों को शब्दों के बिना किसी अपव्यय के लिपिबद्ध करती हैं। इन कविताओं की भाषा हमारे बोलचाल और देशज अभिव्यक्तियों के सहारे हम तक पहुँचती है। यहाँ न तो बौद्धिकता का आतंक है और न ही उक्ति-वैचित्र्य, जो कि आज के कुछ कवियों की एक सामान्य प्रवृत्ति जान पड़ती है। बिना किसी भाषाई दंभ के ये कवितायें उन तमाम अनकहे सच को हमारे सामने ला देती हैं जो प्रायः सामने होते हुए भी हमसे परे होता जाता हैः

लगी इस तरह / तुमसे अपनी / पहली भेंट / तेज प्यास में / शीतल जल की / पहली घूँट / उतर कलेजे में / करती है / जैसे चोट... (पहला मिलन)

कवि उन बिम्बों के सहारे अपनी बात कहता है जो सामान्य पाठक के लिए अगम्य नहीं हैं, अपितु उनकी स्मृति का हिस्सा हैं। कवि सिर्फ इशारा भर करता है और पंक्तियों के अर्थ पाठक मन में खुलने लगते हैंः

एक काँटा /जो अपने रस से सींच कर / खिलाता / सबसे प्यारा फूल संसार का /
वह काँटा मेरे पास / वह फूल तुम्हारे भीतर ... (प्रकृति)

जीवन अंततः एक यात्रा है, प्रेम के लिए। कहीं वह प्रेम के लिए आर्तनाद है तो कहीं प्रेम के प्रति कृतज्ञता। प्रेम का यह विविधवर्णी रूप प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं की अनन्य विशेषता है। इन कविताओं में जीवन का कोई भी स्पंदन अछूता नहीं है। छोटे-छोटे पल जो एकीकृत रूप में हमारी स्मृति का इंद्रधनुष बनते हैं, इन कविताओं में जीवंत हो उठते हैं।

सहायक प्रबंधक
भारतीय रिजर्व बैंक, मुंबई

प्रेम रंजन अनिमेष की कविता का लोकपक्ष

- सत्येन्द्र पाण्डेय

'भरोसा रखना होगा / कि नयी माँओं के सीने में उतरेगा दूध /
नये फूलों से उमगेगी गंध / चाहे कुछ हो कभी /
धोखा नहीं देगी आँखों की नमी...' (भरोसा)

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ लोकधर्मी संसार के मर्म को उकेरती हैं। वे भरोसे की डोर थामे अँधेरे समय में आशा का संचार करती हैं; और ऐसा करते हुए लोकधर्मी भूमि को नहीं छोड़तीं। कविता की इसी शक्ति को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल लिखते हैं- 'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठा कर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है, इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किये रहता है। उसकी अनुभूति सब की अनुभूति होती है या हो सकती है। अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।'[1]

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएं कविताएँ जीवन की लघुतम लेकिन महत्तम अनुभूतियों का व्यापक संसार रचती हैं, जिसमें सामान्य जन के दुख दर्द की अनकही कहानियाँ उभरती हैं। कवि भद्रलोक के छद्म को महसूस करता हुआ 'निःशब्दभेदी' अपनी कविताओं का संधान करता है। वह उस आदमी के साथ खड़ा है जो 'हाथ हिलाता बार-बार समझाता / जैसे राजी कर रहा अपने आप को / राह के लिए सफर के लिए जिंदगी के लिए'।[2] पर ऐसा अधिक समय तक नहीं होगा। जब मनुष्य के पास अपने को समझाने के लिए कोई तर्क नहीं बचेगा तब संघर्ष की ज्वाला प्रज्वलित हो जायेगी और यह द्वंदात्मक व्यूह भद्रलोक के शोषण के विरुद्ध विद्रोह करेगा। ये कविताएँ यथास्थिति को भंग करने का प्रयास करती हैं। हालाँकि कविता का तो धर्म ही है कि वह शिवेतर का नाश करे लेकिन यह कार्य बहुत श्रम साध्य है। तुलसी से लेकर निराला, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, विजेंद्र आदि ने शिवेतर का विरोध किया। नयी पीढ़ी के कवियों में विजय सिंह, सुधीर सक्सेना, राजकिशोर राजन, कुमार विश्वबंधु और प्रेम रंजन अनिमेष का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने अपने समय का भेदन करते हुए उसकी नयी व्याख्या प्रस्तुत की। प्रेम रंजन लिखते हैं -

'सोचता हूं कभी इस व्यवस्था को बदलने की
शुरुआत क्या नहीं की जा सकती / न्याय की पोशाक से.....?'[3]

कवि को अक्सर ऐसा महसूस होता है कि हमारी न्याय व्यवस्था में बहुत खामियाँ हैं। न्याय की पोशाक पराधीनता वाली है- 'काली सफेद / बहुत काली और सफेद बहुत-बहुत थोड़ी'।[4] यह पोशाक नर्सों और चिकित्सकों के सेवाभाव की दूधिया पोशाक से बहुत अलग है। गाँधी ने जिस सत्य की स्थापना के लिए संघर्ष किया, उस सत्य को तथाकथित राजनेताओं ने तोड़-मरोड़ कर परिभाषित किया है। गाँधी टोपी अब मैली हो चुकी है। उसे साफ करने की जरूरत है। उनके प्रासंगिक विचारों को आज के परिप्रेक्ष्य

में रखकर देखने की जरूरत है। प्रख्यात आलोचक खगेंद्र ठाकुर के अनुसार - 'गाँधी की सबसे बड़ी कमजोरी ये रही कि अपने विचारों को लागू करने के लिए कोई संगठन उन्होंने खड़ा नहीं किया। तो क्या उनके विचारों को लागू करने के लिए कम्युनिस्टों की मदद की जरूरत है? कम्युनिस्टों को पूँजीवाद का विकल्प भारत में खोजने के प्रसंग में गाँधी का भी उपयोग करना चाहिए।'[5] केदारनाथ अग्रवाल ने भी गाँधी की महत्ता को बताते हुए लिखा है- 'दुख से दूर पहुँच कर गाँधी / सुख से मौन खड़े हो / मरते-खपते इंसानों के / इस भारत में तुम्ही बड़े हो / जीकर जीवन को अब जीना / नहीं सुलभ है हमको / मरकर जीवन को फिर जीना/ सहज सुलभ है तुमको'[6]

भारत के मरते-खपते इंसानों को देखकर केदार की जो पीड़ा है वह स्वाभाविक है। वह अपने समय के जनपद को देख रहे थे, जहाँ अभाव, लाचारी और भूख का तांडव मचा हुआ था। त्रिलोचन भी शोषित और पीड़ित जनपद को महसूस कर रहे थे, जो किसी भी कष्ट के लिए अपने भाग्य को कोसता है- वह स्वयं से तो उदासीन है ही, व्यवस्था से भी उदासीन है। न तो उसके पास धर्म का बल है और न धन का। पर उसके अंदर की सजीवता अनोखी है। वह काल से भी होड ले सकता है। देश के ऐसे ही किसान-मजदूर वर्ग के जीवन में डूब कर, उनके संघर्षों में शामिल होकर कोई भी रचना प्राणवान बनती है। प्रेम रंजन का कवि यूँ ही नहीं कहता कि -

'केवल कामना करने से / तो नहीं / कि भरसक जूझने /
सामना करने से / सुनिश्चित होती / शांति'[7]

प्रेम रंजन अभिजन के नहीं, सामान्यजन के कवि हैं। उनके यहाँ लोक का व्यापक संसार उभरता है। हालांकि लोक की चर्चा तो संत साहित्य से ही होती आयी है। कबीर ने तो ऐसे शास्त्रों का विरोध किया जो अभिजन के स्वार्थ सिद्धि के लिए लिखे गये। दादू, रैदास, ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि ने मनुष्य की सत्ता को महत्वपूर्ण मानते हुए जाति-पाति के भेदभाव का विरोध किया तथा अभिजन द्वारा उत्पीड़ित जनता के पक्ष में खड़े हुए। इसी तरह भारत में समय-समय पर सामंती अत्याचारों के विरुद्ध आंदोलन होते रहे हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'संपत्ति शास्त्र' लिखकर लोकजागरण लाये। वे स्पष्ट कहते हैं कि जो शास्त्र भारत की निर्धनता की बात नहीं करता, यह प्रश्न नहीं उठाता कि देश की जनता निर्धन क्यों है और इसको दूर करने का उपाय क्या है, वह शास्त्र निरर्थक है। वास्तव में लोक ही वह टूल्स है जिसके माध्यम से समकालीनता को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जा सकता है। लोकधर्मी कवि विजेंद्र के शब्दों में 'जनतंत्र में जनशक्ति के अलावा और कोई ऐसा अस्त्र नहीं जो लोक को उसके कष्टों से मुक्ति दिला सके।'[8] हिंदी कविता में जीवंतता तब आती है जब वह लोक से जुड़ती है। ऐसा करने वाले कवि को मध्यवर्गीय मानसिकता का अतिक्रमण करना पड़ता है, क्योंकि यहाँ न मनोरंजन है न आराम और न ही 'सतरंगी आभा'। यहाँ तो अप्रत्याशित घटनाएँ घटती हैं। अनूठा चित्र उभरता है- जिसमें चकाचौंध चाहे न हो, पर एक तारतम्यता है- एक संगीत है जो जन और जीवन को जोड़ता है। उसमें प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ने की शक्ति भरती है, भले ही यह संगीत भद्रजन को बेतरतीब लगे,उनमें असहजता पैदा करे। यही कारण है कि प्रेम रंजन 'अँधेरे में माचिस की तलाश में एक कविता' शीर्षक से कविता लिखकर

लोक के संघर्ष को सामने रखते हैं। वह खोजना और जानना चाहते हैं कि दियासलाई की आखिरी तीली में अब भी कितनी आग बची है। वह जन में चेतना भरते हुए कहते हैं -

'या फिर इस बीच हो ऐसा / कि मेरी सोच की रगड़ से ही /
पैदा हो कोई चिनगारी / और इस रात में भर जाए रोशनी!'[9]

अराजक अंधकार के इस दौर में कवि जन में चेतना का प्रकाश भरता है। उसकी आस्था लोकशक्ति में है। कविता की लोकप्रकृति ही कवि को सामाजिक मूल्यों के प्रति आकृष्ट करती है। कवि पत्थर किनारे दूब को, धरती आकाश बाँधे वृक्ष को और सभ्यता के आसपास बहती नदी को प्रणाम करना चाहता है। परंतु अच्छाई के अनुचित प्रयोग से वह लोगों को बचने की सलाह देता है। जन के मन को ऐसे लोगों के सामने झुकने से रोकता है, जो चलते-पुर्जे हैं, लोक के प्रति जिसका हृदय शून्य है। कवि के लिए वही पूज्य है जो झुकने से पहले ही स्वयं हमें उठा ले और बाँहें पसार कर गले से लगा ले। अगर ऐसा नहीं है तो- 'पद को मद को / सत्ता को / गुरुता को / प्रभुता को / दूर से प्रणाम!'[10] यहाँ प्रेम रंजन की लोक पक्षधरता उजागर होती है। लोकधर्मी अंतर्वस्तु ही कवि की कविता को सार्थकता प्रदान करती है, क्योंकि लोक से वे सारी चीजें मिलती है, जो हमसे बहुत परिचित हैं, आत्मीय हैं और यथार्थपरक भी। लोक ही हमें धरती, परंपरा और जातीयता से जोड़ती है। अपनी परंपरा को छोड़कर हम लोकधर्मी हो ही नहीं सकते। इसीलिए तो प्रेम रंजन बार-बार अपनी परंपरा, अपनी जड़ों की ओर मुड़ते हैं। लोक की वे स्मृतियाँ जिन्हें भुलाया जा चुका है, वे उसे स्मरण करना चाहते हैं। प्रेम रंजन का कवि हर स्थिति से लड़ने के लिए तैयार हैं। जन के पक्ष में खड़ा कवि कहता है- 'धूप की तरह सीधे न आ सका / तो बौछारों की तरह मुड़कर / नहीं तो हवा सरीखा / ढूँढ़ता भटकता / किसी रास्ते / गंध की मानिंद किसी सूरत / .....भोर हो गयी तो / किरणों की नोक पर / ओस बनकर.../'[11] वह आयेगा जरूर! अभाव, लाचारी, जालसाजी से प्रताड़ित मनुष्य के लिए। इस अधूरे संसार में जीवन जीने के रहस्य को लेकर, वह जरूर आयेगा।

दरअसल कवि सामान्य से अतिसामान्य के प्रति बहुत सजग है। उसे अपने मिट्टी के छूटने का डर है। आज मिट्टी की हांडी, चूल्हा, दीया, घड़ा, गुल्लक हमसे दूर होते जा रहे हैं। इसका स्थान कृत्रिम पदार्थों ने ले लिया है, जो हमें ही नहीं हमारी पृथ्वी को भी नष्ट कर रहे हैं। पहले वर्षा की एक बूँद पड़ते ही घर से सोंधी महक उठने लगती थी लेकिन आधुनिकता के प्रभाव ने यह महक भी हमसे छीन ली। बच्चों को अब मिट्टी का स्वाद नहीं पता। उनकी पहुँच से मिट्टी बहुत दूर जा चुकी है। पर प्रेम रंजन प्रकृति में रचे बसे कवि हैं। उन्हें तो जीवन की सार्थकता नारियल में दिखाई देती है क्योंकि उसके छिलके से लेकर खोल तक कुछ भी जाया नहीं जाता! हर कुछ जीवन जीने, सँजोने, माँजने, बुनने-बनाने और रखने-सहेजने के काम आ जाता है -

'कुछ भी जाया नहीं हुआ / सब काम आया चाम से अस्थियों तक /
इससे अधिक क्या होगा किसी का / जीना भला सार्थक!'[12]

कवि भौतिक सुख सुविधा की चकाचौंध से व्यथित है, क्योंकि यह व्यवस्थित

व्यवस्था लोगों से उनकी संवेदना छीन लेती है। व्यक्ति अपना दर्शन, परंपरा और जीवन मूल्यों से विरत कृत्रिम जीवन जीने लगता है। उसके लिए मनुष्यता जैसी कोई चीज नहीं होती। जीवन के छोटे-छोटे भावों के लिए उसके पास न तो सम्मान है और न ही समय। समाज की ऐसी विडंबना को देखकर कोई भी सहृदय व्यक्ति आहत हो जायेगा। यही कारण है कि कवि छोटे-छोटे बिंबों के माध्यम से मनुष्य में मनुष्यता भरने का प्रयास करता है। वह ऐसे समाज पर व्यंग्य करता है जो वस्तु के प्रयोग के बाद उसकी उपयोगिता और उसके स्थान पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। कवि कहता है -

'भोर गरम कपड़ों की तरह / निकला था पहनकर जो विचार /
अब दोपहर की धूप में / वही हो गया है भार...'[13]

पूँजीवाद के कुप्रभाव के रूप में भी इस व्यवस्था को देखा जा सकता है। इस भयानक और क्रूर व्यवस्था ने मनुष्य को स्वार्थी और हिंसक का पर्याय बना दिया है। अभिजात सोच ने समतामूलक समाज को नष्ट करने का प्रण ही ले लिया है। बड़े ताकतवर देशों ने अपने स्वार्थ के लिए जरूरतमन्द देशों को सशर्त आर्थिक सहायता देकर उनकी अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। बकौल कवि विजेंद्र -'सदियों से पूँजीवाद ने साम्राज्यवाद के सहारे दुनिया के विकासशील और शांतिप्रिय देशों को बुरी तरह लूटा है। वहाँ की शिक्षा और संस्कृति को विकृत किया है।'[14]

कुचक्र चलाकर इस व्यवस्था ने देश में आर्थिक विषमता, जात-पात ,अंधविश्वास और धार्मिक उन्माद की स्थिति पैदा की है। इसी के प्रभाव के कारण हमारे अमूल्य संसाधन भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हवाले हैं। ऐसी विकट स्थिति से उबरना बहुत जरूरी है और इससे हम तभी उबर पायेंगे जब आत्मनिर्भर हो सकेंगे तथा आर्थिक रूप से समतामूलक समाज की स्थापना कर पायेंगे । उसी सम्यक समग्र सोच के साथ और महत्तर लक्ष्य की दिशा में प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ सक्रिय नजर आती हैं। 'हामिद का चिमटा' कविता सीमित संसाधनों में जीवन, सम्बन्धों और संवेदना के महत्व को प्रतिपादित करती है। वह बताती है कि प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए सार्थक निर्णय जरूरी है। कवि कहता है-

'कविता मेरे लिए / तीन पैसे का चिमटा है / जिसे बचपन के मेले में /
मोल लिया था मैंने / कि जले नहीं रोटियां सेंकने वाले हाथ /
कि दूसरों को दे सकूं अपने चूल्हे की आग!'[15]

कवि को जहाँ एक ओर रोटियाँ पकाने वाले हाथ की चिंता है तो दूसरी ओर वह जन-मन में आग सँजोने की बात करता है। अर्थात वह लोकमंगल की स्थापना के लिए जनमानस के क्रांतिकारी तेवर को धार देना चाहता है। समय के तकाजे को महसूस करता हुआ कवि 'काम' के वास्तविक स्वरूप की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। वह उस मोची के लिए एक जोड़ी पनही बनाना चाहता है, जो बरकते कोलतार की सड़क पर धूप में काम करते हुए अपनी चमड़ी झुलसाता है। धूप से बचने के लिए उसके पास केवल एक फटा छाता है। उस कुम्हार के लिए वह पानी से भरी सुराही रखना चाहता है, जो आँवे में तपकर निढाल हो गया है। कवि कविता का काम करता हुआ- 'चिड़ियों को समझाता / अपने चुरगुनों की तरह / किसान के बेटे के मुंह में भी

डालें / लाकर कहीं से दाना...'[16]

कैसी विडंबना है कि किसान, जो अन्न पैदा करता है, उसी के बेटे के लिए अनाज दुर्लभ है। यूँ ही तुलसीदास ने किसान की पीड़ा को व्यक्त नहीं किया था! वे अपने समय की दयनीय स्थिति को महसूस कर रहे थे । कवितावली में वे लिखते हैं -

'खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान,सोच- बस,
कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी?' [17]

क्या आज भी किसानों और मजदूरों की स्थिति संतोषजनक है? क्या व्यवस्था उनका शोषण नहीं कर रही है? पर अपनी एकता और जनशक्ति के कारण ही यह वर्ग टिका हुआ है। इसी वर्ग की पक्षधरता प्रेम रंजन अनिमेष करते हैं। वे एक सजग और संवेदनशील कवि के रूप में विपरीत परिस्थितियों के बावजूद उस आम आदमी पर अपनी लेखनी चलाते हैं जो उपेक्षित और प्रताड़ित है, जिसका विभिन्न स्तरों पर शोषण किया जाता है। ऐसे ही लोक की आवाज बनती है प्रेम रंजन की कविता। वे आजादी के अमृत वर्ष पर प्रश्न उठाते हैं कि इस अवसर पर साधारण जन का स्वप्न कोई अमृत प्राप्त करना नहीं है, बल्कि वह स्वच्छ पानी और हवा चाहता है; लेकिन वह भी उसे प्राप्य नहीं है।

'अभिशप्त आज भी कितने / जानवरों का भी छोड़ा /
मल और मैल से भरा / रुग्ण गरलजल / हलक में उतारने के लिए /
या जान देने के लिए / तड़प कर प्यास से... '[18]

आजादी के अमृत पर्व पर कवि कुछ ज्यादा नहीं चाहता । वह सबके लिए साफ पानी चाहता है। परंतु स्वतंत्रता के इतने वर्षों बाद भी नदियों के इस देश में इतना भी संभव न हो सका। कवि प्रकृति के साथ किए जा रहे खिलवाड़ का विरोध करता है। वह ऐसी व्यवस्था की आलोचना करता है जो भ्रष्टाचार पर टिकी हुई है। कवि कहता है - सच झुक गया / दब गया / पूरी तरह / ईमान उठ गया / आदर्श भूमिगत / अंतरात्मा अनुपस्थित... ।'[19]

चारों तरफ लोभ, लालच, ढोंग, ईर्ष्या का माहौल है। ऐसे में भौतिक सुविधाओं और प्रदर्शन प्रिय जीवन शैली से दूर विकास के कार्यों में लगे कर्मशील किसानों और मजदूरों के प्रति भी भद्रलोक का व्यवहार असम्मानजनक है। उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। यही कारण है कि समाज का करीब अस्सी प्रतिशत वर्ग ईमानदारी से श्रम करने के बाद भी अमानविकृत व्यवहारों का शिकार होता है। पर ऐसी जिंदगी जीने वाले उपेक्षित वर्ग में जीवन के प्रति आस्था भरपूर होती है। कवि भी नयी ऊर्जा के साथ इन लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। वह कहता है -

'दुख तो वही बरसों बरस पुराना हजार बाहों वाला /
पर अभी-अभी जन्मा है मेरे यहाँ / उसकी धमक नयी है / उसकी किलक नयी'[20]

प्रेम रंजन अनिमेष एक ऐसे कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिसमें लोक के स्पंदन को सुना जा सकता है। वे एक-एक शब्द को ठोक ठेठाकर कविता रचते हैं।

उनका हर बिंब जीवन के विभिन्न पहलुओं से रूबरू कराता है। उनकी लोक चेतना उस निम्न वर्ग को बल देती है, जो सदियों से शोषित और प्रताड़ित है। वे सामान्य-अतिसामान्य वर्ग के जीवन-संघर्ष को न केवल देखते है, बल्कि उसकी आँच को स्पर्श भी करते हैं। वे इस वर्ग की छोटी-छोटी क्रियाओं को बड़ी गंभीरता से देखते हुए उनके दर्द को अपने भीतर महसूस करते हैं। इसीलिए तो वह छाते की जगह आसमान लेना चाहते हैं जिसमें सभी एक साथ आ जायें और केवल अकेलापन भीगता रहे! उनकी कविताएँ लोक की पीड़ा को परत दर परत उजागर ही नहीं करती बल्कि जनशक्ति में आस्था भी व्यक्त करती हैं। कवि तुच्छ समझी जाने वाली दो ईंटों की उपयोगिता पर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। वह कहता है -

'दो ईंटों के चूल्हे पर / यह शीत भरी रात जगी है /
दो ईंटों के चूल्हे पर / शहर भर की आँख लगी है'[21]

ओम निश्चल सरीखे सुधी समालोचक भी स्वीकार करते हैं कि 'प्रेम रंजन का अब तक का जो काव्य संसार हमारे सामने प्रकट है, वह निश्चय ही आश्वस्त करने वाला और सामाजिक - मानवीय सभ्यता की अंतः स्थितियों को टटोलने वाला है।' प्रेम रंजन लोक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत कर अपनी लोकधर्मिता का परिचय देते हैं। वे अपना नित नया मुहावरा गढ़ते हैं, जो समसामयिक जीवन के विकास प्रक्रिया को उजागर करती है।

संदर्भ :

1. चिंतामणि, पहला भाग, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पहला संस्करण 2019, पृष्ठ 82
2. अंधेरे में अंताक्षरी, प्रेम रंजन अनिमेष, प्रकाशन संस्थान, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 90
3. वही, पृष्ठ 130
4. वही, पृष्ठ 129
5. वसुधा, संपादक- डॉ.कमला प्रसाद, जुलाई- सितंबर 2009
6. गाँधी के चित्र को देखकर (कविता), केदारनाथ अग्रवाल
7. आखिर किसके लिए (कविता), प्रेम रंजन अनिमेष, अखराई ब्लॉग, 28 फरवरी 2022
8. सौंदर्यशास्त्र भारतीय चित्त और कविता, विजेंद्र, अभिषेक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 8
9. बिना मुंडेर की छत, प्रेम रंजन अनिमेष, राजकमल प्रकाशन, प्रथम सं. 2017, पृष्ठ 50
10. अंधेरे में अंताक्षरी, प्रेम रंजन अनिमेष, प्रकाशन संस्थान, प्रथम सं. 2016, पृष्ठ 51
11. वही, पृष्ठ 11
12. बिना मुंडेर की छत, प्रेम रंजन अनिमेष, राजकमल प्रकाशन, प्रथम सं. 2017, पृष्ठ 19

13. वही, पृष्ठ संख्या 16
14. सौंदर्यशास्त्र भारतीय चित्त और कविता, विजेंद्र, अभिषेक प्रकाशन, प्रथम सं. 2006, पृष्ठ 159
15. अंधेरे में अंताक्षरी, प्रेम रंजन अनिमेष, प्रकाशन संस्थान, प्रथम संस्करण 2016, पृष्ठ 14
16. वही, पृष्ठ 16
17. कवितावली, तुलसीदास, गीता प्रेस, पृष्ठ 116
18. अमृत पर्व (कविता), अखराई ब्लॉग, 30 अप्रैल 2022
19. रचयिता (कविता), अखराई ब्लॉग, 31 जनवरी 2022
20. बिना मुंडेर की छत, प्रेम रंजन अनिमेष, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ 9
21. मिट्टी के फल, प्रेम रंजन अनिमेष, प्रकाशन संस्थान, प्रथम संस्करण 2001, पृष्ठ 88

लोक मर्यादा के कवि : प्रेम रंजन अनिमेष

डॉ. लक्ष्मीकान्त चंदेला

आज जब हर तरफ किस्म-किस्म के उद्धारकर्ता अपने-अपने ढंग से उद्धार करने में लगे हों फिर भी भौतिकता का मुलम्मा कसकुटाहट के साथ जमता ही जा रहा हो तब लोक मर्यादा के कवि प्रेम रंजन अनिमेष इस तिक्तता को बड़े जतन से साफ करने में लगे हुए हैं। पूरे लोक मन से आह्वान करते हुए बताते हैं कि 'माँ/ त्याग का/ दूसरा नाम है / बच्चे ने जाना/ माँ / चूल्हे की आग का / दूसरा नाम है।' यह कवि संवेदना की तासीर है और लोक मर्यादा भी।

जीवन में जमी तिक्तता ने मनुष्य को क्या से क्या बना दिया है? कितना बदल दिया कि उनके अपने ही पराए हो गए हैं। इतना ही नहीं सामाजिक सहिष्णुता जैसी चीज समाप्त-सी हो गई है तथा समझ और सोच में संकुचन पैदा कर दिया है। संबंधों की सरलता भी कठिन हो गई है तथा बची-खुची रिश्तों की डोर को हर कोई तोड़ने में ही अपनी उन्नति समझता है। रिश्तों-संबंधों के झीने बुनाव को जोड़ने वाले तो बिरले ही है। इसलिए संबंधों का बुनाव उलझन भरा हो गया है-

'इस विकसित तंत्र में / है नहीं जरिया ऐसा / जो पहुँचा पाए /
रास्ते में पड़े एक पांव के जूते को / उसके संगी तक।''[1]

ऐसा अमानुषिक ताना-बाना जो उसके अपनों तक पहुंचाने में असमर्थ है। इसलिए कवि को सरल, सहज, पुरातनता वाला लोक यादा आता है-

'याद आता / उम्र का वह पहर / जब आंधियों का नहीं था डर /
बल्कि कहीं उनका इंतजार / रात या दिन किसी घड़ी।'

निश्चित ही ये पंक्तियाँ हमें उस लोक में ले जाती हैं जहाँ से मनुष्य कोसों दूर होता जा रहा है जबकि सच मानिए जीवन का असल लोक वही है। इसी से मनुष्य अपनी साध पूरी कर पाता है तथा जी पाता है बेहतर ढंग से। कवि को इस प्रकृत लोक का इंतजार पहले भी था और आज भी है, मगर यांत्रिक युग का मनुष्य कहाँ इसकी चिंता कर रहा है। वह तो यांत्रिक से अतियांत्रिक हो जाने को आतुर है। आज की भौतिकता और अतियांत्रिकता कवि प्रेम रंजन को इसलिए सता रही है क्योंकि वे इसी परिवेश में पले-बढ़े हैं। इसलिए वह चाहता है कि समूचा मानव लोक प्रकृत तत्त्वों का स्वाद ले, और जड़-चेतन को एक कर समरस हो जाए। ज्ञान, क्रिया और इच्छा को संभावनाओं के सागर में मिलाकर विषय विकार को दूर कर सके यानी विषमता से दूर समरसता हासिल कर आनंद लोक में जा सके। इस संदर्भ में उस प्रसंग का उल्लेख आवश्यक है जिसमें धर्म-दर्शन के अध्येता पं. विजय शंकर मेहता कहते हैं- ''जीवन में शांति के लिए प्रकृति से ही जुड़ना पड़ेगा।'[2] अब प्रश्न उठता है कि प्रेम रंजन अनिमेष की कवि मर्यादा में किस तरह का लोक मर्यादित है? तब चेतना का आलोक और पाठक का मानस सहज ही कह पाता है 'उस मर्यादा के जिसमें प्रकृत व ग्राम्य लोक विस्तारित है। उसमें माटी, हवा, पानी, धूप-धूल-कीचड़, आम-जामुन, पांकर-पीपल की महमहाती खुशबू है, सौन्दर्य है। इन्हीं में चिरई-चुनगुन से लेकर कौआ-कोयल के काँव-काँव तथा मधुर तान है, जिनमें लोक का साधु समाज अपने जीवन के ताने-बाने बुनता है। भोजन-

भजन का ऐसा अनूठा भाव कि खाने वाला अलौकिक आनंद की अनुभूति करता है। प्रेम रंजन अनिमेष उसी लोक और धारा के कवि हैं जिनमें आम फूलने, फलने, गदराने और पकने की परम्परा को लोक विश्वासों में आधार देते है। उनके काव्य संसार में ऐसा गाँव है जो अमराई वाला परिवेश लिए हुए है जिससे जीवन की तिक्तता सहज ही दूर हो जाती है और सरसता के तत्त्व घुल-मिल जाते हैं। फिर उस मर्यादा के कवि हैं जो भौतिक अतिशयता से खंखड़ होते जीवन को सरस कर हरा-भरा कर देना चाहते हैं। जीवन को खुशियों से भर देना चाहते हैं। अतएव प्रेम रंजन अनिमेष की लोक मर्यादा का वैशिष्ट्य इस तरह प्रतिभाषित है-

1. वे काव्य को लोक उपादानों से सिरजते हैं।

2. उनमें प्रकृत व ग्राम लोक विस्तारित है।

3. आसपास के परिवेश से सरसता के तत्त्व ग्रहण करते हैं। परिवेश की सरसता ही उनकी लोक मर्यादा है।

4. जीवन की तिक्तता को बड़ी सहजता से दूर कर देते हैं।

5. नवें दशक के वरेण्य कवि हैं जिनकी लोक चेतना ने ऐसी धूम मचायी कि सारा ग्राम्य लोक धूल-धूसरित हो गया।

इस तरह लोक स्वर के धनी प्रेम रंजन अनिमेष अपने रचना संसार के लिए लोक से उपादान ग्रहण करते हैं। इन्हीं से उनकी कविता का लोक सिरजता है जिससे पाठक का मन उत्सकुता के स्वाद से भर जाता है। इनके रचना वैशिष्ट्य को विश्लेषकों ने बड़ी सहजता से स्वीकार किया कि- ''कौआ, कविता और किस्सागोई के तीन सूत्रों से बुनी गई यह कहानी समाज के आखिरी या सबसे कमजोर व्यक्ति की ताकत और जिजीविषा को रेखांकित करते हुए बड़ी सहजता से लोकल और ग्लोबल के अंतसंबंधों तथा दुरभिसंधियों का उद्घाटन करती है।''[3] लोक के अध्येता इन्हें 'भारतीय लोक की जड़ों में जीवित जिजीविषा के गायक'[4] मानते हैं।

असल लोक को जानना है तो प्रेम रंजन के रचना-लोक में विचरण कीजिए पता चल जायेगा कि जीवन में जमी तिक्तता को कैसे हटाया जा सकता है? और उनमें आम्र मंजरियों-सी रसधारा की बौछारें चलाना चाहते हैं। लोक का ऐसा मनोरम दृश्य खींचते हैं जिससे पाठक का अनुभव लोक मजबूत हो सीधे माटी से जुड़ जाता है, ऐसे-

मिट्टी ने उगाया / हवा ने झुलाया /
धूप ने पकाया / बौछारों ने भरा रस।'[5] (दाय कविता अमराई काव्य संग्रह से)

उनकी मर्यादा की व्याप्ति और अनुशासन ऐसे जोड़ पाती है माटी से-

''एक तो माटी की / छोटी टोकरी / दूसरे जेठ की / पकाती गरमी /
तिस पर नई-नई शादी / और उसके साथ / खाट के नीचे /
किसने रखा डाल / आमों का यह पका पाल.....।'[6] बेहद, अमराई काव्य संग्रह

पाल में पकते आमों की ओर ले जाना कवि के लोक ज्ञान परम्परा की समृद्धि का सूचक है। संकेत यह भी है कि लोक ज्ञान और अनुभव के ताप में पकी चीजें जीवन को सरस बनाती हैं। इतना ही नहीं लोक ज्ञान की धरोहरों को विरासत के रूप में सहेजने की परम्परा व आदर्श भी है। सच ही, अनुभव में पकना और बात है क्योंकि जो अनुभव में

पकता है, उसका तासीर लोक से जुड़ा हुआ होता है। कवि प्रेम रंजन की संवेदना इसी से मर्यादित है। इसलिए उनका संवेदी मन कहता है -

''जानता हूँ / पहले पहल उभरेगा तिरस्कार / कबकी जमी तिक्तता हृदय की /
चोप की तरह / तब फूटेगी मधुरता की धार / अलग मत करो / पहले दूध की तरह / हक लेने दो / चख लेने दो / छक लेने दो / इसे भी...।'[7] (हक, अमराई काव्य संग्रह से)

कवि संवेदना में ऐसा लोक मर्यादित है जो कभी पुराना नहीं पड़ता बल्कि नया-से-नया लोक बिंबित होता है, उस लोक में आम-इमली भी नया लोक गढ़ने में अहम् भूमिका निभाते हैं। लोक व्यवहार में जब भी और जितनी बार मिला जाता है, वह मिलन सर्वथा पहली बार जैसा ही होता है। जब तक यह भाव नहीं होगा तब तक मिलने की उत्सुकता नहीं आती। यानी व्यक्ति से व्यक्ति तथा व्यक्ति व प्रकृति के मिलन भाव की विशिष्टता प्रेम रंजन के भाव लोक की व्याप्ति है, यही उनके लोक की मर्यादा है जो 'अमराई' काव्य संग्रह में प्रणीत है-

'पास से गुजरते अक्सर / अक्सर दूर से बाँहें फैला कर /
रोक लेता आम का वह पेड़ पुराना / हर बार
मिलता हूँ मैं उसे / जैसे पहली बार ...।'[8] (चिरनव)

पेड़ पुराना है पर संवेदना का धरातल नया है, जिसे कवि अपनी मर्यादा में तपाकर लोक स्वाद का बना देता है। दरअसल यह लोक में आवाजाही से ही प्राप्त होता है, जैसे-

'मिठुआ, मिरचई, तोतापरी, / गुलाबखास, हिमसागर, दशहरी /
सोचते / उभर आते एकदम से / बिल्कुल अपने / उनके रूप-रंग-आस्वाद /
क्या ऐसा होगा एक दिन / नामों समेत हम उन्हें भूल जायेंगे /
और फिर अचानक कौंधेगी किसी की याद / तो लेबल के पीछे से झाँकेगा /
कोई अचीन्हा स्वाद ...।'[9] (सुध)

लोक स्वाद भी कवि की लोक मर्यादा का वैशिष्ट्य है इसलिए काव्य-लोक का रूप-रंग आस्वादन से परिपूर्ण है। जीवन में ऐसे ही लोक स्वाद, लोक गंध-रूप-रंग बनाए रखने के लिए लोक की चीजों से परिचय बनाए रखना चाहता है। उनके नामों का महत्व और उन का स्मरण बनाए रखना भी लोक की मर्यादा है। दरअसल लोक में नाम पहचान का पर्याय होता है, वह संबंधों की प्रगाढ़ता और घनिष्ठता को प्रबल बनाते हैं, जैसे 'पहला नाम' में-

'बच्चे ने सुना / माँ / त्याग का / दूसरा नाम है / बच्चे ने जाना / माँ /
चूल्हे की आग का / दूसरा नाम है / माँ का पहला नाम / ढूँढ़ रहा है बच्चा...।'[10]

तो वहीं 'माँ की याद' शीर्षक कविता में लोक से दूर होते दुनिया की चिंता है तथा उससे जूझते कवि का अन्तर्द्वन्द्व है। वे स्वयं लिखते हैं-

'कोई अंतर्द्वन्द्व / कोई असमंजस / अपनी फिक्र /दुनिया की चिंता।'[11]

भला ऐसी चिंता लोक मर्यादा के कवि के अलावा कौन कर सकता है? हाँ, लोक स्मृतिजीवी श्रेष्ठ पुरुष ही लोक की जड़ों को पहचानते हुए कह सकता है-

'पहली स्मृतियाँ / अमिट हैं अब तक / कोई बरसों पहले का /
सामने आ जाए / तुरंत उसे / पहचान लेते।'[12] (माँ की याद-2)

लोक से जुड़े, माटी में सने व्यक्ति संवेदना की वे स्मृतियाँ आज भी जस-की-तस हैं जिन्हें कभी बरसों पहले देखा, सुना और जिया था। सच्चा जीवन भी वही होता जिसे बचपन से लेकर जीवन पर्यन्त अनुभूत करते हैं, आँखों में समक्ष रहते हैं, बसे रहते हैं मन में, अनुभूति में, फिर उमड़ते-घुमड़ते संवेदना में तपते-तपते शब्दों में रूपायित हो जाते हैं, पर व्यथा ऐसी कि 'का सौं कहूँ सजनी' वाली बात है। इसीलिए व्यथित हो कह उठते हैं-

पर इन दिनों / सब भूल गए / कोई सुध नहीं /
जैसे किसी शून्य में खोये / कोई दुःख चिंता आशंका नहीं।'[13] (माँ की याद')

इसी भाँति प्रेम रंजन अनिमेष की कविता 'एक पाँव का जूता' की पंक्तियों में लोक मर्यादा का अक्स देखिए जहाँ लोक-मन की व्यथा एक तलाश बन सकी है, यथा-

' मैं ईश्वर को देखना चाहता हूँ इस दुनिया में
अपने बड़े पाँव में एक नन्हा जूता पहने / दूसरे की तलाश में।'[14]

उन्हीं की कविता 'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' का सच शताब्दियों का सच बनकर उभरा है जो कवि प्रेम रंजन अनिमेष का आदर्श है -

'क्या उसे ख्याल है कि यह / इक्कीसवीं सदी की सुबह है /
और जिसे वह घर की धूल समझकर / बुहार रही उसमें दरअसल है /

प्रेम रंजन के मानस में उस संतति की जाग्रति का बोध भी है जो नेपथ्य में जागकर लोक को बचाए रखने को समर्पित है। 'नींद में चलना' की काव्य पंक्तियां देखिए-

'और कुछ संततियाँ / नेपथ्य में जागी / एक ओर बचाए उसकी वह धुन /
दूसरी तरफ उसे हद से / बाहर जाने से...।'[16]

इस तरह लोक मर्यादा के कवि प्रेम रंजन के काव्य-संसार में 'उम्मीद' हर हाल में मौजूद है। ऐसी उम्मीद जो जीवन में रच-बसकर जीने के सूत्र थमाती है। निश्चित ही ऊँची हाँक और खूब बड़े परिवर्तन की माँग नहीं करती परन्तु जीवन में सरसता-समरसता और शांति के लिए प्रकृति से जुड़े रहने का आह्वान करती है। अतएव जो अनुभव में पकता है उसका तासीर लोक से जुड़ा हुआ होता है। फलतः संवेदना की धीमी आँच और लोक उपादानों से सिकी-सिरजी कविता उनकी लोक मर्यादा का आदर्श बनी और जीवन-जगत को देखने का विस्तृत फलक।

संदर्भ :

1. अनिमेष, प्रेमरंजन : एक पाँव का जूता, https://www.hindwi.org/kavita/ek-paanv-ka-juuta-prem-ranjan-animesh-kavita , date 02/9/22
2. दैनिक भास्कर छिंदवाड़ा, बुधवार 7 सितम्बर 2022, अभिव्यक्ति पृ.04
3. samwed.com 9 oct 2020 (कथा संवेद - 8) दिनांक 29/08/2022
4. pustak.org/index.php/books/bookdetails/13773, date 02/09/2022
5. अनिमेष, प्रेमरंजन : अमराई, https://www.hindwi.org/kavita/amraaii-prem-ranjan-animesh-kavita, दिनांक 09/07/2022

संवदेना में धड़कता जीवन लोक

सुरेश चन्द मीणा

हमारे समय के महत्वपूर्ण युवा कवि प्रेमरंजन अनिमेष का नया कविता संग्रह है 'संगत', जिसमें उन्होंने अपने पिताजी के जीवन के अंतिम दिनों को बहुत गहरे और मार्मिक रूप में उकेरा है। यह एक सीधे, सरल और जीवन मूल्यों के साथ जीने वाले एक ऐसे मनुष्य का वृतांत है, जो सहृदयों को बिना प्रभावित किए नहीं रहता। अनिमेष की कविताओं में उदारता, अपनापन, आत्मीयता और पारिवारिक संबंध बहुत सहज रूप में आते हैं। आज के समय में जब परिवारों में बिखराव की स्थिति पैदा हो रही है, वहीं यह कविता हमें जोड़ने का कार्य करती है। अनिमेष की कविताओं में भावों, जुड़ावों और संवेदना से धड़कता एक ऐसा जीवन लोक हमारे सामने आता है, जिसमें हृदय इतने विशाल हैं कि अपनों के साथ-साथ दूसरों को भी अपनाने का पर्याप्त स्पेस मिलता है। ऐसा अपनापन बहुत ही कम देखने को मिलता है-

अपनापन बढ़ाना / जो नहीं अपना / उसे भी अपनाना'

बीमार पिताजी की चिंता इन कविताओं में बड़ी मार्मिक रूप में उभर कर सामने आती है कि पिताजी उनको छोड़कर (मृत्यु) कहीं चले ना जाएँ। इसलिए वे एक बच्चे की तरह सोने से पहले उनके एक पैर की चप्पल छुपा देते हैं-

रात को सोने से पहले उनके एक पैर की चप्पल छुपा देता।'

और जब भी पिताजी अंदर से दरवाजा बंद करते तो एक शंका रहती है कि अंदर से कहीं चले न जाएँ - 'इधर हम डरते / दरवाजा बंद करके भीतर से कहीं चले ना जाये।'

किसी भी परिवार में एक बुजुर्ग का होना भर अन्य सदस्यों के लिए सहारे का कार्य करता है। कवि के लिए उनके पिता का होना किसी वरदान से कम नहीं है। आज के समय में जब लोग वृद्धावस्था में अपनी ही संतान द्वारा तिरस्कृत किये जाते हैं ऐसे समय में यहाँ पिता-पुत्र का संबंध मजबूत दिखायी देता है जो एक सुखद अनुभव है। वे जानते हैं कि बुजुर्ग व्यक्ति किस तरह परिवार के लिए प्रेरणा का कार्य करते हैं, इसलिए वे चाहते हैं कि काश में पिताजी की 'जान' को बांध पाता-

देह को जहाँ / तहाँ / बाँधा रच- रचकर

जान को बाँध पातें...'

पिता की मृत्यु के बाद भी कवि के मन में उनकी स्मृतियाँ शेष रहती हैं और उनको घर में महसूस करते हैं। उन्हें लगता है जैसे पिता उनका हाथ छोड़कर जा रहे हैं-

तुम गये / तो यों लगा / जैसे हाथ छोड़ बच्चे का /

कोई सड़क पार कर गया।' उम्मीद, पृ. 191

यह कविता पिता के संघर्ष के साथ-साथ माँ के संघर्ष की भी कविता है। वे किस तरह अपने पति की उम्र, सेहत और उनके जीवन के लिए लगातार सेवा करती हैं, जो कि पति के साथ एक सच्चे साथी की तरह अपनी भूमिका निभाती हैं-

सच्चा संगी / वही / जो वक्त पड़ने / ओखत आने पर हो जाये भंगी ।'

और माँ-पिता को जीवित रखने का हर संभव प्रयत्न करती हैं और वे स्वयं उनके

साथ - जाने की साध रखती हैं। इस तरह पिता ने माँ की सहायता से जीवन समर जीत लिया - जीता / तुमने / जीवन का / हर समर पिता /

क्योंकि मां रही / हरदम तुम्हारे साथ '

इस तरह कुछ ही शब्दों में कहें तो यह कविता मनुष्यता का बेहद मार्मिक और हृदयस्पर्शी अभिलेख है। जो इस कविता के फलक को और अधिक विस्तृत करता है। यह कविता मनुष्यता और जीवनमूल्यों के लिए बार-बार पढ़े जाने की माँग करती हैं। शब्दों के वाग्जाल में यह कविता हमें उलझाये नहीं रखती। छोटे-छोटे पदों से और सीधेपन से कहकर कवि ने संवाद स्थापित किया है अपने पाठकों से। इसलिए इस कविता की पठनीयता बनी रहती है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कविता शृंखलाएँ

अमेय कान्त

प्रेम रंजन अनिमेष ने कई विषयों को लेकर लंबी कविता शृंखलाएँ लिखी हैं। उनकी वृहद कविता शृंखलाएँ जैसे 'संगत', 'कोई नया समाचार', 'माँ के साथ', 'अमराई', 'ऊँट' आदि खासी चर्चित रहीं। हर कविता शृंखला की कविताएँ वैसे तो स्वतंत्र हैं लेकिन फिर भी एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ये एक ही विषय के इर्द-गिर्द रहते हुए भी कवि के वृहद् अनुभव संसार में गहराई तक जाती हैं। पाठक हर कविता शृंखला के साथ परत-दर-परत जुड़ता चला जाता है। इन कविताओं के जरिए पाठक जैसे अलग-अलग दरवाजों से एक गहरे भावबोध वाले संसार में प्रवेश करता है। ये गहन अनुभूति की कविताएँ हैं जिनका विस्तार बाहर की तरफ अधिक न होकर भीतर की तरफ दिखाई देता है। हर कविता शृंखला में एक विषय के इतने आयाम हैं, इतनी परतें हैं कि पाठक कई बार अचंभित रह जाता है कि किसी विषय का विस्तार इस तरह और यहाँ तक भी हो सकता है!

अपने संग्रह 'ऊँट' की भूमिका में वे एक जगह कहते भी हैं, 'मुझे लगता है आज के समय में ऐसी कविता तभी अधिक कारगर होगी जब एक साथ उसमें लघुतम और महत्तम दोनों का समावेश हो। यानी जिसकी हर इकाई अपने आप में पूरी और स्वतंत्र कविता हो और मिलकर एक सिलसिले से जुड़कर एक विराट कविता बुनती हो!' उनकी ज्यादातर कविताएँ कम शब्दों में होती हैं और बेहद संप्रेषणीय भी! यहाँ कवि की ऐसी ही कुछ महत्वपूर्ण कविता शृंखलाओं पर बात करने की कोशिश की गई है।

कोई नया समाचार

'कोई नया समाचार' संग्रह की कविताएँ बचपन और उम्मीदों की कविताएँ हैं। ये बचपन को कई तरह से देखती हैं। नवजात शिशु से लेकर उसके स्कूल जाने और जानने-समझने की उम्र का हो जाने तक की इन कविताओं में कवि ने बच्चों के भीतर की दुनिया की मासूमियत को गहराई से पकड़ा है। उनका कवि दूध पी रहे बच्चे के आँचल उघाड़कर हँसने में उम्मीद को देखता है। एक कविता में वे कहते हैं 'जो सबसे छोटा है उसी से / सबसे अधिक उम्मीद है / दरवाजों के / खुलने की...'।

'मदद' जैसी कई कविताओं में बहुत सुंदर बिम्ब हैं। जब एक सिपाही बच्चे के जूते का फीता बाँधता है और इस दौरान सारा यातायात रुक जाता है। वे कहते हैं 'किसी बच्चे की तरह / मैं चाहता हूँ / ताकत झुके तो इस तरह / रास्ता रुके तो इस तरह'। 'छवि' कविता में वे माँ के स्तन को शिशु के हाथों में सुरक्षित पृथ्वी की तरह देखते हैं। 'सार्थक' में कविता लिखे कागज से बच्चा हवाई जहाज बना लेता है। शायद इसी तरह कविता ज्यादा दूर तक जा सकेगी। उनकी चिंता उस बचपन को लेकर भी है जहाँ जगमगाहट तो काफी है लेकिन उसमें जीवन नहीं है। बच्चे के अकेले रहने से ज्यादा खतरनाक कवि को यह लगता है कि बच्चा अब अकेला रह लेता है। कवि की चिंता इस बात को लेकर भी है कि बड़े हो चुके बच्चे के पास से अब कच्चे दूध की महक जा चुकी है। अब उससे बारूद की महक आने लगी है।

दुनिया में बदलाव लाने की उम्मीदें बच्चों पर टिकी हुई हैं लेकिन शामियानों में उन्हें

ही जगह नहीं दी जा रही है। जबकि 'उठना उन्हें चाहिए / उठना उन्हें होगा / जिन्होंने देख ली दुनिया/ जो कर चुके तमाशा'। इसी तरह एक कविता में वे कहते हैं कि बच्चों को हम अपना उत्तराधिकार दें, न कि अपना भार! 'नाखून' कविता में घर-घर जाकर नाखून काटने वाले के जरिए महत्वपूर्ण बातें कही हैं जैसे 'राजा एक-दूसरे से मिलने में रहते व्यस्त / और बढ़ाते रहते एक-दूसरे के लिए नाखून' और 'इस दुनिया के नाखून भी / बहुत बढ़ गए हैं / लेकिन इसे नींद कहाँ!'। 'सोच' कविता में उनका कहना है कि हम बड़ों की स्थिति भी बर्फ का गोला चूसते उस बच्चे जैसी है। चीजें हमारे हाथ से फिसलती जा रही हैं। हम हाथ से छूटती चीजों पर ध्यान दें या जो बचा है उस पर! 'आपबीती' कविता हमारी उन अधूरी रह गई आकांक्षाओं के बारे में है जो हम जीवन में चाहते थे लेकिन समय ने हमें उसी तरह असहाय कर दिया जैसे कोई बच्चा उसकी निकर से बेल्ट निकाल लिए जाने के बाद हो जाता है। उसकी सारी कोशिश बस अपनी निकर को फिसलने से बचाने में लग जाती है। 'कोई नया समाचार' में वे कहते हैं 'बहुत दिनों से आई नहीं / कोई प्यार भारी चिट्ठी / बहुत दिनों से दुनिया का सब कुछ / ढूँढ रहा एक बच्चे की मुट्ठी'।

अच्छे आदमी की कविताएँ

इन कविताओं में आदमी के भीतर की अच्छाई, संवेदना और बहुत सामान्य लेकिन विलुप्त होते जा रहे मानवीय मूल्यों को बचाए रखने की बातें हैं। एक कविता में अनिमेष कहते हैं कि अभिभावक अपने बच्चे को तो अच्छा बनाना चाहते हैं पर यह कोई नहीं चाहता कि आगे जाकर वही बच्चा अच्छा आदमी भी बने। अच्छे आदमी को लेकर व्यंग्य भी कई कविताओं में दिखाई देते हैं जैसे किसी के हाल पूछने पर अच्छा आदमी खुद कैसे कहे कि वह अच्छा है। इसी तरह चिट्ठियों में 'हम अच्छे हैं' का अर्थ अच्छेपन की तरह लिया गया है। 'इसी तरह लिखी जायें / ढेर सारी चिट्ठियाँ / तो अच्छी हो जाये / सारी दुनिया!' (इसी तरह)। आज जिस तरह से मानवीय मूल्यों का ह्रास देखने को मिल रहा है, अच्छाई की परिभाषा भी बदल रही है, ऐसे में किसी को रास्ता बता देना, फूल को न तोड़ना, किसी अनजान को देखकर महज मुस्कुरा भर देना भी मायने रखने लगा है। एक जगह कहा गया है, 'क्या समय ऐसा है / जिसमें कुछ बुरा न करना ही / अच्छा करना है...?'

इन कविताओं का अच्छा आदमी विलुप्तप्राय है, वह किसी पद पर रहते हुए उसका दुरुपयोग तो दूर, ढंग से उपयोग भी न कर पाता। 'खयाल' कविता में कुछ अच्छे लोग हाथ धोने के बेसिन को सिर्फ इसलिए इस्तेमाल नहीं करते कि पानी की धार से उसमें पड़ी मकड़ी मर सकती है। 'मिश्र धातु' कविता में वे कहते हैं, 'खालिस पुण्य कौन करता / अच्छा वही / वही सच्चा / सीधे सादे झूठ कहे / जीवन में जिसने / की गिनी चुनी बेईमानी...'। इसी तरह 'भीतर बाहर' कविता में फूल गोभी के जरिए सवाल उठाया गया है कि आदमी भी फूल गोभी की तरह क्यों नहीं होता जिसके अन्दर की बनावट भी वैसी ही है जैसी वह बाहर से दिखती है। बल्कि इसके उलट आदमी प्याज की तरह होता है जिसकी कई परतें होती हैं और अन्दर की परत तक पहुँचते-पहुँचते आँसू आ जाते हैं या हाथ कट जाता है।

'चुनना' कविता आज के समय की विडम्बना को सटीक ढंग से दिखाती है। इसमें कवि कहते हैं 'चावल चुनना / क्या एक जीवनदृष्टि है / या आज कंकड़ों की बहुतायत में / चावल चुनने में ही समझदारी'। इसी में वे आगे कहते हैं 'अब दौर ऐसा है / उन्हें कुछ कर नहीं सकते / कोई चारा नहीं इसके सिवाय / कि भले आदमी की तरह चुपचाप अपने दाने बीन कर ले जाया जाय'। 'फेरा' कविता में वे कहते हैं 'अच्छे लोग / चिट्ठियों को भी छोड़ते हैं दूर तक / अपनों की तरह'। 'नागरिक समय' कविता किसी भी समय के लिए बहुत प्रासंगिक है। यह सोचने पर मजबूर करती है कि 'अच्छा समय' दरअसल क्या और किसके लिए है! इन कविताओं में कई विडम्बनाओं को बहुत सीधे-सरल ढंग से व्यक्त किया गया है। 'खासियत' कविता में कवि देश को नर्तकी के रूप में देखता है। उसके कुछ अंग तो थिरक रहे हैं लेकिन कुछ लहू-लुहान हो चुके हैं। 'खोज' कविता इस चीज को लेकर तीखा व्यंग्य है कि आज किसी भी तरह के काम या नौकरी में 'अच्छा आदमी होना' क्या वाकई कोई अर्हता हो सकती है!

कुछ कविताएँ मनुष्यता के इस संकट को रेखांकित करती हैं कि आज जहाँ आदमी का आदमी होना मुश्किल हो चुका है वहाँ उसका अच्छा होना कितना दुर्लभ है। अच्छा होने और अच्छा दिखने के फर्क को 'शिनाख्त' कविता बहुत खूबसूरत ढंग से दिखाती है, 'अच्छा होना / जंग छुड़ाना है / लोहे के औजार से / या सोने का पानी चढ़ाना / पीतल के पात्र पर?' 'अवांछित' कविता उस व्यवस्था पर है जो अनामंत्रितों और अवान्छितों को समाप्त कर देती है। यह आदमी आज के मशीनी समय के साथ नहीं चल पाता और 'कैसे आदमी हो?' का सवाल उसके इस सवाल पर खत्म हो जाता है कि 'वह / आदमी कैसे है?'। 'सहानुभूति' कविता इस विडंबना की ओर इशारा करती है कि मेज के उस ओर खड़ा संत्रस्त संघर्षरत आदमी अगर किसी तरह इस ओर वाली कुर्सी तक पहुँच जाता है तो क्या फिर मन में अपने जैसों के लिए सहानुभूति बचा पाता है? 'नाई' कविता बताती है कि आज के समय में घटते जा रहे प्रेम के बीच अगर कोई क्षण भर के लिए बालों को सहला दे तो प्रेम से वंचित आदमी की रुलाई फूट पड़ती है। 'अंतिम बात' में वे कहते हैं 'किसी शोक सभा में / आदमी पढ़ता है / अपना ही शोक वक्तव्य / जो दरअसल होता / इस दुनिया इस जीवन में / किसी के लिए / कुछ न कर पाने का / माफीनामा'। संग्रह इस आशंका के साथ खत्म होता है कि क्या कोई दिन ऐसा भी होगा कि कंधा देने के लिए कोई अच्छा आदमी बचा न रह जाएगा!

अकेले आदमी की कविताएँ

'अकेले आदमी की कविताएँ' श्रृंखला में अकेले रहने वाले आदमी के भीतर का खालीपन है। इसमें उस खालीपन को भरने की उसकी कोशिशें भी हैं जहाँ वह घर लौटने पर खुद अपने घर के दरवाजे की घंटी बजाता है। आदतन वह अकेला होने पर पर भी नहानघर की कुण्डी चढ़कर रखता है। बाहर फैले हुए शोर शराबे के बीच उसके भीतर अपने अकेलेपन का सन्नाटा फैला हुआ है। उसे चिट्ठियों का इंतजार रहता है। वह कई बार दरवाजा खोलकर देखता है कि ऐसा तो नहीं कि किसी ने दस्तक दी हो और वह सुन न सका हो। उसे यकीन है कि उसके बीमार होने पर शहर में रहने वाला उसका एकमात्र परिचित उससे मिलने आ ही जाएगा लेकिन यह आशंका भी है कहीं वह तब

तक ठीक हो गया तो शायद अगली बार ऐसा न भी हो। यह अकेलापन महानगरीय शोर-शराबे के बीच अपनी रोजी-रोटी की मजबूरी में रहने आए लोगों की कविताएँ हैं। घर परिवार से दूर इन लोगों के साथ बस वे खुद हैं और अकेलापन महसूस होने पर अपने ही साथ अपने खयालों में दूर तक निकल जाते हैं।

ऊँट :

अपनी लम्बी कविता शृंखला 'ऊँट' को कवि ने स्वयं 'अपने समय का महाकाव्य' कहा है। इस संग्रह में ऊँट जैसे विषय के जरिए जीवन के इतने आयामों को उकेरा गया है कि जीवन के सभी पक्ष इन कविताओं में दिखाई देते हैं। ऊँट को लेकर जो लोककथाएँ हैं, जो प्रचलित कहानियाँ और मुहावरे हैं, उनमें से कई को इस कविता शृंखला में देखा जा सकता है। ऊँट को हमारी दुनिया के नजरिए से बदसूरत जानवर की तरह देखा जाता है। उसकी इसी कथित बदसूरती पर कवि में कई कविताएँ हैं। एक जगह वे कहते हैं - 'इन भद्दे होंठों को भी / कोई चूमता होगा? / क्या ऊँट भी करते हैं प्यार? / कहीं ऐसा तो नहीं / कि चूमते चूमते ही / मोटे हुए इतने ये होंठ? / और गले लगते लगाते / उचक गई गर्दन इस तरह?' इन कविताओं में यह बात बार-बार घूमकर आती है कि सौन्दर्य को लेकर हमारे पैमानों पर सही न उतरने वाले इस प्राणी के जीवन में भी क्या कभी प्रेम आता है? अगर आता भी है तो किस तरह आता होगा? यहाँ मरुस्थलों के बीच ऊँट की अनवरत यात्रा के बीच प्रेम की गहरी उत्कंठा दिखाई देती है। 'इसी असंतुलन से जब / उठता रेत बवंडर / जब उड़ती चोट करती रेत / मूँद देती पलकें तमाम और सारे द्वार / छुप जाते चेहरे साफों में / कौन देखता / नष्ट होते सौंदर्य सबका / किसने देखा / ऊँट को ओढ़ते अकेली अनोखी सुंदरता / करते अपने न देखे जाने का विलाप...!'

शहर में ऊँट की उपस्थिति महानगरीय परिवेश में अचानक आ गए सुदूर गाँवों में रहने वाले प्राणी की असहजता और निरीहपन की याद दिलाती है। ऊँट इस परिवेश में फिट नहीं बैठ पाता है। उसके पैर रेगिस्तान की गर्म रेत पर तो आसानी से चल लेते हैं पर शहर की सड़कों के कोलतार में धँसने लगते हैं। ऊँट के जरिए कवि ने अपनी कविताओं में प्रतीकों के रूप में बहुत सी बातें कही हैं। एक जगह वे कहते हैं कि जिस रेगिस्तान में ऊँट इतने बरसों से रह रहा है वहाँ भी वह छला जा रहा है। मृगतृष्णा उसे वहाँ भी छल रही है। अपनी लदाई से अनजान ऊँट जैसे अनंतकाल के लिए एक अनंत मरुस्थल में चलता ही चला जा रहा है। उसकी यात्रा खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही। 'ऊँटदौड़' कविता में कवि ने बताया है कि अरब देशों में होने वाली ऊँटदौड़ में किस तरह तस्करी से लाए गए छोटे बच्चों को ऊँट पर बैठकर या लगभग बाँधकर अमीर शेख ऊँटों की दौड़ का मजा लेते हैं। इन ऊँट दौड़ों में कई बार ये मासूम बच्चे मर भी जाते हैं। ऊँट मनुष्य की इस पाशविकता के चलते बदहवास भाग रहा है। वह नहीं समझ पा रहा कि बच्चे की खिलखिलाहट रुलाई में बदलकर शांत क्यों पड़ गई है। इसी तरह उन्नीस ऊँटों के बँटवारे की प्रचलित कथा को लेकर आज के समय की विसंगतियों को बताती कविता भी काफी महत्वपूर्ण है। 'ऊँट के मुँह में जीरा', 'अब आया ऊँट पहाड़ से नीचे', 'किस करवट बैठेगा ऊँट?' जैसी प्रचलित कहावतों का भी कवि ने अपनी इन

कविताओं में बहुत प्रभावशीलता के साथ किया है। ऐसा करते हुए ये कविताएँ जरा भी नहीं भटकतीं और ऊँट के जरिए जीवन के गंभीर प्रश्नों से जूझती रहती हैं। इस संग्रह से गुजरते हुए पाठक को एक समूचे महाकाव्य से गुजरने का अनुभव होता है।

माँ के साथ :

यह शृंखला माँ पर केंद्रित है। इनमें ममत्व और वात्सल्य की भीनी खुशबू है। 'माँ ने पहले हमें बनाया/ फिर हमारे लिए / बनाई / दुनिया / गंध स्वाद से भरी'। संग्रह में माँ की उपस्थिति को दिखाती कई कविताएँ हैं। एक जगह कहा गया है, 'गेंदड़े में खुंसी है सुई / माँ होगी / यहीं कहीं... '। कुछ कविताओं में माँ की अपने अजन्मे शिशु के प्रति भावनाएँ हैं, कुछ में जन्म ले चुके बच्चे के प्रति भावनाएँ हैं। 'मैं और माँ जन्म ले रहे थे साथ साथ' जैसी कविताओं में बहुत सुंदर बिम्ब हैं। एक कविता में प्रसव पीड़ा के दौरान माँ और शिशु के सम्बन्ध को बहुत सूक्ष्मता से दिखाया गया है। 'मातृपक्ष' कविता में कवि कहते हैं 'इस दुनिया में / इतने पक्ष प्रतिपक्ष / माँ तुम क्या / केवल वक्ष / आहत सदा / सर्वदा निःसृत / और नहीं तुम्हारा कोई पक्ष...?'। शृंखला की कुछ कविताएँ आज की परिस्थितियों पर कटाक्ष करती हैं। चिड़ियों के बच्चों का बड़े होने पर हमेशा के लिए दूर कहीं चले जाना वैसा ही है जैसा आज परिवारों में देखने को मिल रहा है। आज की पीढ़ी में एक तरह की जल्दबाजी है, हड़बड़ाहट है। उनके पास इतना समय भी नहीं है कि पैर छुएँ, वे घुटने ही छूकर चले जाते हैं। यहाँ उसकी पीड़ा भी है कि सयाने हो चुके बच्चे अब उसकी बात काटने लगे हैं।

'मुझे लगता ना और हाँ जोड़कर बनी है माँ' (स्वभाव)। कई कविताओं में देशज शब्दों का बहुत खूबसूरती से इस्तेमाल किया गया है जैसे 'माँ के पीठे'। इसी तरह 'लोर' शब्द के दोनों अर्थों 'आँसू' और 'मीठे घोल' पर 'जीवन भर तो रही लोर घोरती' बहुत सुंदर प्रयोग है। कवि ने इन कविताओं में माँ के दूध को कई तरह से याद किया है। एक कविता 'दूधजुड़ाई' रस्म पर है जिसमें विवाह के पहले बेटा अपनी माँ के सीने से लगता है और माँ वात्सल्य से भर जाती है। इन कविताओं में स्त्री का अकेलापन भी है। 'आदमी के पास तो / जीवन भर रहती है / लेकिन औरत के हिस्से में / कितनी आती है अपनी माँ'। इसी तरह पिता के चले जाने के बाद माँ अकेली रह गई है, 'माँ कुछ कहना चाहती / पर कोई सुनने वाला नहीं / न कहीं सुनवाई... '

शृंखला में आगे की कविताएँ माँ के न रहने पर हैं। इनमें माँ की अंतिम यात्रा और तर्पण के बाद बेटे की मनःस्थिति है। माँ के जाने के बाद जीवन में आई रिक्तता के बारे में कविताएँ हैं। 'स्मृतिगंध' में माँ के जाने के बाद बने भोजन में मौजूद माँ की स्मृतियों की गंध है। इनमें जीवन की आपाधापी से मुक्त हो चुकी माँ है। माँ का जाना जीवन से ममत्व और वात्सल्य का विदा होना भी है। बड़े से बड़े की स्थिति भी एक असहाय छछनते छौने की तरह हो जाती है। 'माँ याद आ रही है' इस शृंखला की महत्वपूर्ण कविता है। महानगरीय भागदौड़ में फँसा व्यक्ति माँ को याद करते हुए कहता है 'चिमनियों से उठते बगूलों को देख / कोई तुक है क्या / चूल्हा लीपती फूँकती सुलगाती / माँ के याद आने का'। संग्रह के ब्लर्ब में वरिष्ठ कवयित्री अनामिका की टिप्पणी है जिसमें वे कहती हैं 'इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ से गुजरना गहन अनुभव और संवेदनाओं से संपृक्त समृद्ध

होना है और पहले से कहीं अधिक मानवीय!'

संगत :

इस संग्रह की कविताएँ पिता पर केन्द्रित हैं। पिता के रहने और पिता की स्मृतियों पर तो कई कविताएँ लिखी गई हैं लेकिन पिता के अंतिम समय को लेकर लिखी गईं ये कविताएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं, इसलिए भी कि पिता की मौजूदगी में भी उनके धीरे-धीरे दूर जाने को महसूस किया गया है। भूमिका में कवि ने अपने पिता के बारे में विस्तार से लिखा है। पिता जिन्होंने कभी अपने संबंधों का दुरुपयोग तो दूर, उपयोग करने का भी नहीं सोचा, जिनके कारण ही घर में पढ़ने का वातावरण भी बना। उन्होंने अपने बच्चों की रचनात्मकता को पोषित किया, एक सरल जीवन जिया। शायद उनका यही भोलापन और सीधापन बाद में दुनियादारी के लिहाज से अवगुण हो गए।

अंतिम समय में व्यक्ति की नजरें गुजरते हुए समय पर टिकी होती हैं। वह समय को बाँधकर रख लेना चाहता है। यही गुजरता हुआ समय और घड़ियाँ कई कविताओं में आए हैं। 'अंतिम घड़ी' में घड़ी का सुंदर बिम्ब है। 'अन्तराल की उस अवधि के / एक एक क्षण को गिनते/ इस तरह देखते घड़ी को / जैसे वह भी एक नुस्खा हो' (आदमी का समय)। यह ऐसा समय होता है जब छूटते हुए समय में भी आदमी से समय नहीं छूटता है। इसी तरह कई तरह की छोटी-छोटी चिंताएँ बनी ही रहती हैं जैसे रक्तचाप नापने वाले के पैसे दिए या नहीं, बच्चों को समय पर स्कूल से लेने कोई गया या नहीं! अपने अंतिम समय में नाउम्मीदी के बीच भी व्यक्ति के भीतर कहीं न कहीं थोड़ी सी उम्मीद बाकी रहती है। 'आवाहन' में अनिमेष कहते हैं कि किसी सुबह पिता फिर से अकेले घूमने निकल जाएँगे यह उम्मीद उनके मन में अभी भी बाकी है।

व्यक्ति हर शाम अपनी साँसों को डूबते देख रहा है 'जैसे कोई छाया / लगा रही छलाँग / सियाही के समंदर में'। वह जिंदगी और मौत के मुहाने पर है। उससे अब न तो ठहरा जा रहा है, न ही जाया जा रहा है। कई कविताओं में महसूस किया जा सकता है कि सब कुछ जानते-बूझते भी जीवन के मुहाने पर खड़े व्यक्ति को हम रोक लेना चाहते हैं। एक जगह अनिमेष कहते हैं 'रात सोने से पहले / उनके एक पैर की चप्पल / छुपा देता / जैसे बचपन में किया करते / जब घर से किसी को / जाने नहीं देना चाहते'। इसी तरह 'कहीं' में वे कहते हैं 'इधर हम डरते / दरवाजा बंद कर भीतर से / कहीं चले न जाएँ'। कई कविताएँ शारीरिक क्षमताओं के क्षरण को लेकर हैं जो इस उम्र में होना सामान्य होता है। जैसे कि वे ऊँचा सुनते हैं। कई बातें अब इशारों में ही होती हैं। लेकिन कभी-कभी वे अनकहा भी सुन लेते हैं और हमें चौंका देते हैं। स्मृतिभ्रंश और विभ्रम को लेकर कई कविताएँ हैं। पिता रात को उठकर गिनती गिनने लगे हैं, एक ही शब्द दोहराते रहते हैं। 'चिरनव' कविता इसी 'स्मृतिभ्रंश' के बारे में बहुत खूबसूरती से कहती है। मिलने आने वाला पहले तो चौंकता है कि पिता उसका नाम भूल गए हैं लेकिन खुश भी होता है कि उसे एक नया नाम मिल गया है। 'वाकया' जैसी कुछ कविताओं में बुढ़ापे में फिर से लौटता हुआ बचपन है। यहाँ अलमारी से बिस्कुट निकालकर खाते पिता हैं। नित्य क्रियाएँ अब बिस्तर पर ही होती हैं। पिता के मैले को माँ गोबर की तरह उठाती है। बेटा उनके शरीर की साफ-सफाई करता है। अब कुछ भी 'गोपन' नहीं है। इसे लेकर

पिता के मन में खुद के प्रति एक चिढ़ भी है।

'अनिवार' इस शृंखला की महत्वपूर्ण कविता है। व्यक्ति के अंतिम समय में स्त्री का साथ होना बहुत बड़ा सहारा होता है। एक जगह कहा गया है, 'स्त्री का होना जरूरी / जीवन को सेने-संजोने / बचाने / बढ़ाने के लिए'। लेकिन आगे यह कविता इसके दूसरे पक्ष को देखती है। कविता इस प्रश्न के साथ समाप्त होती है कि क्या हर स्त्री के अंतिम समय में भी उसे कोई स्त्री मिल पाती है। इसी तरह 'अनदेखे' में कवि कहते हैं 'सबको पिता की चिंता थी / किसी ने देखा नहीं / माँ किधर जा रही...'

शृंखला में बाद की कविताएँ पिता के गुजरने के बाद के समय को लेकर हैं। हम जाने वाले का जाना तुरंत स्वीकार नहीं कर पाते हैं। इन कविताओं में पिता के जाने के बाद की भौतिक और आंतरिक रिक्तता है। पिता के रहने के समय की व्यस्तताएँ अचानक समाप्त हो जाती हैं। पिता की स्मृतियों पर लिखी गईं ये कविताएँ बहुत मार्मिक हैं। ये कविताएँ पढ़ते समय पाठक नितांत अकेला हो जाता है। पिता से मिली विरासत के बारे में यह कहना काफी महत्वपूर्ण है - 'पिता / तुमने दिया / कविता का इतना बड़ा ठाट / जीवन का यह चौड़ा पाट'।

साइकिल पर संसार

एक समय था जब साइकिल जीवन का अभिन्न अंग हुआ करती थी। साइकिल बच्चों का खेल भी थी, बड़ों के लिए रोजगार का सहारा भी। साइकिल घर से गहरे तक जुड़ी होती थी जैसे घर का ही कोई सदस्य हो! इस शृंखला की कविताएँ साइकिल के ही इर्द-गिर्द रची गई हैं। ये साइकिल को लेकर कई ऐसी स्मृतियों को ताजा करती हैं जो कहीं न कहीं हम सबके भीतर अलग-अलग ढंग से मौजूद हैं। जैसे बचपन में आधे पैडल मारकर साइकिल चलाना, साइकिल का पंक्चर हो जाना, साइकिल की चेन उतर जाना या टूट जाना, किसी का साइकिल की हवा निकाल देना इत्यादि। इन कविताओं में काम-धंधे की तलाश में निकले लोगों के साथ उनकी साइकिलें भी सफर कर रही हैं। कभी वे ट्रेन की खिड़कियों से लटकी हैं तो कभी नाव में लदी हुई हैं। किसी समय साइकिल प्रेम का भी एक जरिया हुआ करती थी। प्रेमिका को साइकिल पर अपने आगे बिठाकर घुमाने और प्रेम करने की चाहत भी इन कविताओं में महसूस की जा सकती है। विद्यार्थी जीवन के संघर्ष के दिनों में साइकिल ही एकमात्र सहारा थी जिससे होम ट्यूशनें की जाती थीं। 'कैरियर वाली साइकिल' में जीवन के यथार्थ हैं - 'वे साथी / जिनकी छरहरी साइकिलों में / कोई कैरियर नहीं था / कुछ था भी तो आगे बस उनके लिए / वे सब एक एक कर / निकलते गए आगे'। पुरानी साइकिलों को लेकर लिखी कविता 'दाय' में अनिमेष कहते हैं 'तरक्की पर है मुल्क / पता नहीं / जब सुनहले अक्षरों में लिखा जाएगा / विकास का इतिहास / इन बुजुर्ग साइकिलों का / उसमें कोई स्थान / रहेगा या नहीं'। 'सामना' कविता उस स्थिति के बारे में है जब अचानक साइकिल के सामने कोई आ जाता है और हड़बड़ाहट में दोनों तय नहीं कर पाते कि किधर मुड़ना है। सामने से आ रहा व्यक्ति किस तरफ मुड़ेगा, इसे लेकर वे कहते हैं, '...अब तक का उसका / जीवन सारा होगा खोलना / अभी तक और आगे का / उसका यह फैसला / भाँपने के लिए'। आगे वे कहते हैं कि जो भी तय करना है, इसी ठिठके हुए पल में

करना होगा। इस तरह यह कविता एक सामान्य-सी स्थिति के पीछे जीवन के गहरे अर्थों को खोलती है। 'बेजोड़' कविता साइकिल के साथ इंसानी रिश्ते को लेकर है - 'मुझमें भरी है हवा / और उन पहियों में साँस / देखो / इस रिश्ते में / कोई जोड़ कहाँ / सोचो सचमुच / इस रिश्ते का / कोई जोड़ कहाँ।।'।

कुछ पत्र, कुछ प्रमाणपत्र और कुछ साक्ष्य

इस संग्रह की कविताएँ चार भागों में बँटी हैं। पहले भाग की कविताओं में कई तरह के पत्र हैं, कुछ भेजे जा चुके हैं, कुछ भेजने से रह गए हैं, कुछ लिखे जाने की प्रक्रिया में हैं, कुछ पत्र ऐसे भी हैं जो गंतव्य पर पहुँच गए लेकिन पढ़े जाने से रह गए हैं। कुछ पत्रों में प्रेम की खुशबू है, बात को कैसे शुरू और खत्म किया जाए, इसे लेकर झिझक है। मौन का भी पत्र है जिसमें कवि कहते हैं 'है अबोला / तो क्या हुआ / अपने हाथों से / भरकर लिफाफे में / भेज दो / पन्ना कोरा'। एक पत्र स्लेट पर लिखा जा रहा है जिसमें मजदूरी पर गई माँ का नन्हा बेटा उसके लिए कुछ लिख रहा है। एक पत्र में आतिशबाजियों के कारखाने में काम करने वाला बच्चा दुनिया के राजा से पूछता है कि उनकी यह दुनिया ऐसी क्यों है कि लोग रात-दिन खटकर भी दो जून का सुकून नहीं जुटा पाते। दूसरे भाग की कविताओं में कुछ और पत्र हैं जैसे शुद्धि पत्र, सूचना पत्र, अनुशंसा पत्र, नीति पत्र आदि जो देश की राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों पर कटाक्ष करती हैं। 'संपादक के नाम एक पत्र' में वे लिखते हैं 'किसी खबर के पीछे / कोई सोच नहीं / खाली समझ है / फायदे नुकसान की'। तीसरे भाग की कविताओं को 'कुछ प्रमाणपत्र' के अंतर्गत लिखा गया है। 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' में व्यवस्था पर पुनः कटाक्ष करते हुए अनिमेष कहते हैं, 'कोई आपत्ति नहीं है / अगर सब शांतिपूर्वक मिल लूट बाँट कर खायें / कोई किसी के आड़े न आये / आये भी तो न टकराये / अपनी ओर उँगली उठने पर ऊँचे आसनों पर बैठे हाकिम / औरों को अधिक अधम बतायें / कहीं से गुजर न हो बिना एक हरी पत्ती दिखाये / अनैतिकता और अराजकता को शोभनीय पदों में सजाया जाये'। इसी तरह 'अशेष प्रमाणपत्र', 'जीवन प्रमाणपत्र', 'मृत्यु प्रमाणपत्र', 'चरित्र प्रमाणपत्र' आदि अन्य कविताएँ भी इसी शृंखला में हैं। संग्रह का तीसरा खंड 'साक्ष्य' नाम से है जिसमें प्रेम, सच्चाई, आदमीयत जैसे विषयों पर कविताएँ हैं।

नींद में कविताएँ

'नींद में कविताएँ' में नींद की कई ध्वनियाँ हैं। एक नींद वह है जिसके आगोश में कोई जान ही नहीं पा रहा कि वह क्या कर रहा है। देश-दुनिया एक नींद में चलाई जा रही है, नींद में हमने हथियार बना लिए हैं। यह ऐसी नींद है जिससे जागना बहुत जरूरी है। लेकिन विसंगति यह है कि जागने से ठीक पहले नींद में चलने वाले बिस्तर पर लौट आते हैं और कभी जान ही नहीं पाते कि सोए में वे भटक गए थे। जब दुनिया में पल भर में इतना कुछ बदल जाता है तो नींद में जाना एक बहुत बड़ा जोखिम भी है। यह जानते हुए भी लोग नींद को आँखों में बसा लेते हैं। वहीं कवि नींद में उम्मीद भी देखते हैं कि रात बीतेगी और फिर सुबह होगी, सूरज फिर निकलेगा। नींद की कई सकारात्मक ध्वनियाँ भी इस शृंखला में हैं। नींद में चूमने के अहसास, नींद में किसी को निहारने, नींद में हँसने, बोलने, रोने पर कविताएँ हैं।

ये हमारे साझा अनुभवों की कविताएँ हैं इसलिए पाठक इनसे तुरंत जुड़ाव महसूस करने लगता है। एक जगह कहा गया है, 'कितने दिन से / पूरी नहीं हुई नींद मेरी / जबकि मेरे दिन में / रातें ही रातें'। 'नींद में स्त्री' कविता में वे कहते हैं 'उसे जगाने के लिए उसकी पलकें / नहीं चूमती सूर्य की पहली किरणें / अपने भीतर की चेतावनी घड़ी के / चीखने से बहुत पहले / खुल जाती नींद उसकी / सिरहाने गिरे / सपने की आवाज से'। सवाल है कि ऐसा क्यों है कि कुछ लोगों के लिए दूसरों की नींद चुराई और उड़ाई जाती है। कवि अपनी नींद से अचकचाकर नहीं उठना चाहता बल्कि अपने पुराने आत्मीय संसार में लौटने के विश्वास के साथ उठना चाहता है।

अमराई

आम हमारे जीवन में गहरे तक रचा बसा हुआ है। इस शृंखला की कविताएँ आम को लेकर हैं, आम के पेड़ को लेकर हैं। कवि चाहता है कि कुछ फल पेड़ पर भी रहने दिए जाएँ ताकि पंछी और राहगीर भी उन्हें खा सकें! 'दाय' कविता में कहा गया है 'नहीं सब नहीं तुम्हारा / सब मत तोड़ो / छोड़ दो कुछ फल पेड़ पर / पंछियों के लिए / पंथियों के लिए'। इन कविताओं में आमों की अलग-अलग किस्में हैं, आम की महक है। एक कविता में अनिमेष कहते हैं कि गुठली यानी अहम इतना छोटा होता जाए कि एक समय पर आकर उसका पता ही न चले। आम को बच्चों की तरह खाया जाना चाहिए ताकि उसके रस से हम इतने सराबोर हो जाएँ कि वह आत्मा तक लग जाए - 'क्या चखा आम / रस अगर उसका / पहनावे में न लगा / या तो बच्चों की तरह / लो आनंद / नंग निहंग / याद रहे लेकिन / रस फिर वह / लगा जाएगा / आत्मा के संग'। 'जीवन ऋण' में अपनी झोपड़ी के आगे मनमगन बैठी बूढ़ी महिला आम चूस रही है, यह सोचते हुए कि इस दुनिया के बाद यह आस्वाद फिर कहाँ मिलने वाला है। जो कुछ भी है, यहीं है।

रेजगारियाँ एवं अन्य काव्य शृंखलाएँ

अपनी लघु कविताओं को कवि ने 'रेजगारियाँ' कहा है। उनकी कई लघु कविताएँ इसी शीर्षक से प्रकाशित भी हुई हैं। इन कविताओं में कवि की महीन संवेदनाएँ हैं और आज के समय की विसंगतियाँ भी जैसे 'पेड़ों के कटने के खिलाफ / लिखता हूँ कविता / और कटते जाते पेड़'। व्यक्ति बिकना तो नहीं चाहता लेकिन अपना ही मोल करके खुश भी हो जाता है। एक कविता में कवि कहते हैं, 'हर झूठ है / दरअसल एक खोए हुए सच का कारोबार'। अलग-अलग विषयों पर लिखी हुईं इन कविताओं को पढ़ने के दौरान पाठक एक खास तरह के भावबोध से होकर गुजरता है। हर कविता एक दृश्य खड़ा करती हैं और सभी दृश्यों का आपस में एक खास तरह का जुड़ाव देखा जा सकता है। ये दृश्य तस्वीरों की तरह हैं जिनमें मानवीय संबंधों की खुशबू है, मनुष्य का अपने परिवेश के साथ रिश्ता है। जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी घटनाओं के जरिए जीवन मूल्यों को कवि ने ऐसी कई कविताओं के माध्यम से बेहद खूबसूरती से दर्ज किया है जैसे 'बाएँ हाथ की कविताएँ' में एक हाथ के टूटने पर दूसरे हाथ का सब कुछ संभालना और ठीक होने पर विनम्रता से उसी हाथ को घर की चाबी सौंप देना। इसी शृंखला में कवि एक जगह लिखते हैं 'एक टूटा हाथ भी / बहुत कुछ जोड़ सकता

है'। 'लोकशास्त्र' में मुंबई की लोकल गाड़ियों पर कविताएँ हैं। इनमें कवि लोकल की रेलमपेल के बीच जीवन को धडधडाते देखता है। इसमें लोकल के कई दृश्य कवि ने दर्ज किए हैं। और ये महज दृश्य नहीं हैं, इनके पीछे कवि की एक गहरी जीवन दृष्टि भी है। यही जीवन दृष्टि 'रक्त सम्बन्ध' जैसी कविता शृंखला में भी देखने को मिलती है जिसमें कवि मच्छरों के काटने को व्यंग्यात्मक ढंग से कविता में लेकर आते हैं।

'अल्पसंख्यक' शृंखला की कविताएँ हाल ही में प्रकाशित हुई हैं। इन कविताओं में अल्पसंख्यक शब्द की कई ध्वनियाँ हैं। एक तरह के अल्पसंख्यक वे लोग हैं जो सच्चे और ईमानदार हैं। कवि कहते हैं कि दुनिया इन्हीं मुट्ठी भर लोगों के सहारे चल रही है। एक तरह की अल्पसंख्यक स्त्री जाति है जिसे व्यवस्था अपनी ही बच्ची को गर्भ में समाप्त कर देने के लिए मजबूर कर देती है। एक तरह के अल्पसंख्यक वे लोग भी हैं जो बहुसंख्यकों द्वारा चुनकर सत्ता में आते हैं और सिर्फ अपने ही लोगों के लिए काम करते हैं। इसी शृंखला की एक कविता में देश में धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक वर्ग को हर पार्टी द्वारा राजनीतिक रूप से इस्तेमाल किए जाने की विडम्बना भी है।

प्रेम रंजन अनिमेष ने इनके अलावा भी कई कविताएँ इसी तरह शृंखला के रूप में लिखी हैं। इन कविताओं से गुजरते हुए यह महसूस किया जा सकता है कि उनके पास अपनी कविताओं में कहने के लिए बहुत कुछ होता है। उनकी ज्यादातर कविताएँ बहुत सामान्य विषयों पर केन्द्रित होती हैं लेकिन अपने जीवनानुभवों के साथ जीवन मूल्यों को वे हर विषय के माध्यम से व्यक्त करने में सक्षम हैं, चाहे वह ऊँट हो, आम हों या फिर मच्छर ही क्यों न हों। शृंखला के रूप में होने के कारण से उनकी कविताओं में एक तरह की बहु-रेखीयता होती है। उनकी कविताओं में स्थानीयता की खुशबू है, जीवन की विसंगतियाँ हैं, रोजमर्रा की जद्दोजहद है। उनकी कविताओं में एक खास तरह का ठहराव होता है। शब्द उनकी कविताओं में बहुत सहजता से आते हैं। अपने शब्दों या वाक्य रचनाओं में अनूठापन लाने का वे कम ही प्रयास करते दिखाई देते हैं। कई ऐसे शब्द भी हैं जो तत्सम हैं लेकिन वे भी कविता को बोझिल नहीं बनाते। उनकी ज्यादातर कविताओं में वाक्य छोटे होते हैं, शब्द कम ही होते हैं लेकिन उन शब्दों की गूँज उतनी ही ज्यादा होती हैं। ये कविताएँ सामान्य विषयों पर लिखी हुईं बड़े फलक की कविताएँ हैं जिन्हें पढ़कर पाठक संवेदना के स्तर पर अपने आपको और अधिक समृद्ध महसूस करता है।

स्नेह, विश्वास और संघर्ष के साथ अगले दिन की सोच सहेजे स्त्री-जीवन

- डॉ. रीता दास राम

प्रतिष्ठित भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित प्रेम रंजन अनिमेष समकालीन हिन्दी रचना संसार के अत्यन्त महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उत्कृष्ट सृजन से कविता और कथा साहित्य में अद्वितीय पहचान बनाने वाले अनिमेष के आठ काव्य संकलन, कुछ उपन्यासिकाएँ और कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। भावों में भीगी पलकों की झपक और उठती नजर के यथार्थ में रची बसी उनकी रचनाओं के साथ पाठक पूरी तन्मयता से जुड़ जाता है। फिर पूरी होती है जिज्ञासा, जिसमें तृप्ति का भाव है और आनंद का उत्साह भी- कला संस्कृति के तत्वों को जोड़ता सँजोता हुआ। पाठक पढ़ते ही नही, मानो जीते हैं उन रचनाओं को- उनकी महीन बुनावट और बड़े वितान का संज्ञान लेते, जरूरी मुद्दों और सरोकारों से जुड़ते हुए।

अनिमेष की कविताएँ जीवन की राहों में सच और सोच के हाथ थामे हर उस जगह पहुँचती हैं जहाँ जमीन सख़्त है और भावनाएँ कोमल! फिर पाठक भी काव्यात्मकता की रोशनी और ध्वनियों को पकड़ता बिना थके बढ़ता रहता है। उनकी रचनाओं में समाज के उस वर्ग के भी विविधवर्णी चित्र हैं, जहाँ अभाव और सीमाओं की उपस्थिति के बावजूद अनाहत जिजीविषा अपना अधिकार ढूँढ़ती है। सम्बन्ध आपस में गुँथे हुए हमदर्दी, परवाह, पारस्परिकता और प्यार के अर्थ बोते हैं। जमीन से जुड़े होने का एहसास कविता को पाठकों तक सहज प्रेषित करता है- स्थानीय प्रचलित शब्दों का व्यावहारिक और विवेकपूर्ण प्रयोग करते हुए। क्लिष्टता और जटिलता से दूर रहकर भावों की सारगर्भित अभिव्यक्ति के साथ उनकी कविताएँ जीवन के सूत्र पिरोती हैं।

'बिना मुँडेर की छत' वर्ष 2017 में 'राजकमल' से प्रकाशित प्रेम रंजन अनिमेष का महत्वपूर्ण कविता संग्रह है। अन्य काव्य संकलनों (' मिट्टी के फल', ' कोई नया समाचार', 'संगत', 'अँधेरे में अंताक्षरी', 'अच्छे आदमी की कविताएँ', 'अमराई', 'माँ का जन्मदिन') के अलावा स्त्री जीवन से जुड़े उनके काव्य संग्रह 'माँ के साथ' और 'नींद में नाच' शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं, जो कवि के निरंतर और गतिशील लेखन कार्य की मिसाल हैं। इन उत्कृष्ट संग्रहों में अपने दैनंदिन परिवेश को संबोधित करती कविताएँ जीवन के यथार्थ को अंकित करती अपने नव उत्कर्ष की ओर बढ़ती जाती हैं- भविष्य की सुबह वाली सोच लिए।

'माँ के साथ' में माँ की उपस्थिति को परिभाषित करती उनकी छोटी सी कविता हैः 'गेंदड़े में खुँसी है सुई / माँ होगी / यहीं कहीं'! अपने अर्थ संदर्भों और संस्तरों में बहुत बड़ी यह कविता अन्तस को अनोखी संवेदना से भर देती है। माँ के होने को एक बच्चे की दृष्टि से पकड़ती यह रचना स्थापित करती है कि कितना जरूरी है माँ का दिखना और उसकी खोज हर उस दृश्य में जहाँ से रिक्त है वह! अनिमेष की कविताओं में दृश्य चलचित्र की तरह जीवन्तता के साथ जुड़ते रहते हैं और पाठक उन्हें आत्मसात करता चला जाता है। फिर जहाँ भी तथाकथित सभ्य सम्भ्रान्त समाज के भावों, विचारों और

बातों के आगे धुंध नजर आती है, उनकी रचनाएँ सोच की रगड़ से चिनगारी पैदा करती हैं- रोशन विचार से भरी, अँधेरों को हटाती मिटाती!

कवि के पास ऐसी साफ पारदर्शी दृष्टि है, जो किसी शोर शराबे के बिना कोमलता और सादगी के साथ पाठकों के भीतर उतरती जाती है। भाषा भी अपनी सरलता में स्थानीय बोली का भीगता प्रवाह लिए सहज स्वाभाविकता के साथ शब्दों, वाक्यों और पंक्तियों से जुड़ती चली जाती है। उनकी कविता 'रेल पटरियों के किनारे जिनके घर हैं' विकास के हाशिये पर सिमटकर रहने को मजबूर लोगों का सटीक बिम्ब रचती है। पटरियों से गुजरती रेलगाड़ी उनकी नींद में खलल डालती है और घर की छत और दीवारों के कम्पन से भीतर बसता भय विकास के विरोधाभास को खोल कर रख देता है। साथ ही साथ इस सच को भी- कि कैसे तरक़्क़ी की होड़ और दौड़ से परे 'पिछली पाँत' में कहीं पीछे छूटे लोग शतरंज के प्यादों की तरह पिटते कटते रहते हैं।

बच्चे की पैदाइश पर स्त्रियों की आपसदारी को लेकर कवि की पंक्तियाँ क्या खूब लगती हैंः इस तरह सृष्टि में / एक स्त्री / सौंपती दूसरी को / और उसके साथ समस्त संसृति को...! कवि के बहुप्रतीक्षित संग्रह 'माँ के साथ' की अद्भुत पंक्तियाँ हैं ये, जिनमें माँ के साथ जीवन अनुभव को कल्पनातीत संवेदना के साथ यथार्थ की जमीन पर उतारा गया है। कवि का कहा पाठक सुनते हैं कि 'शब्द से अर्थ / अर्थ से भाव बड़ा' होता है और 'माँ के साथ' पूरी होती है ममता और वात्सल्य की यात्रा। अनिमेष की रचनाएँ जीवन संस्कृति से जुड़ी स्त्री के बहुआयामी पहलुओं को बड़े सलीके से रेखांकित करती हैं।

जीवन को माँ की ममता के मुकाबिल तोल कर अनिमेष उसकी रिक्तता महसूस करते हैं और स्वयं को माँ में बदल कर देख सकने की बात करते हुए पूछते भी हैं कि क्या कोई ऐसा कर सकता है : बदल सकता है अपने 'मैं' को 'माँ' में? अनन्त आकाश में गूँजता रहता है यह शाश्वत प्रश्न की तरह! अपनी माँ से जुड़े अनुभव के आधार पर ममता को विस्तार देते हुए वे देखते हैं उसका बूढ़ा नहीं, निरन्तर गाढ़ा होते जाना। शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, पितृपक्ष को सामने रखते हुए और माँ के लिए कोई 'पक्ष' नहीं, यह लखते देखते अनिमेष बेधक प्रश्न पूछते हैंः 'माँ तुम क्या केवल वक्ष'? यह ऐसा कटाक्ष है, जिसका उत्तर देने के बदले पितृसत्ता का मौन काफी नहीं है।

'माँ के साथ' में प्रेम रंजन अनिमेष बहुत प्रश्नाकुल हैं और कई जरूरी सवालों के जवाब ढूँढ़ने की कोशिश करते हैं। बहुत शालीन, किन्तु उतना ही गम्भीर प्रश्न है कवि का कि जो माँ की कोख के जाये हैं, उससे जनमे हैं, क्या हर भाषा से मिटा पायेंगे गाली- माँ बहन बेटियों वाली? मानवता के सरोकार से जुड़ा और जन्म से लेकर अंतिम समय तक माँ की यादें सहेजता पूरा संग्रह कवि की अमूल्य निधि है, जिसमें स्मृति है, संस्कृति है और अपने समय के साथ दृढ़ता से उपस्थित हैं माँ! कविता उनकी आपबीती की पाती, जिजीविषा और जीवन्तता का गान है, जिसे सुनना ही नहीं, गुनना भी अत्यावश्यक है।

कवि हमेशा परिवार, समाज और परिवेश से जुड़ते हुए सारे रिश्तों तथा उनके सरोकारों से सम्बद्ध रहता है। सूखने के लिए रखे गेहूँ को लेकर फिक्रमंद कवि को

पक्षियों और बारिश का ही नहीं, पश्चिम की काली आँधी और लड़ाकू विमानों से गिरती बारूद का भी डर सताता है। इस कठोर समय के भीतर भरी भयावह सच्चाइयों का प्रतिबिंबन है यह- उन तमाम अन्देशों को आईना दिखलाते हुए, जिन्होंने समय के साथ बस अपने रंग रूप और शक्ल सूरत में बदलाव किया है। इसके साथ सीढ़ी से उतरती माँ के फिसलकर गिरने से बिखरते दानों को बटोरने सँजोने की चिंता भी है- छीजते जीवन मूल्यों को बचाने की सोच रेखांकित करती हुई।

बहुआयामी स्त्री जीवन को सूत्रबद्ध करता एक और शीघ्र प्रकाश्य कविता संग्रह है प्रेम रंजन अनिमेष का- 'नींद में नाच'। इस संकलन की एक कविता में टूटी चप्पल और धूल भरे पैरों पर जाती कवि की दृष्टि सड़कों को लेकर शिकायत से भरी लगती हैः 'सड़कों को ऐसा नहीं होना चाहिए कि पाँवों को सहसा कर दें निहत्था'। इसमें कई कविताएँ लड़कियों पर हैं- जो 'प्रेम के बिना भी सकुशल हैं' और जिन्होंने 'पत्थरों की खोह में छुपा कर रखे हैं अरमान अपने'। एक कविता के आधार पर कहें तो 'चिकने पन्नों पर सजीले अक्षरों में / लड़की का जीवन वृत्त यह / जीवन अनुपस्थित है जिससे'! पूरा संग्रह इसी अनुपस्थिति में उपस्थिति की खोज है- ऐसे कठिन हालात में, जहाँ लड़की या स्त्री को लेकर कहीं चुप्पी है तो कहीं समस्याओं के हल के प्रति उदासीनता।

प्रेम रंजन अनिमेष अपनी बहनों को देखते समझते हुए लड़कियों के जीवन से जुड़े विविध आयामों को शब्द देते हैं। वे महसूस करते हैं उनका सुख-दुख के साथ जीना, लड़कर मुश्किलों से पार पाना और साबित करना खुद को समाज के कठोर धरातल पर, जहाँ उन्हें साँस भर आराम कोई देना नहीं चाहता- अपनी 'व्यवस्था' को बिखरने से बचाने के लिए। इससे अलग, होना तो यह चाहिए कि उनके मसलों से समाज का दूसरा पक्ष भी पूरी तरह जुड़े, उनके हल में भागीदारी निभाये।

अन्तस को झिंझोड़ती अनूठी कविता पंक्तियाँ हैं अनिमेष की- 'एक जूठी थाली में पड़ा इतिहास मनुष्यता का / जिसमें घर की स्त्री / कुछ निकालने जा रही / अपने लिए'! फिर द्रवित भावों को अभिव्यक्त करती ये पंक्तियाँ पाठकों का ध्यान बरबस खींचती हैं-'जलती हुई पृथ्वी पर / अपनी ही छाया में खड़ी स्त्री / अपने गीले केशों को सुखाती'। स्त्री की व्यस्तताओं को अनिमेष परत दर परत सँजोते हैं ताकि मेहनत, जद्दोजहद और मुश्किलों से जुड़े, मगर साथ-साथ जीवंतता, जिजीविषा और जीवन से भरे उनके जीवन अनुभव शब्दों में पिरोने से वंचित न रह जाएँ। उनकी एक कविता में स्त्रियाँ खुद कहती हैं-'कुरान की हम आयतें / वेदों की हैं सत्संगतें/ दोजख में जीती जन्नतें'। समाज पर कवि कटाक्ष भी करता हैः 'एक अलग और गैर भाषा में/ लिखी गई उनके शास्त्र की किताबें...'!

'बिना मुँडेर की छत' संग्रह में 'नवान्न' से शुरू होती कविताएँ दुख की नयी धमक के साथ नयी आँखों के नये पानी में कवि के तैरते सपने बुनती हैं जो कल्पना और यथार्थ के परिदृश्य को परत-परत खोलती जाती हैं। 'निब' और 'पहली कक्षा का पहला पाठ' से विस्तार पाती कविताएँ जग और जीवन को बदलने की बात करती हैं- उनकी बेहतरी के लिए। घटित यथार्थ पर केंद्रित होते हुए कवि-दृष्टि इस कटु सत्य का संज्ञान

लेती है कि 'दुनिया में आगे बढ़े वो, जिन्होंने औरों को अँगूठा दिखाया'। यह समाज में पसरा कठोर यथार्थ है जो कवि की पारखी दृष्टि से होकर कविता में उतरता चला गया है। आर्थिक अभाव युक्त समुदाय के रहन सहन और तौर तरीके कवि का ध्यान खींचते हैं और वे ऐसी चीजें भी पकड़ते हैं, जिनकी अनदेखी की जाती है। अपनी जमीन से जुड़ी उनकी कविता 'मिट्टी' की सुन्दर पंक्तियाँ कोमलता से मन को सहला जाती हैं- 'पहली बूँदों के पड़ते / घर से उठती नहीं वह सोंधी गंध / और काँच के ये बच्चे / नहीं जानते उसका स्वाद'।

कविताओं में नवान्न, निनाव, जेवन जैसे अनेकानेक स्थानीय शब्दों का प्रयोग लोक-भाषा तथा लोक-चेतना से कवि के जुड़ाव को रेखांकित करता है। सच की तलाश में कवि हर तरफ जाता है, यहाँ तक कि एक पाँव के जूते पर भी निगाह पड़ती है उसकी- भले ही उससे जुड़ी पहचान गंतव्य तक नहीं ले जाये- 'एक पाँव का जूता नहीं किसी काम का / उसमें होगी / किसी तलवे की महक / पसीने की नमी / पर यह पहचान / ले नहीं जाती / इस दौर में कहीं'। आवश्यक मुद्दों को साधती यह नजर बच्चों से लेकर बड़ों तक पहुँचती है। स्त्री की बेचारगी कवि की 'बड़ी' चिंता है, 'घर में आदमी को तो मिल जाती है माँ / पर औरत को?' यह कवि के विचारों की गहन साधना की मिसाल है।

'किसान पिता की बेटे के लिए वसीयत' कविता में पिता की अन्तिम इच्छा अलाव की तरह जलने की है। पिता दरअसल बुझी हुई राख में सोंधे पके आलू के साथ आँखों में प्रतीक्षा की चिनगारी पाना चाहते हैं, जो बेटे को जीवन का सार दे सके। कविताओं के शीर्षकों में हवाई चप्पल, चुम्बक, नारियल, इलायची, निब जैसी रोजमर्रा की चीजें हैं तो दूसरी तरफ मनुष्यता, युक्ति, चाहत और भरोसा भी। फिर 'पृथ्वी उम्मीद से है' जैसा शीर्षक चौंकाता भी है, जो एक गर्भवती स्त्री का आकलन है। हाथरिक्शे के सहारे 'आदमी का आदमी को खींचना आदमीयत नहीं'- यह कहते हुए शोषण और असमानता से जुड़ी व्यवस्था पर गहरी चोट करते हैं अनिमेष। साथ ही साथ खुले बालों वाली औरत का हाथगाड़ी खींचना भी असाधारण बिम्ब रचता है।

घर की पुरानी चीजों पर कवि की पुरखों जैसी दृष्टि गहरी संवेदना का आत्मीय उत्थान है। जहाँ चारों ओर झूठ और छल का बोलबाला है, वहाँ सच की बातें भी उनका तिलिस्म तोड़ नहीं पातीं। इसका दुख कवि जताता है, फिर भी अपने सचपने से भरी कविता का संधान एक 'निःशब्दभेदी' वाण की तरह करना चाहता है। यह समाज को भीतर तक खँगालती नयी दृष्टि है जो उसके भीतर के सच को बाहर ले आती है। कविता अनिमेष के भीतर रच बस कर निकलती है, जिसमें रसोई की महक, बघार की खुशबू को चाँद पर ले जाने का लुत्फ और जेब में शहतूत की इच्छा रची बसी है। स्मृति बहुत गहरी है कवि की- अतीत को आज तक समेटती और भविष्य से जोड़ती-'एक दिन विश्वास भर होगा संघर्ष और संघर्ष के साथ अगले दिन की सोच'!

सार्थक को साधती सँजोती मुक्तछन्द कविताएँ प्रेम रंजन अनिमेष की सतत साहित्य साधना का साक्ष्य हैं। अनिमेष की बहुरंगी कविताओं के भावों और विचारों ने विस्तृत परिदृश्य उकेरा है, जिसमें आपसी रिश्ते गुँथे पिरोये नजर आते हैं। इनमें दृश्यों और

संवेदनाओं को सहेजता कविकर्म पूरी रचनात्मकता और भाषायी चेतना के साथ आगे बढ़ता जाता है। फिर सृजन साधनारत कवि के साथ सजग सहयात्री की तरह पाठक भी चलता रहता है- रचनाधर्मिता में अपनी भूमिका निभाते हुए! रास्ते के पत्थरों को मील का पत्थर करते और नये प्रतिमान गढ़ते कीर्तिमान रचते कवि की सतत सृजनात्मकता का यह सिलसिला निर्बाध चलता रहेगा- यह विश्वास तो है ही, हृदय से उठी हुई सच्ची पुकार और शुभेच्छा भी!

एक सच्चे सर्जक का परकाया प्रवेश

ब्रह्माण्ड की सफाई करती स्त्री का बिंब रचने वाले प्रेम रंजन अनिमेष

- मुकुल अमलास

प्रेम रंजन अनिमेष आधुनिक समय के एक गंभीर रचनाकार हैं, जिनकी रचनाएँ हिंदी साहित्य जगत में विशेष दखल रखती हैं। वे ऐसे रचनाकार हैं जिनका लेखन सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं, बल्कि किसी मकसद, किसी उद्देश्य से अभिप्रेरित होता है तथा अपनी भावप्रवणता तथा संवेदनशीलता के लिए जाना जाता है। नवें दशक के उत्तरार्ध से प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले अनिमेष ने हिन्दी साहित्य जगत और पाठकों साहित्यनुरागियों के हृदय में जल्दी ही अपना एक खास मुकाम बना लिया। 2004 में भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद से उनकी रचनाओं को विशेष प्रतिष्ठा और पहचान मिली तथा सदा सृजनशील उनकी साहित्यसाधना और ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही। अभी तक उनके पाँच कविता संग्रह 'मिट्टी के फल', 'कोई नया समाचार', 'संगत', 'अँधेरे में अंताक्षरी' एवं 'बिना मुँडेर की छत' और हिन्दी समय और हिंदवी के वेबपटल पर दो कविता ईबुक 'अच्छे आदमी की कविताएँ' एवं 'अमराई' तथा बाल कविता संग्रह 'माँ का जन्मदिन' प्रकाशित हैं। शीघ्र ही और कविता संग्रह आने वाले हैं, जिनमें दो पूर्णतः स्त्री के जीवन जगत से जुड़े काव्य संग्रह हैं 'माँ के साथ' एवं 'नींद में नाच'। एक बेहतरीन कवि होने के साथ ही उनकी पहचान एक अच्छे कथाकार के रूप में भी है।

प्रेम रंजन अनिमेष ने लगभग हर विधा में और हर विषय पर लिखा है, परंतु मैं उनके लेखन में अनुस्यूत स्त्री पक्ष की मुरीद हूँ। उनकी रचनाओं में जहाँ भावप्रवणता है, वहीं अपने मिट्टी-पानी से जुड़े होने का एहसास भी। उनके साथ साथ शैलीगत विशिष्टता तथा अनोखापन तो है ही। एक पुरुष होते हुए भी अनिमेष ने स्त्री के मनोभावों,उसके जीवन अनुभवों, संघर्षों और पीड़ाओं को सहज सुघड़ संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के जिस करघे पर बड़े कायदे से महीन महीन सूत सरीखा काता-बुना और शब्दों का जैसा जामा पहनाया है वह इस लेखक को साहित्यकारों की एक अलग ही श्रेणी में खड़ा कर देता है। न सिर्फ कविताओं में वरन अपनी कहानियों और उपन्यासों में भी उन्होंने स्त्री की समस्याओं, उसकी संवेदना को स्वर देने का प्रयास किया है तथा ईमानदारी से स्त्री से संबंधित प्रश्नों को न सिर्फ उठाया है बल्कि उनके जवाब ढूँढ़ने के प्रयास में भी जुटे रहे हैं। उन्होंने पाठकों के सामने सदैव एक प्रश्नवाचक चिन्ह छोड़ा है - कि अगर ऐसा है तो क्यों है और कब तक रहेगा?

'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' कविता से अगर बात शुरू की जाये तो बेझिझक हमें यह स्वीकारना होगा कि यह कवि की एक विशिष्ट रचना है, जिसके केंद्र में स्त्री है। यह कविता एक अद्भुत दृश्य बिम्ब प्रस्तुत करती है तथा किसी कैनवास पर सिद्धहस्त चित्रकार द्वारा बनाई गयी पेंटिंग नजर आती है, जिसमें स्त्री हाथ में झाड़ू लिए एक तिपाई पर पंजों के बल उचक कर खड़ी पूरे ब्रह्मांड की सफाई करती दिखती है। अगर हम गौर करें तो पाएँगे कि इस रचनाकार की अधिकांश रचनाओं में स्त्री केंद्र में है तथा समसामयिक होने के साथ ही सार्वकालिक एवं सार्वजनीन होते हुए भी आपे आप

मेन अनूठी अनन्य ये रचनाएँ स्त्री पक्ष को बड़ी मजबूती से पाठकों के सामने रखती हैं। स्त्री संवेदना को गहने,उससे एकाकार होने और उसे अभिव्यक्त करने की सलाहियत इस रचनाकार को विशिष्ट बनाती है। वह न सिर्फ सदियों से स्त्रियों के प्रति होते आ रहे अन्यायों के प्रति अतिसंवेदनशील है, वरन उनका प्रतिकार भी चाहता है। कवि स्त्री के प्रति सदय है और कृतज्ञ भी क्योंकि वह महसूस करता है कि स्त्री के कारण ही इस धरती का श्री सुरक्षित है, शुभ बचा हुआ है। स्त्री ही है जो जानती है विलाप को आलाप में बदलने की कला,वही है जो दुखों को गीतों की लड़ियों में पिरो कर दूर बहा आती है और न सिर्फ खुद को वरन मानवमात्र को निर्भार कर देती है। स्त्री के हाथ का यह झाड़ू घर बाहर की गंदगी ही नहीं, को वरन संसार की सारी अशुद्धियों और समस्त शापों से मुक्त करने की क्षमता रखता है और अंतर के मैल कलुष को साफ करने का सामर्थ्य भी।

स्त्री जीवन के भले ही कई रूप हों, परंतु उसका मातृत्व ही उसके सारभूत तत्व को पूरी तरह समेटता है। हर स्त्री मूल रूप से माँ है,प्रकृति ने उसे इसी रूप में बनाया है। वह घर-परिवार,रिश्तों-नातों, पास-पड़ोस तथा सम्पूर्ण प्रकृति-संसृति पर अपना प्रेम उड़ेल कर उन्हें सहेजती सँभालती है। अगर स्त्री न हो तो कैसे चले संसार - सब कुछ रुग्ण,बीमार,शुष्क और नीरस न हो जाये! अपने प्रेम से सबका पोषण कर उसमें रस भरने का काम स्त्री करती है और इस रूप में वह धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। यह प्रसिद्ध कहावत यूँ ही तो न बनी होगी कि ईश्वर हर जगह मौजूद नहीं रह सकता, इसलिए उसने माँ को बनाया। कवि भी इस बात को मानता है कि स्त्री अपनी मौलिकता में माँ होती है तथा अन्य सभी रूप उसके इसी रूप की प्रारंभिक अवस्था भर हैं। जब वह प्रेम में होती है उस समय भी उसका रोम-रोम अपने प्रेमी को संतुष्ट करने और उसे सुखी करने में जुटा होता है। रचनाकार ने स्त्री के इस रूप को शिद्दत से महसूस किया है और उसे वाणी दी है।

इस तरह की कई कविताएँ मौजूद हैं अनिमेष के काव्य फलक पर। कवि की 'स्वभाव' नामक कविता तो जैसे माँ की परिभाषा देती सी जान पड़ती है और उसके जीवन की विडम्बना की भी।

मुझे लगता / ना और हाँ / जोड़कर बनी है माँ /
अपने लिए ना / अपनों के वास्ते हाँ

माँ पर लिखी उनकी हर कविता अद्वितीय है। माँ की नजरों में बच्चा कभी बड़ा नहीं होता, इस पंक्ति को न जाने जीवन में कितनी बार सुना होगा पर 'निर्भेद' नामक कविता में इसका कितना विशिष्ट अर्थ उभर कर सामने आया है -

जब हो जाते सयाने / काबिल और मजबूत / उड़ जाते पंख पसार /
अनंत अछोर / आसमान में / दूर बहुत दूर /
माँ की नजर में बच्चा / फिर भी छोटा नहीं होता /

नितांत सरल शब्दों में कितने विरल भाव हैं ये! सुबह से शाम तक घर-संसार के बोझ तले, बिना विश्राम चकरघिन्नी की तरह नाचती स्त्री की भावाभिव्यक्ति देखिए -

काम का बोझ ढोती / एक अनूठी बात माँ कहती /

लगता है जैसे / नाच कर गिर जाऊँगी /

लगभग हर सामान्य स्त्री इस तरह की परिस्थिति से अकसर गुजरती है। कोई भी काम कम महत्वपूर्ण नहीं जिसे, छोड़ा जा सके। परिणाम यह कि खटते-खटते एक समय ऐसा आता है जब पता ही नहीं चलता कि पूरी दुनिया नाच रही या फिर वह स्वयं - बस गिरने भर की देर होती है। कभी माँ के कहे शब्दों को पकड़ कर कवि ने जैसे सारी स्त्रियों की पीड़ा को स्वर दे दिया है। गजब की दृष्टि है - कल्पनाओं की विराटता के साथ जीवन की हर घटना को एक समर्थ कविता में बदल देने की अद्भुत क्षमता! प्रसव की घटना अर्थात माँ और बच्चे का एक साथ जन्म, छठी के दूध का विस्मरण, माँ को अपना जन्मदिन याद नहीं, दूधजुड़ाई जैसे प्रसंग ऐसी ही अभिव्यक्तियाँ हैं। इस कवि की सबसे अच्छी बात मुझे उसकी नाजुक संवेदनशीलता लगती है जो स्त्री के छोटे से छोटे दुख को देख परख कर उसे शब्दों में सप्राण कर देती है। आश्चर्य होता है कि बिना स्त्री हुए कैसे कोई इस हद तक उसके मनोभाव के तह में उतर सकता है! परकाया प्रवेश नहीं तो इसे और क्या कह सकते हैं!

कवि सही कहता है कि शब्द से अर्थ और अर्थ से भाव बड़ा होता है। माँ को स्मृति में सँजोये कवि ने स्त्री जीवन के ऐसे पक्षों को अपनी कविताओं में जगह दी है जो साहित्य जगत में अनछुए ही रह गए हैं। 'मातृपक्ष' कविता पढ़कर शायद ही कोई भावविह्वल होने से बच पाये -

इस दुनिया में / इतने पक्ष प्रतिपक्ष / माँ तुम क्या केवल वक्ष!

कवि की कविताओं में जगह-जगह पर ऐसी पंक्तियाँ भरी पड़ी हैं जो सीधे हृदय तल को छूती हैं। उसे फिक्र है उस दिन की जब लोग नींद, बेहोशी, दर्द, बुखार में माँ कहना छोड़ देंगे। तब क्या होगा इस दुनिया का? यह ऐसा कवि है जो शब्दों के थोड़े से हेर फेर से मैं को माँ बनाना चाहता है। किसी माँ को अपने शिशु को छठी का दूध पिलाते देख सिहाता है, याद करना चाहता उसका भूला स्वाद और दुख और वक्त की मार सह कर भी चाहता कि याद आ जाये फिर एक बार छठी का दूध।

कवि कहता तो है कि माँ पर लिखी हर कविता बचकानी होती है, पर मैं इन कविताओं को पढ़ कर कहना चाहूँगी कि ये बचकानी नहीं, बल्कि एक सयाने कवि की ऐसी कवितायें हैं जो न केवल मातृत्व को पारिभाषित करती हैं बल्कि माता और पुत्र के संबंधों को भी पुनर्व्याख्यायित करती हैं। 'माँ के साथ' कविता संग्रह की कविताओं में माँ कविता के कोर कोर और ओर-छोर तक समायी हुई है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका हर रूप जो कवि की स्मृति मंजूषा में सजा हुआ है, उसे संवेदना के लरजते शब्दों से उसने गूँथा है। माँ की मृत्यु के बाद अस्थि को गंगा में विसर्जित करते हुए वह जो कहता है वह अत्यंत मर्मबेधी है, माँ की जीवन भर की अनकही कथा की तरह -

माँ हुई जन्मों-जन्मों से / थक गई थी माँ / संतति होकर हम /
तो सँभाले वही / थकी नहीं जो कभी / थकती नहीं / चिर जननी /

जीवनचर्या की छोटी-छोटी बातों में विशिष्ट अर्थ भर देने में कवि को महारत हासिल है। कवि की इसी दृष्टि की मैं कायल हूँ। कुछ भी तो आरोपित नहीं - न शब्दों का शोर, न ही शैली का आडंबर - फिर भी कितना विशिष्ट! इस कवि को पढ़ कर अरुण कमल

जी द्वारा किसी साक्षात्कार में कही हुई यह पंक्ति याद आती है कि कविता लिखने के लिए आपको कुछ करना नहीं पड़ता, बस जीवन के पास जाना होता है! सोचती हूँ, आखिर यह जीवन के पास जाना क्या होता है और प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं को पढ़ते ही इसका जवाब मिल जाता है। जीवन की छोटी से छोटी घटना और जीवनोपयोगी वस्तु कविता के केंद्र में आकर इतनी महत्वपूर्ण बन जाती है कि पाठक अवाक रह जाता है कि कवि ने यह क्या अन्वेषण कर डाला! चमत्कृत हो कर सोचता है कि इन चीजों को,इन घटनाओं को क्या इस निगाह से भी देखा जा सकता है? इस गुण के कारण बिल्कुल सरल और साधारण शब्दों में अभिव्यक्त कवितायें भी असाधारण नजर आने लगती हैं।

अब अगर हम प्रेम रंजन अनिमेष जी की कहानियों पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि वहाँ भी स्त्री अपनी पूरी मौलिकता और जद्दोजहद के साथ मौजूद है। सबसे पहले बात करते हैं 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था' नामक कहानी की - जो विकल कर देने वाली रचना है। भाषा, शिल्प, शैली - हर दृष्टि से एक श्रेष्ठ कहानी! पढ़ कर ऐसा लगता है जैसे हम उस लड़की की कहानी नहीं पढ़ रहे, बल्कि भारतीय समाज की विडंबनाओं से साक्षात्कार कर रहे हैं। एक ऐसी कहानी, जिसमें लड़की का पिता अपनी पूरी शक्ति भर हाथ-पाँव मारने के बावजूद बेटी के ब्याह का दहेज नहीं जुटा पाता और अपने ही कार्यालय से चोरी करता हुआ जेल चला जाता है। छोटा भाई अपनी बहन के ब्याह में पैसों की कमी पूरी करने हेतु अपनी नादान उम्र की सोच के मुताबिक लोटनी नामक एक जहरीले जीव की पूँछ को छूता है क्योंकि उसने सुन रखा है कि इससे पैसे मिलते हैं और इस प्रयास में उस विषधर का शिकार हो जाता है। माँ अपने बेटे की मृत्यु की बात इसलिए छुपा जाती है कि कहीं बेटी का ब्याह इस सूचना के बाहर आते ही रूक न जाये और छोटी बहन परिवार को अपने 'विवाह बोझ' से मुक्त करने हेतु एक लड़के के संग भाग जाती है।

यह कहानी एक आईना है हमारे समाज का। हम लाख कहें कि बेटी और बेटे में फर्क नहीं, पर बेटी का परिवार उसके ब्याह की खातिर जो दंश झेलता है, जिस त्रासदी से गुजरता है क्या उसका कोई हिसाब है? जब तक समाज दहेज रूपी इस शाप से मुक्त नहीं होता, बेटी का जन्म परिवार के लिए अभिशाप ही बना रहेगा। यह एक ऐसी कहानी है जिसे पढ़ने के बाद ताउम्र उसके असर से बाहर निकलना मुश्किल है। प्रेम रंजन अनिमेष ने इसमें एक बेटी के जन्म से उसके ब्याह तक की कहानी लिखी है,परंतु जिस तरह से उन्होंने कहानी को निबाहा और अंजाम तक पहुँचाया है वह कभी न भूलने वाला है। अच्छा है कि लड़की चिड़िया की बोली कुछ-कुछ ही समझ पाती है, वरना सारी बातें सुनने के बाद वह रोना नहीं जानने वाली लड़की भला रोये बिना कैसे रह पाती! यह कहानी स्त्री जीवन की त्रासदी को तो दिखाती ही है, पारिवारिकता का भी एक अच्छा पाठ पढ़ाती है। लेखक की दृष्टि पैनी और बेधक है,जो अंतरतम की गहराई में उतरती है और सारी ढँकी छुपी सच्चाई को सामने लाकर रख देती है - अंदर तक झिंझोड़ती झकझोरती हुई।

अब हम बात करते हैं प्रेम रंजन अनिमेष रचित उपन्यासिका '....'(स्त्रीगाथा) की

जो स्त्री जीवन के नित्य सत्य का सर्वथा अलिखित महाख्यान है। स्त्री अपना नाम भूल गयी है। अपने नाम को दोबारा पाने की उसकी जद्दोजहद पर आधारित इस अकथकथा का हर पन्ना पढ़ते हुए लगता है, कितनी बड़ी विडंबना पर कितनी बड़ी सच्चाई है इसमें। लड़की जब तक अपने पिता के घर में रहती है तब तक उसका एक नाम अवश्य होता है परंतु शादी के बाद वह नाम कहीं खो जाता है। फिर वह या तो अपने पति के नाम से जानी जाती है जैसे फलाँ की बहू या फिर अपने मायके के नाम से,जैसे फलाँ गाँववाली। कोई भी उसका नाम लेकर पुकारना जरूरी नहीं समझता यहाँ तक कि उसका पति भी उसे अपने बच्चे की माँ के रूप में ही देखता है। ऐसे में अगर अचानक कोई स्त्री किसी के मुँह से अपना नाम सुन ले तो उसका अचकचा जाना स्वाभाविक है जैसे कुछ अनचीन्हा,अनजाना सुन लिया हो - जबकि अपने नाम से पुकारा जाना भला किस स्त्री को नहीं भाता!

समाज किस तरह एक स्त्री की आइडेंटिटी को पूरी तरह से तहस-नहस कर देता है स्त्रीगाथा इस यथार्थ का एक जीता जागता नमूना है। पढ़ने वाला अगर एक जीवंत इकाई है,उसकी आत्मा अभी सामाजिक छलप्रपंचों के मायाजाल में उलझी नहीं है तो निश्चय ही उसकी आँखों में चिनगारियाँ और हृदय में आक्रोश का ज्वालामुखी फूट सकता है। आखिर इतना छल स्त्रियों के साथ ही क्यों? माना कि वह ममता की मूर्ति है, गृहस्थी की धुरी है,स्वभाव से पालन पोषण करने वाली माँ है,पर इस सब के बदले में वह पाती क्या है? स्त्री के प्रति आभारी होने के स्थान पर कृतघ्न समाज उससे उसकी पहचान ही छीन लेता है और उसे अपने मनमुताबिक एक फ्रेम में कैद कर अपने ड्राइंग रूम के आले में सजा देता है। ऐसे में अगर वह अपना नाम भूल जाती है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात!

प्रेम रंजन अनिमेष की यह 'स्त्रीगाथा' किसी एक स्त्री की कथा नहीं, बहुतेरी स्त्रियों की व्यथा है, जिनकी चमड़ी ही नहीं बल्कि अंतस पर भी समाज किसी का नाम खोद देता है ताकि वे अपनी वास्तविक पहचान भूल जायें। इस समस्या का सबसे बुरा पक्ष यह है कि इसमें महिलायें भी प्राणपण से पुरुषों का सहयोग करती हैं, क्योंकि उनकी कंडीशनिंग इतनी जबरदस्त होती है कि वे इस दायरे से बाहर जाने की सोच ही नहीं पातीं। 'स्त्रीगाथा' प्रेम रंजन की ऐसी रचना है जो न केवल अपनी विषयवस्तु के लिए, अपितु नवीन शैली व नवाचार के लिए भी सदियों तक जानी पहचानी जायेगी।

उनकी कहानियों की एक विशेषता उनका मिट्टी से जुड़ा होना है। उन्हें पढ़ते हुए बचपन में दादी नानी से सुनी कहानियों से गुजरने सा एहसास होता है। जगह-जगह इस्तेमाल किए गये लाजवाब गीतों की वजह से भी ये कहानियाँ लोककथाओं की तरह बाँधती हैं और मार्मिकता के साथ हृदय को बेधती भी हैं। 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'तोहरी सुरतिया देख के', 'बोल' या फिर 'गूँगी माँ का गीत' - सभी कहानियाँ बेहद मार्मिक हैं और अंदर तक उद्वेलित करने वाली। पूरी तरह समर्पित स्त्री पर रोज हाथ उठाते हुए पति द्वारा प्रयोग की गई संज्ञाओं और विशेषणों को पढ़ कर किस की आँखें नम नहीं हो जायेंगी - कनकट घड़ा जो फूटता नहीं, दरका आईना जो टूटता नहीं, फटा चमरौधा जिसे कबाड़ी भी नहीं ले जाये, उम्र भर की कैदी, ठीकरा और ठीकरे को

भला ठोकर का क्या डर...! आखिर एकमात्र गुण कि जन्म उसका पुरुष योनि में हुआ, इसके सिवाय किसी भी अर्थ में स्त्री से बेहतर न होते हुए भी नीमा के पति जैसे पुरुषों की समाज में कहाँ कमी है! पत्नी को मारपीट कर अपना पुरुषार्थ साबित करने वाले ऐसे पुरुषों की न जाने कितनी पत्नियाँ अपना जीवन अपने बच्चों की सूरत देखकर ही बिता देती हैं। यह कहानी ऐसी ही स्त्रियों की पीड़ा का ज्वलंत नमूना है, जिन्होंने अपने जीवन में जाना ही नहीं कि सुखद दाम्पत्य नाम की भी कोई चीज होती है। आखिर सारी उम्मीदें स्त्रियों से ही क्यों कि वे किसी तरह रिश्ता निभा दें, जैसे निभाना या निबहना ही महत्वपूर्ण है, जीना नहीं। लेकिन समय बदल रहा है और इसी नीमा की बेटी अपने पिता को आईना दिखाती है तो उसका पुरुषार्थ रूपी जीर्णशीर्ण लबादा देखते न देखते उतर जाता है।

यह एक अनूठे रचनाकार का रचना संसार है। संवेदना से भरा हृदय,सत्य की तह तक पहुँचने वाली बेधक दृष्टि,भाषा और शिल्प का सौष्ठव,देशज-विदेशज शब्दों का विशाल भंडार और कहन की अपनी विशिष्ट शैली - जब ये सब मिलते हैं तो रचना का ऐसा संसार आकार लेता है जो साहित्य रसज्ञों को अपने जादू से विस्मित तथा अभिभूत कर देता है। मैं कहना चाहूँगी कि स्त्रियों के सुख-दुख और उसकी संवेदना से जुड़ जब एक पुरुष उसे अपने लेखन में स्थान देता है तो उसका यह परकाया प्रवेश मुझे कुछ ज्यादा ही रुचता है और यह संसार अधिक सुंदर दिखने लगता है - मन में आस जगती है कि भविष्य उतना बुरा नहीं होगा जितना अतीत रहा है। वैसे यह भी मानती हूँ कि लेखक का मान तो उसकी गुणवत्ता से होना चाहिए - स्त्री लेखन और पुरुष लेखन से नहीं। परंतु पुरुष का यह परकाया प्रवेश मुझे थोड़ा पक्षपाती बना जाता है और बेझिझक कहूँगी कि इस संदर्भ में अनिमेष का लेखन मुझे मोहता है। मैं उन्हें अधिक श्रेय देना चाहूँगी क्योंकि वह पुरुष हैं और उन्होंने स्त्री संवेदना के तल को गहराई में उतरकर छुआ है तथा स्त्री की पीड़ा और घुटन को आत्मसात कर अभिव्यक्त किया है।

हम लाख बड़ी-बड़ी बातें करें, पर परिस्थिति में क्या कुछ ज्यादा फर्क पड़ा है? इस इक्कीसवीं शताब्दी में हम काफी आगे निकल आये हैं, पर कई मामलों में यथास्थिति बनी हुई है। स्त्री की शुचिता, स्त्री की योग्यता, स्त्री की स्वतंत्रता, स्त्री की यौनिकता - ऐसे कई सवाल आज भी ज्यों के त्यों हैं और जमीनी सच्चाई यही है की इनके संबंध में स्वयं निर्णय लेने का हक स्त्री को नहीं मिला है। इन मसलों पर समाज आज भी उसे कठघरे में खड़ा करता है तथा वह दोहरे मापदंडों का शिकार होती रहती है। एक संवेदनशील रचनाकार के हाथ में भले कुछ और न हो, परंतु अगर वह अन्याय भुगतनी स्त्री की पीड़ा को अपने शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तो वह उसका पक्षधर माना जाएगा और स्त्री समाज इसके लिए उसे याद रखेगा। प्रेम रंजन अनिमेष निश्चय ही उन्हीं में से एक होंगे।

- प्लॉट नंबर 77-78, मुनि शंभुनाथ कॉपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी, शंभुनगर,
मानकापुर, नागपुर 440030

प्रेम रंजन अनिमेष की कविता में स्त्रीत्व और वात्सल्य

-डॉ. प्रोमिला

हिंदी साहित्य में प्रेम रंजन अनिमेष की पहचान एक संवेदनशील कवि और गंभीर कहानीकार के रूप में है। लगभग आधा दर्जन काव्य-संग्रह देने वाले कवि प्रेम रंजन अनिमेष के लिए यहाँ 'संवेदनशील' शब्द सोद्देश्य प्रयुक्त किया गया है। वैसे कविता रचने के लिए संवेदनशीलता का होना पहली शर्त है, लेकिन देखने की बात यह है कि कवि के भीतर संवेदना कितनी घनीभूत है और उसका काव्य में परिपाक किस रूप में हुआ है। इस अर्थ में अनिमेष पाठक को निराश नहीं करते, बल्कि हिंदी की काव्य-परंपरा का विकास करते हुए नए-नए क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। सतत सृजनशील अनिमेष की दृष्टिपरिधि विस्तृत, भावभूमि उर्वर, सरोकार व्यापक और लेखन वैविध्यपूर्ण है। इस आलेख में प्रेम रंजन अनिमेष की स्त्री और बच्चों पर लिखी कविताओं को आधार बनाया गया है।

अपने प्रसिद्ध निबंध 'कविता क्या है' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - 'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य की भाव-भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति-योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है। जिस प्रकार जगत् अनेक-रूपात्मक है, उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक-भावात्मक है। इन अनेक भावों का व्यायाम और परिष्कार तभी समझा जा सकता है जब इन सबका प्रकृत सामञ्जस्य जगत के मिन्न-भिन्न रूपों, व्यापारों या तथ्यों के साथ हो जाय। इन्हीं भावों के सूत्र से मनुष्य-जाति जगत के साथ तादात्म्य का अनुभव चिरकाल से करती चली आई है। जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से ही परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पाकर वह नर-जीवन के आरम्भ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ रहा है, उनका हमारे भावों के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है। अतः काव्य के प्रयोजन के लिए हम उन्हें मूल रूप और मूल व्यापार कह सकते हैं। इस विशाल विश्व के प्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष और गूढ़ से गूढ़ तथ्यों को भावों के विषय या आलम्बन बनाने के लिए इन्हीं मूल रूपों और मूल व्यापारों में परिणत करना पड़ता है। जब तक वे इन मूल मार्मिक रूपों में नहीं लाए जाते तब तक उन पर काव्य दृष्टि नहीं पड़ती।'[1]

आचार्य शुक्ल जी के उपर्युक्त कथन का ध्यान से मूल्यांकन करने पर स्पष्ट होता है कि कविता मनुष्य को 'ममत्व' और 'परत्व' की भावभूमि से ऊपर उठाकर 'लोक सामान्य की भावभूमि' तक ले जाती है। आचार्य शुक्ल यह भी कहते हैं कि बिना प्रकृति सामंजस्य के जन जीवन के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं हो सकता। इस प्रकार विशाल विश्व के प्रत्यक्ष अथवा गूढ़ तथ्य को कविता का आलंबन बनाने के लिए प्रकृति, जीवन और जगत के उन्हीं मूल रूपों के साथ तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है। वैसे, आचार्य

हजारी प्रसाद द्विवेदी इसी तथ्य को एक साथ समाहित करते हुए संक्षेप में कविता की परिभाषा देते हुए कहते हैं- 'भावावेग, कल्पना और पद लालित्य को कविता कहते हैं।'[2] इस अर्थ में देखा जाय तो प्रेम रंजन अनिमेष की कविता मूल तत्वों व सत्वों से परिपूर्ण, अत्यन्त आत्मीय और आकर्षक है।

प्रेम रंजन अनिमेष अपने परिवार, समाज और आस-पास के जनजीवन से कविता का आलंबन ग्रहण करते हैं। संवेदना की तरलता को वह कोमलता और माधुर्य के साथ गूँथ देते हैं, जिसके कारण उनकी सामान्य शब्दों में कही गई बातें भी 'बहुत दूर तलक' जाती हैं और भावों की गूँज देर तक सुनाई पड़ती है। प्रेम रंजन अनिमेष ने स्त्री और बच्चे को लेकर बहुतेरी कविताएँ लिखीं हैं और इनसे जुड़े उनके एकाधिक संकलन प्रकाशित हो चुके हैं और प्रकाश्य भी हैं। उनकी एक कविता है- 'औरत की नींद'। अब नींद तो सामान्य सी चीज है, जो हर जीव की जैविक आवश्यकता है। लेकिन जब यह औरत के साथ जुड़ जाती है तब पाठक के मन में अनेक चित्र और बिम्ब बनने लगते हैं। चाहे श्रमशील स्त्री हो या मध्यवर्गीय गृहिणी- नींद उसकी अपनी नहीं होती, बल्कि उस पर पिता, पति और बच्चों का अधिकार होता है। या कहें कि इनके लिए स्त्रियाँ अपनी नींद का त्याग करती हैं। औरत की नींद पर 'गिरता है पानी खुले नल का', और ऐसा लगता है जैसे घर-परिवार से लेकर पूरी कायनात तक की चिंता उसी के ऊपर थोप दी गई हो -

कोई दरवाजा खुला रह गया है / कहीं आग जली रह गयी है /
उसकी नींद में / उसे जगाने के लिए / पलकें नहीं चूमतीं /
सूर्य की पहली किरणें / अपने भीतर की चेतावनी घड़ी के /
चीखने से बहुत पहले / खुल जाती नींद उसकी /
सिरहाने गिरे / सपने की आवाज से।

यहाँ औरत के 'सिरहाने गिरे उसके सपने की आवाज' को कवि बहुत शिद्दत से महसूस करता है। इसी प्रकार 'बावजूद' कविता में वह भारतीय समाज में दांपत्य जीवन के यथार्थ का रूपक गढ़ता है, जो विरोधाभासी होते हुए भी सामान्य सा दिखता है पर उसके भीतर का यथार्थ यहाँ मार्मिक रूप से उभरता है -

प्रेम नहीं है फिर भी / सकुशल है लड़की / चाय बनाती है सबके लिए /
सबसे पहले उठ कर / और हर रात लगाती घर पर / हर किसी का बिस्तर /
प्रेम के बिना भी आ जाता है / चूल्हे में ताव / रोटियाँ गोल बनती हैं /
और सिंक कर फूल भी जातीं मनभाव / उसके साफ किये कपड़े /
और माँजे हुए बरतन / ईर्ष्या करते हैं एक दूसरे से /
प्रेम की अनुपस्थिति में भी / सँवारती है वह केश...

भारतीय समाज में विवाह के मामले में स्त्रियाँ अपना फैसला नहीं ले पाती हैं। वे जिससे प्रेम करती हैं, उससे विवाह नहीं कर सकती हैं। फिर जिससे विवाह होता है, उससे न चाहते हुए भी 'प्रेम' करना पड़ता है ताकि हालत बदतर न हो जाय। वैसे स्थितियाँ अब बहुत बदल रही हैं, लेकिन आज भी 'प्रेम की अनुपस्थिति में भी मजबूरन अपने बाल सँवारती स्त्रियाँ' हमारे परिवार और समाज में मौजूद हैं।

महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में लिखा है- 'आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्री केवल उन्हीं आदर्शों से संतोष न कर लेगी, जिनके सारे रंग उसके आँसुओं से धुल चुके हैं, और सारी शीतलता उसके संताप से उष्ण हो चुकी है। समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थ-संबंधी वैषम्य की ओर ध्यान न दे, उसमें परिवर्तन या संशोधन की आवश्यकता न समझे तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आँधी जैसा वेग पकड़ता जाएगा और तब निरंतर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उससे कुछ और न पा सकेगा। ऐसी स्थिति न स्त्री के लिए सुखकर है, न समाज के लिए सृजनात्मक।'[3] प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में जो 'सुबह सैर पर निकली स्त्रियाँ' हैं, उनकी आँखों में भोर के सूरज की लाली है। वे सूरज से ठिठोली करते हुए आगे बढ़ना चाहती हैं। उनका आत्मविश्वास किसी को नीचा दिखाने के लिए नहीं, बल्कि अपने 'स्व' के निमित्त है -

तन से तनिक दुरुस्त एक लड़की / तेज कदमों और साँसों के साथ /
चल रही सूर्य को करती लथपथ / उसे किसी अदृश्य आँखों के अनुरूप /
अपने को तराशना।

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में स्त्रियों के इतने चित्र हैं कि ऐसा लगता है जैसे उनके विविध रूपों, मनोभावों, आशाओं, आकांक्षाओं, चेतना और संघर्ष का एक कोलाज बना दिया गया हो। इसमें 'इक्कीसवीं सदी की सुबह झाड़ू देती स्त्री' से लेकर 'सड़क पर एक-दूसरे का हाथ पकड़े स्त्रियाँ' भी मौजूद हैं। यहाँ 'इंजन पर बैठी लड़की' है तो 'महिला पुलिस' भी, रोती परेशान होती स्त्रियाँ हैं तो कहीं गाती गुनगुनाती हुई भी। और है नींद में नाचती हुई स्त्री, जो 'नींद में नाचते हुए भी न तो अपने घेरे से बाहर जाती है और न अपने दायरे से भटकती ही। यहाँ हर स्त्री अपने साथ एक कहानी लेकर सामने आती है और कवि 'देवियों' के मिथ को भी नए संदर्भ में व्याख्यायित करता है -

देवियाँ / यह माना जा सकता / कि होंगी अपने समय की / सफल स्त्रियाँ /
इसका मतलब यह नहीं / कि विघ्न बाधायें / उनके आगे आयीं नहीं /
मगर वे जूझीं / और पार उन्हें किया / शत्रुओं को ही नहीं /
जो साथ थे उन्हें भी / जीता / वश में किया...

अनिमेष 'छौंक' शीर्षक कविता में स्त्री के भीतर की उथल-पुथल और आक्रोश को एक नया बिम्ब देते हुए कहते हैं- 'गौर करो / तो सुन सकोगे / हर स्त्री के / आस पास के / सून सनाके में.../ ढक्कन बंद कर बघारी जाती / दाल सी खदबदाहट।' वैसे तो बहन, बेटी आदि पर अनिमेष की अनेक कविताएँ हैं, लेकिन माँ पर एक मुकम्मल संग्रह है- 'माँ के साथ'। इस संग्रह में हमारे बचपन से लेकर बड़े होने तक माँ जितने रूपों में साथ रहती है- परिस्थितियों का सामना करती और उनसे जूझती है- उसकी पूरी अंतर्कथा मौजूद है। अनिमेष के काव्य संकलन 'मिट्टी के फल' के ब्लर्ब पर प्रख्यात कवि केदारनाथ सिंह ने लिखा है- 'मिट्टी के फल' का यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है। मिट्टी यहाँ कोई कामचलाऊ मुहावरा नहीं, जीवन यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म है, जिसे कवि अपनी पाँचों उँगलियों, अर्थात पाँचों इन्द्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है- यहाँ तक कि कवि की एक कविता के ही साक्ष्य से कहें तो इसमें 'कानी उँगली' की भी सक्रिय भूमिका होती है। अनगिनत वस्तु-सन्दर्भों की छवियों से

भरे इस संकलन में सबसे अधिक कविताएँ माँ पर हैं और एक सुखद आश्चर्य यह कि हर बार माँ एक बिल्कुल नई माँ है।'[4] प्रेम रंजन अनिमेष की इस विविधरूपा 'माँ' में हर पाठक को अपनी माँ का अक्स दिख जाता है। दिन भर काम के बोझ तले दबी हुई माँ का यह चित्र इस काव्यांश में देखा जा सकता है-

काम का बोझ ढोती / एक अनूठी बात माँ कहती /
लगता है जैसे / नाच कर गिर जाऊँगी।

केदारनाथ सिंह की माँ पर एक कविता है - 'सुई तागे के बीच में', जिसमें वह कहते हैं - 'जब वह बहुत थक जाती है / तो उठा लेती है सुई और तागा / मैंने देखा है कि जब सब सो जाते हैं / तो सुई चलाने वाले उसके हाथ / देर रात तक / समय को धीरे-धीरे सिलते हैं / जैसे वह मेरा फटा हुआ कुरता हो'। प्रेम रंजन अनिमेष की 'माँ' केदार जी की 'माँ' का विस्तार है, जो अनेक रूपों चित्रित हुई है। समय को सिलते हुए माँ का समय कब निकल जाता है, उसे खुद पता नहीं चलता।

माँ के लिए लिखी गयी प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में न तो भावातिरेक है और न ही आरोपित वैचारिकता। सामान्य-सी दिखने वाली भाषा में हर बार माँ के जो बिम्ब उभरते हैं, वे मिलकर एक भारतीय माँ की शक्ल अख्तियार कर लेते हैं, जिसे 'भारत माता' भी कहा जा सकता है। इसी संग्रह में एक कविता है- 'माँ को याद है...'। माँ को क्या याद है और क्या याद नहीं है, इस सामान्य सी बात से शुरू हुई यह कविता धीरे-धीरे स्त्री-जीवन से जुड़ी विडंबनाओं को जिस प्रकार से सामने लाती है, पाठक के भीतर कुछ टूटने सा लगता है -

माँ को अपना जन्मदिन याद नहीं / उसे याद है दूध का हिसाब / याद हैं धोबी को दिये जाने वाले कपड़े / याद हमारी स्कूल फीस / खूब अच्छी तरह याद / पिताजी की चाय में चीनी का अनुपात/ बस अपना जन्मदिन ही / याद नहीं / पूछने पर / बैठ कर / सोचने लगती / और हमें लगता / उसे याद आ रहा / लेकिन उसे याद आ जाता / चूल्हे को खोरना / रसोई का खुला रह गया दरवाजा / या समय किसी के आने का'

कवि इस बहाने भारतीय समाज में 'माँ' की बदलती हुई छवि और स्वरूप को भी रेखांकित करता है। भारत की आत्मा भले ही गाँव में बसती हो, लेकिन यह गाँव स्त्रियों और दलितों के लिए शोषण और उत्पीड़न का कारखाना भी रहा है। दूसरी तरफ, अपनी तमाम विसंगतियों और आर्थिक असमानताओं के बावजूद शहरीकरण ने लैंगिक और जातीय भेदभाव को पाटने का काम भी किया है। इसीलिए कवि का यह कथन स्त्रियों के अतीत और वर्तमान के साथ-साथ भविष्य की स्थिति की ओर भी इशारा करता है-

माँ के साथ / खत्म हो रही वह पीढ़ी / जो चावल मेराने से पहले /
उसे धोती चुनती / जो गेहूँ पिसवाने से पहले / आकाश में सूर्य की साँस /
कितनी ही कमजोर होने के बावजूद / धोकर सुखाती जरूर।

निःसंदेह प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में माँ के जितने भी रूप उभरते हैं, वे संघर्षशील माँ के हैं जो अपनी संतान के लिए अपना जीवन होम कर देती हैं। उनका अपना जीवन अपने लिए ही नहीं होता। वे अपना सारा श्रम, सारी ऊर्जा परिवार की बुनियाद को मजबूती देने में लगा देती हैं। सुई-धागा से कपड़े में पैबंद लगाती हुई माँ

खुद एक दिन हड्डी की ठठरी बन जाती है। माँ के लिए 'विदागीत' इस बात का द्योतक है कि कवि की संवेदनशीलता ने उसे स्वार्थी नहीं बनाया है। लेकिन कविता का अंत अनेक अनुत्तरित प्रश्नों को फिर से कुरेद देता है -

आग सी लह लह / माटी सी मह मह / जाओ /
लाली सी टह टह / चिड़ियों सी चह चह / हवा सी / बह जाओ /
अब यह भी तो होगा स्वार्थ / कहें अगर / कुछ दिन और रह जाओ /
जाओ माँ / जाने से पहले लेकिन / अपनी पूरी कथा कह जाओ...!

केदारनाथ सिंह ने प्रेम रंजन अनिमेष को 'मिट्टी की संस्कृति का कवि' कहा है, जिनकी कविताओं में 'जीवन-यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म' है। इसे बड़ी शिद्दत के साथ इन कविताओं में महसूस किया जा सकता है। मानव-जीवन में सर्वाधिक कोमलता स्त्री और बच्चे में होती है। बिना माँ के शिशु की कल्पना नहीं की जा सकती, और न ही शिशु के बिना इस संसार की। अनिमेष के संग्रह 'कोई नया समाचार' में बच्चों के अनेक रूप अंकित हैं। जीवन-जग की छवि को कवि ने अपनी 'विश्वदृष्टि' से इस प्रकार बिम्बित किया है -

इस दुनिया की / जो छवि है मेरे भीतर /
उसमें एक स्त्री के वक्ष की तरह / थामे हुए हैं इसे / नन्हें शिशु हाथ।

इस संग्रह में बाल मनोविज्ञान की अनेक छवियाँ मौजूद हैं। सूरदास ने कृष्ण की बालसुलभ बहुरंगी चेष्टाओं का जिस प्रकार से वर्णन किया, वह आज भी हिंदी साहित्य के लिए अन्यतम है। प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं में भी बालसुलभ चेष्टाएँ हैं, लेकिन इनका समय और संदर्भ अलग है। यहाँ बच्चा खुद खिलौने (अनायास) तोड़कर रोता (सायास) है। जिस दुनिया में कोई किसी के लिए अब रोना नहीं चाहता हो, वहाँ बच्चे का टूटे खिलौने के लिए रोना कवि को अचंभित करता है। प्रेम रंजन अनिमेष की इन कविताओं के संदर्भ में प्रसिद्ध कवि कैलाश वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है कि 'इतने बर्बर समय में कोई कवि अपनी संवेदना और मासूमियत को बचाये रख सका- यह सोचकर हैरत होती है। मगर इस संग्रह की रचनाएँ हैं कुछ ऐसी ही। इन्हें पढ़कर मन नयी सुवास से भर गया।'[5] इस संदर्भ में 'बचाव' कविता में सपने के माध्यम से बाल मनोविज्ञान को समझा जा सकता है -

सो गये सब बच्चे / तो चाँद आ कर / कान में फुसफुसाया / मुझे क्यों बनाया मामा / ताकि तुम न बनो / उनकी गुलेल का निशाना / मैंने समझाया

सामान्य भावों का विशेषीकरण बड़े कवि की विशेषता होती है। कई बार कवि सामान्य 'कथन' में कुछ 'असामान्य' कह देता है, और वही कविता स्थाई भी होती है। इस संदर्भ में 'पहला नाम' शीर्षक कविता को देखा जा सकता है -

बच्चे ने जाना / माँ चूल्हे की आग का / दूसरा नाम है /
बच्चे ने जाना / माँ त्याग का दूसरा नाम है /
माँ का पहला नाम / ढूँढ़ रहा है बच्चा.../

प्रेम रंजन अनिमेष की काव्य-भाषा में अपनापन और विश्वसनीयता कायम है। वे किसी चमत्कार के चक्कर में नहीं फँसते और न शब्दों से खेलने की जरूरत समझते हैं।

इसीलिए वे कई बार सामान्य शब्दावली के सहारे असामान्य बातें कह जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने काव्य भाषा के संदर्भ में बड़े मार्के की बात कही है- 'कविता में कही गई बात चित्र-रूप में हमारे सामने आनी चाहिए, यह हम पहले कह आए हैं। अतः उसमें गोचर रूपों का विधान अधिक होता है। वह प्रायः ऐसे रूपों और व्यापारों को ही लेती है जो स्वाभाविक होते हैं और संसार में सबसे अधिक मनुष्यों को दिखाई पड़ते हैं। अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है। इस मूर्तिविधान के लिए वह भाषा की लक्षण-शक्ति से काम लेती है। जैसे, 'समय बीता जाता है' कहने की अपेक्षा 'समय भागा जाता है' कहना वह अधिक पसन्द करेगी। किसी काम से हाथ खींचना, किसी का रुपया खा जाना, कोई बात पी जाना, दिन ढलना या डूबना, मन मारना, मन छूना, शोभा बरसना, उदासी टपकना इत्यादि ऐसी ही कवि-समय-सिद्ध उक्तियाँ हैं, जो बोलचाल में रूढ़ि होकर आ गई हैं। लक्षणा-द्वारा स्पष्ट और सजीव आकार-प्रदान का विधान प्रायः सब देशों के कवि-कर्म में पाया जाता है।'[6]

प्रेम रंजन अनिमेष को बिम्ब-विधान में पूरी सफलता मिली है। उनकी कविता में जो चित्रात्मकता है, वह आचार्य शुक्ल के कथन को पुनः याद दिलाती है। यहाँ कुछ शब्द-चित्र उदहारणस्वरूप देखे जा सकते हैं-

अपने नन्हे पैरों में खूब बड़ी चप्पलें पहने / डगमगाता चल रहा बच्चा /
जैसे डोंगियों में खड़ा / पैरों में बाँधे भविष्य /...../
छत पर पसरा हुआ है गेहूँ / देखने के लिए / भेजा है माँ ने /
आ कर देखता वह / मन्त्र मोहित-सा / सबसे सुन्दर है इस दुनिया में /
दोनों हाथों में उठा कर दाना / गिलहरी का खाना.../ ..... /
पृथ्वी की तरह उभरे गर्भ को / छू-छू कर / हँस रहा था बच्चा /
अब तो दिन हुए पूरे...

इस प्रकार के बिम्ब-चित्र अनिमेष की कविताओं में सर्वत्र हैं। चलती सड़क के जलते हुए फुटपाथ पर कटोरे के साथ सोए बच्चे तक पर कवि की नजर है। जैसा कि पहले कहा गया, वह सरलता में विपुलता गढ़ते हैं - 'बच्चे का रोना/ जिंदगी का होना है'। कवि इस भीषण अमानुषिक समय में आने वाली 'नई पौध' के लिए कुछ 'शेष' बचा लेना चाहता है- 'छोड़ दो/ पेड़ों पर कुछ फल/ पथिक पाखियों के लिए/ छोड़ दो/ कुछ दूध थनों में/ बछड़ों के लिए/ छोड़ दो/ जीवन/ शेष/ इस पृथ्वी पर / नवागन्तुकों के लिए.../

निःसंदेह प्रेम रंजन अनिमेष की कविताएँ जीवन की बहुरंगी धूप-छाँव को प्रतिबिंबित करती हैं। स्त्री के लगभग सारे रूप उनकी कविताओं में मौजूद हैं। वात्सल्य भी उनकी कविता का एक प्रमुख भाव है और बाल मनोविज्ञान के वे प्रामाणिक चितेरे हैं। समकालीन कविता से लुप्त होते जा रहे भावों अनुभावों को अनिमेष पुनर्स्थापित करने का प्रयास करते हैं और साथ ही जीवन, संवेदना तथा मानवता को बचाये बनाये रखने की महत्तर साधना भी। विश्वास है उनकी सतत सार्थक सृजन यात्रा इसी तरह आगे बढ़ती रहेगी और नये नये शिखरों को छुयेगी।

संदर्भ :

1. चिंतामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सातवाँ सं.-2007, पृष्ठ- 82
2. साहित्य सहचर, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.-2005, पृष्ठ- 39
3. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.-2008, पृष्ठ- 65
4. देखें, ब्लर्ब, मिट्टी के फल, प्रेम रंजन अनिमेष, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, सं.-2021
5. देखें, ब्लर्ब, कोई नया समाचार, प्रेम रंजन अनिमेष, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं.-2004
6. चिंतामणि- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृष्ठ- 201
7. इस लेख में कविताओं के संदर्भ प्रेम रंजन अनिमेष के संग्रह 'कोई नया समाचार' 'माँ के साथ' और 'नींद में नाच' से लिए गए हैं।

- असिस्टेंट प्रोफेसर, आर्यभट्ट महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली-110021

एक बच्चे की तरह से देखना...

(निष्कलुष बचपन और सच्चे बड़प्पन की अनिमेष काव्य यात्रा)

- अमृता

दस्तक दो / तो घर के सबसे छोटे को / दो आवाज / भले ही /
शिशु हो वह / चलना / नहीं जानता हो अभी / जो सबसे छोटा है /
उसी से / सबसे अधिक उम्मीद है / दरवाजों के / खुलने की...
('दस्तक', 'कोई नया समाचार' से)

प्रेम रंजन अनिमेष हिंदी जगत के बड़े ही सशक्त कवि कथाकार उपन्यासकार हैं। उनकी रचनात्मक महत्ता का एक कारण उनके भीतर बसा और धड़कता बचपन भी है। सपनीली सच्चाई और अच्छाई की तरह एक बच्चा उनके साथ हमेशा चलता है, जो कहता है-ज़िंदगी तो / मेरी बड़ी है!' यह इस कवि का भरोसा है-बचेगी यह दुनिया / तो बच्चे ही / बचायेंगे इसे / अगर हम बचा सकें / बचपना उनका...! मगर सबसे बड़ी विडम्बना हमारे समय की यही है कि जो तथाकथित बड़े और दुनियादार हैं इस दुनिया के, वे इस बचपने को मार कर या उसे दरकिनार कर कामयाब होना चाहते हैं। अनिमेष हमारे समय की इस क्रूर और भयावह विडंबना को बड़ी गहराई और शिद्दत से जगह-जगह रेखांकित करते हैं :

खुद को हमने छोड़ दिया / बचपन की शैतानी सा /
दुनिया ये किस तरह की है बच्चे उदास उदास
कोई जगह न उनकी शरारत के वास्ते

साल 2001 में प्रेम रंजन अनिमेष के बहुचर्चित बहुप्रशंसित पहले कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' के बाद वर्ष 2004 में भारतीय ज्ञानपीठ से उनका काव्य संकलन 'कोई नया समाचार' सचमुच एक नये और शुभ समाचार के साथ आया-भारतीय साहित्य ही नहीं, संभवतः पूरे विश्व और उसके वांग्मय के लिए। बच्चों के बहाने जीवन-जगत के विस्तृत फलक को सामने रखने वाले इस संग्रह को कई सुधी साहित्यकारों ने सूर के बाद इतनी अच्छी तरह से बाल-मन और बालपन के अद्भुत अद्वितीय चित्र उकेरने वाली दुर्लभ एवं अन्यतम कृति माना है। आज भी इस (आउट ऑफ प्रिंट) कविता पुस्तक को साहित्यानुरागी ढूँढ़ते हैं और इसकी कविताएँ उद्धृत करते रहते हैं। उदाहरणार्थ अभी मातृदिवस पर 'नभाटा' द्वारा इनकी कविता 'पहला नाम' साहित्य पृष्ठ पर सबसे ऊपर उद्धृत की गयी है। निस्संदेह यह कवि, काव्य और उसे चाहने सराहने वालों के मध्य सहज सबल रिश्ते को रेखांकित करता है।

माँ का पहला नाम ढूँढ़ते बच्चे की तरह अनवरत सृजनात्मक अन्वेषण करते अनिमेष का रचना संसार इसीलिए इतना गहन और हृदयस्पर्शी है। जहाँ कई स्वनामधन्य कवि बच्चों के बारे में ही नहीं, बच्चों के लिए भी लिखने रचने से बचते रहते हैं, अनिमेष उन गिने चुने संजीदे सर्जकों में हैं जो बच्चों के लिए भी लगातार लिखते रहे हैं-एक कर्तव्य के लिहाज से ही नहीं, अपितु पूरे मन से, मनोयोग से और सत चित आनंद से! वर्ष 2018 में प्रकाशन विभाग से प्रकाशित उनका कविता संग्रह 'माँ का जन्मदिन' इस मायने में अनन्य और अनूठा है। विशेष रूप से रूपायित आठ पंक्तियों के

अभिनव शिल्प में रची हुई कविताओं की यह किताब इस बात की जबरदस्त बानगी है कि बच्चों के लिए बेहतर कैसे लिखा जाये-जो उनके साथ-साथ हर वय-वर्ग के दिल को भी छू ले! बच्चों के लिए उनकी शीघ्र प्रकाश्य अगली कविता पुस्तक 'आसमान का सपना' भी उतनी ही मोहक, सार्थक और सारगर्भित है; जिसमें अनुपम शिल्प वाली एक से बढ़ कर एक अनूठी निराली कविताएँ हैं।

वैसे तो कविताओं के कई रस होते हैं, जो विषयवस्तु व परिस्थितियों से प्रेरित होते हैं। यकीनन अनिमेष की रचनायें वस्तुस्थिति बताने में पूर्णतः सक्षम हैं, किंतु उसके साथ-साथ जो ध्येय और अभीष्ट है और जो होना चाहिए-सब कुछ बड़ी खूबी से सामने रखती हैं ताकि वह सहज स्वाभाविक लगे, न कि किसी उच्चादर्श का आरोपित प्रतिस्थापन। अगर बात करें 'कोई नया समाचार 'संकलन की, तो यह प्रेरित है बाल-प्रकृति और बालमन के सरल भाव से। कहते हैं कि सरलता को समझना और उसकी व्याख्या करना बड़ा कठिन है, पर इन कविताओं में छोटी-छोटी चीजों का विस्तृत और गहरा अवलोकन साफ झलकता है। कम समय में सब कुछ पा लेने की चाहत और आपाधापी में जीवंतता मानो क्षीण हो गयी है -मशीनी दिनचर्या की वजह से ज़िंदगी के एहसास खत्म होते जा रहे हैं। ऐसे में बहुत जरूरी है कि एक सुकून भरा ठहराव हो जो हमें स्वयं से और सबसे जोड़ना सिखाये । सच्चा अध्यात्म भी कहता है कि प्रकृति से तारतम्यता ही जीवंतता प्रदान करती है।

प्रेम रंजन अनिमेष की रचनायें भी बड़ी ही सहज भाषा, चित्ताकर्षक शैली और अनूठेपन से जीवन के शाश्वत मूल्यों और मूल तत्वों को पहचाने व चिह्नित करने का सराहनीय काम करती हैं। भक्ति रस हो, प्रेम रस हो या कोई और रस \-सब कुछ मानव की प्राकृत भावनाओं से जुड़ा है, जिसे कवि अपनी परिकल्पना से रच कर कवितायें बनाता है। हालाँकि यह भी सच है कि जीवन जगत की आम स्थितियों से संवेदनाओं की काव्यात्मक निष्पत्ति निश्चय ही गहन अवलोकन और अन्वेषण की माँग करती है। अनिमेष पूरी सिद्धहस्तता से इसे साधते हैं-विलक्षण नव्यता और उतनी ही प्रभावोत्पादकता के साथ। 'माँ का जन्मदिन' संग्रह में 'अलाव', 'माचिस', 'चिट्ठी', 'अखबार' जैसी अनेक कवितायें तो इसका साक्ष्य हैं ही, 'दीमक' जैसी अद्वितीय कवितायें इसे नयी ऊँचाइयों तक ले जाती हैं।

इस कविता में कवि दीमक को 'अंतिम पाठक' की तरह देखता है! बच्चों के लिए सृजित कविता में अर्थमयता के इतने संस्तर हो सकते हैं, संभवतः अनिमेष से पहले समकालीन साहित्य जगत में शायद ही किसी ने सोचा हो। जल, पतंग, घंटी, चिड़िया, हवा, सूरज, दर्जी -प्रत्येक कविता उतनी ही अर्थवान और प्राणवान, मगर नवांकुर या कोंपल की तरह सरल, निश्छल और अनंत संभावनाओं से भरी और धड़कती हुई! बीजाक्षरों की तरह हैं ये कविताएँ, बच्चों के पहले स्वरों की तरह व्यंजित -जितनी नन्हीं उतनी ही बड़ी, जितनी सरल उतनी ही गहन, कौतुक भरी और मर्मस्पर्शी भी। यहाँ तक कि आलस जैसे भाव पर भी कविता रची गयी है : मैं तो राजा तू भी रानी/ कौन भरे गगरी से पानी! फिर नाम के अनुरूप संग्रह में अप्रतिम अनन्य माँ पर कविताएँ तो हैं ही। अनिमेष का काव्य संकलन 'कोई नया समाचार' बच्चों की भाव-भंगिमा और मनोदशा

को दर्शाता एक 'बड़ा' संकलन है। ऐसी रचनाशीलता तभी संभव है जब बच्चों के संसार को समझने और शब्दों के माध्यम से उसे महसूस करा देने में किसी को महारत हासिल हो। अनिमेष इस दृष्टि से पूर्णतः सफल रहे हैं, इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं । यहाँ संग्रह की ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं -

कोई नया समाचार.../ पूछती हर धड़कन हर साँस / बड़ी उम्मीद से /

बच्चा है सृष्टि का अकेला / नया समाचार / सबसे शुभ सबसे पहला सबसे नया..

यह संकलन अपनी मुट्ठी में संभावनाओं का पूरा जीवन्त अनन्त संसार सँजोये शैशव के आगमन से लेकर आँखों में आकाश भर लेने की बड़ी उड़ान और बढ़े हौसले को दर्शाता है। दिलचस्प है कि 'कोई नया समाचार', 'माँ का जन्मदिन' एवं 'आसमान का सपना' सरीखे बाल मन और बालपन से जुड़े संग्रहों में बच्चों की जिज्ञासा बढ़ाते, उनसे रिश्ता जोड़ते पशु पक्षी भी हैं -यहाँ तक कि बिन बुलाये / आने वाली मक्खी भी । अनिमेष ने क्या खूब लिखा है -

खाने को जो थाली रक्खी / बिना बुलाये आयी मक्खी

पूरी कविता इतनी अद्भुत और मनमोहक है कि बरबस ध्यान आकर्षित करती है। कविता इन पंक्तियों के साथ शिखर तक पहुँचती है :

लाख उजड़ती बस्ती उसकी / बस जाती है फिर भी मक्खी

यह बहुत बड़ी बात है कि बच्चों के लिए ये सीधी सरल कविताएँ भी इतनी सहजता से कितनी गहरी बात कर जाती हैं -

काली भैंस दूध उजला / जो अच्छा करता अच्छा /

काला भी होता सुंदर / जैसे पुस्तक में अक्षर /

हमारी जीवनशैली जिस तरह की हो गयी है, उस वजह से कई शब्द हमारे स्मृति -पटल से अपना स्थान छोड़ रहे हैं। गाँती, गुल्लक, पागुर, छेंकना, अकरावन जैसे शब्द ऐसे ही हैं। किन्तु इन्हें साथ रखना इसलिए भी आवश्यक है कि ये हमें अपनी जमीन और पहचान से जोड़ते हैं। फिर इस संग्रह की कविताएँ बालपन के साथ गहरा लगाव रखती हुई इस तरह विस्तार पाती हैं कि हर वय वर्ग उन्हें अपना बना लेता है। सही है कि सहज निर्मल बचपन सुबह की उस रोशनी की तरह होता है, जिसके लिए कोई अछूता नहीं रहता-जिससे जुड़ते हैं सब अपने अभिनव अनुभवों के साथ!

मन को प्रफुल्लित कर देने में सक्षम ये काव्य संग्रह पाठकों की सोच और संवेदना के कई स्तरों को उद्घाटित करते हुए पूरी रचनात्मकता के साथ मनुष्यता के पक्ष में दृढ़ता से खड़े दिखायी देते हैं।

यकीनन यदि इनसानियत की छवि कहीं सबसे अच्छी दिखायी देती है या जिसके जरिये नजर आती है, तो वह बालदृष्टि ही है। 'आसमान का सपना' में इसी दृष्टि के साथ विविध विषयों से जुड़ी कवितायें हैं–

'मातृभूमि', 'धरती', 'चंद्रयान', 'मंगलयान', 'गगनयान', 'अंतरिक्ष यान' से लेकर 'सच का मान', 'जीवन की धुन', 'लॉकडाउन', और 'साफ-सफाई' तक।

संकलन की 'छिलके' शीर्षक कविता इस आश्चर्य के साथ ध्यान आकृष्ट करती है कि क्या छिलके पर कोई कविता हो सकती है, और वह भी इतनी गहरी -

यह जमीन भी तो इक छिलका / जिस पर इतना मचा तहलका /
हम सब बीज एक ही फल के / अलग अलग हैं केवल छिलके !

फिर जीवन से जुड़ी यह 'आम' कविता, जो कितनी खास है -

आमों का यह मौसम है / पर अपनी आँखें नम हैं ! और यह भी : हम तो दूर नगर आये/ छोड़ गाँव और घर आये।

ये पंक्तियाँ घर की आम स्थिति को खास बनाती हुई विस्थापन की वेदना को बड़ी शिद्दत के साथ प्रकट करती हैं-घर से दूर जीवन तो चल जाता है पर जीवन से स्वाद निकल जाता है ! यह ऐसा विस्थापन है, जिसकी भरपाई कंकरीट के जंगल तो बिलकुल नहीं कर सकते । यहाँ उल्लेखनीय है कि भारतीय परिवेश में प्रकृति और संस्कृति का सृजनात्मक सम्मिलन करती अनिमेष की रस गंध आस्वाद से भरी एक पूरी कविता पुस्तक है 'अमराई' ('हिन्दवी 'पर उपलब्ध) जो भारतीय ही नहीं, समस्त विश्व साहित्य के लिए एक बेजोड़ उपलब्धि की तरह है।

'कोई नया समाचार' में बच्चों से जुड़े हर भाव व्यवहार को बड़ी गहराई से रेखांकित किया गया है। संग्रह की 'पाना' शीर्षक कविता उत्कृष्ट और अनोखी है। बच्चा इस धरती पर उत्सुकता लिये आता है-सब कुछ पाने की इच्छा होती है उसकी तथा इसके लिए हर तरह की कोशिश भी। पाने के लिए रोना पड़ता है, खोना पड़ता है, और होना पड़ता है-इस सच को बड़ी ही खूबसूरती से प्रकट किया गया है इस रचना में। 'झाँ' शीर्षक कविता उस खेल की याद दिलाती है, जिससे बच्चे तो जुड़ते ही हैं, बड़े भी शामिल होते हैं उसमे -खेल खेल में अपने बचपन को जीते हुए।

प्रेम रंजन अनिमेष का अवलोकन अपने आप में संपूर्ण और अद्भुत है। बच्चों की दुनिया में झाँकता हुआ इनका झरोखा बालपन की तरह ही सरल, स्पष्ट, सुंदर और प्राकृत है। शिशुओं की दुनिया को समझने के लिए एक कवि की परिकल्पना और उसके शब्दों में समुद्र जैसी गहराई और आसमान जैसी ऊँचाई छूने की शक्ति होनी चाहिए। अनिमेष इस मामले में पूरी तरह सक्षम, दृष्टि सम्पन्न हैं और सचेत भी- दिन प्रतिदिन 'सयाने' होते जा रहे इस संसार में बचपन और बचपने को बचाने को

लेकर ! उनकी कई अन्य रचनाएँ भी इसकी तसदीक करती हैं-

बच्चे तो बचपना करेंगे / आप कहाँ तक मना करेंगे /
बचपना है सचपना है / सपनों से ही सच बना है /
इस जमाने में मुहब्बत / दो बड़ों का बचपना है /
एक बच्चे ने चाँद माँगा है / आसमां देख कैसे झुकता है /
बस थोड़े भुलावे से ये बच्चे तो बहल जायेंगे /
पर देख खिलौना कोई हम खुद ही मचल जायेंगे /

प्रेम रंजन अनिमेष के पहले काव्य संग्रह 'मिट्टी के फल' की पहली कविता बच्चे की स्लेट पर लिखे सवाल की शुरुआती पंक्तियाँ ही जीवन-जगत के जरूरी सवालों की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। प्रश्नों से जूझने और उत्तर तलाशने का यह सिलसिला, जो कई वर्ष पहले शुरू हुआ था, आज भी कायम है-भविष्य की चिंताओं और चुनौतियों से जूझते हुए उसे सहेजने सँवारने की अदम्य आकांक्षा एवं आयास के

साथ -

क्या सच में एक दिन / स्वच्छ जल रह जायेगा केवल नारियल में /
और खाली बाँस के खोल में / साँस की हवा /
क्या बस जुगनुओं में रह जायेगी सच की लौ /
और केंचुओं के बिल में उर्वर मिट्टी / श्यामपट इतना बड़ा कोरा फैला हुआ /
और जरा सी खड़िया नहीं होगी / 'छुट्टी 'लिखने के लिए भी /
क्या सच में एक दिन / झींगुरों के पास ही रह जायेगी पुकार /
और चिड़ियों को भी / पता नहीं चलेगा अगली सुबह का... ?

दिन-ब-दिन कठिन, दुरूह और चतुर सयाने होते जा रहे हमारे दौर में एक बच्चे की निष्कलुष आँखों से सच्चे बड़प्पन के साथ इस दुनिया को देखना आसान नहीं है। लेकिन अनिमेष इस मुश्किल काम को कितनी सहजता से साधते हैं, यह देखते बनता है-अपने साथ औरों को भी इस साफ, सुलझी, सूक्ष्म और वृहत्तर विहंगम दृष्टि से जुड़ने के लिए सस्नेह आमंत्रित करते हुए। शरद रंजन शरद की पंक्तियाँ लेकर कहें तो :

एक बच्चे की तरह से देखना / ज़िंदगी को इस वजह से देखना /

आने वाला समय अनिमेष का है, यह विश्वास 'बचपन का महाकाव्य 'सरीखे उनके आने वाले संग्रह पुष्ट करते हैं-जिनकी नन्ही से नन्ही कविताओं में भी सचमुच महाकाव्यात्मकता है; सोच की महासागरीय गहराई, जमीनी सच्चाई, सपनों का आसमान और कल्पना की अनंत उड़ान सहेजे हुए।

साक्ष्यस्वरूप 'शिखर की ओर अग्रसर सभ्यता' की यह बेधक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है; और देखी जा सकती है कुछ सीधी सरल सहज पंक्तियों में आगत के लिए इतनी बड़ी चिंता और व्यंजना समोने की विलक्षण कला -

सचमुच खूब तरक्की कर ली हमने / गमलों में फल लगे उगाने /
और कर लिये विकसित पौधे ऐसे / धूप हवा के बिना बंद कमरों में भी /
कुम्हलायें भले जरा मुरझाते मगर नहीं / गर्व हमें है / बच्चे भी / अपने ऐसे ही...
('बचपन का महाकाव्य' से)

विश्वास है कि प्रेम रंजन अनिमेष इसी तरह पूरी सच्चाई, सहजता और सादगी के साथ जीवन जगत की तमाम छवियों को प्रस्तुत करते रहेंगे-अपनी अनूठी रचनात्मकता से साहित्याकाश को आलोकित करते हुए! यह भरोसा यूँ ही नहीं, बल्कि उनकी सतत, बहुरंगी और बहुआयामी सृजनशीलता से निरंतर दृढ़तर हुआ है।

प्रेमरंजन अनिमेष के कविता संग्रह मिट्टी के फल

- राजेन्द्र कुमार

प्रेमरंजन अनिमेष के कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' की कविताएँ कवि की इस साथ से रची-बसी हैं कि 'जिंदगी, लखता रहूँ तुम्हें, और लिखता रहूँ!' लखने और लिखने की समवर्ती सहवर्ती कोशिश में जीवन और जगत की मामूली से मामूली चीजें या घटनाएँ भी अनिमेष की कविता में इतनी व्यक्तित्ववान हो उठती हैं कि उन्हें नए सिरे से पहचानने की शुरुआत करनी पड़ती है। 'छाता', 'मूंगफली', 'कानी उंगली', 'जूते का मुँह' और 'मिट्टी के फल' ऐसी ही कविताएँ हैं।

निहायत मामूली चीजें भी यह एहसास कराती हैं कि उनकी भी एक भाषा है जो मनुष्यता का रचनात्मक पाठ तैयार करने में बड़े काम की है। छाता एक ऐसे आसमान का स्वप्न बन जाता है 'जिसमें सब आ जाएँ और बाहर खड़ा भीगता रहे अकेलापन। मूँगफली अपने चार दानों के बल पर चार जनों को जोड़ने का 'अवकाश' बन जाती है और घर के सबसे छोटे की तरह हमेशा नाबालिग' समझी जानेवाली कानी उँगली आत्मविश्वास से भरकर खिल उठती है जब कोई 'उकसाता है उसी से लौ / उसी से पोंछता है आँख!' जूते को पहली बार मौका मिलता है कि वह पाँव से अपना सनातन रिश्ता तोड़े बिना, स्वतंत्रता से उठे सिर जैसी गरिमा प्राप्त कराने का माध्यम बन जाता है। जूते का मुँह इस तरह भी 'खुलता है कि पैर का अंगूठा उसमें से आँख बनकर झाँके और बेपरवाह स्वतंत्र हरकत करता दिखे। यह देखना कविता और जीवन, दोनों के इतिहास की अभूतपूर्व घटना है और अविस्मरणीय भी। इसी तरह मिट्टी के फल अनिमेष की कविता में आकर इतने सजीव हो उठते हैं कि 'उड़ती चिड़िया भी धोखा खा जाए, मिट्टी का आदमी शहर के मेले में इन्हीं का भाव पूछ रहा है। क्या इतनी-सी कामना करना भी उसका अधिकार नहीं है कि 'मिट्टी के मोल होने चाहिए / मिट्टी के ये फल / ताकि वह खरीद सके इन्हें अपने बच्चे के लिए!'

'मिट्टी' कवि का बहुत ही प्रिय शब्द है, क्योंकि उसने जीवन में उसकी व्याप्ति का अनेक रूपों में साक्षात्कार किया है, जन्म से लेकर मृत्यु तक, बल्कि जन्म से पहले और मृत्यु के बाद तक भी! इसीलिए उसे मिट्टी की तुच्छता से शिकायत बेमानी लगती है। उसे उसकी उर्वरता और सर्जकता की गहरी चिंता है। 'चेहरा' शीर्षक कविता में कुएँ से निकालकर लाए गए सोने और चांदी के चेहरे भी उसे मिल रहे हों तो भी वह अपने असली चेहरे की शिनाख्त यही करता है- 'मेरा तो मिट्टी का था और वह गल रहा होगा!'

मिट्टी की प्राकृतिक सत्ता का वह सामाजिक विस्तार चाहता है। इसीलिए जिस तरह उसकी चिंता यह है कि 'क्या स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल में' या 'क्या बस जुगुनुओं में रह जाएगी सच की लौ', उसी तरह उसकी चिंता का विषय यह भी है कि क्या उर्वर मिट्टी रह जाएगी केवल केंचुओं के बिल में?' 'अंतिम समय तक' शीर्षक कविता में जिस बोरसी का जिक्र है, वह भी मिट्टी की ही याद दिलाती है और अंतिम समय तक गर्भ में कर फेरता रहा शिशु / जैसे घट के भीतर कुंभकार'-जैसी पंक्तियाँ भी किसी न किसी रूप में मिट्टी के प्रति कृतज्ञता का आख्यान हैं।

अनिमेष के यहाँ कवि-कर्म अपने आस-पास के हर कुछ' को पहचानने का एक अनवरत सिलसिला बनना चाहता है। पहचान' कविता में पहचानने की उत्सुकता को ही कवि इस बात की गारंटी मानता है कि हम किसी की उपेक्षा करने या किए जाने के कितना विरुद्ध हैं! अनिमेष की कविता हर उस पुकार पर ध्यान देना चाहती है जो किसी वस्तु की ओर से अपनी पहचान का हाथ बढ़ाने के लिए की जा रही है। यही पुकार 'बिजली के खंभे' की ओर से आती है- 'ये कौन लोग इस शहर के जो नंगे तारों के नीचे हैं गड़े इतने आवेशों के नीचे / अविचलित!' और कभी-कभी तो कवि खुद अपने सिर से झरती रूसी, अपनी जेब से गिरते पैसे और यहाँ तक कि अपने हस्ताक्षर तक की ओर से आती इसी पुकार को सुनता है कि उन सबको अभी भी और अधिक सही-सही पहचाना जाना शेष है। और हाँ, यही पुकार भाषा के उन प्रयोगों की ओर से भी, जिन्हें मात्र 'गालियाँ' मानकर अश्लीलता गोद ले लेती है।

दूध से भारी और पीड़ा से भरी

- ओम निश्चल

हिन्दी कविता में इन दिनों कुछ अलभ्य-अलक्षित सा रचने-बुनने में जिन युवा कवियों को बेहद सावधानी से लक्षित किया जा रहा है, उनमें प्रेमरंजन अनिमेष का नाम अग्रगण्य है। पिछले सात-आठ साल से उनकी कविताएँ हिंदी की अनेक पत्रिकाओं में छपी और सराही गयी हैं। हाल ही में कसौटी, वागर्थ और आलोचना में आयी उनकी कविताएँ अपने समय के एक अलग से शांत मुहावरे में जीवंत भाषा-संवेदना और कथ्य की विविधता का प्रमाण हैं। वे शायद अपनी पीढ़ी के अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने विभिन्न विषयों को ले कर श्रृंखलाबद्ध कविताएँ लिखी हैं।

उनके हाल ही में प्रकाशित कविता संग्रह मिट्टी के फल में दिनचर्या के हाशिये पर पड़ी ऐसी अनेक गतिविधियों, चीजों, हमारे आसपास के उपादानों और मानवीय संबंधों को लेकर अचरज में डाल देने वाली पदावलियों का विन्यास मिलता है, जिनसे आज के कविता संसार में एक नये मुहावरे का दौर शुरू होता है। इस संग्रह में माँ को लेकर लिखी कविताओं में पीड़ा और हार्दिक ऊष्मा की बानगी उपनिबद्ध है तो 'छाता', 'फेरा', 'प्लेटफार्म टिकट', 'लिखावट', 'गालियाँ', 'ठिठकना', 'कला', 'हस्ताक्षर', 'अपने ताले के आगे', 'दो ईंटों का चूल्हा', 'एक बाल से', 'मिट्टी के फल', तथा 'अंतिम समय तक' जैसी कविताओं में जीवन के ऐसे अक्सर अलक्षित रह जाने वाले बिन्दुओं को लेकर कविता रचने के उनके तौर-तरीकों पर भी रोशनी पड़ती है। इन कविताओं को पढ़कर जाना जा सकता है कि कविता वहाँ जन्म लेती है जहाँ गद्य की संभावना समाप्त हो जाती है। प्रेमरंजन अनिमेष की कविताओं में लय की एक ऐसी अटूट धारावाहिकता है, जिसकी डोर से उनके जीवनानुभव बँधे हैं।

केदारनाथ सिंह का कहना है कि मिट्टी के फल का यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है जिसके धड़कते हुए मर्म को कवि अपनी पाँचों उँगलियों अर्थात पाँचों इंद्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है। प्रेमरंजन अनिमेष के इस संग्रह की पहली ही कविता एक ऐसे सवाल से हमें रू-ब-रू करती है जिसमें जीवन के लिए कम से कम होते 'स्पेस' और दुर्निवार पाँव पसारते प्रदूषण की चिंता है। कवि पूछता हैः 'क्या सच में एक दिन स्वच्छ जल रह जाएगा केवल नारियल में / और खाली बाँस के खोल में साँस की हवा/ क्या बस जुगनुओं में रह जाएगी सब की लौ / और उर्वर मिट्टी / केंचुओं के बिल में/ कहना न होगा कि कवि के भीतर धड़कते इस उद्वेलन, चिंतन और प्रश्नाकुलताओं से भरे काव्यविवेक में पर्यावरणवादियों और कृषि चिंतकों की पीड़ा उपनिबद्ध है। कवि के जीवनानुभवों में बढ़ई, लोहार, कुली, धुनिये, चरवाहे सभी की सीखें शामिल हैं - सभी से आँख बचाकर सीखी गयी हिकमतें कवि के आड़े वक्त काम आती हैं। ये सभी हुनरमंद ही कवि हैं- जीवन की पाठशाला या कि कार्यशाला के गुरुजन- जिनके मध्य रहते हुए, हड़बड़ी में ही चाहे, कवि जीवन को जितनी कोरों से हो सके, छूना चाहता है और सिर्फ चाहता भर ही नहीं, उसे जिन्दा रहने की शर्त मानता है। जीने के लिए सारे औजारों की उसे जरूरत है। यह मिट्टी की संस्कृति की ही सीख है कि कवि को एक ऐसे छाते की चाहत है जो आसमान की तरह खुला और विराट हो,

जिसमें सब आ जाएँ। यह चाहत कुमार विकल की उस चाहत से कितना मेल खाती है, जिसमें वे एक ऐसे पुलोवर की कामना करते हैं, जिसे दुनिया का हर बच्चा पहन पाए।

यह सच है कि प्रेमरंजन अनिमेष ने ऐसी तमाम छोटी-छोटी चीजों, गतिविधियों, मनोभावनाओं और अनुभूतियों को कविता का विषय बनाया है, जो प्रायः पकड़ में आने से रह जाते हैं। किन्तु उन्हीं विषयों पर जब कवि की निगाह पड़ती है तो वे अचानक अर्थवान हो कविता की संभावनाओं से भर उठते हैं। 'लौकी को पहचानता हूँ हल्के नाखून गड़ाकर कहने वाले कवि की निरख-परख की कसौटी निहायत मानवीय है। इस पहचान से हम भले ही अनजान होते हैं किंतु हमारे भीतर का मापक हमेशा सक्रिय रहता है– चीजों की पहचान से लेकर आदमी की पहचान तक। 'वहीं का टिकट माँग बैठता हूँ कई बार वहीं होकर' जैसी पंक्ति हमारी बे-ध्यानी की ओर इंगित करती है तो कई बार जली खोखली निकलने के बावजूद भली लगती 'मूँगफली' के बहाने सफर का अनिवार्य हिस्सा बनते जाते इस भ्रमणसंगी के प्रति मानवीय अधीरता और ललक को कवि समझता है। पहली बार साड़ी पहनने की अनुभूति में कोई लड़की कैसे घर में ही घूमती है देर तक अपनी धुरी पर और आँखों में काजल से राह बनाती, प्रतीक्षा करती किसी के आने की बिना बुलाए- कवि इस मनोविज्ञान को सलीके से टटोलता है। उसकी कविता बताती है कि 'लिखावट' में केवल व्यक्ति की पहचान ही नहीं, इतिहास और सभ्यताओं की पहचान भी शामिल है और आदिम प्रवृत्तियों में ढली गालियों में ही कहीं रिश्तों की भी पहचान छिपी है मानकर चलते हुए कवि को लगता है, 'जब कहीं नहीं उँगली' की वैसे भले ही कोई बड़ी उपयोगिता नजर न आती हो पर यही तो लौ उकसाने और आँख पोंछने के काम आती है और बच्चे की कानी उँगली थाम कर चलने में भी। कवि का यह सोचना 'नगण्य' को भी महत्व की दृष्टि से आँकना है।

इस संग्रह की एक बहुत ही लाडली कविता हैः 'ठिठकना' और यह कविता परोक्ष रूप से कवि की रुचियों का प्रक्षेपण भी है और मानवीय प्रतिबद्धता का इजहार भी। एक मिनट के लिए किसी का हाल पूछने के लिए रुकने और बारिश में घिर जाने, एक मिनट अजनबी को राह बताने में गाड़ी छूट जाने, एक मिनट थमकर एक वृद्ध को सड़क पार कराने में हाजिरी कट जाने की आशंकाओं के बावजूद कवि एक मिनट के लिए ठिठकना जरूरी समझता है क्योंकि कवि के ही शब्दों में 'चौबीसों घंटे में अब इसी एक मिनट में बची है ज़िन्दगी।' कहना यह कि सादगी से अपनी बात रखने का सलीका, अपने अवलोकनों को दर्ज.करने और उसे व्यक्त करने का सलीका प्रेमरंजन में बखूबी मौजूद है, चाहे सड़क पर भैंस हो, गोशाला में खड़ी कार, नदी के साथ बहता नगर पटना, रिक्शे पर रोती स्त्री, माथे से झरती रूसी, पतलून का झोला, दो ईंटों का चूल्हा, एक बाल से उठते कितने ही सवाल और चुल्ली बच्चा की शैतानियाँ - उन्होंने चीजों, अनुभवों, अनुभूतियों और मनोभावों के भीतर प्रवेश कर इनमें रची-बसी कविता को बाहर निकालने का प्रयास किया है। इसीलिए उनके यहाँ पत्र पेटी में चिट्ठी डाल देने के बाद भी गिरने की आवाज दर्ज होती है और मेले में चिड़ियों तक को धोखा देते मिट्टी के फलों का यथार्थ भी दृष्टिगत होता है जो मिट्टी के बने होकर भी मिट्टी के मोल नहीं है बच्चे-बुतरू की ललक का केंद्र और मिट्टी के आदमी के लिए स्मृति और स्वप्न

सरीखे हैं।

प्रेमरंजन अनिमेष की इन कविताओं में सर्वाधिक वस्तुनिष्ठता 'माँ' को केंद्र में रख कर रची कविताओं में दीखती है। 'माँ' की उपस्थिति को कवि ने अनके रूपों में गहरी कृतज्ञता के साथ महसूस किया है। वह कहता है: 'कई जगह जहाँ हवा विरल हुई / हम एक दूसरे में भरते रहे अपनी साँस।' 'गोधूलि' इस कड़ी की मार्मिक कविता है जिसमें कवि का अवलोकन लक्षित करने योग्य है -

जीवन का ताप / उतर आया है माँ की तलहथियों में / उनमें उठती है लहर /
यह तबसे है जबसे मैं हूँ / उसके पाँवों में लगा रहता है पानी

यह तो तभी से है जब से वह माँ के अनुभव, माँ की सीख, माँ की पीड़ा, माँ की देह, माँ का जीवट - जिसे देख कवि औचक इस अचरज से भर जाता है - 'क्या यह वही लड़की है जिसे मेले में देख कर / पसंद किया था पिता ने / 'माँ' पर बहुतों ने कविताएँ लिखी हैं, धीरज, वात्सल्य और कृतज्ञता से भरकर किन्तु इन कविताओं में जैसे माँ के साथ कवि ने एक अन्तर्यात्रा की है, उसकी पुलक में भी पीड़ा के दर्शन किये हैं - उसकी दिनचर्या से जुड़ कर उठाये हुए बिम्बों में खाली खाली आकाश-सरीखी माँ की आँखों और अपनी मिट्टी से परे न जाने के उस के मोह की झलक दिखती है। कवि को उसकी आवाज यदि 'दूध से भारी और पीड़ा से भरी लगती है तो यह आवाज कहीं न कहीं उसकी कविताओं में भी सुनाई पड़ती है। 'माँ' के अलावा भी उनकी कविताओं में स्त्रियों का अनेक रूपों में प्रवेश हुआ है। 'मेहतरानी का पान, जिसमें कवि परिष्कृत बाहरी दुनिया के भीतर भरी गंदगी इंगित करता है तो 'पृथ्वी उम्मीद से है' एक गर्भवती स्त्री का रुचिकर रेखांकन है।

अनिमेष का अपना एक व्यक्तित्व है, चीजों को देखने और बरतने का उनका तरीका भी सहज और मौलिक है। वे चीजों को पूरे 'परफेक्शन' में ग्रहण करते हैं- नपे-तुले शब्दों में अपनी बात रखते हैं। केदारनाथ सिंह से कविता की परोक्ष सीख भले ही उन्होंने ली हो, किन्तु केदार- छाया से अपने को भरसक मुक्त रखा है। जहाँ तक छोटी चीजों से काव्य-संसार रचने का प्रश्न है, आज की कविता छोटी-छोटी चीजों, नगण्य से लगते विषयों, मुद्दों, चरित्रों, घटनाओं, अनुभूतियों, अनुभवों एवं मनोभावों से ही अपने रूपाकार रचती है। और ऐसे विषय केदार या प्रेमरंजन के यहाँ ही नहीं, आज के बहुतेरे कवियों के यहाँ देखे जा सकते हैं। इसलिए विषयों के चुनाव से लेकर विषय-निर्वाह तक कवि काअपना स्वराज्य है, वह बड़े विषय या मुद्दे चुनता है या छोटे विषय - कविता की सार्थकता इस पर नहीं, बल्कि सर्वप्रथम तो उसके कविता होने पर ही निर्भर करती है। इसीलिए मात्र ऐसी स्थूल पहचान के बल पर किसी कवि को किसी बड़े कवि की छाया मानना ठीक नहीं है। बल्कि देखना तो यह चाहिए कि क्याये छोटी चीजें कविता में कोई बड़ी बात कहती हैं या किसी बड़े मुद्दे से टकराती हैं मानवीयता के किन मूल्यों का समर्थन करती हैं तथा उनमें कवि का अपना चेहरा-मुहरा बोलता है या नहीं। मैं समझता हूँ प्रेमरंजन ने केवल छोटे विषय ही कविता के लिए उठाये हों, ऐसा नहीं है। उन्होंने अनेक श्रृंखलाबद्ध लंबी कविताएँ लिखी हैं– उँट, साइकिल, पसीना, खेल तथा माँ पर। 'साइकिल सीरीज' में ही कुल सत्तर के लगभग कविताएँ हैं, यद्यपि 'माँ' को छोड़कर

ऐसी श्रृंखलाबद्ध कविताएँ इस संग्रह में एक भी नहीं हैं। वे इकहरी संवेदना के नहीं, समग्रता के कवि हैं। इसलिए उनमें केदार छाया की खोज करना उनके मौलिक अवदान को नकारना है। क्योंकि ऐसी स्थिति में हम यह न भूलें कि 'आना जैसे मंगल के बाद आता है बुध' (केदारनाथ सिंह) - शैली का घोर अनुकरण हुआ है हिंदी कविता में। 'वह आएगी जैसे आती है धूप' (अशोक वाजपेयी) तथा, 'मैं आऊँगा' (देवीप्रसाद मिश्र) जैसी कविताओं में इसी शिल्प का अनुष्ठान मिलता है। इसी तरह 'बचाने' के भाव को लेकर अनेक कवियों में 'बचाने की बेचैनी' देखी जा सकती है। सब कुछ होना बचा रहेगा से लेकर 'प्रेम पत्र' बचाने तक। 'मुझे बचाना है' या 'बचाकर रख लेनी चाहिए हवा' (विनोदकुमार शुक्ल), 'बचाओ' (उदयप्रकाश), 'कुछ तो बच ही जाएगा' 'बचा रहेगा', 'बची रहती है आशा', या बचा रहेगा प्रेम' जैसी दर्जनों पंक्तियाँ और कविताएँ अशोक वाजपेयी के यहाँ भी हैं फिर भी अशोक वाजपेयी और विनोद कुमार शुक्ल में किसी के ऊपर एक-दूसरे की छाया नहीं है। दोनों दो अलग-अलग बोध और प्रविधि के कवि हैं। अशोक वाजपेयी और केदारनाथ सिंह की कविताओं का मिजाज भी बिल्कुल अलग-अलग है। हाँ, कुछ प्रतिध्वनियाँ ओर अनुगूंजें हो सकता है, एक-दूसरे की कविताओं में यदा-कदा एक-सी दीख-सुन पड़ती हों। इसलिए जो कवि अभी बन ही रहा हो, जो अपने मुहावरे की खोज में हो और कवि के अपने ही मुहावरे में कहें तो जो ऐसा हस्ताक्षर बनाने की कोशिश में हो जिसकी अपनी छाप हो और जिसकी कोई नकल न कर सके ऐसे युवा कवि के बारे में फिलहाल कोई अंतिम फैसला देना ठीक नहीं। इसलिए कुछ कविताओं के समाहार करने की शैली और कुछ को उठाने के तौर-तरीके-भर से केदार नाथ सिंह को अपनी कविता के आईने में उतार पाना संभव नहीं है और कोई भी समझदार कवि किसी की कार्बन कापी होना क्यों चाहेगा। ताज्जुब है कि कवि के पास स्व-अर्जित शिल्प न होने का आरोप लगाने वाले आलोचक की निगाह इसी संग्रह की 'विरासत' कविता पर नहीं गई जो पूरी तौर पर अनुकरण के निषेध और विरासत के विरोध में खड़ी है।

कुछ ऐसा चल पड़ा है कि एकाधिक पदावली, एकाधिक शब्दावली की झलक मिलते ही आलोचक अनुकरण का हल्ला मचाने लगते हैं या उसे अमुक-तमुक स्कूल का कवि घोषित कर देते हैं। शायद वे यह भूल जाते हैं कि यह एक ऐसी कला है जो किसी घराने से संपोषित नहीं होती। इसका कोई गुरू नहीं होता, इसकी कोई आनुवंशिकी अभी तक नहीं संभव हो पायी है- यह 'क्रोमोजोम्स' में भी संक्रमित नहीं होती। इसका रचयिता स्वायत्त होता है, जिसका अपना साँचा-करघा और अपनी सोच होती है- क्रियाएँ, संज्ञाएँ और व्याकरणिक संरचनाएँ एक-सी होकर भी कवि के अपने निजी संवेदन और बौद्धिक प्रत्ययों से ढलती हैं। जो अनुकरण-सा दिखता है, वह समकालीनता का बोधक है, किसी भी कला, रचना और रचनात्मक उद्यम के देश-काल में वैविध्य के साथ कई समानताएँ पायी जा सकती हैं और वे स्वाभाविक ही हैं। इसलिए बेहतर यही है कि हम अधिकतम कवि के मौलिक उपार्जन पर ही गौर करें।

प्रेमरंजन अनिमेष बिम्बों का चयन बड़े धीरज से करते हैं-एक किस्सागो अंदाज में वे कविता को आगे बढ़ाते हैं। वे वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थितियों के मनोविज्ञान को

पकड़ते हैं तथा यह ध्यान रखते हैं कि नरेटिव कथन से कविता के तत्वों का संपोषण हो। उनकी कविताओं के भीतर गद्य का आरोह और अवरोह धड़कता है। शायद इसीलिए आलोचक नंदकिशोर नवल ने उनकी कविताओं को प्रगीतात्मक बताया है। यह वास्तव में गद्य का संगीत ही है जो उनकी कविताओं की बुनावट में रचा-बसा है। स्त्रियों की बीमारियाँ एक ऐसी कविता है जो स्त्रियों पर लिखी जाने वाली रूटीन किस्म की रोमांटिक कविताओं से अलग है तथा सच्चाई का वहन करने वाली एक ऐसी काव्य-संरचना है जो स्त्रियों से जुड़ी लौकिक समझ को रेखांकित करती है। स्त्रियों की बीमारियों को कितना 'कैजुअली' लिया जाता है, कैसे वे बिला-इलाज बीमारी में भी अपनी बीमारी छिपाये रहती हैं और परिवार की सेवा टहल में अपने को लगाये रखती हैं, यह कविता उस अलक्षित स्त्री संवेदना की ठीक-ठीक पहचान है जो चार नये आर्य सत्यों के साथ जीती स्त्री को समझने की एक बेहतरीन कोशिश है।

प्रेमरंजन का अब तक का जो काव्य-संसार हमारे सामने प्रकट है वह निश्चय ही आश्वस्त करने वाला और सामाजिक मानवीय सभ्यता की अंतःस्थितियों को टटोलने वाला है। संग्रह की अंतिम कविता 'अंतिम समय तक' को देखें तो लगता है बारीक-से-बारीक चीजें, जिन पर एक आम आदमी की निगाह नहीं जाती, कवि उन चीजों पर गहरी नजर रखता हैः

अंतिम समय तक परीक्षार्थी उलटता रहा किताब /

अंतिम समय तक सजती रही दुल्हन /...बोरसी में आग / आँखों में लौ / बची रही अंतिम समय तक / अंतिम समय तक गर्भ में कर फेरता रहा शिशु / जैसे घट के भीतर कुम्भकार।

स्वभाव में सहज, अनुभव में बेजोड़ और कथ्य में अद्वितीय मिट्टी के फल की कविताएँ हमारे समय का सजीव रेखांकन हैं।

मिट्टी से जुड़ी संस्कृति का महाआख्यानः मिट्टी के फल

– अरविन्द कुमार यादव

प्रेम रंजन अनिमेष समकालीन हिंदी कविता के महत्वपूर्ण कवि हैं। इनकी कविताएँ मानवीय संवेदना एवं लोक जीवन से सांगोपांगावित हैं। इनके काव्य संग्रह 'मिट्टी के फल' के संदर्भ में केदारनाथ सिंह ने कहा है कि 'प्रेम रंजन अनिमेष की कविता की मूल प्रकृति को समझने की शायद सबसे विश्वसनीय कुंजी है कि उनका काव्य-मानस ऐसे चकित-विस्मित करने वाले दैनंदिन बदलावों को चुपचाप दर्ज करके चलने वाला ऐसा संवेदनशील यंत्र है जिससे मामूली से मामूली हरकत छूटने नहीं पाती। अनिमेष अपनी कविता का यह मायालोक इस तरह रचते हैं कि पाठक को भी उसका हिस्सा बना लेते हैं और फिर यह उसका महज गवाह नहीं रह जाता, एक अजब ढंग से मानो उसका सर्जक बन जाता है। यही उनकी कविता को विशिष्ट बनाती है और समकालीन कविता के सारे औजारों के इस्तेमाल के बावजूद, सबसे अलग भी।...'मिट्टी के फल' का यह कवि गहरे अर्थ में मिट्टी की संस्कृति का कवि है। मिट्टी यहाँ कोई कामचलाऊ मुहादिए नहीं, जीवन-यथार्थ का धड़कता हुआ मर्म है, जिसे कवि अपनी पाँचों उँगलियों अर्थात पाँचों इन्द्रियों से पकड़ने की कोशिश करता है।'[1] इनके काव्य संग्रह 'मिट्टी के फल' में समाज की वास्तविक तस्वीर, रिश्ते-नाते एवं आत्मीयता बोध, संबंधों में जीवंतता, प्रेमाभिव्यक्ति, मनुष्यता का क्षरण, जीवनानुभूति एवं भविष्य के प्रति चिंता, गरीबीपन, भुखमरी एवं कामगार संस्कृति, भारतीय संस्कृति, ग्रामीण एवं लोक रंग की अभिव्यक्ति, प्रकृति-चित्रण, राजनीति एवं व्यवस्था का खोखलापन, शहर का दृश्य एवं नगरीय जीवन बोध, स्त्री जीवन एवं माँ-परिवार की धुरी, अजनबीपन, बाजार एवं फ्लैट संस्कृति, आधुनिकता, आतंकवाद एवं भाषिक संरचना जैसे तमाम प्रश्नों को हमारे बीच प्रस्तुत करता है।

अनिमेष सामाजिकबोध और जीवनानुभव के कवि हैं। इनकी कविताओं में समाज की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं का अंकन हुआ है जिसमें व्यक्ति सामाजिक बंधनों में बंधा रहता है। वह जीवन में अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए नए-नए हथकंडे अपनाता रहता है। वह घर-परिवार एवं समाज में रहते हुए व्यतीत किए गए जीवन के अनुभवों को लोगों के बीच में साझा करता है। जब व्यक्ति काम पर से घर लौटता है तो उसके जेब में कुछ पैसे और अन्य वस्तुएँ होती हैं। उन वस्तुओं को आत्मीयजनों के बीच में बाँटता है। समाज में कुछ निर्बल एवं असहाय लोगों की मदद करते हुए उन्हें अपने गंतव्य तक पहुँचाने का प्रयास करता है। समाज के लोग उस व्यक्ति का घर के किवाड़ के दोनों पल्लों की तरह आने का इंतजार करते हैं। जब वह लौटकर घर आता है तो अपने बच्चों के हाथों पर प्लेटफॉर्म का टिकट रखता है। वह समाज के अमानवीय व्यवहारों से आहत होकर जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में अपना समूचा जीवन खपा देता है। कवि ईश्वर से आग्रह करता है कि समाज में गरीबी एवं दरिद्रता इस कदर न हो कि लोग अपना जीवन बेबसी एवं लाचारी में व्यतीत करें, लोगों के दोहरे चरित्र इस तरह बेनकाब न हों कि उन्हें समाज में तिरस्कार की नजर से लोग देखने लगें। समाज में कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं जो निस्वार्थ भाव से लोगों की मदद को अपने जीवन की पूँजी

मानते हैं। यही जीवनानुभव समाज को सही दिशा प्रदान करता है। मनुष्य, जीव-जंतु एवं वनस्पतियों को रूपक के रूप में प्रस्तुत करता हुआ कवि संवादात्मक एवं प्रश्नवाचक शैली में कहता है कि तितली फूल से, रसोई बिल्ली से, महाजन दरिद्र से, अजगर हिरण के बच्चे से, जाल चिड़ियों से, शहर आदमी से कैसे आना हुआ जैसे प्रश्नों को पूछता है तो वह इस संदर्भ में कहता है कि मैं पराग की सुगंध, भोजन की तलाश, कर्ज की आस, अपनी नजर से दुनिया को देखने की ललक, आसमान में उड़ने की चाह, जीवन की आवश्यकता की आपूर्ति, झुलसते पाँवों, मुरझाए पँखों एवं आत्मा एवं हृदय के विश्वास से हवाओं को आवाज देते हुए नदी के लहरों के किनारे बैठकर आधी रात में किसी के घर जाने का विचार करते हुए आने की बात कहूँ तो ऐसे नतीजे पर पहुँचता हूँ, जहाँ हर साँस, हर मुस्कान, व्यक्तियों की बोल एवं समाज में कुछ मनुष्यों की संकुचित सोच एवं विचार से नवागंतुक किसी के यहाँ आने से सशंकित रहता है। यही कारण है कि व्यक्ति किसी भी वस्तु को पहले ठोकठठा कर खरीदता है। जैसे नारियल के पानी को सिर तक हिलाकर या बजाकर, नीबू को पैरों से मसलकर, लौकी में नाखून को गड़ाकर, घड़े को अँगुलियों से ठुनकाकर, दूध की बूँदों को अँगुलियों के नाखून पर गिराकर, बारिश को चींटियों द्वारा अपने अंडे को कतारबद्ध लेकर जाते हुए देखकर एवं आदमी को उसके आँखों की पुतलियों की स्थिरता एवं चंचलता द्वारा नए रिश्ते कायम करने की अनुभूति से समाज एवं जीवन की सही परख होती है। इस संदर्भ में 'बिजली के खंभे' कविता को देखा जा सकता है-

'ये कौन लोग इस शहर के / जो नंगे तारों के नीचे हैं गड़े /
इतने आवेशों के नीचे / अविचलित / इतनी अदृश्य धारायें उठाये /
निर्विकार / यह कौन-सा हिस्सा आबादी का / कद तो ऊँचा है /
कौन नागरिक हैं ये / जो नहीं रह सके / बचकर सिर झुकाकर /
पत्थर नहीं हुए मिल के / धक्कों से एक किनारे / स्तंभित'[2]

अनिमेष की कविताओं में परिवार की अवधारणा, प्रेम, सौहार्द, संबंधों में जीवंतता एवं रिश्ते-नातों की गर्माहट है। इनकी कविताओं में माँ-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी एवं घर के सदस्यों द्वारा परिवार की संकल्पना होती है। परिवार के सदस्य एक-दूसरे के दुख, कष्ट एवं पीड़ा की अनुभूति करते रहते हैं। माँ के हाथों में संतान के प्रति जीवन का ताप एवं प्यार रूपी जीवन की लहर है। घर की गृहस्थी को चलाने हेतु बहू-बेटों के काम के लिए बाहर जाने पर माँ की आँखों में आसमान की तरह घर खाली लगता है। लोग परिवार का गुजर-बसर करने के लिए खेती-पथारी एवं कल-कारखानों में काम करते हैं। कल-कारखानों में काम करके लौटते हुए घर के लिए साग, सब्जी, मूली एवं अन्य वस्तुओं को बाजार से लाते हैं। माता-पिता अपने संतान की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अथक परिश्रम करते हैं। उन्हें नए वस्त्र दिलाने, मेले दिखाने, बच्चों के कहने पर स्वयं नए वस्त्रों को धारण नहीं करना माँ-पिता एवं दांपत्य का कर्तव्य बन जाता है। गाँव एवं शहर के समृद्ध व्यक्तियों के पास अपने परिवार के गुजर-बसर करने के लिए घर हैं। बारिश के दिनों में अपने को सुरक्षित रखने के लिए छाते भी हैं। गरीब व्यक्तियों के पास रहने के लिए न ठीक-ठाक घर है न बारिश में अपने सिर को बचाने के लिए छाता है।

कवि इस विषय पर विचार करता हुआ कहता है कि मैं आसमान रूपी एक ऐसा छाता लेना चाहता हूँ, जिसमें गरीब एवं समाज के वंचित लोग बारिश के दिनों में अपना सिर ढकते हुए आत्मीय रिश्तों को बनाए रखें। इन्हीं आत्मीय संबंधों द्वारा घर-परिवार के लोगों में प्रेम-सौहार्द एवं विश्वास का भाव बना रहता है। बच्चे पिता, भाई एवं परिवार के अन्य सदस्यों की अँगुली पकड़कर जीवन में आगे बढ़ते रहते हैं। परिवार के लोग अपनों के दुखों एवं कष्टों को देखकर व्यथित हो जाते हैं। रिश्तों की गुत्थियों को सुलझाते हुए संबंधों को बनाए रखने की कोशिश करते हैं। परिजनों की रुलाई से द्रवित होकर रिक्शा वाला ठहर जाता है। इन्हीं रिश्तों की स्मृतियों को सँजोए रखने के लिए लोग कैलेंडर, छायाचित्र एवं डायरी का उपयोग करते रहते हैं। 'राह में बहन-घर' कविता से भाई-बहन के आत्मीय रिश्तों का नमूना देखा जा सकता है-

'मैं तो हुई तबाह तबाह ! / कब करने देते हैं कुछ भी / हैं शैतान तीन-तीन /
फिर भी कैसे-कैसे करके / कुछ मीठा और कुछ नमकीन /
देखो बना के रक्खा था / कि तुम खाओगे / देखो लगा ये कैसे मुझको /
तुम आओगे / लाती बहन थाल में क्या-क्या / खाता हूँ मैं सराह-सराह !'[3]

पत्नी का पति के प्रति प्रेम को उजागर करता हुआ कवि कहता है कि पत्नी के अधरों की मृदु मुस्कान द्वारा पति को बुलाने का संकेत, पत्नी के चेहरे पर पान के रस रूपी प्रेम की लालिमा, आँखों में प्रेम की लालसा, माथे पर सुहागन होने की रोली, कपोलों की चमक, सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय आसमान के गुलाबी रंगों की तरह वक्ष-संधियों के गुलाबी सौंदर्य दांपत्य जीवन का एलबम है। 'कला' कविता से संबंधों में आत्मीयता और दांपत्य जीवन में प्रेम की महत्ता की बानगी देखी जा सकती है-

'जैसे रंगमंच के अंधेरे में अभिनेता / इस तरह आ-जाओ जीवन में /
ऐसे करो प्रेम / जैसे गायक लेता है / साँस !'[4]

घर एवं परिवार की संकल्पना माता-पिता द्वारा होती है। संतान के भरण-पोषण के लिए पिता अथक परिश्रम करता है। माँ संतान की प्रथम पाठशाला एवं घर-परिवार की धुरी होती है जो संतान के लिए अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को सीमित करती हुई उसे मुहैया कराने के लिए जी तोड़ मेहनत करती है। अनिमेष की कविताएँ माँ जैसे महत्वपूर्ण तत्वों से निर्मित हैं, जिसमें माँ का बच्चों के प्रति प्यार-आशीर्वाद, अपने दुःख-कष्ट को छिपाकर बच्चों को खुशी प्रदान करती हुई जीवन में आगे बढ़ने की सीख है। 'मैं और माँ जन्म ले रहे थे साथ-साथ' कविता में कवि कहता है कि घर की दहलीज पर पिता ठहर गए माँ मुझे लेने के लिए घर से बहुत दूर निकल गई। माँ मेरे साथ लौटते हुए इस दुनिया में हम दोनों नए सिरे से प्रवेश कर रहे थे कि वह मुझे देखकर मुस्कुराती हुई मेरा माथा चूम रही थी। माँ का हाथ थामे हुए मैं अपनी अँगुलियों द्वारा उसके होने का अहसास कर रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि माँ का हाथ छूटता हुआ मेरे हाथों में उसके पसीने के होने की अनुभूति हो रही है। मैं बिलख-बिलखकर रो रहा था कि माँ मुझे से दूर जा रही है। इस दुनिया में प्रवेश करते हुए मेरे मुँह से आवाजें निकलती हुई मैं और माँ एक-साथ राहत की साँस ले रहे थे। 'माँ का नाटक' कविता में माँ मुझे अपने आँचल में लिए हुए घर का काम सलटाती एवं घर-परिवार को संभालती हुई पिता

के लंबे अंतराल के बाद घर आने पर दादी वाले घर से तीसी के लड्डू और अन्य खाने वाली वस्तुओं को बड़ी दीदी द्वारा भेजवाती हुई कहती है कि पिता से कहना कि माँ छोटे को लेकर मामा के घर चली गई है। माँ का छुपना, घर की वस्तुओं का टूटना एवं लोगों द्वारा हँसी का छूटना माँ का नेपथ्य से बाहर आने के साथ पति एवं संतान के प्रति अगाध प्रेम का द्योतन है। 'मकड़जाल' कविता में माँ बच्चों के कहने पर कहती है कि तुम लोग तमाशा देखो, संगीत सुनो एवं नए वस्त्र पहनो और मेले में सजी मूर्ति को देखने जाओ। मैं घर देख रही हूँ, दुनियादारी की संगीत सुन रही हूँ, तुम लोगों के नए वस्त्र पहनने में मेरा सब कुछ नया है और मैं तो आप ही मूरत बन गई हूँ की अभिव्यक्ति द्वारा अपनी इच्छाओं को सीमित करती हुई संतान की आवश्यकताओं की आपूर्ति करने में माँ के अपना समूचा जीवन खपा देने का चित्रण है। 'सुरसुरी' कविता में माँ को सुरसुरी आने पर वह खोंखते-खोंखते दोहरी हो जाती है। उसका चेहरा लाल हो जाता है और अपने कमरे से बाहर निकलती हुई हाथों एवं आँखों के इशारे द्वारा अपने ठीक होने का ए+हसास कराती हुई संतान को काम पूरा करने की इच्छा जाहिर करती हुई अपने दुखों एवं कष्टों की पीड़ा को संतान को अनुभूति नहीं होने देती है। माँ के खाँसने एवं कराहने की पीड़ा एवं माँ के प्रति संतान के अगाध प्रेम को 'दूध से भारी पीड़ा से भरी' कविता में देखा जा सकता है-

'माँ...!' / चिल्लाता / मैं धाता भीतर /
'बाँ...!' / आती उसकी आवाज / दूध से भारी पीड़ा से भरी...'[5]

किसी क्षेत्र, जनपद एवं देश का रहन-सहन, खानपान, लोकजीवन, लोकरंग, लोकगीत, लोकभाषा एवं लोकवाणी ग्रामीण जीवन एवं लोक की अभिव्यक्ति करता है। इसी लोक चेतना, लोकवाद, लोक जीवन-दृष्टि द्वारा साहित्य का सृजन होता है। अनिमेष की कविताएँ ग्रामीण एवं लोक जीवन-दृष्टि से अनुस्यूत हैं जिसमें लोक जीवन को व्यक्त करता हुआ आदमी कहता है कि पैरों की झुनझुनी के चलते कोई व्यक्ति मेरी साइकिल एवं घड़ी लेकर चला गया। ग्रामीण लोगों का बस में लटककर यात्रा करने की अनुभूति, सड़कों के किनारे बैठकर अपने लोगों का इंतजार करने की प्रसन्नता एवं बैलगाड़ी एवं अन्य सवारी गाड़ी में बैठकर यात्रा करते आत्मीय जनों की मंगलमय यात्रा के लिए हाथ हिलाने में वे सुख का एहसास करते हैं। गाँव के लोग घरों में चिड़ियों द्वारा बने घोंसलों को देखकर परिवार की सुख एवं समृद्धि की अनुभूति करते हैं। गाँव में हरी घास पर बैठकर मूँगफली वाले से मूँगफली खरीदते समय मूँगफली के कुछ दानों को खाते हुए हिसाब नहीं करने की ढिठाई करते हुए उससे पूछते हैं कि तुमने केवल मूँगफली बेची है कि खाया भी है। नन्हें बच्चों की हथेलियों पर मूँगफली के दानों को रखते हुए छिलकों समेत चुभ+लाने, भुने हुए मूँगफली का सोंधा स्वाद नमक-हरी मिर्च के साथ लेते हुए गाँव के लोग जीवन व्यतीत करते हैं। ग्रामीण लोग अपनी बहन-बेटियों को साड़ी पहनने की सीख देते हुए कहते हैं कि साड़ी इस तरह पहनो की एड़ियों की हड्डियाँ ढकी रहें और पाँवों में जो इंद्र-धनुष के समान महावर लगा है, वह भी दिखाई नहीं दे। इस अल्हड़ता की उम्र में तन से सरकती, पाँवों से दबकर खिंचती, बार-बार संभालकर चलने, बार-बार अपने उरोजों को निहारने और घर में रहते हुए साड़ी पहनने

की अनुभूति नहीं होने के उपरांत बाहर निकलते हुए तारों जड़े सात आसमान की तरह तुम्हारे तन पर लिपटी रहे। तुम्हें घर की देहरी को लाँघने में सहजता महसूस हो, ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियाँ पहली बार साड़ी पहनकर घरों में अकेली होती हैं तो मरजाद की भय से बाहर नहीं निकलती हैं। वे घर में देर तक अपनी धुरी पर घूमती रहती हैं। अपनी आँखों में लगे काजल की बनी राह में आत्मीय जनों एवं प्रियतम के आने की बाट निहारती रहती हैं। जब पहली बार बाँधकर साड़ी का पल्लू दुनिया के मेले में निकलती हैं तो वे लोक जीवन की हकीकत से परिचित हो जाती हैं। शहर के मेले में मिट्टी के फल को चिड़ियों द्वारा खाए जाने का धोखा, मिट्टी के बने बच्चे का वास्तविक बच्चों की तरह रुनकने-ठुनकने एवं मिट्टी का आदमी बच्चे की अँगुली पकड़े जैसे गाँवों में पिता अपने संतान की अँगुली थामे ग्रामीण जीवन से परिचित कराता हुआ, दियारों में बाढ़ के आने से लोगों में छायी उदासी एवं रोने के साथ मिट्टी का आदमी मिट्टी के दुकानदार से भाव पूछता है। मिट्टी के फलों को अपने बच्चों के लिए खरीदकर अपनी झोंपड़ी में रखकर देखने के लिए टांग देता है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में हँसी-ठठा एवं मजाक करते हुए वैवाहिक समारोह के मंडप में बधू के लिए सगुन-थाल की पूजा के समय दी जाने वाली गालियाँ भारतीय लोक जीवन को आत्मीयता एवं मधुरता का जीवंत चित्रण करती हैं। हृष्ट-पुष्ट पाँव मोड़कर बैठी धौरी गाय के गोबर की गंध एवं दूध के साथ चरवाहों के निफिकिर जीवन को 'साज-बाज' कविता से देखा जा सकता है-

'चरवाहों के चैन और हाटवालों की हड़बड़ी के बीच /
सोचता हूँ छू सकूँ जीवन को जितनी कोरों से / और फिर /
यह चाह भर नहीं / यही शर्त / जिंदा रहने की /
इत्ते से वक्त में और बित्ते से आकाश में / मारने या मरने के लिए काफी है /
एक चोट एक धार / जीने के लिए चाहिए सारे-के-सारे औजार!'[6]

'लीपना' कविता से लोक एवं ग्रामीण जीवन का एक और उदाहरण देखा जा सकता है-

'जैसे नहीं चाहती रहे कहीं / कोई भी अनचाही छाप /
पैरों की कगरी पर सिमटी / झुककर-तिरकर-फिरकर /
पूरा सुघर लीपने के जतन में आँगन / धाँग देती फिर से आप'[7]

अनिमेष कविताओं में भारतीय परंपरा, विरासत एवं संस्कृति का संमिश्रण है जिसमें इतिहास के चित्र, आदिम प्रवृत्तियों का अंकन, क्लासिकल साहित्य, शास्त्रीयता के प्रमाण एवं किस्सागोई की कहन शैली है। घर-गाँव के लोग अपने संतानों को राजा-रानी की कहानियाँ किस्सागोई शैली में कहते हुए किवदंतियों का जिक्र भी करते रहते हैं। अनिमेष लोक जीवन के कवि हैं। इनकी कविताओं में ऐसी लोक कथाओं एवं कहानियों का भी अंकन हुआ है, जहाँ जंगल एवं पहाड़ को काटकर लौटते हुए व्यक्ति का चेहरा कुएँ में गिर जाता है। वह कुएँ की जगत पर बैठकर रोने लगता है। कुएँ से सोने का चेहरा लिए हुए देवता निकलता है। देवता उस व्यक्ति से प्रश्नवाचक शैली में पूछता है कि यह सोने का चेहरा तुम्हारा है। वह रोते हुए साफ इंकार कर देता है कि यह मेरा चेहरा नहीं है। देवता चाँदी का चेहरा लेकर आता है। वह व्यक्ति इंकार करते हुए कहता है कि मेरा

चेहरा मिट्टी का है। वह गल रहा है। देवता उसे चुप होने को कहता हुआ सोने, चाँदी एवं मिट्टी के चेहरों को सौंपते हुए समाज को परंपरागत संस्कृति की ईमानदारी का पाठ सिखाता है। संतान माता-पिता के गुणों एवं दोषों से सीखता है। जब संतान माता-पिता की भूमिका में आता है तो अपने बच्चों को सुखियों के साथ पूर्वजों की विरासत भी प्रदान करता है। बेटे के पाँव में पिता का जूता जब आ जाता है, वह घर-परिवार एवं समाज के यथार्थ से परिचित होते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। व्यक्ति एवं समाज को पिता के जूते रूपी प्रतीकों द्वारा भारतीय समाज एवं परंपरा का बोध होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में औचित्य का सिद्धांत हमें विचारों एवं भावों के उचित होने के अर्थ एवं स्थान की सार्थकता का बोध करता है। चाहे शादी-ब्याह के समय दी गई गालियाँ हों या काजल को आँखों में लगाए जाने का उचित स्थान हो, ऐसी ही अभिव्यक्ति अनिमेष की कविताओं में है। जहाँ आदिम लोगों द्वारा दी जाने वाली गालियों की अभिव्यक्ति में आदिम समाज, संस्कृति एवं प्रवृत्तियों के साथ गालियों की समय सापेक्षता एवं उसका सांस्कृतिक महत्व चित्रित किया गया है, वहीं दूसरी ओर भारतीय इतिहास में मनुष्य एवं पशुओं की आपसी साझेदारी से गालियों की निर्मिति, ईमानदार तीर की तरह गालियों का भरा समाजशास्त्रीय कोष है। उन्नत कलाओं की तरह सुबह स्नान करते हुए पूरी तन्मयता से चिंतित व्यक्तियों द्वारा गालियों की मंत्रमाला गुथते हुए प्रार्थना, भजन एवं वंदना करते आदमी की सामाजिक पहचान करती है। गालियाँ व्यक्ति एवं समाज से हार न मानने वाली स्त्री के हथियार, जर्जर बूढ़े व्यक्ति की निरीहता की ढाल और समय, समाज एवं परिस्थितियों की मान्यताओं का प्रमाण देती हुई समाज के सज्जन, ईमानदार एवं आदर्शवादी व्यक्तियों को याद करती हुई जुबान को धारदार बनाने एवं पेड़ों की जड़ों की तरह भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की जड़ों को शादी-ब्याह के मंडप में थाल-पूजन के समय दी गई गालियों की आत्मीयता, रिश्तों की मधुरता द्वारा भारतीय परंपरा, इतिहास एवं संस्कृति से हमें परिचित कराती हैं। भारतीय संस्कृति का उदहारण 'चुल्ली बच्चा' कविता से देखा जा सकता है-

'वामन की तरह / तीन डग में नाप लेता है वह /
किराये के इस घर को / अगस्त की तरह सोख लेता / अँगूठे से /
हवा का सारा समंदर / और फिर उसे चूसते /हो जाता बेचैन'[8]

अनिमेष प्रकृति के कवि हैं। इनकी कविताएँ मानव एवं मानवेतर सहचर की कविताएँ हैं जिसमें प्रकृति हँसती-खिलखिलाती मनुष्य की तरह कार्य करती हुई दिखाई देती है। जहाँ संतरा मनुष्य की तरह सुख-दुःख के सूजन की अनुभूति करता है, सेव अपनी मनोवृत्तियों के सपनों को बुनता है, शरीफा अपनी अनेक आँखों से ताकता है और अमरूद अपने भीतर की ललाई से झाँकता हुआ नदी किनारे शहर के मेले में कार्य करता हुआ दिखाई देता है। निर्जन प्रदेश चारों ओर वृक्षों से घिरा है। उसमें रंग-बिरंगे फल लटके हुए हैं। मनुष्य की तरह पेड़ तनकर अपनी खुली आँखों से दुनिया का दृश्य देख रहे हैं। नारियल बहती हुई नदी की धार में मानव की तरह छप्प से कूदता और नदी के लहरों को पकड़ने का प्रयत्न करता हुआ आसानी से मनुष्य की तरह नदी को तैरकर पार करते हुए घर की ओर चलने और हाथ उठाकर लोगों से अपनी प्यास बुझाने जैसे

प्रश्नों को पूछता है। अपनी आँखों से पेड़ों पर मुस्कुराते हुए फलों को देखकर नींद में अपने सपनों को बुनता है, जिसकी थकान उसे चहरे पर साफ दिखाई देती है। फूलों के माथे से पराग झरते हैं, पत्तों के सिर से ओस को बूदें और वसंत ऋतु में वृक्षों के निर्झर होकर नए कोपलों द्वारा नए वर्ष के आने का संदेश है। पेड़ों का मनुष्य की मस्तिष्क की तरह शून्य होने, मन उचटने और चिंतन-मंथन करने की प्रवृत्ति मानवीकरण द्वारा प्रकृति को अवलोकित करती है। अनिमेष की कविताओं में दिन, सुबह, रोशनी, बर्फ, चट्टान, पहाड़, सुलगती चिनगारी, लौ, रात, अँधेरा, कुहरा, समुद्र, नदी, झरने, तालाब, सूरज के निकलने एवं डूबने का दृश्य, आसमान, चाँद, तारों की चमक, जुगुनुओं की झिलमिलाहट, पुष्पों की भीनी-भीनी सुगंध, भौरों की मधुर संगीत, चिड़ियों की चहचाहट, पेड़ों, फलों, पत्तियों एवं वर्षा की बूदें मानवेतर प्रकृति को द्योतित करती हैं। रात्रि के समय चाँद शीतलता प्रदान करते हुए लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है, पूरा चाँद रात्रि में लोगों को रोशनी प्रदान कर रहा है जिसके कारण लोग अपनी यात्रा निर्बाध रूप से कर रहे हैं, समुद्र में ज्वार-भाटा की लहरें उठ रही हैं, पत्तों की कोरों से चाँदी के सदृश्य ओस की बूदें चू रही हैं, लौ की लपट, तारों की टकटकी एवं सूरज की सतरंगी किरणों की लालिमा से इनकी कविताओं में मानवेतर प्रकृति का सृजन हुआ है। मानव एवं मानवेतर प्रकृति का नमूना 'उजास' कविता से देखा जा सकता है-

'पगडंडी की तरह है / सफेद मेरी आत्मा /
ऐसा हुआ है अनगिन पैरों से / आवाजाही से /
रात के सूनेपन में / झुक आता है मुझ पर उनींदा /
आसपास की घास का हरापा / भोर पहर के कुहरे में /
उजागर करते गुजरते फिर मुझे / किरणों के झुंड...'[१]

राजनीति जीवन का अहम हिस्सा होती है जिसकी परिधि से व्यक्ति, समाज एवं साहित्य अलग नहीं रहता है। अनिमेष की कविताएँ इसी परिधि एवं परिवेश की कविताएँ हैं, जिसमें नेताओं के काले करतूतों, सरकार एवं सत्ता का षड़यंत्र, सरकार की नीतियों एवं व्यवस्थाओं का वास्तविक चित्र है। जहाँ सत्ता एवं राजनीति अपने फायदा के लिए सरकारी व्यवस्थाओं को बनाए रखने एवं परिवर्तन करने का कार्य करती है। वहीं दूसरी ओर जूते का सुराख रूपी रूपक सरकारी व्यवस्था के चरमराने एवं नेताओं के काले करतूतों की पोल खोलता हुआ राजनीतिक व्यवस्था के प्रभावित अधिकारियों द्वारा बेबस जनता को फटकार लगाते हुए खबर एकत्रित कर राजनेताओं को प्रेषित करता है। जिस तरह जूते की मरम्मत करने वाला व्यक्ति जूते के तल्ले में कील ठोक देता है। उसी तरह गरीब जनता अपनी स्वतंत्रा एवं हकों को बचाए रखने के लिए सरकारी व्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज उठाती है। कवि 'दस वाक्य जो बच्चे ने गाय पर लिखे' कविता में गाय राजनीति एवं संसदीय व्यवस्था का प्रतीक है। जहाँ राजनीति के दावपेंच एवं नेताओं के काले करतूतों का पदार्फास करती हुई नेताओं द्वारा समाज में प्रचारित किए जा रहे गाय के गोबर को पवित्रता का द्योतक बताती है। इन प्रतीकों द्वारा जनता निरंतर छली जा रही है। जनता के हित में बनाई गई योजनाओं पर निर्णय लेते समय गाय रूपी संसद पगुराने लगती है, अर्थात निशब्द हो जाती है। जनता सरकार के विरोध में निरंतर

आंदोलन करती रहती है और सड़कों पर नेता सरकार के विरुद्ध आवाज बुलंद करते रहते है। सरकार और नेताओं पर इसका कोई फर्क नहीं पड़ता है। वे व्यवस्था में कोई बदलाब नहीं करना चाहते हैं और भोग विलास की जिंदगी व्यतीत करते हैं। संसद भवन में भैंस की भाँति जुगाली करते हुए नेताओं, सरकारी संतरियों एवं सरकारी व्यवस्था के भ्रष्टाचार का नमूना देख सकते हैं-

'व्यवस्था मुस्तैद है हर नाके पर / सुरती और संगीन से लैस /
जिंदगी यूँ इतमीनान से जैसे / चलती सड़क पर पगुराती भैंस.../
सचिवालय में घड़ी टंगी है और / काम चलता है बिना घड़ियों के /
दो-चार-दस वसूलते कितने सधे / प्रशिक्षित हाथ संतरियों के'[10]

भूमंडलीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति से बाजार एवं बाजारवाद का प्रादुर्भाव होता है। बाजारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने व्यक्ति एवं समाज को अपने अनुसार रचने-गढ़ने का कार्य संपादित कर रही है। जहाँ व्यक्ति अपनी आवश्कताओं की पूर्ति से इतर वस्तुओं को एकत्रित करता जा रहा है। अनिमेष की कविताएँ उपभोक्तावाद एवं बाजारवाद की संस्कृति से लैस हैं जिनमें वस्तुओं के नए-नए ब्रांड, वस्तुओं का उपयोग योग्य रहते हुए नवीन वस्तुओं की खरीदारी, मॉल संस्कृति के प्रति बढ़ता लोगों का आकर्षण एवं घर की जगह फ्लैट संस्कृति का व्यक्ति एवं समाज में बढ़ता कल्चर है। 'माँ के साथ' कविता में किराए के घर में रह रहे व्यक्तियों के पास अपनी छत नहीं है और शहरों से घर की छत के कांसेप्ट को खत्म होता जा रहा है। जहाँ फ्लैट संस्कृति कस्बों एवं शहरों में तीव्र गति से अपना पैर पसारती जा रही है, वहीं भूमंडलीकरण व्यक्ति की मानसिकता को बाजारवाद के रूप में रच-गढ़ रहा है। जहाँ व्यक्ति पुरानी होती जा रही वस्तुओं हटाकर कर नवीन वस्तुओं को कर्ज लेकर खरीद रहा है। व्यक्ति बाजार से सूजी, मसाले, हल्दी, गुड़, मूली की पत्तियाँ, साग की फुनगियाँ, सब्जी एवं अन्य वस्तुओं को दुकानदार से नाप-तौल करवाता हुआ पूजा का सामान खरीद रहा है। बाजार व्यक्ति को वस्तु के रूप में तब्दील करता जा रहा है। जहाँ काम से लौटता हुआ व्यक्ति बाजार के अनुसार वस्तुओं को घर लाता है। 'गोशाला में खड़ी कार' कविता से बाजार एवं बाजारवाद का नमूना देखा जा सकता है-

'मुमकिन है / पहला आदमी / बेचकर चला गया हो सब कुछ /
और नये भू-स्वामी की हो यह कार / या फिर उसने शुरू किया हो /
गाय और दूध की ही तरह / कोई नया व्यवसाय'[11]

आधुनिकता समकालीनता की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है जो प्रौद्योगिकीकरण, धर्मनिरपेक्षता, सामंतवाद, पूँजीवाद के साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन संदर्भों से संपृक्त है। आधुनिकता की प्रक्रिया मानव जीवन को परिवर्तित एवं विकसित करती जा रही है, जिसमें शिक्षा के प्रति लोगों का बढ़ता झुकाव, बौद्धिक संस्कृति, व्यक्तियों के विचारों एवं मनोवृत्तियों के तौर-तरीकों में परिवर्तन, नगरों में बढ़ती जा रही जनसंख्या, महानगरी जीवनबोध एवं परंपरा में बदलाव आदि है। ऐसे ही तत्वों से अनिमेष की कविताओं का तानाबाना बुना गया है। शहर आधुनिक सुख-सुविधाओं से लैस है। जहाँ चारों तरफ कंकरीट के वृक्ष उगते जा रहे हैं। बिजली के खंभों के नीचे शहर के बेबश

और लाचार लोग निवास कर रहे हैं। शहर की चकाचौंध से प्रभावित होकर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों शहरों की ओर पलायन करते जा रहे हैं, जिसके कारण शहर की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है। ऐतिहासिक पटना शहर गंगा नदी के किनारे बसा है। जहाँ चिड़ियाघर, अजायबघर, ताराघर एवं गोलघर आदि की सुविधाओं से संपन्न होते हुए यहाँ के गरीब लोग नालों पर खाट लगाकर जीवनयापन कर रहे हैं। शहर की इस तदर्थ गोशाला में कार की मौजूदगी व्यक्ति एवं समाज को महानगरीय जीवनबोध की वास्तविकता से हमें परिचित करती हुई भारतीय परंपरा में आ रहे परिवर्तनों से रूबरू कराती जा रही है। जहाँ भारतीय घरों में पिता के जूते में संतान के पाँव का आ जाना, संतान को घर की जिम्मेदारी का अहसास कराती हुई परिवार के सदस्यों का आपस में मिल जुलकर जीवनयापन करने एवं नहाते समय भाई की पीठ पर पानी डालने की पूर्वजों की परंपरा एवं विरासत को आधुनिकता ने परिवर्तित करती हुई समाज में एकल परिवार की अवधारणा एवं व्यक्तियों के जीवनयापन करने के तौर-तरीके को परिवर्तित करती जा रही है। जहाँ अब भारतीय परिवारों में बड़े भाई एवं अन्य परिवार के सदस्यों की सुबह चाय पीने की आदत परंपरा में बदलाव का जीवंत प्रमाण है। चावल पकाने से पहले धोने एवं गेहूँ पिसवाने से पहले सूरज की आँच में सुखवाने एवं माँ के साथ खत्म हो रही पीढ़ी, परंपरा में परिवर्तन एवं आधुनिकता को 'माँ के साथ' कविता से देखा जा सकता है-

'माँ के साथ / खत्म हो रही पीढ़ी / जो चावल मेराने से पहले /
उसे धोती-चुनती है / जो गेहूँ पिसवाने से पहले / आकाश में सूरज की साँस /
कितनी ही कमजोर होने के बावजूद / जरूर-से-जरूर / धोकर सुखाती है.../
फिर भी वह खुद लगकर धोयेगी / और बाँस की सीढ़ी लगाकर /
सूप-सूप डाल-डाल / धूप में पसार आयेगी / पर अब जितनी देर /
सूखता रहता है गेहूँ / मैं डरता हूँ'[12]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनिमेष की कविताएँ समाज की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं द्वारा समाज की वास्तविक तस्वीर उकेरती हुई व्यक्तियों के संशयग्रस्त जीवन एवं जीवन के पहलुओं का चित्रण करती हैं। प्रेम, सौहार्द, भाईचारे द्वारा रिश्तों की आत्मीयता को बनाए रखने के साथ पिता के प्रेम एवं माँ के ममत्व का बोध कराती हुईं ग्रामीण जीवन, परिवेश एवं संस्कृति से हमें रूबरू कराती हैं। इतिहास के चित्रों, आदिम प्रवृत्तियों, भारतीय मिथकों एवं किस्सागोई शैली द्वारा भारतीय परंपरा, संस्कृति एवं लोक जीवन का रेखांकन करती हुईं रंग-विरंगे पुष्पों, सूरज की सतरंगी किरणों नदियों, झरनों एवं पहाड़ों की सुषमा के साथ मनुष्य की तरह क्रिया-कलाप करते हुए प्रकृति के हँसने-खिलखिलाने का चित्र खींचती हुईं व्यक्ति एवं समाज को राजनीति के दावपेंच, सरकारी तंत्रों, नेताओं के दोहरे चरित्रों एवं सत्ता एवं सरकार के विरुद्ध जनता की आवाज को बुलंद करती हैं। भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद एवं बाजारवादी संस्कृति व्यक्ति को वस्तु के रूप में तब्दील करने एवं मॉल एवं फ्लैट संस्कृति का समाज को पाठ पढ़ाते हुए सामंतवाद, पूँजीवाद, शिक्षा के प्रति लोगों की बढ़ती ललक, बौद्धिक संस्कति, महानगरीय जीवनबोध एवं परंपरा में बदलाव द्वारा आधुनिकता की प्रवृत्तियों

से रूबरू कराती हुईं इनकी कविताएँ जीने के लिए चाहिए सारे-के-सारे औजार! का महाआख्यान प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ :

1. मिट्टी के फल के फ्लैप से
2. प्रेम रंजन अनिमेष : मिट्टी के फल, पृ. 26
3. वही,पृ.90
4. वही,पृ.53
5. वही,पृ.108
6. वही,पृ.16
7. वही,पृ.89
8. वही,पृ. 114
9. वही,पृ.124
10. वही,पृ. 61
11. वही,पृ. 58
12. वही,पृ. 100

- सहायक आचार्य
हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, सांबा-181143 (जम्मू एवं कश्मीर)

जीने के लिए चाहिए सारे-के-सारे औजार

(विचार संदर्भः प्रेम रंजन अनिमेष का काव्य संकलन 'मिट्टी के फल')

- प्रफुल्ल कोलख्यान

युवा कवि प्रेम रंजन अनिमेष का नाम हिंदी कविता की समकालीन दुनिया में परिचित है। आनेवाले दिनों में हिंदी कविता का रूप और वस्तु जिन कवियों के सर्जनात्मक प्रयास से खिलेगा उनमें एक संभावनाशील नाम प्रेम रंजन अनिमेष का भी है। मिट्टी के फल' उनका पहला कविता संग्रह है। पहलेपन में अपना एक खास आकर्षण भी होता ही है। एक अलग किस्म की प्रत्याशा। सरोकर के एक नये सूत्र का उन्मेष। जीवन के आकाश में संवेदना और सौंदर्य की खुलती हुई एक और नई खिड़की। केदारनाथ अग्रवाल के आँगन में 'एक हथौड़ेवाले' के जन्म की तरह से संभावनाओं के संधान का एक नया संदर्भ। कहना न होगा कि प्रेम रंजन अनिमेष की कविता हिंदी कविता का बिल्कुल टटका संदर्भ है। स्वाभाविक ही है कि पाठक उनके काव्य संकलन 'मिट्टी के फल' से उस टटकेपन की आशा करे। एक नई काव्य उष्मा और जीवन संबंधों की नई सुषमा की सुगंध 'मिट्टी के फल' में पाठक तलाश करे,तो क्या अचरज! उसे हक है। अपनी इस तलाश में पाठक को कई चुनौतियों से भी गुजरना पड़ सकता है। 'मिट्टी के फल' का अर्थ वह कैसे हासिल करे! दो लेकोक्तियों की ओर सहज ही ध्यान जाता है-पहला 'मिट्टी के माधो' और दूसरा 'मिट्टी के लाल'। ये लोकोक्तियाँ 'मिट्टी के फल' के अर्थ चयन में मददगार साबित हो सकती हैं। यहाँ मिट्टी 'मिट्टी के फल' वैसे ही हैं, जैसे होते हैं 'मिट्टी के लाल'। मिट्टी से बना हुआ फल या मिट्टी से ऊपजा हुआ फल के अर्थ द्वंद्व से बाहर निकल आने का मिलता है रास्ता! 'मिट्टी के फल' में संकलित प्रेम रंजन की कविताओं के संदर्भ मिट्टी से बने हुए फल से टकराते हुए मिट्टी से ऊपजे फल की ओर सार्थक संकेत करते हैं। कहना न होगा कि मिट्टी का बड़ा व्यापक अर्थ है और अर्थ की इस व्यापकाता का अंतिम आशय कविता ही तो हो सकती है! 'मिट्टी और 'कुम्हार' के संवाद की साखी धरकर कह गये हैं कबीर दास कि दोनों एक-दूसरे को रूँधते हैं; दोनों एक दूसरे को बनाते रहते हैं। सिरजते रहते हैं एक दूसरे को अंतिम समय तक जैसे 'अंतिम समय तक/ गर्भ में कर फेरता रहा शिशु/ जैसे घट के भीतर कुम्भकार!! (अंतिम समय तक)। जैसे देख लेते हैं केदारनाथ सिंह कुम्हार की आँख में बचे हुए बाघ को! जैसे जन्म होता है माँ का और शिशु का साथ-साथ। इस सहजन्म से लिपटकर आता है सृजन के आनंद में अंतर्निहित संतोष और सृजन की पीड़ा से राहत!'जन्म हो गया!! आवाजें उभरी/ और राहत की साँस ली/ मैंने माँ के लिए/ माँ ने मेरे लिए... (मैं और माँ जन्म ले रहे थे साथ-साथ)। बच्चे को जन्म देने के पहले नहीं होती है कोई नारी माँ! बच्चे के जन्म के साथ-ही-साथ जन्म होता है माँ का भी! जैसे कविता बनने के साथ ही बन रहा होता है कवि भी! अद्भुत है यह सृजन-चक्र जिसमें सर्जक और सृजित का सृजन जीवन का एक सहघटित आयाम होता है! समय अर्थात जीवन की घटनावलियों के अंतस्संबंधों की बहुरेखीयता एवं बहुआधारीयता के अंतर्लापी संवेदार्थों को समझने और उनसे संवाद के कई तरीके हो सकते हैं। उन तरीकों में एक महत्त्वपूर्ण और बहुसंदर्भी सांस्कृतिक तरीका कविता है। कविता न सिर्फ इन

अंतर्लापों को दर्ज करती है बल्कि जीवनानुभव के संचित कोष के राग और अनुराग का जरूरी हिस्सा भी बनाती चलती है। जैसे जीवन में होते हैं कई कोण-दृष्टिकोण भी और अंधकोण भी-- उसी तरह कविता में भी होते हैं कई कोण। सभ्यता की जटिलताओं के कारण मनुष्य का जीवन ऊपर से अलग-अलग, आत्मनिर्भर और निरपेक्ष दीखता है। जबकि होता है भीतर से पूरी तरह संयुक्त, संपृक्त, परमुखापेक्षी और सापेक्षी। सभ्यता के विकास की अंतर्यात्रा पर गौर करने से यह बात सामने आती है कि इसके विकास में ही समय के साझापन के विकसित होते जाने का मर्म भी अंतर्निहित होता है। यह साझापन ही है जिसके कारण व्यक्ति के किये को पूरे समुदाय का कृत्य मानकर लोग चलने लगते हैं। यह अलग बात है कि इसकी चरम अभिव्यक्ति आजकल नकारात्मक संदर्भों में ही अधिक होती है। साझापन कभी खराब नहीं होता, हम ऐसा मानते हैं। लेकिन दिक्कत यह कि ढाँचा और अंतर्वस्तु के जिस विपर्यय में हम पहुँच गये हैं वहाँ साझापन के ढाँचे में भी विच्छिन्नता के विषाणु पलते हैं। भूमंडलीकरण के इस समय में एक अद्भुत साझापन विकसित हुआ है। देश-काल, भाषा-भाव, प्रवृत्ति-निवृत्ति, संस्कृतियों के प्रेतों के साझापन की प्रतिभा एक दूसरे से संधि में नहीं एक के दूसरे में सेंध के रूप में सामने आ रही है। क्या इस समय एक खतरनाक साझापन के दौर से नहीं गुजर रहे हैं हम लोग! ऐसा क्यों हो रहा है? यह विस्तार में अलग से विचारणीय है। यहाँ तो बस इतना ही प्रयोज्य है कि इस साझा समय की कविताओं में समय का साझापन अपने को किन रूपों में अभिव्यक्त करता है। आज के 'ऋण-ग्रस्त समय' का संकट यह भी है कि कोई किसी का 'ऋणी' नहीं है। 'कृतज्ञता' और 'कृतघ्नता' समकालीन बोध नहीं रह गया है।

महत्त्वपूर्ण यह है कि ऐसे में भी प्रेम रंजन की काव्य संवेदना यह बात उठा पाती है कि 'जिन-जिनके ये हुनर/ सब का आदर/ सबकी बाकी है गुरु दक्षिणा/ सब से सीखा आँख बचाकर/ चरवाहों के चैन और हाटवालों की हड़बड़ी के बीच/ सोचता हूँ छू सकूँ जीवन को जितनी कोरों से! और फिर यह चाह भर नहीं/ यही शर्त/ ज़िंदा रहने की/ इत्ते से वक्त और बित्ते-से आकाश में॥ मारने या मरने के लिए काफी है/ एक चोट एक धार॥ जीने के लिए चाहिए सारे-के-सारे औजार!! (साज-बाज)। किस प्रकार 'इत्ते से वक्त' और 'बित्ते-से आकाश' में जीवन को उसकी कोरों से छू सकने की ललक सिर्फ चाह नहीं जीने की शर्त्त बन जाती है, इसे यहाँ महसूस किया जा सकता है। अन्यथा यह भी लक्षित किया जा सकता है कि जीने की इस शर्त को ठीक से पूरा नहीं कर पाने के कारण भी जीवन कितना अधिक अधूरा-अधूरा बनकर रह गया है। रोजगारहीन वृद्धि के इस समय में प्राकृतिक संसाधनों के भयंकर दुरुपयोग का तांडव चल रहा है। जीवन नये हाहाकार से ग्रस्त है। सब कुछ जैसे तहस-नहस होने के कगार पर पहुँच गया है। चारों तरफ पर्यावरण का संकट। जीने के उपाय जो मनुष्य ने अपने पराक्रम से अर्जित किये थे उन पर कुछ खास लोगों का कब्जा होता जा रहा है। आम आदमी के लिए तो सहज लाभ्य प्राकृतिक संसाधनों के स्रोत भी छीजते जा रहे हैं। कहाँ और कैसे बचेगा जीवन और उसका आनंद! आशंकाएँ यह कि 'क्या सच में एक दिन/ स्वच्छ जल रह जायेगा केवल नारियल में। और खाली बाँस के खोल में साँस की हवा' (बच्चे की सलेट पर लिखे कुछ सवाल)। आशंकाएँ तो यह भी कि कैसे बचेगा नारियल और कैसे बचेंगे

बाँस! कहते हैं अरविंद चतुर्वेद 'सभ्यता का तकाजा है कि/ जिम्मेदार नागरिक का एक पाँव भरोसे पर/ और दूसरा सहानुभूति पर टिका रहे।! (सुंदर चीजें शहर के बाहर हैंः आँकड़ों का सच)। आज न भरोसा निरापद है, न सहानुभूति! यह भरोसा, सहानुभूति और विश्वास ही तो नहीं रहा, न रहा हर हाल में इन्हें बचाने के लिए तत्पर साथी का साथ, जीवन में जिसे बचना चाहते हैं अरुण कमल कि 'लेकिन इतना तो है कि रुक जाऊं अगर/ तो टूटेगा विश्वास/ और यही तो हर हालत में/ हमें बचाना है, चलिए साथी (नये इलाके मेंः यही बचाना)। हम कहते रहे भाषा में कि चलिए साथी, चलिए साथी। लेकिन ठिठके रहे क्योंकि 'मैंने दरवाजे बंद किये/ और कविता लिखने बैठा/ बाहर हवा चल रही थी/ हल्की रोशनी थी/ बारिश में एक साइकिल खड़ी थी/ एक बच्चा घर लौट रहा था॥ मैंने कविता लिखी/ जिसमें हवा नहीं थी/ साइकिल नहीं थी बच्चा नहीं था/ दरवाजे नहीं थे।' (मंगलेश डबरालः हम जो देखते हैं)। नतीजा यह कि 'टूटकर गिरी नहीं छत/ टूटकर गिरा सिर्फ भरोसा/ झरे नहीं दीवार के पलस्तर/ भरभराकर झर गये इरादे/ दरवाजे भी सब दुरुस्त और खिड़कियों का काँच भी नहीं चटखा/ फिर कहाँ बिला गयीं उम्मीदें! (अरविंद चतुर्वेदः सुंदर चीजें शहर के बाहर है)। राजेश जोशी की कविता में भरोसे की जिस डोर पर चला करता था जीवन को जीनेवाला नट वह डोर ही लरज गई! कुछ भी सुनिश्चित नहीं रहा! प्रेम रंजन अनिमेष के काव्यानुभव के पास आशंकाओं से घिरा ऐसा ही बचा जीवन कि'चिट्ठी डाल दी है सवाधानी से/ और सुनी है उसके गिरने की आवाज भी/ फिर भी थपथपाकर पत्र पेटी/ डालकर हाथ/ देखता हूँ कहीं/ बीच में अटकी तो नहीं रह गयी' (सुनिश्चित)। हाँ बीच में ही अटक गया है जीवन, जैसे जीवन में अटक गया है छद्म रहित विनय। ऐसा इसलिए हुआ कि हम अपनी गतिहीनता को पीठ पर लादे विशेषज्ञों की दुनिया में भटकने को बाध्य हुए और 'विशेषज्ञ जिस सभ्यता को रचते हैं और जिसका वर्णन करते हैं, वह टीवी के पर्दे पर हो/ या अखबार के पन्नों पर/ समूचे परिदृश्य में महज एक धब्बा-सा नजर आता है। (अरविंद चतुर्वेदः सुंदर चीजें शहर के बाहर हैं)। विशेषज्ञों की रची दुनिया के बाहर, जीवन में छायी अमरवेलि सरीखी छद्म-विनयशीलता के धुरफंदे से बाहर निकलना ही होगा। यह साहस विशेषज्ञ, जानी और विज्ञानी नहीं कर सकते! प्रेम रंजन की कविताएँ कह सकती हैं क्योंकि वह जानती है कि 'भाषाविज्ञानी नहीं मै/ लेकिन जाने क्यों लगता है/ किसी जुबान की धार के लिए/ लौटना होगा अपनी गालियों के पास॥ और हलाँकि समाजशास्त्र उतना ही/ जानता हूँ जितना पेड़ की जड़ें/ मगर यह भी लगता है/ जब कहीं नहीं रहेंगे/ तो गालियों में ही बचे रहेंगे रिश्ते! (गालियाँ)। गालियों में गुस्सा है। गालियों में घृणा है। अकेले पड़ते जा रहे मनुष्य की सारी रिश्तेदारियाँ एक विचित्र किस्म की सामाजिक निःसंगता की बंद गलियों में फँसकर दम तोड़ रही हैं। भाषा की भटकती चर्या बची रह सकती है गालियों में। ऐसे में बचा रह सकता है गलियों में संबंध का अचरज, जैसे नारियल में पानी और बाँस के खोल में साँस की हवा! संबंधों के उजाड़ के अरण्य में भी अंततः बची रह सकती है गालियों में भाषा की धार! कविता के होने के लिए ना-काफी है लंपट आषा की दप-दप धार। कविता को चाहिए उदास जीवन के अंतःकरण में बची हुईं करुणा का अंतिम राग। कविता को चाहिए ग्लेशियर की

आत्मा में सोई हुई आग की अंतिम लौ। कविता को चाहिए प्रथम और प्रथमा के अद्वैत प्रगाढ आलिंगन की पहली दीपित एकानुभूति। कविता को चाहिए स्वानुभूति। कविता को चाहिए सहानुभति। कविता है जीवन के राग-विराग का अंतिम आशय। पाठक कविता के पास जाता है, जब जाने के लिए नहीं बचती है कोई माकूल जगह। भावनाओं की उष्मा से होने सराबोर। सिर्फ विचार नहीं। यह तो दर्शन से मिल जाता है। सिर्फ उपदेश नहीं। यह तो धर्म के ध्वजधारकों से मिल जाता है। अकुलाते मन के कोर-कोर और जीवन के पोर-पोर में छमछम का समावेश हो जाता है तब इन्हें ध्वस्त करने के लिए जो सबसे बड़ा आश्वासन बचता है मनुष्य के पास उसे वह कविता के नाम से जानता है।'तिरगुन फॉस' लिये डोलनेवाली माया को कविता ने ही तो जनता की आँखों से उत्तारा था! सच और झूठ, देश और काल से परे जीवन के उस दिगंत में जहाँ अंतःकरण के आयतन के क्षेत्रफल के बीच अच्छा और बुरा, श्रेष्ठ और हीन सब आत्मवत हो जाता है। जिंदा रहने के लिए चाहिए इसे भी जीवन के सारे-के-सारे औजार। 'मिट्टी के फल' की कविताओं में कई संदर्भों में माँ आती है। जन्म होता है शिशु के साथ माँ का भी। संभव होने के अंतिम समय तक कवि और कविता को कर फेरते रहना होगा एक साथ। कवि और कविता एक बार फिर से दोनों रचेंगे एक-दूसरे को साथ-साथ और लौट आयेंगे उम्मीदों के रंग हजार।

सभ्यता एक सँकरी गली में फँस गई है। इस गली से निकलने के लिए जो यात्रा लौटती हुई दीख रही है वह भी दरअसल सभ्यता की अगली यात्रा ही है। इस यात्रा के पथ का पाथेय है-साहस, अदम्य साहस; सपना, नींद के बाहर संगठित होता हुआ सपना। संकल्प, यौवन के उमंग से लबालब भरे करुणा से ऊपजे कठोर जल को अंजलि में भरकर लिया गया संकल्प जिसका हौसला न छाता से संतुष्ट हो न छत से। जिसे अकेले पड़ते जा रहे मनुष्य की त्रासदी मालूम हो और जो पूरी शिद्दत से कह सके 'इसलिए/ सोचता हूँ/ मैं लूँगा/ तो लूँगा आसमान/ कि जिसमें सब आ जायें/ और बाहर खड़ा भीगता रहे / बस मेरा अकेलापन' (छाता)।

निजी त्रासदी से ऊपर उठकर

- गीता शर्मा

मुक्तिबोध ने एक जगह लिखा है कि हमारे जमाने की सबसे बड़ी दुर्घटना संयुक्त परिवार का विघटन है। इसीलिए उन्होंने प्रेमचंद के साहित्य का सर्वाधिक सकारात्मक पक्ष संयुक्त परिवार के प्रति आस्था और विश्वास को बताया था। कहना न होगा कि संयुक्त परिवार के स्थायित्व का सबसे बड़ा आधार उस परिवार के मुखिया और अन्य सदस्यों के बीच पारस्परिक स्नेह, विश्वास और संबंधों की गरिमापूर्ण संवेदनशीलता ही होती है। प्रेम रंजन अनिमेष का ताजा संग्रह 'संगत' लगभग इन्हीं भावनाओं की निश्छल अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

मिट्टी के फल, कोई नया समाचार, बिना मुंडेर की छत, अंधेरे में अंताक्षरी और अच्छे आदमी की कविताएं, इन पाँच कविता संग्रहों के बाद आया समीक्ष्य प्रस्तुत संग्रह इस मायने में अलग और पिछले सभी संग्रहों से भिन्न है कि इसमें तिल-तिल मृत्यु की ओर बढ़ते दिवंगत पिता की आत्मीय छवियों की निरावेग अभिव्यक्ति है। यों तो पूरा संग्रह रुग्ण पिता की यथार्थ जीवन-स्मृतियों का ही वास्तविक बखान है, लेकिन इसमें माँ भी पिता के अखंड और अभिन्न हिस्से के रूप मौजूद है। माँ को लेकर लिखी कविताओं में ही नहीं, बल्कि पिता की भांति-भांति की छवियों में पूरी तरह घुली-मिली हुई। दोनों के संग-साथ को पूरी वास्तविकता और सहजता के साथ अभिव्यक्त करती हुई। इस दृष्टि से इस संग्रह का शीर्षक 'संगत' भी एकदम सटीक और विशेष अर्थ-व्यंजक है। सिर्फ माँ ही नहीं, बल्कि इन छवियों में, और उनकी धूप-छांही पृष्ठभूमि में, पूरा परिवार ही समाया हुआ है। संयुक्त परिवार के सबसे बड़े सदस्य से लेकर छोटे अबोध बच्चों तक। यहाँ तक कि नौकरी इत्यादि के कारण बाहर और अलग रहने वाली इस संयुक्त परिवार की अन्य शाखाएँ भी। आत्मीय रिश्तों की संपूर्ण गरिमा और संवेदनशीलता के साथ एक-दूसरे से पूरी गहराई और सहजता से जुड़े हुए। पारिवारिक रिश्तों का यह अटूट और निश्छल जुड़ाव तथा उसकी आवेगरहित तटस्थ काव्यात्मक अभिव्यक्ति ही इस संग्रह की सबसे बड़ी शक्ति है और उसका सर्वाधिक सकारात्मक पहलू भी।

इस 256 पृष्ठों के भारी-भरकम संग्रह में (भारी-भरकम इसलिए कि आजकल ज्यादातर कविता संग्रह प्रायः 80 से सौ-सवा सौ पृष्ठों के ही नजर आते हैं) छोटी-छोटी 229 कविताएँ हैं। कुछ तो मात्र तीन या चार पंक्तियों की ही हैं। पूरा संग्रह, जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है, रुग्ण पिता की विभिन्न संगत मनोदशाओं और व्यवहार तथा उसके प्रति परिवार के अन्य सदस्यों, सबसे ज्यादा मझले बेटे (खुद कवि) और उसकी माँ की प्रतिक्रियाओं और स्मृतियों का ही जैसे रोजनामचा या क्रमिक डायरी अथवा काव्यात्मक संस्मरणों का लेखा है। पिता की संगिनी (माँ) के बारे में लिखी गई शीर्षक कविता 'संगत' में 'सच्चे संगी' की परिभाषा इस तरह से व्यक्त की गई है -

सच्चा संगी / वही / जो वक्त पड़ने / औखत आने पर / हो जाये भंगी

यह काम बचपन से लेकर बुढ़ापे तक एक स्त्री ही कर सकती है। पहले माँ के रूप में और फिर पत्नी के रूप में। इस संग्रह की एक अन्य विशेषता यह है कि स्त्री विमर्श के भांति-भांति के नारों और लफ्फाजी-भरे फैशन से हटकर माँ के माध्यम से स्त्री के

संपूर्ण जीवन की नियति की ओर कई कविताओं में, बड़े अर्थपूर्ण संकेत किए गए हैं। मिसाल के लिए 'अनिवार' शीर्षक कविता में-

स्त्री का होना जरूरी / जीवन को सेने-संजोने / बचाने /
बढ़ाने के लिए बचपन और बुढ़ापा / एक से मासूम एक जैसे लाचार /
दोनों को चाहिए / वही दुलार वही संभार वही सरोकार / क्या एक स्त्री को /
अपने आखिरी वक्त में / मिलेगी / एक स्त्री?

स्त्री की तकलीफ को माँ ही नहीं बल्कि बेटी के माध्यम से भी व्यक्त किया गया है। 'तटबंध' शीर्षक कविता में पिता की मृत्यु के के बाद बेटी की रुलाई में इस तकलीफ को बड़े मार्मिक ढंग से व्यंजित किया गया है-

पछाड़ें खाती / बेटी जो रो रही थी / अपनी रुलाई में /
न जाने कितनी नई-पुरानी / जिल्लत, फजीहत यातनाओं की /
संचित पीड़ा धो रही थी / कई आंखों के बीच / एक दीवार के पार /
सिर झुकाए बैठे / अपने पति की / उपस्थिति में /
और आगे के लिए / जाने कैसी यंत्रणाएं / संजो रही थी...

ऐसा नहीं है कि इस संग्रह की कविताओं में सिर्फ दुख और तकलीफ का ही वर्णन किया गया हो। एक निजी त्रासदी की गहन पीड़ा और उसकी मर्मभेदी स्मृतियों के बीच भी अनेक ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें विभिन्न प्रसंगों को लेकर लगभग एक खिलंदड़ेपन से हास्य, और कहीं-कहीं तो हल्के-फुल्के व्यंग्य की भी सृष्टि की गई है। मिसाल के लिए पिता को उनके अंतिम दिनों में माँ के द्वारा दिए गए नामकरण का प्रसंग हो ('नामकरण' कविता में) या पिता के दर्द और अवसाद में कराहने के दौरान माँ द्वारा उनकी तरह-तरह की आवाजों की नकल उतारने का प्रसंग ('ध्वनि - प्रतिध्वनि' कविता में) अथवा ऐसी ही चंद और कविताओं में प्रेम रंजन अनिमेष एक जागरूक कवि हैं। अतएव ऐसे दुखद प्रसंग में भी वे केवल निजी प्रसंगों में ही नहीं बल्कि समाज, सरकार और सत्ता के अंतर्विरोधों की ओर संकेत करने से भी नहीं चूकते। उदाहरण के लिए 'अवलंब' शीर्षक कविता जिसमें अशक्तता के बावजूद पेंशन के लिए पिता का ठीक-ठीक दस्तखत कर पाने के लिए गलतियों भरा अभ्यास और कविता की ये अंतिम पंक्तियां -

सुन रहे अब सरकारें / गंभीरता से सोच रहीं / सेवानिवृत्ति लाभ से /
हाथ खींच लेने / के बारे में...

पहली कविता 'अभिनव' से लेकर 'जीवन हठ' और 'अवश्य' तक, इन छोटी-छोटी 229 कविताओं में पूरा जीवन फैला हुआ है। कहीं-कहीं बीच-बीच में जीवन और मृत्यु को लेकर निस्संग दार्शनिक मुद्राएं भी। कुल मिलाकर ये कविताएँ निजी त्रासदी से ऊपर उठकर पूरी तटस्थता के साथ उसे सार्वजनीन बनाने की कला का मार्मिक आख्यान हैं।

- बी - 13, दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स, सी-1, वसुंधरा
इंक्लेव, दिल्ली- 110096, मो. 9560466212

अंधेरे में अंताक्षरी

-प्रदीप मिश्र

कविता मेरे लिए / तीन पैसे का चिमटा है / जिसे बचपन के मेले में /
मोल लिया था मैंने / कि जलें नहीं रोटियाँ सेंकने वाले हाथ /
कि दूसरों को दे सकूँ अपने चूल्हे की आग। (हामिद का चिमटा)

पूँजी के ताप से उबलते हुए हमारे समाज में तीन पैसे की बात करने की हिमाकत सिर्फ.कवि ही कर सकता है। कवि ही है जो अपने समय पर लगे धुंध के पार देखने वाली टार्च को ईजाद कर सकता है। कवि ही है जो रचता है तो मुकम्मल दुनिया रचता है। उसके अंदर बचपन से ही कविता साथ हो जाती है और रोटियाँ सेंकने वाले हाथ दिखाई देने लगते हैं। कवि हमेशा ही आग से जनमता है, आग से खेलता है, आग बाँटता और आग की एवज में खप जाता है। यह आग खाक नहीं करती, यह आग संताप नहीं रचती और यह आग राख में तब्दील नहीं होती है। यह आग जीवन को सँवारने की ऊर्जा है। यह आग मनुष्यता को पकाती है। तभी तो कवि अपने चूल्हे की आग दूसरों को देने का जिगर रखता है। उसे अपने चूल्हे की आग से ज्यादा जरूरी दूसरों के चूल्हे की आग लगती है। शायद यही जीवन शक्ति रही होगी जिसने दुष्यंत से लिखवाया था कि हो कहीं पर आग लेकिन आग जलनी चाहिए या चंद्रकांत देवताले से कहलवाती है कि आग बताई गई थी हर चीज में और प्रेम रंजन अनिमेष के पास चूल्हे-चूल्हे में जलने लगी भूख के बरक्स।

मेरे हाथ में प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं का ताजा संग्रह 'अँधेरे में अंताक्षरी' है। इस 144 पृष्ठों की किताब में कुल सत्तावन कविताएँ हैं। प्रकाशन संस्थान से प्रकाशित कवि का यह चौथा कविता संग्रह। बहुत सुंदर लेआउट और जगमोहन सिंह रावत के द्वारा बनाया गया कवर संग्रह की कविताओं को पाठक के मन में खुलने के लिए मदद करता है। काले रंग के कवर पर जलते दीए का रंग और मनुष्य की परछाई पाठक के मन को संग्रहित कविताओं के अनकहे के लिए तैयार कर देती हैं। वस्तुतः कविता के अनकहे में ही पाठक अपने आपको पाता है और पाठ का उत्कर्ष स्वयं को प्राप्त करने में ही है।

अनिमेष हमारे समय के विलक्षण कवि हैं। रागात्मक कविताओं के श्रेष्ठ शिल्प के लिए आप इनके पास आ सकते हैं। जीवन की हर शय में कविताएँ किस तरह बिखरी हुई हैं, यह समझने के लिए आप इनके यहाँ आ सकते हैं। कवि को कितना चुप होना चाहिए कि उसकी कविता बोलने लगे। इस धैर्य की पड़ताल के लिए आप इनके पास आ सकते हैं। विवरण के बोझ से छटपटाती कविताओं के युग में हलकी-फुलकी मन के साथ उड़ती और तितलियों की तरह जीवन के मर्म पर बैठती कविताओं के लिए आप इनके पास आ सकते हैं। अपनी भाषा, भाव और शिल्प में एकदम अलग से चमकते कवि को पढ़ने के लिए आप इनके पास आ सकते हैं। वस्तुतः कवि के पास आना और उसको समझना कविता को पाना और उसमें रमना है। कविता को पाना और उसमें रमना जीवन को नया और सार्थक रंग देने जैसा है। प्रेम को मैं पिछले तीन दशक से लगातार पढ़ रहा हूँ। हर बार उनकी निगाहों की बारीकी से स्तब्ध होता हूँ। इन

दिनों पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी बहुतायत कविताएँ मिलती हैं जिनको पढ़ते हुए लगता है कि विषय समाप्त हो गए हैं। एक ही विषयवस्तु सब लोग दोहरा रहे हैं। वहीं जब हम अनिमेष के कविता-संसार में जाते हैं तो विषय में इतनी विविधता दिखाई देने लगती है कि विश्वास हो जाता है कि अभी बहुत सारी कविताओं के लिए अछूते विषय बचे हुए हैं। जैसे संग्रह की कुछ कविताओं के शीर्षकों को देखा जा सकता है और सब, हामिद का चिमटा, एकमेक, आँख आना, टिकोले, लस-अलस, गहनतम, अँधेरे में अंताक्षरी, संघाती, खुदकही, लिफ्टमैन, मसहरी और अंत-वस्त्र आदि। लगभग सारे ही शीर्षक आपको कविता के नए आयाम की तरफ ले जाते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि इस कवि के यहाँ जीवन निरंतर नया है।

इस संग्रह में सारी कविताएँ एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। या यूँ कहें एक ही कविता है, जो जीवन के रंगों के साथ रूप बदलते हुए अंतिम कविता तक पहुँचती है। जैसे पहली कविता 'आमंत्रण आना अभिवादन से शुरू होती है जिसमें कवि कहता है - 'बिना बताए/ बगैर खबर किए/ आना/ एक दिन उस समय / जब मैं/ नहीं रहूँगा...।' यहाँ पर रागात्मक कविताओं के उस्ताद एवं वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह की पंक्तियाँ याद आती हैं आना जैसे मंगल के बाद आता है बुध। दोनों कविताओं में आना है लेकिन प्रेम के यहाँ आने की व्याप्ति अलग है। दूसरी कविता इसी कविता के क्रम है जिसका शीर्षक है-'स्वीकार'- 'आऊँगा जरूर/.../ भोर हो गई तो/ किरणों की नोक पर / ओस बनकर .....' संग्रह की अंतिम कविता का शीर्षक है- 'जाना' 'जब जाना होगा मुझे / देर तक नहीं मिलेगा / एक पाँव का जूता / एक बच्चे से होगा ही नहीं प्रणाम/ कुछ खूबसूरती से हिलने वाले कोमल हाथ/ एकदम से भूल जाएँगे सब कुछ...,' एकदम संक्षेप में और बहुत सामान्य तरीके से देखें तो संग्रह की पहली कविता जीवन से शुरू होती है और अंतिम कविता मृत्यु पर समाप्त होती है। इस तरह से संग्रह की सभी कविताएँ आपस में गुँथी हैं और जीवन की बड़ी कविता का हिस्सा हैं।

कवि की संवेदना, उसकी दृष्टि भी होती है। यहीं से वह उन जगहों से कविता प्राप्त कर लेता जहाँ सामान्य लोग ठहरते भी नहीं है। 'और सब' कविता एक सामान्य संवाद से शुरू होती है -'और सब ठीक है न...फिर जो अपना / वह आईना/.../ अपने पार/ अपने से परे कहीं ले जाता .' और 'मोड़ता/ और सबकी तरफ/ और सबकी तरफ...' पर कविता समाप्त होती है। इस कविता में मैं, फिर तुम, फिर हम और अंत में सब का पद निर्मित होता है। यही तो कवि-कर्म है कि हम स्वयं से निकलकर सब में घुस जाएँ। 'काम' कविता में कवि मोची के लिए पनही बनाता है, कुम्हार के सिरहाने पानी भरी सुराही रखता है, शिक्षक के घर लालटेन रखता है, दर्जिन की बेटी के लिए बिना चिप्पियों वाली पोशाक सिलता है, मेहरी की बच्ची की नाक साफ करता है, चिड़ियों को समझाता है कि किसान के बेटे के मुँह में भी कहीं से लाकर डालें दाना, फिर स्थापित करता है कि जो जीवन की स्याही है वही सृजन की रोशनाई और अंत में कहता मैं कवि नहीं कवि का काम करता हूँ। इस पूरी कविता का उल्लेख मैंने कवि की कविताई का सामर्थ्य रेखांकित करने के लिए किया है। इस कविता में बहुत साफ तरीके से समझ में आता है कि कविता स्वयं ही निर्मित हो रही है। कवि के जीवनानुभवों और भाषा-कौशल

पर बहती हुई कविता ने शब्दों, बिंबों और भाव का चुनाव स्वयं किया है। हम कविता में इसी प्रवाह और विकास अपेक्षा रखते हैं। कवि में इसी तरलता की अपेक्षा रखते हैं, जो कविता के साथ पिघलकर बहने लगे। सृजन में कवि के अंदर के सारे अवरोध नष्ट हो जाने चाहिए, तभी कविता अपनी नैसर्गिक रूप में निकलती है। इस संग्रह का कवि जीवन को मथ रहा है और उसको बहुत सारे आध्यात्मिक संदर्भ मिल रहे हैं जैसे 'एक ही वस्त्र' कविता में वह लिखता हैं - 'राह में ठिठुर रही थी. एक नंगी परछाई....' या 'एक दिन ऐसे ही कविता की पंक्तियाँ - 'एक दिन ऐसे ही शुरू हुई थी दुनिया / खत्म हो जाएगी/ एक दिन ऐसे ही...' या फिर 'आँख आना' कविता में - 'आँखें अगर आएँ तो कोई कैसे मनाए / कि चली जाएँ....' 'विस्मयबोधक' कविता की पंक्तियाँ - 'कलम उठाई / तो सामने आ खड़ा हुआ मुझे रखो कहीं / मैं कहीं का नहीं रहा....' 'बीती सभ्यता का एक शिलालेख'- 'कैसी-भी लड़ाई हो / मत मारो अनबोलते को / मत मारो / दूध पीते-खाते खेलते को /.../ बनने से पहले / किसी भरोसे को / जन्म लेने से पहले किसी सपने को / मत मारो.../' इस तरह की बहुत सारी पंक्तियाँ संग्रह में हैं जो कविता के विकास में स्वतः प्राप्त होती हैं। इनकी चेतना में जीवन का मर्म उफन रहा है और पाठक के लिए भरोसा बनता है। पाठ में कविता अगर पाठक के लिए भरोसा बन जाए तो यह कवि की सफलता है।

अनिमेष ने बच्चों के लिए बहुत सारी कविताएँ लिखी हैं। उनकी कविता में सहजता और मासूमियत का गुण बच्चों से ही मिलता है। इस संग्रह में 'कम सयाने बच्चे की कविता', 'बच्चे के आगे कसरत', 'गुल्लक', 'आली के लिए' तथा बहुत सारी कविताओं के बीच में बच्चे और बचपना का प्रयोग यह बताता है कि कवि के अंदर एक बच्चा बैठा हुआ है जो राजेश रेड्डी की भाषा में बड़ा होने से डरता है। प्रेम मानवीय मूल्यों को संरक्षित करने की अपनी जिम्मेदारी बखूबी जानते हैं और 'माँ को याद है', 'मानुष गंध', 'स्त्री गंध', 'अकेले का युगल गीत' तथा 'खुदकही' जैसी कविता लिखते हैं। इस संग्रह और अनिमेष की दूसरी कविताओं को सतही और सरसरी तौर पर देखने से कुछ खास किस्म की प्रचलित कविताओं के अभ्यस्त पाठकों को उनकी कविताओं में तथाकथित राजनीतिक चेतना, वर्ग-संघर्ष और दलित संवेदना का आभासी अभाव प्रतीत हो सकता है। मगर यहीं पर उनकी 'प्रणाम', 'रोटी बनाना', 'जूट के बोरे', 'जूलूस का अंतिम आदमी', 'लिफ्ट मैन', 'कबाड़ खानेवाला आदमी', 'अविश्वास प्रस्ताव', 'न्याय की पोशाक' और 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' जैसी कविताओं को देखा जा सकता है जिनमें हमारा समकाल, इसकी राजनीति और उपेक्षितों का जीवन पूरी प्रामाणिकता के साथ धड़क रहा है। सही बात तो यह है कि कोई भी कवि कभी भी अपने समय के अंतिम आदमी के साथ ही खड़ा होता है। वह दुनिया को सिर उठाकर देखता है। इसलिए उसकी कविता में दलित-वंचित और राजनीतिक चेतना तो आएगी ही। हाँ, उसकी भाषा और बर्ताव समकाल के ध्वनि और तेवर से अलग हो सकते हैं। यह जरूरी भी है। क्योंकि कवि भीड़ नहीं है, वह तो एकला चलो रे का पात्र है। कवि जब यह अनापत्ति प्रमाण-पत्र देता है तो यह उसका विरोध ही है- 'मैं इस ऐतिहासिक देश का जिम्मेदार नागरिक / ठीक ग्यारह बजकर पचपन मिनट पर / जब आदमी सबसे अधिक होशोह-

वास में होता / और घड़ी बेताब/ यह घोषित करता हूँ कि मुझे कोई आपत्ति नहीं / राजा के राजा / और प्रजा के प्रजा होने में / अमीरों के अमीर / और गरीबों के गरीब बनने को लेकर / रास्तों के चलते रहने / और मंजिलों के न जाने से / कोई आपत्ति नहीं है। अगर सब शांतिपूर्वक मिल-बैठ लूट बाँटकर खाएँ / और कोई किसी के आड़े न आए /. ... क्या आपत्ति हो सकती है भला किसी को / यदि शब्दों के अर्थ छीन लिये जाएँ जैसे आदमी से अधिकार /' इन पंक्तियों से गुजरकर कवि के पक्ष, आवाज और विरोध के स्वर को आसानी से समझा जा सकता है।

'एक दूसरे के खिलाफ नहीं/ दोनों पक्ष साथ-साथ / मिलकर अँधेरा काटने में / बीच-बीच में तन जाता मौन / एक अदृश्य घड़ी का / काँटा लगता हिलने / समय गिनना आरंभ कर देता / गिनती उलटी /.../ यह खेल है जो दरअसल/ रोशनी का इंतजार/' संग्रह की शीर्षक कविता 'अँधेरे में अंताक्षरी' की इन पंक्तियों को पढ़कर पूरी कविता के कद का अहसास हो जाता है। यह कविता पाँच खंडों में है। पहले में रोशनी के इंतजार का तर्क, दूसरे में जीवन से बाहर होने की कगार पर एक सहारा और लौटना जीवन में, तीसरे में जीवन संघर्ष के स्वर और जूझने की ऊर्जा, चौथे में सबसे अच्छा गीत जो गाया जाता है कुछ करते हुए, क्रिस्टोफर काडवेल के शब्दों में श्रम का गीत और पाँचवें खंड में अँधेरे में तैरते शिशु क्रंदन में कवि को आगे की कविता मिलती है। इस तरह से यह कविता हमारे समय की बड़ी कविता है। इस कविता में समकाल अपने पूरे आस्वाद के साथ उपस्थित है। मनुष्यता के पोषक मूल्य हैं। अँधेरे के चरित्र की पड़ताल है। एक गहन विवेचना में भविष्य के जीवन की तरफ यात्रा है। इस कविता पर अलग से कई पन्नों में बात की जा सकती है। एक सामान्य-सा खेल अंताक्षरी किस तरह कवि के पास आकर जीवन के जटिल प्रसंगों को उधेड़ता-बुनता है, किस तरह जीवन की लय को पकड़कर झूमता है, किस तरह से अँधेरे के संघर्ष में मनुष्यता के साथ होता है और उजाले का रास्ता बनाता है। इस प्रविधि को बड़ी सहजता से उद्घाटित करती हुई यह बड़ी कविता है। इसको कई पाठ चाहिए, हर पाठ में इसका भाव-संसार बड़ा होता जाता है। पाठकों को अपने साथ लेकर अनंत की उड़ान में निकलने वाली इस कविता ने संग्रह को संग्रहणीय बना दिया है।

'अँधेरे में अंताक्षरी' हमारे समय की कविता का महत्त्वपूर्ण संग्रह है। इस संग्रह में समकाल की कई करवटें और स्वर दर्ज हैं। इसके पाठ से पाठक के अंदर का मनुष्य एक विश्वास पाता है। वह मृत्युशैया से भी उठ खड़ा होता है और समय को ललकारता है कि ले मैं हाज़िर हूँ सभी संघर्षों के बरक्स। इस तरह मनुष्य की अंतर्शक्ति संवेदना व संभावनाओं उन्नयन कवि-कर्म का बड़ा सरोकार है। इस सरोकार को पूरा करने में कवि निश्चय ही सफल रहा है। प्रेम रंजन अनिमेष को बहुत बधाई और शुभकामनाएँ। मैं प्रेम की 'प्रणाम' कविता के साथ अपनी बात पूरी कर रहा हूँ - 'प्रणम्य वही / जो झुकने से पहले / स्वयं तुम्हें उठा ले/ पसार बाँहें लगा ले हृदय से / अन्यथा / अन्य को/ पद को मद को/ सत्ता को/ गुरुता को/ प्रभुता को / दूर से प्रणाम/'

'बिना मुंडेर की छत' कविता में वृतांत, वृतांत में कविता

- आलोक यात्री

प्रेम रंजन अनिमेष का कविता संग्रह 'बिना मुंडेर की छत' उनका चौथा काव्य संग्रह है। निजी अनुभूतियों को अनिमेष में जिस सहजता और सजगता से प्रस्तुत किया है वह चौंकाता है। हर पहली कविता अगली कविता को पढ़ने की ललक पैदा करती है। आज के दौर के कवियों में अनिमेष के पास कुछ अधिक सशक्त बिम्ब है। एक अलग तरह का रचना संसार। चेष्टा रहित, सीधी-सपाट बात। संग्रह में शामिल रचनाएं समाज और मन की गहरी परतों को खोलती हैं। अधिकांश कविताओं में अनिमेष खुद ही बात करते दिखते हैं। यहाँ भी वह आत्मराग में नहीं डूबते बल्कि एक नए क्षितिज की ओर बढ़ते दिखते हैं।

'बिना मुंडेर की छत' अनिमेष के विशाल रचना संसार से साक्षात्कार तो कराता ही है, कहीं-कहीं तो कविता सीधे-सीधे मुठभेड़ ही कर बैठती है। कविता कहने का लहजा ही उन्हें और कवियों से अलग नहीं करता बल्कि उनकी कविता का फलक भी बड़ा है। 'ताने' कहते हैं -

'सबसे पुराने औजारों में हैं ताने / पर सबसे तेज / जबान का फन /
और कमाल यह कि / जो जितना छोटा / उतना ही धारदार /
कि हर ताना अगर उलट दें / तो एक नाता / और कोई नाता तनिक /
घुमा दिया जाए / तो बन जाता है ताना.....

अनिमेष की कविता की सड़क पर ठहरना पड़ता है। हाथ पकड़ कर बैठा लेती है अनिमेष की कविता। कविता की उनकी सड़क पर ठहरना पड़ता है देर तक। कहीं-कहीं तो इतना आत्मसात करती है कि अंगुली पकड़ कर चलती है। 'रिक्शे पर हंसी' में दौड़ता है पाठक कविता की अंगुली पकड़ कर। अनिमेष कविता में कई तरह के प्रयोग भी करते नजर आते हैं। कविता को वृतांत की तरह कहते हैं। 'रिक्शे पर हंसी' में उन्होंने वृतांत का अनूठा प्रयोग किया है। कविता को वृतांत में लिखने का साहस भी दिखाते हैं और कविता को कविता की तरह पार भी उतारते हैं।

तीन लड़कियां रिक्शे पर बैठी जोर-जोर से हंस रहीं हंस रही कि रिक्शे पर वे तीनों हैं और वही तीन शायद पहले कभी रिक्शे पर नहीं बैठीं इस तरह शायद बगल की भीड़ शोर-शराबे और तमाशे पर हँस रही या उस दुनिया पर जिसमें दिन-दिन गिनती उनकी कम हो रही जबकि इस रिक्शे पर वही हैं और हँसी ऐसी कि आगे की सीट पर बैठा चालक मानों इत्र सा उड़ा जा रहा।

जिंदगी के तमाम जोखिमों को अनिमेष खुर्दबीन से देखते नजर आते हैं। 'अंधेरे में माचिस की तलाश में एक कविता', 'एक पाँव का जूता', 'नीचीं छतें' जैसी तमाम कविताओं में वह पात्रों के भीतर गहराई से बैठे दिखते हैं। 'अलाव' समेत कई कविताओं में लोकभाव ही नहीं लोक बिम्ब भी पूरे तौर पर उतरते हैं। 'बिना मुंडेर की छत' अनिमेष के भीतर लहराते कविता के समंदर की बानगी भर है।

काव्य-संग्रह 'बिना मुंडेर की छत' में प्रेम रंजन अनिमेष की रचनाधर्मिता

डॉ. सत्यवती चौबे

नौवें दशक में अपनी कविताओं से एक नई पहचान बनाने वाले कवि प्रेम रंजन अनिमेष इक्कीसवीं सदी के हिंदी काव्य जगत में महनीय स्थान रखते हैं। कविताओं के लिए 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार' तथा 'कृष्ण प्रताप स्मृति' पुरस्कार से सम्मानित प्रेम रंजन अनिमेष ने हिन्दी काव्य-लोक को समृद्ध करने के साथ ही साथ कहानी, उपन्यास, नाटक, गीत, बाल-साहित्य, संस्मरण, अनूदित-साहित्य आदि को भी समृद्ध किया है। सन् २०१७ में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित काव्य संग्रह 'बिना मुंडेर की छत' ऊनकी अनूठी रचना है। ये कविताएँ लोक जीवन से कवि के गहरे जुड़ाव को स्पष्ट करती हैं, जिनमें शहर-कस्बे के साथ-साथ ग्रामीण परिवेश से सन्नद्ध समृद्ध लोक जीवन की अमिट झलक है। इनमें जहाँ गँवई मिट्टी की महक है तो वहीं शहरी जीवन के संत्रास पूरी संवेदना के साथ द्रष्टव्य हैं।

अनिमेष की कविताओं के शीर्षक वैविध्यतापूर्ण हैं जैसे कि नीची छतें, खर्राटे, ठोड़ी, कुहनियाँ, भवें, निब, एक पाँव का जूता, हवाई चप्पल, खिल्ली, कुत्ते की नींद आदि। ऐसे तमाम तथ्यों को प्रायः साहित्यकार जाने-अनजाने अनदेखा कर देते हैं। इनकी तरफ अमूनन किसी का ध्यान ही नहीं जाता है। कवि ने हमारे आस-पास बिखरे ऐसे अनेक विषय वस्तुओं को आधार बनाकर श्रेष्ठ कविताएँ लिखी हैं। संसार की लघु से लघुत्तम वस्तुएँ भी अपना महत्त्व रखती हैं। अनदेखे अनबूझे-अनजाने पहलुओं की भी अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है। प्रेम रंजन अनिमेष की कृतियाँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। इस कविता संग्रह के पहले फ्लैप पर शब्दांकित अंश इस काव्य संग्रह पर पूर्णतः सटीक और सार्थक सिद्ध होते हैं- 'ये कविताएँ न किसी बड़े परिवर्तन का आह्वान करती हैं और न ऊँची हाँक लगाकर हमें कुछ ऐसा करने को कहती हैं जो हमें हमारे अतीत से काटकर किसी नए अनोखे संसार में स्थापित कर दे। भले ही वह कितना भी सुंदर, कितना भी अद्भुत, कितना भी पूरा क्यों न हो। ये कविताएँ हमें अपने इसी अधूरे संसार में रच-बसकर जीने के सूत्र थमाती हैं'[1]। प्रेम रंजन अनिमेष की रचनाओं के संदर्भ में कथित ये वाक्यांश स्पष्ट करते हैं कि कविताएँ महज क्रांति एवं जन-आंदोलन की जन्मदायिनी नहीं होती हैं, अपितु ये अपने जड़ों की ओर लौटने, जमीनी धरातल से, जड़ से जुड़े रहने की ओर प्रेरित करती हैं क्योंकि इतिहास गवाह है कि अपनी जड़ों से कटकर, जमीनी धरातल से हटकर जीने वाले लोग न घर के रह पाते हैं और न हीं घाट के।

जीवन यथार्थ पर आधारित इस काव्य संग्रह की एक कविता है 'दृष्टि'। यह कविता हमारे समाज के तमाम क्रूर तथ्यों को उद्घाटित करती है। यह दर्शाती है कि शहद जैसा मीठा एवं गाय के दूध जैसा पौष्टिक खाद्यान्न और शरीर के लिए सर्वथा उपयोगी रेशमी वस्त्र पहनने वाला व्यक्ति क्या सचमुच शाकाहारी है? क्या उसने क्रमशः मधुमक्खी, गाय के बछड़े और रेशमी कीटों का शोषण नहीं किया? बँधे हुए पक्षियों की फड़फड़ाहट सीने

में सुनाई देती है, बावजूद इसके इनके प्रति हमारा दृष्टिकोण नहीं बदलता है। सबका हक छीनकर, सबके अस्तित्व को खतरे में डालकर, शासक की हत्या करके सिंहासन पर बैठा हर आदमी अपने आपको प्रकांड ज्ञानी, विदूषक समझता है। एक बानगी -

एक कोट के भीतर महसूस होता / कई का नंगापन /
और आदमी के चाँद पर पहुँचने की खबर / जैसे थाली में पड़ा पैर /
जो सिंहासन पर है / विदूषक मालूम होता /
शासक की हत्या कर जो बैठ गया गद्दी पर /
आतिशबाजियों की कौंध में झिलमिलाता / बच्चों के कल का सन्नाटा[2]

भीतर ही भीतर यथार्थ से परे खोखले और नंगे होते मनुष्य का नंगापन भी कवि को दिखाई पड़ता है जहाँ उसे इस बात का अहसास भी होता है कि ऐसे विदूषकों की आतिशबाजियों के झिलमिलाते कौंध में हमारे देश के बच्चों का भविष्य खतरे में है। देश की भावी पीढ़ी के सिर पर एक ऐसी छत है या फिर हमारे बच्चे एक ऐसी छत पर खड़े हैं जिन पर कोई मुंडेर नहीं है।

इस काव्य संग्रह 'बिना मुंडेर की छत' में अनेक कविताएँ बाजार पर आधारित हैं। 'अपना बाजार' कविता में कवि इस तथ्य की पुष्टि करता है कि आज का दौर बाजारवाद का युग है। यह एक ऐसा नया निजाम है, जिसके हर तरफ रोशनी है, चकाचौंध है, इसके हर तरफ रास्ते ही रास्ते हैं, जहाँ छोटे बच्चे से लेकर बूढ़ी औरतें भी अपनी-अपनी योग्यता और कार्य क्षमता के अनुसार दो जून की रोटी की खातिर कुछ-न-कुछ करने पर विवश हैं या फिर रोजगार के अभाव में वह कुछ भी करने पर मजबूर हैं। मसलन आपके बाजार में जाकर खड़े होते ही कोई आपकी कलाई घड़ी का शीशा पोछने लगता है, कोई आपके दो पहिए-चार पहिए वाहन के शीशे साफ करने लगता है, कोई आपकी चिट्ठी अपने थूक से चिपकाकर पोस्ट करने लगता है। यहाँ से वहाँ तक फैले खुले बाजार में अपने-अपने बोरे, ठीकरे, कौड़ियाँ लेकर सब लोग अपने-अपने रोजगार में लगे हैं। उदाहरण स्वरूप-

लाओ मैं कटा देती हूँ टिकट तुम्हारा / भीड़ में कहती एक बूढ़ी आँचल पसार /
तीलियाँ जलाकर चौक पर बच्चा / हथेलियों में लौ जुगाए रहता /
सुलगाने के लिए राहगीरों की सिगरेट बीड़ियाँ /
जेब से कंघी निकाल ठीक करना चाहता बाल /
कि एक लड़की आगे कर देती / एक आईना एक चेहरा एक सवाल'[3]

पहले हम अपने बलबूते पर नित्य प्रतिदिन होने वाले जिन क्रिया-कलापों को स्वयं किया करते थे उसके लिए भी आज बाजार तैयार है, बशर्ते कि पास में धन हो। व्यक्तिगत कार्यों पर भी अब बाजार ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया है और कई बार तो हम चाहकर भी उससे मुक्त नहीं हो पाते।

एक और कविता है - 'बाजार में इंतजार'। यह कविता बाजार के यथार्थ स्वरूप को दर्शाती है कि आज हम ऐसे समय में जी रहे हैं, जहाँ मनुष्य की अंतरंगता, निकटता, व्यावहारिकता, निःस्वार्थ नजदीकियों को भी बाजार ने समाप्त कर दिया है। परिणामस्वरूप आज के दौर में एक दूसरे से मिलने के लिए एक दूसरे के घर जाने

के बजाय हम बाजार में मिलना अधिक पसंद करने लगे हैं क्योंकि बाजार नजदीक हो गया है और घर दूर। घर में मिलना मुश्किल हो गया है, बाजार में मिलना आसान। उदाहरणस्वरूप-

बेहतर होता / अगर मैं उसके घर चला जाता / या वह आ जाता मेरे यहाँ /
मगर जिस समय में हम रह रहे / घर दूर है / और बाजार नजदीक /
घर में मिलना मुश्किल / बाजार में आसान'[4]

घर स्थायी होता है, स्थिरता से परस्पर एक-दूसरे से बातचीत होती है तभी आपसी संबंधों में भी स्थिरता, स्थायीत्व आता है, संबंध मजबूत होता है लेकिन बाजार का चरित्र पूर्णतः द्रुतगामी, परिवर्तनशील, निरे स्वार्थ पर आधारित है। चारों तरफ अस्थिरता ही अस्थिरता है। यही कारण है कि बाजार में मिलने वाले लोगों के संबंधों में भी स्थिरता नहीं आ पाती। कविता के प्रथम कुछ हिस्से में कवि संबंधों की बात करता है तो फिर वहीं दूसरे हिस्से में वह बाजारवाद के चरित्र को दशार्ते हुए कहता है कि बाजार में आना आसान है परन्तु कुछ ही समय पश्चात यह अहसास होने लगता है कि यहाँ आना आसान है परंतु यहाँ थोड़ी देर खड़ा रहना, थोड़ी देर टिकना अत्यंत कठिन है :

थोड़े ही समय में लगने लगता / आना आसान है बाजार में / टिकना कठिन /
खड़ा रहा इसी तरह / तो कोई हटा देगा / या मुझ पर अपना / इश्तिहार लगा देगा।[5]

इस काव्य संग्रह की एक कविता 'रेल की पटरियों के किनारे जिनके घर हैं' में कवि मुंबई या भारत ही नहीं, अपितु विश्व के तमाम देशों में रेल की पटरियों के किनारे रहने वाले परिवारों की अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए कहता है -

शुरू शुरू में सोचते / रात भर के लिए / रुक सकतीं / ये सीटियाँ और आवाजें /
पर फिर समझ गए / ऐसा करना / दुनिया को रोकना होगा / इससे अच्छा /
अपनी नींद को ही थोड़ा / समझा बुझा लिया जाए[6]

रेल की पटरियों के किनारे रहने वालों की रात की सुख-चैन की नींद पूर्णतः रेलों के आवागमन से प्रभावित होती है। अपने नन्हें-नन्हें बच्चों से लेकर बड़े-बुजुर्गों की जिंदगी के प्रति वे आशंकित-आतंकित रहते हैं। यहाँ रहना इनका शौक नहीं, इनकी मजबूरी है। इसलिए चाहकर भी स्थितियों में बदलाव संभव नहीं होता। ऐसे में कवि कहता है-

मना करने पर भी / बच्चे चले जाते / पटरियों की तरफ खेलने / पहले चिन्ता होती / अब अहसास / जीवन ऐसे ही / खतरों के साथ आँख मिचौली / हादसों के संग खेलना / और इस मामले में अपने से छोटों पर / अधिक करना चाहिए भरोसा'[7]

इनकी एक कविता 'पुरखे' बुनावट में छोटी है परंतु गूढ़ अर्थवत्ता लिए हुए है। यह कविता एक साथ अनेक परिस्थितियों को हमारे समक्ष रखती है कि गाँव के अधिकांश परिवारों का शहरों की ओर पलायन करने या फिर गाँव के शहरीकरण होने की स्थिति में हमारे पुरखे-पुरनियाँ के जमाने की सभी अत्यावश्यक वस्तुओं को हमने एक सिरे से खारिज कर दिया है, नकार दिया है। मसलन; मसाला पीसा जाने वाला सिल, चौकी के नीचे बोरे में बाँधकर रखा गया जांता, काठ का संदूक, पीढ़ा, सूप, बाँस की डलिया, फूल का लोटा, ट्रांजिस्टर, मोटी धार्मिक पुस्तकें, घर के दिवंगत बूढ़े-बुजुर्गों के स्याह-

सफेद चित्र और ओसारे में खाट पर पड़े बूढ़े व्यक्ति को हमने तोप-ढँककर एक तरफ हटाकर रख दिया है। इनका अब हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में कोई उपयोग नहीं है, ये सब हमारे लिए पुरखे हो चुके हैं। तमाम निर्जीव पदार्थों जैसे सिल-जांता-सूप-संदूक आदि के स्थान को वैज्ञानिक आविष्कारों ने ले लिया है, बूढे-बुजुर्गों की नसीहत का स्थान सूचना और संचार माध्यमों ने ले लिया है। अपने सजीव बाबा से पूछने के बजाय गूगल बाबा अधिक सहूलियतें प्रदान करते हैं। अतः गाँव-घर-रसोईघर, यहाँ तक कि रसोईघर जैसे शब्द, गाँव-देहात से जुड़ी तमाम वस्तुएँ इतिहास बन गई हैं। कवि की चिंता है कि हम जिस जड़-जमीन से आए हैं, उससे कटने न दें, उसे बंजर न बनने दें, उर्वरक बनाए रखें। हमारी नयी पौध के मन में भी उनके प्रति आस्था, विश्वास और प्रेम हो। यह संपृक्ति हमें आदमी बनाए रखने मनुष्यता बचाए रखने के लिए आवश्यक है। इसी तरह व्यक्ति 'स्व' की चिंता त्याग कर परमार्थ-परोपकार-सदाचार के मार्ग पर भी चले, जीवन इतना सार्थक हो कि जीवित रहते हुए वह हमेशा परोपकारी परमार्थी बना रहे और मरणोपरांत इस शव का जर्रा-जर्रा दूसरों की भलाई करने के काम आ सके, इस भाव बोध को व्याख्यायित करने वाली कविता है 'इच्छा', जिसमें कवि कहता है-

वृक्ष की तरह हो / मेरा शव / हरी पत्तियाँ बनें बकरियों के थन में दूध /
टहनियाँ जलावन गरीब मजूरों का /
तन यह तना बदल जाए तख्त खिड़कियों दरवाजों में /
अन्तिम फल मिलें बच्चों को पंछियों को पन्थियों को /
झुकूँ तो मेरे कारण कोई न झुके / गिरने से मेरे रास्ता किसी का न रुके /
शेष होकर भी हो सकूँ एक सादा पन्ना / मेरी राख से झलके किसी की आत्मा..'[8]

मनुष्य का जीवन यदि वृक्ष और नदी के समान हो जाए, धरती के समान हो जाए तो जीवन की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। जीवन को सार्थक बनाने में जीवन सत्य से निरंतर साक्षात्कार होते रहना परम् आवश्यक है लेकिन झूठ, छल, छद्म के इस साम्राज्य में सच का राज कायम करना एक सपना बनकर रह गया है। एक ऐसा सपना जो शायद कभी पूरा न हो लेकिन उसका स्मरण, अनुस्मरण व पुनर्स्मरण करना आवश्यक है। अनिमेष कृत 'फिर भी' कविता इसी तथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। यह कविता दर्शाती है कि कलयुग में संभवतः सत्य का राज्याभिषेक कदाचित न हो क्योंकि वह हमारे बीच से अपना पता दिए बगैर शायद कभी न लौटने का निर्णय लेकर जा चुका है परंतु उसका शेष अल्पांश है, कहीं न कहीं उसका अस्तित्व अवश्य है। तभी तो झूठे-मक्कार लोग अपनी झूठ को सच साबित करने की अनवरत कोशिश करते रहते हैं। कई बार सच की बातें करना बेमानी-सा लगता है। कविता के अंत में कवि कहता है-

चलें सच को सच करने की कोशिश करें / साबित नहीं सच करने की /
झूठ और छल का राज है / और हम सच की बातें करते, /
सच का जिक्र छेड़ने सच के बारे में बोलने से भी /
झूठ का तिलिस्म टूटता कहीं / सोचने से भी अँधेरा कुछ घटता कोहरा छँटता...'[9]

कवि दशार्ता है कि सच का जिक्र छेड़ने, सच के बारे में चर्चा-परिचर्चा करने से झूठ का तिलिस्म टूटने वाला नहीं है, बावजूद इसके सच के बारे में बातें करना बंद नहीं

कर सकते क्योंकि बातें करने, सोच-विचार-विमर्श करने से ही कुछ अंधेरा घटता है कोहरा छंटता है।

'सवेरे का एक सपना' में कवि पूरी विश्वसनीयता के साथ सिद्ध करता है एक कुम्हार, एक मोची, एक मिस्त्री, एक जुलाहा, एक हकीम; हमेशा यही सपना देखता है कि वह अपनी लगन-परिश्रम से इस तरह का कार्य करे कि भले ही उसकी अवस्था जीर्ण-शीर्ण बनी रहे, वह दुर्दिन में जीता रहे परंतु उसकी बनाई-गढ़ी वस्तुएँ हमेशा दूसरों के जीवन में रंगत भरती रहें -

दो पैसे की यही पुड़िया / हर ले हर रोग / कर दे सबको चंगा /
मेरे दालान में फिर भिनकें मक्खियाँ / बुदबुदाता हकीम /
और कवि चाहता / किसी पर न व्यापे दुख कहीं हो न शोक /हर तरफ हर पल हो हँसता खेलता / और जीवन में घुल जाए अक्षरों की अमरता...[10]

इसी तरह की जिंदगी एक किसान की भी होती है। वह आजीवन दूसरों के लिए अन्न उपजाता है, समूचे देश का पेट भरता है परंतु अपने बाल-बच्चों की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं पाता; सिवाय गरीबी के, लाचारगी के। यही कारण है कि किसानों के बच्चे अब किसानी करने के बजाए थोड़ा बहुत पढ़-लिखकर शहर जाकर दो पैसे के लिए मजदूरी करना ज्यादा फायदेमंद समझते हैं क्योंकि उन्होंने अपने पिता का संघर्ष देखा और भोगा हुआ है। अनिमेष की एक कविता 'एक किसान की शहर में रहने वाले बेटे के लिए वसीयत' महज एक कविता नहीं, अपितु एक बेवश किसान पिता की आत्मवेदना, आर्त्तनाद का अहम दस्तावेज है। किसान का यह वसीयत पुख्ता प्रमाण है उसकी जर्जरता-जीर्ण-शीर्ण अवस्था का, उसकी तमाम मजबूरियों का-

मिट्टी की हाँड़ी / घावों को सोखनेवाले पत्ते / दवा की शीशी में / साँसों को पूरकर / बनाई ढिबरी / और हथेलियों की रगड़ से / पैदा होनेवाली आग / खूँटी पर टँगा है /
हरदम साथ देनेवाला अँगोछा / और उसके खूँट में बँधा / तीन लोकों के धन बराबर / तीन मुट्ठी चबेना / शायद किसी काम आए / अगर कभी लौटो [11]

वह पुनः कहता है ढोर-डंगर खेत-खलिहान बेटियों के ब्याह और बेटों की पढ़ाई की खातिर बिक गए, अब ले देकर गोबर से लिपी कच्ची दीवारों वाली झोपड़ी है, जिसका छप्पर भी वह बरसात के पहले और बाद में खुद ही छाया करता है। वह अपनी कुछ संस्कृति, कुछ संस्कार, कुछ रिश्ते-नातेदार छोड़कर जा रहा है जिसको अपनाने या निभाने का दबाव भी वह अपने वंशजों पर नहीं डालता -

और क्या दे सकता / पाती भर की शिक्षा मेरी / तुम तो इतना पढ़ सीख गए /
एक नाम / धूसर मटमैला अटपटा सा / और कुछ नातेदारियाँ /
अनभावन लगे तो बदल लेना / जैसे बदल ली जमीन अलगा लीं जड़ें /
ऋण मेरा चुकाना है / इसलिए या इस डर से /
आने नहीं आने का फैसला मत करना / खाते मिलाकर जाऊँगा [12]

इस अवस्था में ही उसका आत्मबल खंडित नहीं हुआ है। वह आर्थिक रुप से भले ही जर्जर है परंतु अब भी अपने कमासुत बेटे पर आश्रित नहीं। संभव हो कि बेटा शहर में चाँदी काट रहा होगा, ऐश्वर्य-वैभव चकाचौंध में चौंधिया रहा होगा, इसके बावजूद

बूढ़ा किसान बेटे की दुनिया में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता, न ही उसे किसी तरह से बाध्य करना चाहता है और पुनः चिट्ठी में लिखता हैः

शायद यह चिट्ठी / तुम्हें देर से मिले / क्योंकि पहले मिलने से /
कोई यात्रा रुक जाएगी तुम्हारी / मेरे काम में आने से /
रह जाएगा कोई जरूरी काम तुम्हारा / यह किस तरह / जलता है आदमी /
अपने अन्त में / कि कोई ताप नहीं पाता उसकी आँच /
एक अलाव की तरह जलने की / अन्तिम इच्छा / छोड़ता तुम्हारे लिए'[13]

कविता की ये अंतिम पंक्तियाँ आज महज दयनीय दशा की पराकाष्ठा पर जीवन काटने वाले बूढ़े-बुजुर्ग किसानों की आत्मपीड़ा नहीं है बल्कि यह पीड़ा गरीबी में वृद्धावस्था काटने वाले अधिकांश लोगों की पीड़ा है, जहाँ वे अलाव की तरह जलने की इच्छा लेकर हमेशा-हमेशा के लिए इस संसार से चले जाते हैं और उनकी आंच को कोई ताप नहीं पाता है। कुछ इसी विषय बोध से संबंधित इनकी एक कहानी भी है 'न खोली गयी चिट्ठी'। इस तरह यह कविता व्यष्टि के माध्यम से समष्टि की वेदना को अभिव्यक्त करने का सार्थक प्रयास है।

प्रेम रंजन अनिमेष की एक कविता है 'हकलाहट'। कवि ने इस कविता में स्पष्ट किया है कि एक हकला व्यक्ति ही सिर्फ हकलाकर नहीं बोलता है बल्कि वे तमाम लोग जो हकले नहीं हैं, धाराप्रवाही वक्ता हैं या सामान्य वक्ता, सभी लोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों में कभी न कभी हकलाहट के शिकार हो ही जाते हैं, इसलिए हकलाहट को अपनी कमजोरी समझकर बोलना बंद नहीं करना चाहिए क्योंकि आदमी का अस्तित्व ही बोलने से है। अतः जो बोलो, जितना बोलो पूरे विश्वास के साथ बोलो, बातें उलझाकर नहीं बल्कि सुलझाकर बोलो, आँखों में आँखें डालकर पूरी विश्वसनीयता के साथ बोलो, बातों को समझाने के लिए दोनों हाथ की उंगलियों की सहायता लो क्योंकि संसार में, समाज में, सर्वत्र एक ही विकलता है, बेचैनी है, छटपटाहट है, सर्वत्र विरूपता है और शब्द किंचित अपर्याप्त है। इन तमाम विरूपताओं को व्याख्यायित करने की स्थिति में सबमें हकलाहट आने लगती है क्योंकि उनके चिंतन-मनन, विचार-मंथन, भाव-व्यवहार में कहीं कोई तारतम्य नहीं होता, सामंजस्य नहीं होता। अतः कवि पुनः कहता है-

कमजोर मत समझो अपने आपको / यह संयोग है / और अच्छा एक तरह से /
कि तुम्हारी हकलाहट तुम्हारे उच्चारण भर / किसी को गालियाँ देने के अलावा /
सम्भव हैं सारे संवाद तुमसे / रोज कम से कम तीन /
नए अजाने लोगों से मिलो बातें करो'[14]

इस काव्य संग्रह की कविता 'नीची छतें' हमारे देश के असंख्य परिवारों के घरों की नीची छतों के माध्यम से बदहाली की जिंदगी काटते असंख्य दीन-दुखियों का शाब्दिक चित्रांकन है। घरों की छतें नीची हैं परंतु इनके जीवन के कष्ट पहाड़ से हैं। पहाड़-से इन दुखों को भी हमेशा निहुर कर इनके जीवन में प्रवेश करना होता है क्योंकि इनकी छतें नीची हैं और जिंदगी सड़क पर या खुले आसमान के तले।

जो स्त्रियाँ पेट से, उम्मीद से होती हैं या जिनके पाँव भारी होते हैं उनके प्रति कवि

प्रेम रंजन अनिमेष की आत्मीय संवेदना देखी जा सकती है। 'असह-यात्रा' और 'पृथ्वी उम्मीद से है' दोनों ही कविताओं में 'स्त्री' शब्द के स्थान पर 'पृथ्वी' शब्द का प्रयोग स्त्रियों के प्रति कवि के चिंतन-मनन-सोच-विचार को दर्शाता है। पृथ्वी इस समस्त सृष्टि की धात्री है तो वहीं स्त्रियाँ समस्त प्राणी जगत की। दोनों ही अपनी संतति को बहुत स्नेह से सहेजती हैं। 'पृथ्वी उम्मीद से है' कविता में ऐसी ही स्थिति का चित्रण द्रष्टव्य है-

रह रहकर जी घबराता / चक्कर आते और उल्टियाँ / लड़खड़ा जाती कभी /
चलते-चलते थाम लेती भीत / आँखों के आगे छा जाता अँधेरा /
पर रुकना नहीं चाहती वह न आराम /
काम करनेवाली किसी साधारण औरत की तरह / अपने दिन रात निबाह लेगी /
आखिर तक / बस एक भरोसा / जरा सा दिलासा / कि कोई है देखनेवाला'[15]

चिकित्सक, ज्योतिषी अपने-अपने तरीके से उसकी खराब दिन-दशा पर टिप्पणियाँ करते हैं, अमंगल, अपशकुन बोलते हैं कि कुछ रंग के पानी या कुछ रंग के पत्थरों पर ही उसका बचना निर्भर है। हवा में बेचैनी है, ठहरी धूप कुछ नन्हें ऊनी मोजों की तरह कुछ बुनती हुई समय के साथ-साथ तिनके-तिनके बटोर कर वह मातृत्व सुख की अनुभूतियाँ ले रही है। वह किसी भी परिस्थिति में अपने उम्मीद को नहीं छोड़ती, असहज परिस्थिति में भी सहज बनी रहती है।

इस काव्य संग्रह में कुछ कविताएँ जीवन में प्रेम के विभिन्न रूपों के रसास्वादन पर भी आधारित हैं जिनमें राग है, रंग है, तन्मयता है, लगन है, संगम है, समागम है तो वहीं थोड़ी कौतूहलता, विकलता, अफसोस है, उलझन है, सुलझन है, हँसी है, ठिठोली है। इसी तरह की एक कविता है 'ठिठोली', जिसमें विवाह के बाद सहेलियाँ अपनी नयी नवेली दुल्हन बनी सहेली से पिया संग बितायी अनुभूतियों के विषय में अत्यंत कौतुहलता के साथ सारी बातें जान लेना चाहती हैं-

कितनी सूनी सेज नवेली बोलो तो / साजन के थी साथ अकेली बोलो तो /
इस करवट से उस करवट हो जाना है/ यह क्या कुट्टी यह क्या मेली बोलो तो /[16]

कवि अनिमेष, विवाहोपरांत लड़कियों को असंख्य परिवारों द्वारा जिस प्रकार दहेज के लिए प्रताड़ित किया जाता है इसे दशार्ते हैं अपनी कविता 'पाती' में। आर्थिक रूप से कमजोर माता-पिता अपना सब कुछ बेंच कर बेटी को सुखी देखने के लिए ससुराल वालों की सारी माँगें पूरी करते हैं परंतु उनकी असीमित माँगों का कभी कोई अंत नहीं होता। ऊपर से बेटियों का शारीरिक-मानसिक शोषण जब अपने चरम पर पहुँच जाता है तो बेटी सबसे बचकर बचाकर अपने पिता को पाती (चिट्ठी) लिखती है- 'बाबुल ये किस देस बियाहा'। वह पुनः कहती है-

बेंच दिया था तब ही तो सब / और इन्हें तुम दोगे क्या अब /
कैसा कर्ज कि रोज दुहे भी जो ना गया उगाहा /
मैंने वो ही लगन लगाई / तुमने थी जो सीख सिखाई /
रहते सहते हो जाएगा अनचाहा मनचाहा /
खबर मिलेगी तो आओगे तुम भी ठोकर ही खाओगे
यही कहोगे सब्र करो या चल अब खूब निबाहा'[17]

यह कविता सभ्य समाज की बेबसी-लाचारी-मजबूरी के साथ-साथ उनकी दरिंदगी को भी उद्घाटित करती है। जिस देश में धन-वैभव-ऐश्वर्य-विद्या प्राप्त करने के लिए देवियों की आराधना, शक्ति उपासना की जाती है उसी देश में दहेज के लिए निरीह लड़कियों पर अत्याचार किया जाता है। शोषण की शिकार ये लड़कियाँ, स्त्रियाँ तभी तो 'मन्नत' कविता में ईश्वर से मन्नत माँगती हैं कि अगले जन्म में इन पुरुषों को बेटी बनाना। जैसी अभी हमारी स्थिति है ठीक वैसी स्थिति में इनको भी बनाना जिससे पता चले जीने-मरने-साँस लेने पर भी पहरे कैसे लगते हैं। समाज में स्त्रियों के जीवन में बाहरी रूप से थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य दिखाई दे रहा है वह भी सीमित स्त्रियों के जीवन में ही। अधिकांश स्त्रियों की दशा ज्यूँ की त्यूँ बनी हुई है। जहाँ बाहरी रूप से परिवर्तन दिख रहा है वहाँ भी कितनी स्वतंत्रता से स्त्रियाँ अपने लिए निर्णय लेती हैं, कितना मनचाहा करती हैं, परिवार के सदस्यों में उनकी क्या अहमियत है? इससे हम सभी भली-भांति अवगत हैं। ये तमाम प्रश्न आज एक नयी समस्या की स्थिति उत्पन्न कर चुके हैं जिन्हें हम निर्मला पुतुल और अनामिका की कविताओं में देख सकते हैं।

अंततोगत्वा कहा जा सकता है कि 'बिना मुंडेर की छत' की कविताएँ किसी बड़े और क्रांतिकारी परिवर्तन का आवाहन नहीं करती हैं और न ही बड़बोलापन दिखाती हैं। अपितु ये कविताएँ हमारे समक्ष एक ऐसा आईना रखती हैं जिसमें हम अपने अतीत को साफ-साफ देख सकें, वर्तमान जीवन की आपाधापी में थोड़ा रुककर, वक्त चुराकर हम देखें कि हमारे जड़ें कहाँ थीं, हम कहाँ से कहाँ जा रहे हैं, हम जिस दुनिया में जा रहे हैं वह दुनिया हमारी जिंदगी समेत संपूर्ण भारतीय संस्कृति के लिए कितनी सुरक्षित है? ये कविताएँ लोक जीवन से संपृक्त और मानव मन की अतल गहराइयों से जुड़ी हैं। ये कविताएँ बाहरी चकाचौंध की दुनिया में भी तन के बजाय मन की सुंदरता को सर्वोपरि मानने वाली हैं। दिखावे की दुनिया सुंदर, मोहक, आकर्षक होती है लेकिन उनके पीछे की सच्चाई कुछ और होती है, कवि इन तथ्यों को अनेक बार विम्बों के माध्यम से हमारे समक्ष रखता है। 'मनुष्यता', 'एक पाँव का जूता', 'पहली गली', 'मान', 'तुष्टि सी जागती', 'भरोसा', 'चाहत', 'सिरजनहार' समेत प्रायः सभी कविताएँ कवि की आत्मानुभूतियों को गूढ़ता-गंभीरता और मौलिकता प्रदान करती हैं जिनमें जीवन संघर्ष की भी अपनी सुंदरता है, एक आकर्षण है, तमाम विसंगतियों के बावजूद विषम से विषमतम परिस्थितियों में आशा और उम्मीद की किरणें कवि के आस्थावादी, आशावादी, सकारात्मक होने की परिचायक हैं। शब्द योजना सहज, सुंदर व स्पष्ट है। बिहार-भोजपुर में बोली जाने वाली भोजपुरी की देशज शब्दों की अनुप्रयुक्तता काव्य-संग्रह को भोजपुर की माटी में रंग देती है।

संदर्भ :

1. बिना मुंडेर की छत, प्रेम रंजन अनिमेष, राजकमल प्रकाशन, २०१७, पृष्ठ सं.- इसी पुस्तक के पहले फ्लैप से
2. वही, पृष्ठ सं.- १०८
3. वही, पृष्ठ सं - १११
4. वही, पृष्ठ सं - १११

5. वही, पृष्ठ सं.- ११२
6. वही, पृष्ठ सं.- ११९
7. वही, पृष्ठ सं.- १२०
8. वही, पृष्ठ सं - १५८
9. वही, पृष्ठ सं - १२५
10. वही, पृष्ठ सं - १४९
11. वही, पृष्ठ सं.- ५१
12. वही, पृष्ठ सं.- ५२
13. वही, पृष्ठ सं.- ५३
14. वही, पृष्ठ सं.- ४७
15. वही, पृष्ठ सं.- १५९
16. वही, पृष्ठ सं - ५४
17. वही, पृष्ठ सं.- ५७

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
विल्सन कॉलेज (स्वायत्त)
गिरगाँव चौपाटी, मुंबई

कविता में नयी बेचैनी

– ओम निश्चल

नई है मेरी बेचैनी मेरी छटपटाहट
मेरी हूँक मेरी कूक मेरी चहक नई

अरसे से जानता हूँ प्रेमरंजन अनिमेष को जब वे 2001 के आसपास भारतीय रिजर्व बैंक कोलकाता में थे। शायद यह उनकी पहली या दूसरी तैनाती रही हो। वहीं डलहौजी में हमारा भी ऑफिस। कभी-कभार प्रभाकर श्रोत्रिय के साथ बैठकी। उन दिनों श्रोत्रिय जी भारतीय भाषा परिषद के निदेशक और वागर्थ के संपादक थे। तब तक प्रेमरंजन अनिमेष का पहला संग्रह 'मिट्टी के फल' तैयार हो रहा था। ताजा कविताओं की सुगन्ध जैसी पहले दौंगरे के बाद बारिश थम जाने पर मिट्टी से आती है। छपने के पहले उसे देखने का अवसर मिला। फिर तो कितनी बार मिलना हुआ, उन्हें सुनना हुआ। उनके घर जाना हुआ। फिर जब वे पटना आए तो पटना में भी मुलाकातें होती रहीं पर उनकी कविता का पहला प्रभाव जो पड़ा वह आज तक नहीं छूटा। यही कारण है कि जब प्रभाकर जी ने कोलकाता से दिल्ली आकर ज्ञानपीठ की पत्रिका ज्ञानोदय का नया दौर नया ज्ञानोदय के नाम से शुरू किया तो युवा कवियों के पहले पहल संग्रहों पर एक समेकित आलेख लिखवाया। प्रेमरंजन अनिमेष का संग्रह 'मिट्टी के फल' पर मैने लिखा था। कोई नया समाचार और संगत संग्रह बाद में आए। 'कोई नया समाचार' बच्चों के मनोविज्ञान को छूता हुआ एकाग्र संग्रह है। बच्चों की एक एक भाव भंगिमा की खबर लेता हुआ जैसे कोई आधुनिक सूरदास आधुनिक कविता की संवेदना में उसकी पुनर्रचना कर रहा हो तो 'संगत' पिता पर केन्द्रित। एक एक दिनचर्या को सहेजता कविता की छोर में बाँधता एक-एक विरल अनुभव, एक-एक विरल छुअन। हालाँकि 'संगत' की बहुत नोटिस नहीं ली गयी। अभी हाल में उनके दो संग्रह फिर आए हैं। प्रकाशन संस्थान से 'अँधेरे में अंताक्षरी' और अब राजकमल प्रकाशन से 'बिना मुँडेर की छत'।

'बिना मुँडेर की छत' पढ़ते हुए पूछना चाहता हूँ, कविता क्यों होती है? क्या वह सीधे सा अवलोकनों का वृत्तांत है, या समाज को बदल देने की वाम चेतना से अनुप्राणित आवेग। क्या वह कवि की उपदेशिका है या उसके स्वान्तः सुखाय का इतिवृत्तक। वह क्या है, यह रहस्य कुछ-कुछ वैसा ही है जैसा ईश्वर को जान लेने के दावे में निहित है। सबका आस्वाद अलग है, सबकी परिभाषा अलग। कविता किसी भी परिभाषा में नहीं बँधती। वह हर बार अपने सुनिश्चित दायरे तोड़कर खिलखिलाती नजर आती है। प्रेमरंजन अनिमेष को देखना हो तो उनकी निगाहों में देखिए... एक अटल थिर और संयमी भाव दिखेगा। ऐसे ही उनकी कविता न बहुत भाव विह्वल होती है न धीर गम्भीर। पर उनके अवलोकन उनके अहसास इतने बारीक होते हैं कि सुई में धागा पिरोने तक की आहट उनकी कविताओं में नोटिस की जा सकती है। देखिये वे एक दिन कविता में क्यों कहते हैं-

एक दिन / प्यास के बराबर / ओस होगी / थकान के बराबर नींद / घुटन के बराबर सांस / एक दिन हाहाकार को सोख लेगा संगीत / चुप्पी से निकलेगी भाषा / पीड़ा से फूटेगी किलक / एक दिन / सच जितना / होगा सपना / अँधेरे से बड़ी आँखें।

प्रेमरंजन अनिमेष मेरे लेखे अनेक युवा कवियों में इसलिए भिन्न हैं कि वे भावुकता में नहीं डूबते। वे भावुकता का सारा रस निचोड़ कर लिखते हैं। उनके यहाँ बिना बुलाए कोई अव्यय, कोई योजक चिह्न, कोई और एवं तथा अतः आदि नहीं धमक सकते। व्याकरण से इतना ही लेते हैं जितना कविता के लिए जरूरी हो। कविता में उतना स्पेस रहने देते हैं जितने में लोग अपनी भावनाओं का समुद्र उड़ेले बिना नही रहते। वे पी भी गए छलका भी गए कोटि के कवियों में नहीं हैं। तभी तो जाने अनजाने कविता क्या है इस पर विचार करते हैं। वे पूछते हैं और खुद ही उत्तर भी देते है --

नए कवि तुम्हारे पास नया क्या है? / नई है मेरी कलम / इसकी रोशनाई /
नया यह कोरा पन्ना / क्या है नई आँखों के नए पानी में तिरता सपना /
नए पंखों में भरी नई हवा / नए तिनके सजावट इनकी नई / नई मिट्टी के नए गन्ने का नया रस / पाग जो बन रहा कब से अभी अभी पका है / अभी-अभी मैंने इसे चखा है / नई है मेरी बेचैनी मेरी छटपटाहट / मेरी हूक मेरी कूक मेरी चहक नई / नया है मेरा अदेखा मेरा अजाना मेरा अनकहा / दुख तो वही बरसों बरस पुराना हजार बाहों वाला / पर अभी अभी जनमा है मेरे यहाँ / उसकी धमक नई है / उसकी किलक नई। (नवान्न, पृ.9)

नई है मेरी बेचैनी मेरी छटपटाहट मेरी / मेरी कूक मेरी चहक नई.../

यह है कवि का अनूठापन शायद इसीलिए एक ही पंक्ति में यतीन्द्र मिश्र की कविताओं के बारे में जब देवीप्रसाद मिश्र ने यह कहा था कि उनकी कविताओं में अवध की कूक, अवसाद और वक्ता है तो मुझे बरसों बाद प्रेम की इस कविता ने हूक और कूक का रिश्ता कविता से फिर तरोताजा कर दिया।

कवियों की इच्छाओं का क्या। वे तो बेलगाम होती हैं। पर अनिमेष के यहाँ यह कैसी पवित्र वासना है जो जीवन को मायने देती है। ऐसी इच्छाओं की कविता? गीत चतुर्वेदी और बाबुषा कोहली के यहाँ भी है। पर अनिमेष में यह अपनी तरह से अपने जुदा शिल्प में है जिसकी सादाबयानी का कहना ही क्या!

वृक्ष की तरह हो / मेरा शव / हरी पत्तियाँ बनें बकरियों के थन में दूध / टहनियाँ जलावन गरीब मजूरों का / तन यह तना बदल जाए तख्तर / खिड़कियों दरवाजों से / अन्तिम फल मिलें बच्चों को पंछियों को / पन्थियों को / झुकूँ तो मेरे कारण कोई न झुके / गिरने से मेरे रास्ता किसी का न रुके / शेष होकर भी हो सकूँ एक सादा पन्ना / मेरी राख से झलके किसी की आत्मा। (इच्छा, पृष्ठ 158)

कहना न होगा कि कविता में लय, रिद्म और यति गति की बहुत बात की जाती है पर अन्ततः अर्थ की लय के चोर दरवाजे पर जाकर बात खत्म हो जाती है। सब लयमय हो जाता है। जबकि कविता नीरस हुई जाती है। प्रेमरंजन ने केवल प्रोजैक कविता का व्यवहार ही नही किया अपनी कविताओं में जबर्दस्त छन्द भी साधा है। कुछ-कुछ वैसा जैसे केदारनाथ सिंह साधते हैं। अब भी उनके हर संग्रह में दो-चार गीत मिलेंगे। जैसे कैलाश वाजपेयी के यहाँ कुछ लय की बन्दिशें दिखती हैं। प्रेमरंजन अनिमेष अपनी कविताओं में छन्दों के लिए दरवाजा खोलकर रखते हैं। इस संगह में भी उनकी प्रगीतात्मक कविताएँ चाहत, रात, मन्नत, पाती, अरजी, ठिठोली... कवि के छन्द

सामर्थ्य की परख के लिए पर्याप्त हैं। इन कविताओं में उसने दिल जैसे उड़ेल दिया है। इन्हें पढ़ते हुए कदाचित आप भी कह उठें... एकोरसः करुण एव। करुणा के छन्द हैं ये। इनमें से तीन के कवितांश उदाहरणस्वरूपः

नियरे नाहीं। / बोलो बाबुल से मर जी के बेटी अगर बियाही / तुम भी न आना मान गँवाना / हम भी लेंगे ढूढ़ बहाना / खैर खबर दे दिया करेंगे आते जाते राही। / इतनी दूर सुनो ना सिसकी / पहली चीख न आखिर हिचकी / बाकी तुम्हीं समझ लेना हम कह सकते इतना ही। (अरजी, पृष्ठ 56)

अगले जनम इनको बेटी बनाना जैसे अभी हम हैं यूँ ही बनाना।

जंजीरें पैरों में बाँधे हैं चलना।

सबकुछ ही धोना है सबको ही दिल को जला उस पर आँसू पकाना।

माटी का पिंजरा है पानी का दाना / आकाश तकना है पर फड़फड़ाना मन की सिलेटी पे लिखना मिटाना।

होठों पर अब यही बस दुआ है / हम पर जो बीता जो हम पर हुआ है /

ऐसे न दिन फिर किसी को दिखाना। (मन्नत, पृष्ठ 58)

बाबुल ये किस देस बियाहा / हमने खुद ही होठ सिले हैं / फिर भी इतने जख्म मिले हैं / उस पर मिर्च मसालों का लगता मरहम औ फाहा।/

खबर मिलेगी तो आओगे / तुम भी ठोकर ही खाओगे /

यही कहोगे सब्र करो या चल अब खूब निबाहा।(पाती, पृष्ठ 57)

प्रेमरंजन अनिमेष का कविता संसार अभिव्यक्ति के नुकीलेपन से आच्छादित है। उनके भीतर का कवि कविता को जीवन की तरह ही एक बेहतरीन ड्राफ्ट की तरह बरतता है। किसी रफ ड्राफ्ट की तरह नहीं। अपने अनुभव की कूची से बिहार का यह शब्दसंयमी कवि कविता के क्षेत्रफल से ज्यादा उसकी गहराई और ऊँचाई पर ध्यान देता है। उसके नेरेटिव किसी बोझिल कहानी के नैरेटिव की तरह हमारे धैर्य का इम्तहान लेते नहीं दिखते। इसीलिए वह बडे-छोटे बहर गीतनुमा पद में जैसे कविता की कसौटी उड़ेल कर रख देते हैं-

कलम यह गह / सह मत कह / ठहर ठहर लहर लहर सफर सफर नजर नजर /

..मन कर तरल / बन कर सरल / जग यह बदल...

(पहली कक्षा का पहला पाठ, पृष्ठ 13)

ध्यान से देखें तो यह कविता जितनी बच्चों के लिए उपादेय है, उतनी ही एक कवि के लिए भी। वह जीवन में उपादेयता को नजरंदाज न करने वाला कवि है तभी तो वह नारियल की उपयोगिता पर एक पूरी कविता लिखता है। उसके छिलके उसका पानी, उसकी खोल, उसका जटाजूट यानी चाम से लेकर अस्थियों तक सब काम में आने वाली चीजें। वह पूछता है, इससे अधिक क्या होगा किसी का जीना भला सार्थक! यह एक तरफ कविता की प्रयोजनीयता की ओर भी इशारा है तो जीवन की सार्थकता की ओर भी। कविता के हेतु पर तो पूरा काव्यशास्त्र ही अवलंबित है। प्रेमरंजन समाज में ताने देने की परम्परा को एक कविता में इस तरह अवलोकित करते हैं जैसे यह न हो तो कैसे भला रिश्ते नाते। यह तंज करने की परम्परा सास- बहू के बीच होती आई है तो

स्त्री पुरुष के बीच भी, मालिक कारीगर के बीच भी तानों ने कितनों की जिन्दगी बदल दी तो कितनों को दुखी भी किया होगा। पर कवि ताना को उलट कर नाता कहते हुए यह कहना भूल नही जाता कि हमारी भाषा की ही नहीं / हमारे समाज की भी खूबी / कि हर ताना उलट दें तो एक नाता / और कोई नाता तनिक घुमा दिया जाए तो बन जाता ताना... (ताने)

प्रेमरंजन अनिमेष के आब्जर्वेशन्स बहुत शार्प हैं। वे रास्ते में पड़े एक पाँव के जूते को देख एक कवि के विस्मय से भर उठते हैं तो राह में बहन के घर खाना खाते हुए किस अपूर्व सराहना से भर उठते हैं : लाती बहन थाल में क्या क्या खाता खूब सराह सराह।' वे कुछ ऐसी मानवीय गतिविधियों पर भी ऐसी कविताएँ लिखते हैं जिससे कवि को उसके प्रेक्षणों के लिए सराहा जा सकता है। जैसे खरार्टे पर, हकलाहट पर, ठिठोली पर, झिझक पर, झाँइयों पर। प्रेमरंजन अनिमेष को देखना हो तो उनके महीन से महीन आब्जर्वेशन्स में देखा जा सकता है। आज जब स्वच्छता पर ज्यादा बल है प्रेम ने अपने पहले ही संग्रह में कहा था शुद्ध जल तो बस अब नारियल में बचा है। गर्भवती स्त्री के मिजाज को परखती इस संग्रह की आखिरी कविता 'पृथ्वी उम्मीद से है' कवि के गहरे विवेक का निर्वचन भी है। वह यह लिखते हुए कितने गर्व और सम्मान से भरा हुआ दिखता है, आप भी देखें-

हवा बेचैन है और ठहरी / धूप बुन रही है कुछ / नन्हे ऊनी मोजों की तरह /
समय बटोर रहा तिनके / देखो तो ओस भीगी लवें उसकी /
उभर कर हो गईं जामुनी / मुझे लगता / उम्मीद से है पृथ्वी /
और सारे ग्रह नक्षत्रों पूरी आकाशगंगा को / अभी यह बात बता देनी चाहिए।
(संग्रह की आखिरी कविता)

मजदूर पर लिखे अपने एक लम्बे प्रगीत में रामावतार त्यागी ने लिखा थाः 'न गंगाजल न हलाहल न कोई और ही जल हो, किसी लाचार आँसू को हमारे भाल पर लिखना।' शायद कवियों का भी यही उद्देश्य होता है कि वे साधारणजन की पीड़ा को चुपचाप पीते हुए उसे मार्मिक कविता में रुपान्तरित कर देते हैं ताकि आगे उसे पढ़ने वाली पीढ़ियाँ उसे एक लैम्पपोस्ट की तरह देखें और देखें कि उनका समाज तब कैसा था। यहाँ प्रेम रंजन की 'अरजी', 'पाती' और 'मन्नत' इन तीन कविताओं को पढ़कर यह महसूस किया जा सकता है कि आज भी आधुनिकता के आवेगों, संवेगों व रहन-सहन के बावजूद पूरे भूमंडल में स्त्री की चीख अभी भी अनसुनी है। वह पीड़ा और तकलीफ का एक ज़िन्दा दस्तावेज है। उसके मन की सिलेटी पर जो कुछ भी लिखा और मिटाया गया है उसका बयान शब्दों से परे है। वह अपने ही छोटे से पिंजरे में आकाश तकने और पर फड़फड़ाने को मजबूर है। कुछ शहरी स्त्रियाँ भले ही खुशी के अतिरेक में कहें कि अगले जनम मोहे बिटिया ही कीजौ पर यह पुरुष कवि आज की पौरुषेय शक्तियों को मद्देनजर रखते हुए ही मन्नत जैसी कविता लिखने के लिए विवश होता है। अगले जनम इनको बेटी बनाना। जैसे अभी हम हैं, यूँ ही बनाना। पाती कविता में बेटी जिस भाषा में पिता से उलाहना देती है उसे सुनना सहज नहीं है। हमारे अवध में ऊँची जाति में बेटी ब्याहने के बावजूद खाने पीने को तरसती बेटी जब महुआ भूनते

हुए साँकल की खनक नहीं सुन पाती तो जिस लहजे में बाप से उलाहना देती है, पूरी संवेदना सुन्न पड़ जाती है। वह ठेठ अवधी में कहती है, 'बाबू जात भून रहे थे चूल्हे में' तो जैसे गरबीली गरीबी की सारी सीवनें उधड़ जाती

प्रेमरंजन खड़ी बोली के एक संयमित कवि हैं। पर गाँव देहात के अनुभव से अछूते नहीं। खेती किसानी के दुश्वरियों से अपरिचित नहीं। पुरखों की परम्परा से नावाकिफ नहीं बल्कि कविता में भी कवियों की परम्परा और आधुनिकतावादियों की-सी संवेदना से लैस। इस बात का प्रमाण इस संग्रह की जिस कविता में है वह है- एक किसान की शहर में रहने वाले बेटे के लिए वसीयत। यह बेटों की नई बनती दुनिया में उनके बदल जाने के अंदेशे से आक्रान्त भी दिखती है। दुनिया बदल रही है, इस बात का इंगित भी चौपट होती किसानी का दयनीय ब्यौरा भी है इसमें, पर किसान पिता के स्वाभिमान की अबुझ लौ भी जलती दिखती है जो एक अलाव की तरह जलने की इच्छा लेकर पैदा हुआ है और चाहता है कि बेटा यह महसूस करे कि किस तरह जलता है, आदमी/ अपने अन्त में / कि कोई ताप नहीं पाता उसकी आँच।

भाषा, शैली, अंदाजेबयाँ... सब कुछ सलीके से न्यस्त पर आन्तरिक वेदना को हिलाती प्रेमरंजन अनिमेष की कविताओं को पढ़ना कविता के तल से गायब होते कारुण्य को पढ़ना है...वह जिसे शब्दों के आयतन में नहीं, कविता के अन्तःकरण में ही पाया और महसूस किया जा सकता है।

मो. 8447289976

चिर-परिचित अनुभवों को बाँचती कविताएँ

- अर्पण कुमार

बिना मुंडेर की छत' प्रेम रंजन अनिमेष का नवीनतम काव्य-संग्रह है। कुल 80 कविताओं के इस संकलन में हमें हर मूड्स की कविताएँ पढ़ने को मिलती हैं। यहां प्रेम रंजन रचित काव्य-परिदृश्य अपनी पूरी विविधता और ठसक के साथ फैला हुआ है। संग्रह की पहली ही कविता 'नवान्न' हमसे सहज ही अपना एक नाता जोड़ लेती है। कवि अपने सर्जक के नएपन को लेकर सोचता है और इस सोचने में सर्जक के समक्ष आनेवाली चुनौतियों का जिक्र है। कवि उन चुनौतियों के साथ अपने भीतर की अनुभूतियों को शब्द देता चलता है। कड़ी दर कड़ी उसे प्रस्तुत करते हुए, किसी अभिमान। मुक्त वह दोनों तरह की बातें करता है। एक तरफ वह लिखता

'नया है नई आँखों के नए पानी में तिरता सपना'
नए पंखों में भरी नई हवा
नए तिनके सजावट इनकी नई (पृ. 9)

तो दूसरी तरफ कवि को इसका भी अहसास है-

'दुख तो वही बरसों बरस पुराना हजार बाँहों वाला
पर अभी अभी जन्मा है मेरे यहाँ
उसकी धमक नई है
उसकी किलक नई... (पृ.9)

निश्चय ही यह छोटी कविता जिंदगी के हर रंग को उकेरती हुई अपने कहे में काफी बड़ी हो जाती है। नए अन्न की खुशबू और खुशी की वही भावना नई कविता सिरजते हुए भी महसूस की जा सकती है, कवि इसे अपनी कविता में महसूसता और साधता चलता है। कवि ने चराचर जीवन के कई चित्रों को सघन आत्मानुभूति के साथ प्रस्तुत किया है। प्रेम रंजन की यह सरलता और आत्मिकता ही उनके कवि का हासिल है। वह अपने हिसाब से दुनिया को देखता है और उसे कविता में शब्दाकार दे वापस उसे दुनिया के समक्ष रखता है। इस भाषिक प्रस्तुति में तमाम संघर्षों, विरोधाभासों और प्रतिकूलताओं के बीच भी कवि उम्मीद का रास्ता नहीं छोड़ता है। आशा से भरी ऐसी कई कविताएँ इस संग्रह में पढ़ी जा सकती हैं। कहना गलत न होगा कि अदम्य आशावाद से भरा प्रेम रंजन का कवि कभी हार नहीं मानता है और इसके लिए समुचित ऊर्जा अक्सरहां वह इसी जीवन की निराशाजन्य परिस्थितियों के भीतर से प्राप्त करता है। 'निब', 'सुबह होने को है', 'जुगलबंदी', 'अंधेरे में माचिस की तलाश में एक कविता', 'कृतज्ञता', 'भरोसा', उम्मीद की एक कविता', 'युक्ति' जैसी कविताएँ उदाहरण के रूप में द्रष्टव्य हैं। मगर उसका आशावाद कहीं से इकहरा नहीं है। वह जीवन की संपूर्णता के एक घटक के रूप में ही आता है। वह यथार्थ से विलग नहीं है, बल्कि उसके कसैलेपन के बीच एक मिठास के रूप में आता है। कवि को अपने आसपास से कई मूल्यवान/पारंपरिक चीजों के सरकने का दुख है और उसे ऐसी निर्मम स्थितियों पर आक्रोश आता है। वह इन सबका चित्रण भी करता है। मसलन, 'मिट्टी' कविता में मिट्टी से बने विभिन्न सामानों के एक-एक कर छूटते चले जाने की बात करते हुए वह कहता है -

'वह नहीं किसी की गाँठ में / और जड़ों में बहुत कम
मिट्टी नहीं माँजती हमें अब / और हम नहीं गढ़ते उसे' (पृ. 20)

प्रेम रंजन के कवि के भीतर इसे लेकर आक्रोश भी है। वह प्रकृति से दूर भागती मानव जिंदगी को लेकर अपना क्षोभ व्यक्त करता है और कहता है -

'पहली बूँदों के पड़ते / घर से उठती नहीं वह सोंधी गंध
और काँच के ये बच्चे / नहीं जानते उसका स्वाद' (पृ. 20)

बच्चों को 'काँच' कह कर कवि बच्चों के व्यक्तित्व से अधिक हमारे वर्तमान शहरी लालन-पालन पर सवाल खड़े करता है, जहाँ हम अभिभावक उन्हें जीवन की सहजता से कोसों दूर करते चले जा रहे हैं और अतिशय सुरक्षा और अतिरिक्त चिंता के घेरे में हमने उन्हें प्रकृति से लगभग बेमना सा और निरपेक्ष बना दिया है। मगर इन सबके बावजूद कवि का एक और मन है, जो थक कर फिर खड़ा हो उठता है और जो निराशा के खा थपेड़े बार-बार आशा की उजास फैलाता है। 'कुत्ते की नींद' कविता में कवि, एक कुत्ते की निश्चिंतता को मनुष्य के लिए ईर्ष्या का वायस मानता है। व्यस्त सड़क पर एक किनारे छांह में निश्चित सोते इस चिर-परिचित दृश्य को रखकर कवि अपनी इस कविता में सवाल उठाता है,

'क्या आदमी के पास इस कुत्ते का / इत्मीनान है कुत्ते जैसा भरोसा दुनिया पर
कुत्ते जितनी नींद... ?' (पृ. 6)

स्पष्टः जीवन, अपनी पूरी रागात्मकता और हुमक के साथ प्रेमरंजन की कविताओं में उपलब्ध है। जीवन से उनकी कविताओं का संबंध नाभि- नाल का सा है। 'सिरजनहार' कविता संग्रह की कुछ महत्वपूर्ण कविताओं में एक है, जहां सर्जक अपनी सर्जन-क्षमता के बावजूद कई बार स्वयं अनर्जक या सर्जन के सुख से वंचित रह जाता है। सैलून वाले के यहाँ जब कोई ग्राहक नहीं आता है, तब वह स्वयं को ही 'अनदिन के आईने में' निहारता रहता है। किसी निराश या अनुर्वर दृश्य को कविता में यूँ प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण है। प्रेम रंजन की कई कविताओं में हमें गेयता भी देखने को मिलती है, जो अक्सरहां लोक- गीतों की मिठास लिए होती हैं। इन कविताओं में भी वे बड़े सधे ढंग से अपनी बात रखते हैं। दुनिया का भरपूर अवलोकन और उनका सहज और डूबा हुआ चित्रण हमें प्रभावित किए बगैर नहीं रहता। उनकी ओर कवि सहज आकर्षित होता है और उसका यह भाव, हमें उसकी कविताओं में भी देखने को मिलता है। 'दिनचर्या के आगे भीगी बिल्ली' बना कवि 'दिनचर्या की खिल्ली' कैसे उड़ाता है, छुट्टी को लेकर दिनभर का उसका अपना मनचाहा उपक्रम, इस कविता को सच्चा और जीवंत बना देता है। कहने की जरूरत नहीं कि सरल कविता लिखना उसी तरह आसान नहीं है, जिस तरह सरल जीवन जीना। उदाहरण के लिए ये दो पंक्तियाँ रखी जा सकती हैं -

'इत्तउत उड़ते फिरते रहना जैसे नई तितल्ली'

'इलायची' जैसी कविताएँ, कवि के भीतर की सादगी को अभिव्यक्त करती हैं। जीवन की छोटी- छोटी चीजों से यूँ प्रस्थान बिंदु प्राप्त करना, जीवन की सहजता और मिट्टी की सहधर्मिता से जुड़े कवि के लिए आवश्यक है। प्रेम रंजन की कविताएँ, हमारे परिवेश से जुड़ी कविताएँ हैं। प्रेम रंजन को प्रकृति और प्रेम का कवि कहना गलत न

होगा। झींसी', 'रात', 'सुबह होने को है', 'जीवन राग', 'कविता और शहतूत', 'चांद पर चना' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। झुर्रियों में हँसी' शीर्षक कविता में कवि, बुद्धावस्था की गरिमा और विपुलता से पहले रोमांचित होता है और फिर अपने उस रोमांच को शब्दाकार देता है-

'सतत अनहद निनाद-सी / झुर्रियों की झुरमुट में झिलमिलाती हंसी
यही तो जीवनदर्शन / एक जीवन में / कई जीवन, कई दर्शन' (पृ.427)

हमारे लिए इससे बड़ी बात क्या होगी कि हमारा जीवन ही दर्शन हो जाए। हमारा जीआ हुआ शास्त्र -सम्मत हो जाए। 'चुंबक' शीर्षक कविता में व्यक्ति के भीतर की जिज्ञासा और उसके अनथक उत्साह को वाणी प्रदान किया गया है। इसमें लोक में अनुस्यूत बचपन की उत्सुकता को बड़े सहज भाव से प्रस्तुत किया गया है। एक बालक, चुंबक को लेकर शुरू से आकर्षित है और वह कई तरीके से चुंबक बनाता आया है और ये सारी चीजें उसकी स्मृति में कहीं गहरे पैठी हुई हैं। यह कविता बचपन की बात करती बचपन के पार चली जाती है। 'दृष्टि' जैसी कविताएँ, राजनीतिक-सामाजिक विडंबनाओं को उठाती है। ऐसी कविताएँ किसी भी संग्रह का हासिल होती हैं। कवि पूर्वाग्रह-मुक्त हो और स्वतंत्र रूप से अपने आसपास को देखता है और तहीं में छुपे सच को कवि उजागर करता है-

'जो सिंहासन पर है / विदूषक मालूम होता
शासक की हत्या कर जो बैठ गया गद्दी पर' (पृ. 08)

और जब वर्तमान ऐसा हो तो भविष्य कैसा हो सकता है! कवि यह देख सिहरता है और डरता है और फिर, वह डर इन शब्दों में निकलता है-

'आतिशबाजियों की कौंध में झिलमिलाता
बच्चों के कल का सन्नाटा' (पृ. 408)

और कविता का अंत भी कितना सच्चा है-

'चीजें नई रोशनी में खुल रहीं / या यह अंधेरा है गहराता
जिसमें देखने के लिए / छटपटा रहीं आँखें...' (पृ. 409)

कवि की 'दृष्टि' विरल हो न हो, उसके देखे की सघनता और उसकी विशिष्ट अभिव्यक्ति, बेशक विरल होती है। वह उन जगहों पर जाकर टिकता और उसे देखता है और जब बह उसे अभिव्यक्त करता है, तो हमें उस वर्ण्य में निहित व्यंजना, कहीं भीतर तक प्रभावित कर जाती है। 'युक्ति', झाँइयाँ' जैसी कई कविताएँ, व्यवस्था के भीतर की विदूपताओं को उठाती हुई एक हास्य पैदा करती हैं। कवि अपनी ओर से कोई टिप्पणी नहीं करता। इससे कविता का प्रभाव, द्विगुणित होकर आता है। 'सहयात्रा', पुरखे', 'मिट्टी' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं।

आपने समय के यथार्थ से टकराती कविताएँ, अपनी युगीन वास्तविकताओं के छद्म रूपों को प्रकट करती हैं। यहाँ कविताएँ अपने तरीके से सत्य का संधान करती हैं और हमारे समय के उन विरोधाभासों को उठाती हैं, जिसे लेकर जब-तब हमारी नागरिक चेतना भी कसमसाती रहती है। 'मान' जैसी कविताएँ हमें हमारे भीतर पलते अनावश्यक अहं को आगे और पोषित करते चले जाने से रोकने का काम करती हैं। कवि हमारी

और अपनी मनःस्थितियों को पढ़ता- देखता है और वहाँ विकसित होती ग्रंथियों को प्रस्तुत करता है। वैसे ही, जब वह अपने आसपास पर नजर दौड़ाता है, तो समाज में व्याप्त छोटी-मोटी बुराइयों पर भी उसका ध्यान जाता है और वह उन्हें अपने हिसाब से अपनी कविताओं में उठाता है। प्रेमरंजन ने अपनी कविताओं में ये दोनों उत्तरदायित्व पूरी ईमानदारी से उठाए हैं। मगर कवि यहीं पर आकर रुकता नहीं है। वह नैराश्य के बादल को चीरता आगे बढ़ता है। वह विश्वास के बीज में नव-परिवर्तन के पौधे को अंकुरित होता देखना चाहता है। वह अपनी भरोसा! कविता में लिखता है...

'कुछ भरोसों की रेजगारी / चाहिए गाढ़े दिनों के लिए
इसके बिना / प्यार नहीं किया जा सकता
गीत नहीं रचे जा सकते / जूझा नहीं जा सकता जीवन में...' (पृ. 67- 68)

एक मुकम्मल कवि जब दोनों ही तरह की संवेदनाओं को पूरी शिद्दत से रखता है, तब उसके लिखे का पटल बड़ा होता है और बह एक बहुसंख्यक वर्ग से स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करता है। कविता, संवेदना की वह उदात्त भाषिक परिणति है, जो अपने रचाव के पूर्व कवि को और रचाव के बाद भावक को समान रूप से संपृक्त करती है। इसके अतिरिक्त, जहाँ किसी चिर-परिचित दृश्य को कुछ खास बनाना हो तो वहाँ कविता का सहारा लिया जाता है। या इसे यूँ कहा जाए कि हमारी अपनी ही कोई चीज कविता के विशेष सज-धज के साथ जब हमारे सम्मुख आती है, तब उसका स्वरूप कुछ और निखरा हुआ और कुछ विशिष्ट सा होता है। रागात्मकता के तत्व सबसे अधिक कवि को छूते और प्रभावित करते हैं। प्रेम कविताएँ हर कवि अपनी संवेदनाओं के अनुरूप लिखता है। अक्सरहां, इसमें टाइप्ड हो जाने के अपने खतरे भी होते हैं, क्योंकि यह एक ऐसा शाश्वत विषय है, जिसपर सर्वाधिक लिखा गया है। ऐसे में किस नए दृष्टिकोण से या किसी भिन्न अनुभूति के साथ कोई प्रेम कविता लिखना हमेशा चुनौतीपूर्ण होता है। इसके उदाहरण के रूप में हम प्रेम रंजन की 'ठोड़ी' जैसी कविता को ले सकते हैं। अधरों, आँखों, जुल्फों आदि पर कविताएँ लिखी गई हैं। मगर ठोड़ी जैसे शरीर के हिस्से पर कविता लिखना अपेक्षाकृत कुछ हटकर है और इसके पीछे कवि की अपनी रागात्मक/अनूठी दृष्टि है। कवि लिखता है -

'मुझे तो लगता / यह नींद में किसी कंधे पर उझकने से
बनी है या फिर / कोई तीखी निगाह चुभने से' (पृ. 74)

प्रेम में अनिवार्यतः दो लोगों का होना जरूरी है। ठोड़ी के बनने की यह कल्पना, कविता को एक उत्कर्ष प्रदान करती है। यहाँ स्त्री, पुरुष के कंधे पर आराम करती है या फिर कोई पुरुष उसकी सुंदरता को आँखों ही आँखों में पीता है। प्रेम रंजन की इस कविता को एक मांसल कविता कहना गलत न होगा। ऐसी कई कविताएँ हमें इस संग्रह में पढ़ने को मिलती हैं, जहाँ कवि अपने अनुभवों का सामान्यीकरण करता चलता है।

'रुंधा राग' जेसी कविताओं में व्यंग्य का रचाव, अपने तई बहुत दूर तक जाता है। लोक-कथाओं या जन-प्रचलित मुहावरों से कोई सिरा पकड़कर, कवि, गदहे के माध्यम से अपनी बात रखता है। एक परिश्रमी और थके-हारे आम आदमी का दर्द इसमें स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है। कवि लिखता है-

'कभी लोटता बैसाख में / पाँवपीटता अलबलाता
भीड़ में अकेले भर्राए स्वर में / चाहता अपने दुख को गाना' (पृ. 445)
मगर वह ऐसा नहीं कर पाता है। और उसकी इस बेबसी को कवि यूं समझता है-
'गला रुंधा है / इसलिए गधा है
या गधा / इसलिए गला रुंधा...' (पृ. 45)

गंधर्व के रूपक के बहाने कवि एक बड़ा तंज कसता है। अपने काम को तत्पर या समर्पित लोगों का अक्सरहां समाज में उपहास उड़ाया जाता है, कवि का मंतव्य स्पष्ट है। हाशिए पर रह रहे लोगों को लेकर कई और कविताएँ हमें इस संग्रह में देखने को मिलती हैं। कहीं ब्याही हुई बेटी का दर्द ('पाती', 'अरजी' जैसी कविताएँ) हमें देखने को मिलता है तो कहीं रेल की पटरियों के किनारे रहते लोगों की जीवन- शैली (रेल की पटरियों के किनारे जिनके घर हैं') को चित्रित किया गया है। 'आलू दम' कविता को पढ़ते हुए यह अनुभूति होती है कि यह कविता, एक साथ मानो बड़े और बच्चों दोनों के लिए लिखी गई हो। आलू पर लिखी इस कविता में अलग-अलग अनुच्छेदों में कई महत्वपूर्ण बातें, बड़े रोचक ढंग से कही गई हैं। आलू की उपादेयता और सर्वसुलभता को लक्षित करता कवि इसे एक ईश्वर के रूप में देखता है-

'एक दृश्य ईश्वर / जिसे छुआ जा सके
महसूस किया जा सके / जिसकी ऊष्मा को / बाहर और भीतर' (पृ. 90)

प्रेम रंजन का अभ्यस्त कवि, हमारे देखे और भोगे को हमें कुछ विशिष्ट ढंग से दिखाता और उसका अनुभव कराता है। यह किसी सधे हुए कवि का काम है और किसी सच्ची कविता का हासिल। लोक के जड़ों से सिंचित उनकी कविताओं का स्वर जितना अपनत्व लिए हुए है, उतना ही विविधवर्णी भी। वे अपनी कविताओं में कई प्रयोग भी करते हैं। भाषा और शिल्प दोनों ही स्तरों पर। 'पर झूठमूठ दो कविताएं', 'हवाई चप्पल' जैसी कविताएँ अपने रचाव में विशिष्ट हैं। अगर हम, उनके काव्य-जगत पर जरा नजर दौड़ाएँ, तो हमें यह समझते देर नहीं लगती कि वे एक सहज और रागधर्मी कवि हैं। उनकी कई कविताएँ स्वतः स्फूर्त हैं और उनमें अक्सरहां शोर में तब्दील होती अनावश्यक मुखरता नहीं दिखती। उनकी कविताएँ, स्वयं को वाचाल होने से रोक लेती हैं। ग्रामीण और कस्बाई परिवेश का चित्रण, उनकी कविताओं में बड़े आत्मीय रूप में हो सका है। वहाँ भी समय के हाथों होने वाले विभिन्न बदलावों को उन्होंने आवाज देने की कोशिश की है। इस कोशिश में कई देखी-अदेखी बातों पर हमारा ध्यान जाता है। कभी घर में पुराने सामानों को देखकर कवि को 'बुजुर्ग! याद आते हैं तो अपने पहले सफेद बाल को देखकर उसे अपना बचपन ('दूधियापन' कविता) याद हो आता है। परिवर्तनों के इस 'ओवरलैपिंग' में प्रौढ़ कवि अपने बालपन में पहुँच जाता है, जब पहली बार उसके मसूढ़े में दूध के दाँत आए थे। वह भी एक दूधिया नवीनता थी, जब वह अपने जीवन के पायदानों पर चढ़ रहा था और जब वापस वह अपने यौवन की सीढ़ी से उतरना शुरू करता है तब पुनः वह उसी दुधिएपन का साक्षात्कार करता है। प्रेम रंजन का कवि अपनी अंतरयात्रा में इस आत्मिक अनुनाद को सुनता आगे बढ़ता है। रामविलास शर्मा ने अपने निबंध और इसी नाम से चर्चित अपने निबंध-संग्रह परंपरा का

मूल्यांकन' में उचित ही लिखा है, साहित्य मनुष्य के संपूर्ण जीवन से संबद्ध है। आर्थिक जीवन के अलावा मनुष्य एक प्राणी के रूप में भी अपना जीवन बिताता है। साहित्य में उसकी बहुत सी आदिम भावनाएँ प्रतिफलित होती हैं, जो उसे प्राणिमात्र से जोड़ती हैं। इस बात को बार-बार कहने में कोई हानि नहीं है कि साहित्य विचारधारा मात्र नहीं है। उसमें मनुष्य का इंद्रिय-बोध, उसकी भावनाएँ, आंतरिक प्रेरणाएँ भी व्यंजित होती हैं। साहित्य का यह पक्ष अपेक्षाकृत स्थाई होता है।'

कहा जा सकता है कि ये कविताएँ, इस अर्थ में खरी और स्थाई हैं। पाठकों को बार बार इन कविताओं की ओर लौटने और इन्हें पढ़ने-गुनने का मन करता है। प्रेमरंजन अपनी कविताओं में बतकही के अनूठे रस को व्यंजित करने के लिए भी जाने जाएँगे। यह बतकही कहीं और से नहीं, बल्कि चिर-परिचित भारतीय देशजता से आई हुई है, जिसमें हमारी लोक-संस्कृति के कई जाने-माने आस्वाद हैं। 'चाँद पर चना' जैसी कविताएँ इस संदर्भ में खास तौर से उद्धृत की जा सकती हैं। यहां लोक संस्कृति अपनी पूरी समृद्धि और सज-धज के साथ उपस्थित है। यहाँ चने से बनने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों और मुहावरों को एक साथ रखकर कवि अपनी बाल सुलभ कल्पनाओं और अपने कुछ 'विजार्ड' से दिखते विचारों के माध्यम से कई बातें रखता है।

एकाधिक विधाओं में सक्रिय प्रेम रंजन के इस संग्रह की कविताएँ वर्तमान हिंदी कविता के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति से हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। सरल और बोलचाल की भाषा में लिखी ये कविताएँ हमारे चिर-परिचित अनुभवों को ही एक विशिष्टता प्रदान करती हैं।

पत्रों के साथ हर पते पर पहुँचता प्रेम रंजन अनिमेष का काव्य

(कवि के प्रकाश्य कविता संग्रह 'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र और कुछ साक्ष्य' के जरिये कुछ बातें)

- सच्चिदानंद विशाख

पहला शिशु / पहली कृति / पहला हासिल / पहली खुशी / किलक पहली /
ललक पहली / पहली चिट्ठी / पहले प्यार की / फिर एक बार /
गौर से देखो / पूछना है तो / अपनी अंतरात्मा से पूछो / सूरत इनकी /
किससे मिलती...! ('पहली चिट्ठी')

बस इतना / चाहता / बतलाना / कि पहली चिट्ठी तुम्हारी / है अब भी मेरे पास /
...हृदय अब जब ठहर जाये / तब भी रहेंगे धड़कते / अक्षर उसके / भीतर मेरे /
यही कहने को / लिख रहा / पाती यह आखिरी / साँसें आजाद हो जायेंगी /
उनके साथ मिलकर हवाएँ / शायद इसे ले आएँ / तुम तक /

'निब' और 'पहली कक्षा का पहला पाठ' से विस्तार पाती कविताएँ जग और जीवन को बदलने की बात करती हैं- उनकी बेहतरी के लिए। घटित यथार्थ पर केंद्रित होते हुए कवि-दृष्टि इस कटु सत्य का संज्ञान लेती है कि 'दुनिया में आगे बढ़े वो, जिन्होंने औरों को अँगूठा दिखाया'। यह समाज में पसरा कठोर यथार्थ है जो कवि की पारखी दृष्टि से होकर कविता में उतरता चला गया है। आर्थिक अभाव युक्त समुदाय के रहन सहन और तौर तरीके कवि का ध्यान खींचते हैं और वे ऐसी चीजें भी पकड़ते हैं, जिनकी अनदेखी की जाती है। अपनी जमीन से जुड़ी उनकी कविता 'मिट्टी' की सुन्दर पंक्तियाँ कोमलता से मन को सहला जाती हैं- 'पहली बूँदों के पड़ते / घर से उठती नहीं वह सोंधी गंध / और काँच के ये बच्चे / नहीं जानते उसका स्वाद'।

उनका मौन सुनना / उनका संवाद समझना... ('आखिरी चिट्ठी')

प्रेम रंजन अनिमेष हिन्दी साहित्याकाश के उस दैदीप्यमान सितारे की तरह हैं, जो अपनी ध्रुव उपस्थिति रखता है और गहरी चमक तथा निरंतरता के लिए दूर से पहचाना जाता है। एक सच्चे सर्जक की तरह अनिमेष जीवन, जगत और उसके गहन अंतर्संबंधों को पूरी संवेदना व सामासिकता से देखते हैं- किसी वाद या विचारधारा को आगे कर नहीं, बल्कि मनुष्य और मानवता का सजग प्रहरी बनकर। सच्चे सृजन की तरह शाश्वत प्रतिपक्ष की भूमिका का निर्वहन करते हुए कवि की कविता व्यवस्था का विरोध करती है- जड़ जमा रही विसंगतियों और विद्रूपताओं को उद्घाटित करते हुए। साथ ही, जीवन जगत और मानवता की बेहतरी के सपने सँजोने-सहेजने-सँवारने और भविष्य के खतरों के प्रति आगाह करने का उत्तरदायित्व भी निभाती है।

प्रेम रंजन अनिमेष के शब्दों में कहें तो आँखें सच और सपने, दोनों को देखने के लिए बनी हैं, और उनमें पानी और रोशनी को एक साथ बसाना और बचाना जरूरी है! इनकी कविताओं में शब्दों और भावों की गहराई, स्थिरता, प्रगाढ़ता और शांति है,

जो विचार को धाराओं की तरह आगे ले जाती हैं- जहाँ आवश्यक है, वहाँ प्रवाह के विपरीत भी तैरने के अदम्य यसाहस और विवेक के साथ। सुलझी सोच समझ वाले एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में अनिमेष खुद पर भरोसा करते हैं; किसी गुट, संगठन या सत्ता व्यवस्था पर नहीं- उस 'तथाकथित' धर्म पर भी नहीं, जो आजकल भीतर धारण करने की धारणा को छोड़ बाह्यावरण की तरह अधिक प्रचलित हो गया है-

...पर किसकी शपथ लूँ / किसी धर्मग्रन्थ में / विश्वास नहीं करता मैं... '

प्रेम रंजन अनिमेष के लहजे में शांति और सहजता है, पर कोई समझौता या संकोच नहीं। इनकी दृष्टिपरिधि विस्तृत है, दायरा बड़ा और सरोकार व्यापक- जिसमें व्यष्टि-समष्टि, जड़-चेतन, लघुतम-महत्तम, घर-संसार और संसद से लेकर सड़क तक की खैर-खबर है ! इसकी बेमिसाल बानगी हैं 'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र' की कविताएँ। वहीं, 'कुछ साक्ष्य' वाली कविताएँ टेस्टीमोनियल्स की तरह जीवन जगत में अब भी मौजूद शाश्वतताओं और मानवीय मूल्यों की विश्वसनीय पहचान कराती हैं और समय के साक्ष्य की तरह उन्हें चिह्नित रेखांकित भी।

अनिमेष उस (अ)व्यवस्था की सच्चाई को उजागर करते हैं, जिसमें लूट का माल मिल बाँट कर खाया जाता है और पीड़ितों, निर्बलों तथा वंचितों की परवाह करने वाला कोई नहीं होता। अपनी सुविधा के लिए कोई किसी के आड़े नहीं आता, कोई किसी से टकराता नहीं- इसलिए कि 'मिल बाँट कर खाने' में कभी कोई मुश्किल न हो। 'कुछ प्रमाणपत्र' खंड की बेजोड़ कविता 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' समूचे शोषण तंत्र को उधेड़ती और अंदर तक झकझोरने वाली कालजयी कविता है, जिसकी एक एक पंक्ति गहरी और भरी पूरी है। 'आधुनिक राज और सभ्य समाज' की कलई खोलता ऐतिहासिक दस्तावेज है यह कविता, जो उस बदहाली की निशानदेही करती है, जिसमें कई बार इन्साफ को अगवा करने की कोशिश होती है, और जनप्रतिनिधि तथा जनसेवक बेमकसद बहसों में उलझे रहते हैं। फिर आम जनता की हालत यह हो जाती है, जैसे चलती फिरती कोई बेजान चीज !

इस वक़्त बहुत तेज गति से बढ़ रहे खुले बाजार में इन्सानियत की क़ीमत लगायी जाती है और धर्म को उसके मूल तत्व से अलग करते हुए 'व्यवस्था' सब कुछ अपने साँचे में फिट करने की कोशिश में लगी रहती है। 'आधुनिक युग' में बार-बार 'बड़ों' के सामने खड़े होकर आम आदमी को सफाई देनी पड़ती है। पुरोहित पुनर्जन्म की महत्ता बतलाता है, ज्ञानी वर्तमान जीवन की 'निरर्थकता' समझाने में लगा रहता है, और विद्रोही तमाम लोगों को हंगामे के लिए ललकारता है। इन सबके बीच सर्वसाधारण को हर तरह से अपना वजूद प्रमाणित करना होता है। अनिमेष कहते हैं-

तुम्हें भरना होगा कर / उन सारे रास्तों का / जिन पर तुम चलोगे /
उन हवाओं का / जिनमें लोगे साँस / उस जल का / जो तुम्हें छुयेगा /
जगायेगा तुममें प्यास... ('कर प्रमाणपत्र')

हर आदमी को अपने को सही साबित करना है, पर जो सत्ता में हैं, उनके लिए कोई प्रमाणपत्र जरूरी नहीं है। अनिमेष अपनी रचनाओं में बातों को बढ़ा चढ़ाकर नहीं कहते, और उनकी पुनरावृत्ति नहीं करते- फिर भी गहरी संवेदना और मार्मिकता कायम

रहती है। 'शुचिता प्रमाणपत्र' में एक पिता अपनी बेटी की पवित्रता की सफाई जिस तरह देता है, वह जितना मर्मभेदी है, उतनी ही गहरी व्यंजना से भरा और भीतर से झिंझोड़ने-झकझोरने वाला भी :

'न कूल किनारे तोड़े न देहरी लाँघी / कुछ भी नहीं किया अब तक /
जो करेगी आप ही की छाँव / मरजी मुताबिक आपके / निर्मल जल की तरह /
इन भरी हुई आँखों के अंजुल से / सीधे आपके पात्र में ढलेगी... '

समस्याओं की जटिलताओं और मुश्किलों के उलझाव के बीच भी अनिमेष की अभिनव दृष्टि और उसका अनुभवजन्य विस्तार रचनात्मकता को नया आयाम देते हैं- यह रेखांकित करते हुए कि आदमी और आदमीयत को किसी भी तरह सीमित नहीं किया जा सकता :

'पानी में / कई बार डाले पैर / और हर बार /
अनुभव हुआ नया...' ('अनुभव प्रमाणपत्र')

अनिमेष की कविताओं में बच्चे अपनी पूरी निश्छलता, जीवंतता और अपार संभावनाओं के साथ आते हैं, और यह सभी जानते मानते हैं कि यह विलक्षणता और विशिष्टता समकालीन कविता में बहुत कम लोगों के पास है। अब तक कला-साहित्य की दुनिया में बच्चे ईश्वर को संबोधित करते तो नजर आये हैं, लेकिन अनिमेष के इस संग्रह में है-'एक बच्चे का पत्र : दुनिया के राजा के नाम' ! यही इस रचनाकार की विशिष्टता और अद्वितीयता है। इस 'रचनावली' में जहाँ 'पुत्री का पत्र पिता के नाम' और 'बचपन की चिट्ठी' है, वहीं कवि का संबोधन भी- 'अजन्मे बच्चों के नाम' :

'बारूद के संदेह में / बिंध बिंध कर / विष होने को विवश / हर संजीवनी /
विकिरण पी रहे हम / विकिरण उगा रहे / पहन ओढ़ खा रहे /
सो रहे उन्हीं की छत्रछाया में.../ नंगी है मानवता / अपने ही जाल में /
ओ अजन्मे छौनो / खत लिख रहा तुम्हें / देखो किस हाल में...'

संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता है- 'संपादक के नाम एक पत्र'। अब एक फौरी किस्म की पत्रकारिता आजमायी जा रही है, और अधिकांश संपादक पढ़े लिखे प्रतिबद्ध पत्रकर्मी नहीं, बल्कि मालिक के वफादार नौकर होते हैं। फिर यह भी कि भाषा का स्थान प्रायः हर जगह अंग्रेजी ले चुकी है। कवि इस कविता में बहुत ही तीखे और बेधक प्रश्न उठाता है-'जिस दिन होगा अंतिम संस्कार/ नैतिकता का/ अंतिम संस्करण इस देशभाषा पत्र का / ... उस अंतिम दिन / क्या अपने संपादकीय के ठीक नीचे / यह पत्र आप छाप सकेंगे?'

विनाश और विध्वंस के खेल के बीच जीवन को बचाने की सोच लिये कवि की चिंता वाजिब है। उसे अपनी बात लोगों तक पहुँचानी है, उन्हें जीवन मूल्यों से जोड़ना और सच्चाई व अच्छाई की ओर मोड़ना है। अनिमेष अपने कविकर्म से इसी संकल्प को साधते हैं और इनके अन्य कविता संग्रहों की तरह ही 'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र और कुछ साक्ष्य' भी इसी का महत्वपूर्ण अकाट्य साक्ष्य है। इस संकलन की हर कविता जीवन की सरलता, सहजता, तरलता, प्रतिबद्धता और जिजीविषा से परिपूर्ण है- जिसमें जितनी गहराई है, उतनी ही ऊँचाई भी। अपने आसपास के लोक, जीवन और उसके संघर्षों से

स्पंदित गहन प्राणवान सत्यों और स्वप्नों को अनिमेष अपनी खास लय में अभिव्यक्त और जीवंत करते हैं। यही लयात्मकता कविता को एक प्रवहमान जलस्रोत-सी गति देते हुए लक्ष्य को साधने और गंतव्य तक पहुँचने में मदद करती है।

अनिमेष की कविता में सर्जनात्मक संश्लिष्टता है। कवि को सागर की गहराई, चिड़ियों का कलरव और गीतों के पंख मिले हैं। अपनी मिट्टी ने इन्हें एक अलग पहचान दी है- सबसे सहजता के साथ, मगर बड़े सलीके से जुड़ने और सबको जोड़ने वाली। अनिमेष को प्रकृति और समस्त जीवन-जगत से लगाव है- धरणी, जननी और नवजीवन का उल्लास भरते बच्चों से भी। जहाँ-जहाँ जीवन अपने ओज और तेज से धड़क रहा है और जूझ भी रहा है, और जहाँ किसी हमदर्द मददगार हाथ की उसे जरूरत है- अनिमेष की कविता वहाँ अपनी पूरी शक्ति और सप्राणता के साथ उपस्थित रहती है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कविता में प्रत्येक पंक्ति महत्वपूर्ण होती है- यहाँ तक कि उनके बीच का स्पंदित अंतराल भी! रचनाओं में सब कुछ सहजता और सरलता के साथ सन्तुलित तथा निर्बाध रूप से आता है। अनिमेष की कविता एक आवश्यक संवाद स्थापित करती है पाठकों के साथ- उस जरूरी बात की तरह, जो कभी खत्म नहीं होती, साथ नहीं छोड़ती। वह अपनी पूरी अर्थवत्ता और प्राणवत्ता के साथ धड़कती रहती है- शब्दों को साधती, अनन्य अनंत रचती हुई! इस काव्यांश में सचपने से जुड़ा यह प्रश्न ध्यातव्य है-

'तुम कहते हो / ऐसा कोई फूल / ऐसी कोई तान / ऐसी कोई मुसकान /
ऐसी कोई दीप्ति / है ही नहीं / कविताओं कथाओं के सिवा /
यह सब है आज भी एक सपना / तो क्या / सच के लिए / किसी सपने की /
शपथ नहीं ली जा सकती...? ('शपथ पत्र')

दुष्चक्रों और दुर्नीतियों से भरी दुनिया में, जहाँ सच को शायद ही कोई सुनता गुनता है, अनवरत साज़िशें होती रहती हैं उसके और मनुष्यता के विरुद्ध- वहाँ भी 'रचनात्मकता खड़ी रहती है पूरी दृढ़ता और विश्वास के साथ। प्रेम रंजन अनिमेष का कविता संग्रह 'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र और कुछ साक्ष्य' इस तथ्य का प्रमाण है। इसमें एक ओर निरंतर छीजते जीवनमूल्यों और खो रही मनुष्यता को सम्बोधित पत्र हैं, तो दूसरी तरफ दिनोदिन प्रचलित और हावी होते जा रहे अनेकानेक प्रमाणपत्र। संबंधों और आपसदारी के लिए अपरिहार्य पत्रों का जीवन से विलोपन और दूसरी तरफ गैरजरूरी प्रमाणपत्रों की आज के समाज में बढ़ती अनिवार्यता से जुड़ी विडंबना की बेजोड़ अभिव्यंजना प्रस्तुत की है अनिमेष ने इस संग्रह में।

काव्य संकलन के पत्र खंड में सुचिंतित रूप से दो उपखंड रखे गये हैं। एक तरफ संबंधों की साझेदारी, सहानुभूति व जीवन राग के नेह से भरे वे पत्र हैं, जिन्हें हमने कहीं खो दिया है या लिखना छोड़ दिया है, या फिर वे लिखे भी जाते हैं कहीं तो उन्हें हमारा पता मालूम नहीं होता (लिखना था जो पत्र, रात भर जाग कर लिखा पत्र, खुशबू के खत, मौन पत्र, जवाबी चिट्ठी, एक धड़कता हुआ पत्र, सिरहाने रखी चिट्ठी, बचपन की चिट्ठी, अजन्मे बच्चों के नाम...)। दूसरी तरफ वे पत्र, जो चिट्ठियों की जगह आधुनिक सभ्यता और सियासत के सूखे पत्ते हैं। दरअसल - जिनका कोई मोल है तो बस अपने

हित में उनका इस्तेमाल करने वालों के लिए (स्तुति पत्र, शुद्धि पत्र, अनुशंसा पत्र, अनुमति पत्र, नीति पत्र, घोषणा पत्र, श्वेत पत्र, पारपत्र, खेद पत्र, सिफारिशी पत्र, सम्मान पत्र, अनुबंध पत्र, आरोप पत्र, त्यागपत्र, संधिपत्र, तुलन पत्र, दानपत्र, शपथ पत्र, विपत्र इत्यादि)। इस तरह के तमाम पत्रों और प्रमाणपत्रों के जरिये अनिमेष पारखी निगाह रखने वाले किसी सिद्धहस्त कलाकार की तरह समकालीन समाज का सटीक नक़्श बनाते हैं- पहचान छिपाने वाले सारे मुखौटों और मुलम्मों को उतार कर!

'कसौटी' पत्रिका के प्रवेशांक में विशिष्ट कवि के रूप में प्रेम रंजन अनिमेष को प्रस्तुत करते हुए प्रख्यात आलोचक नंदकिशोर नवल ने इनकी कविताओं को 'सभ्यता समीक्षा' कहा है। किस दक्षता और खूबी से अनिमेष यह काम करते हैं, 'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र...' इसका एक और पुख़्ता प्रमाण है। साहित्य हमेशा सच और मानवीय संवेदना के साथ खड़ा तो रहता ही है, प्रतिगामी तथा प्रतिक्रियावादी ताकतों के विरुद्ध आगाह करता हुआ संघर्ष के बीज भी बोता है। इस जटिल और कठिन द्वंद्व में संवेदना को बचाने, सहेजने, सँवारने और सींचने वाली सकारात्मक रचनात्मकता का साक्ष्यस्वरूप है यह काव्य संकलन- प्रेम, ईमान, निश्छलता, स्नेह, पहल, सच्चाई, खरापन, सादगी, सहजता और आपसदारी सरीखे सशक्त और निर्णायक गुणों के साथ आम अवाम के पक्ष में खड़ा हुआ! यह अद्भुत सुचिंतित सृजनात्मक संयोजन इस संग्रह को विलक्षण बनाता है, और संभवत समस्त विश्व साहित्य में अपनी तरह का अनूठा भी! जो साहित्य कला से जुड़े हैं और जिन्हें जीवन जगत की बेहतरी की चिंता है, उनके लिए यह कविता पुस्तक मनुष्यता के आईने से झाँकता वह खत है, जिसे बार बार पढ़ना जरूरी है। यह आईना खुद में, और सबके भीतर झाँकता हुआ जो कहता है, वह काबिले गौर है-

बिन मिले हुई मुद्दत लिखना / भूले साथी इक खत लिखना /
है सच में कितना सत लिखना / क्या हुई झूठ की गत लिखना /
किस मोल वहाँ चाहत लिखना / ईमां की क्या कीमत लिखना /
भूलो भी ऐसे मत लिखना / जब याद आये इक खत लिखना... (' इक खत...')

विपरीत परिस्थितियों में भी प्रेम रंजन अनिमेष आशावादी हैं और इसके मूल में है - जड़ों से जुड़ाव, सकारात्मक और सृजनात्मक सोच, सच्चाई का साथ एवं मानवता के प्रति गहरी आस्था! सृजन संजीवनी और अजस्र तरलता के साथ जीवन की जड़ों को सिंचित करने में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते हुए अनिमेष सतत श्रेष्ठ रचनात्मकता के साथ कई दशकों से सक्रिय हैं- एक अथक यात्री की तरह गंतव्य को लक्ष्य कर बढ़ते हुए। उम्मीद है कि इस सफर में जितने भी पड़ाव आयेंगे, वहाँ मील के पत्थरों की तरह इनकी महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ मौजूद रहेंगी- जन-मन-जीवन का अटल विश्वास बनकर- ताकि वह समग्र जीवंतता और शाश्वतता की आश्वस्ति के साथ कह सके- इस संग्रह की कविता 'वैधता प्रमाण पत्र' की तरह :

'मैं एक मामूली आदमी / जो कहीं कुछ नहीं / यह प्रमाणित करता हूँ / कि प्यार अब भी चलन में है / रिश्तों में अब भी है आँच / सच एकदम से अकेला नहीं / हवा पूरी दूषित नहीं हुई / जल तल तक नहीं हुआ गँदला / मिट्टी अब तक उर्वर /आसमान ऊपर / और उसमें कितने ही पर हैं / इस डूबती वेला में / कितने सारे स्वर हैं...

अच्छे आदमी की कविताएँ : प्रेम रंजन अनिमेष

- दिनेश अहिरवार

'अपने होने से किसी और का होना न हो दखल
अपने जीने से किसी के जीने में न पड़े खलल।'

उपर्युक्त पंक्तियों के रचनाकार और इसी विचार को अपने जीवन में भी चरितार्थ करने वाले 18 अप्रैल 1968 में आरा, भोजपुर बिहार में जन्में कवि प्रेम रंजन अनिमेष नवें दशक से कविता का सफर शुरू करते हैं। बाद के दिनों में कहानियाँ, उपन्यास, आलोचना और संस्मरण आदि का भी सृजन किया। उन्हें युवा कविता के लिए 'भारतभूषण अग्रवाल' पुरस्कार (2004) और 'कृष्ण प्रताप स्मृति' पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। 'मिटटी के फल', 'कोई नया समाचार', 'संगत', 'अँधेरे में अंताक्षरी', 'बिना मुँडेर की छत' और 'अच्छे आदमी की कविताएँ' (ई-बुक) 'माँ का जन्मदिन' (बाल कविता) आदि कविता-संग्रह प्रकाशित हैं, उनसे फोन पर मिली सूचनानुसार कुछ नये संग्रह जल्द ही प्रकाशित होने वाले हैं। इनकी कई कविताओं का बांगला, पंजाबी, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी तथा जर्मन आदि कई भारतीय और विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं। यहाँ हम अनिमेष जी के कविता-संकलन 'अच्छे आदमी की कविताएँ' से रू-ब-रू होंगे, जो महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की 'हिन्दी समय' वेबसाइट पर ई-बुक के रूप में प्रकाशित हुआ है।

अनिमेष जी समकालीन हिन्दी साहित्य में एक कवि के रूप में जितने चर्चित हैं उतने ही कथा जगत में भी। अनिमेष की कविताएँ मनुष्य के जीवन-संघर्षों और एक बेहतर मनुष्य बनने की लगातार कोशिश के दस्तावेज हैं। कविता मनुष्य के हृदय की वह आवाज है जो बहुत सारे सच और जीवन के मार्मिक प्रसंगों से बनती है। चूँकि आज के सीधे सादे और अच्छे मनुष्य को दुनिया मूर्ख समझती है जबकि ऐसा नहीं, सीधे और सच्चे होना मनुष्य का एक गुण है जो आज की इस आपाधापी और झूठी दुनिया में खोजना बहुत मुश्किल है। सच के आगे झूठ का वर्चस्व इतना बढ़ गया है कि सच कहीं दुबका सा रहता है और झूठ की दुदुम्भी बज रही है। फिर भी चंद लोग ऐसे भी हैं जो सच का हमेशा हाथ पकड़कर चलते और अपने जीवन में भी चरितार्थ करते हैं। झूठ अधिक दिन तक नहीं ठहरता, वह मुँह छुपाये रहता है किसी चोर की मानिंद तब भी एक दिन पदार्फाश हो ही जाता है, लेकिन सच हमेशा अपना सिर उठाये चलता है। सच उस चट्टान पर खींची गई लकीर की मानिंद होता है जिसपर चाहे जितनी बारिश हो, धूप हो, आँधियाँ चलें लेकिन कभी मिटती नहीं है।

अनिमेष जी अपनी कविताओं में महज बिहार की समस्याओं को ही नहीं उठाते बल्कि भारतीय समाज की समस्याओं को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं। इन कविताओं में भारतीय लोक संस्कृति और लोक जीवन से सम्बंधित अनेकों छवियाँ मौजूद हैं। ये कविताएँ हमारे समय, साहित्य और समाज की दस्तावेज हैं। अनिमेष जी की कविताओं से गुजरने का मतलब अपने समय और समाज में विद्यमान परिस्थितियों से वाकिफ होना है। वे एक कुशल रचनाकार हैं जिसका प्रमाण उनकी विभिन्न विधाओं जैसे- कहानी, नाटक, संस्मरण आदि में देखा जा सकता है। यह उनके रचनात्मक

कौशल की विशिष्टता और सार्थकता भी है कि वे साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी दखल रखते हैं।

कविता मनुष्य के जीवन को सरल बनाती है तथा उसके संघर्षों और समस्याओं को भी व्यक्त करने का उपक्रम रचती है। कविता हमारे लिए भौतिक रूप से भले ही कुछ न दे, लेकिन अपने भावों और विचारों को जगह जरूर देती है। जीवन की जटिल समस्याओं और संघर्षों में उम्मीद की तरह होती और जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है, यही उसके होने की सार्थकता है। कविता को परिभाषित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं कि 'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबंधों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक-सामान्य भाव-भूमि पर ले जाती है। जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।'[1] विनोद कुमार शुक्ल के हवाले से कहूँ तो 'मनुष्य का जन्म बड़ा है / किसी भी कविता के जन्म से / यद्यपि कविता मनुष्य को बड़ा बनाती है। इस मानी में देखा जाए तो अनिमेष जी के यहाँ भी नाना गतिविधियों के मार्मिक प्रसंगों का साक्षात्कार होता है। वे अपनी कविताओं की एक ऐसी भाव-भूमि तैयार करते हैं जिसमें लोक के साथ-साथ जीवन के विविध प्रसंगों को संजीदगी के साथ देखा जा सकता है।

आज देखा जाये तो कविता के पाठक कम हुए हैं लेकिन रचनाकारों की बाढ़ सी आ गई है। आजकल ऐसे बहुसंख्यक कवि देखे जा सकते हैं जो फेसबुक या अन्य सोशल साइटों पर चार पंक्तियों के साथ अपनी फोटों चिपकाकर अपने आपको महाकवियों की श्रेणी में मानने लगते हैं। आज की मंचीय कविता ने भी कविता का जो हश्र किया है, वह चिंतनीय है। वहीं अनिमेष जी की कविताएँ अपने समय और समय से आगे का भी आख्यान प्रस्तुत करती हैं। आज के तीव्र प्रतिरोधी स्वर और लाउडली होने से बच जाती है तथा समय के साथ उनकी कविता में मर्मस्पर्शिता का भी गुण घनीभूत हुआ है। लेकिन समय और समाज में निरंतर हो रहे बदलावों से कवि की भविष्य के प्रति चिंताएँ और अधिक बढ़ गई हैं। इस संदर्भ में वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी जी का एक कथन उल्लेखनीय है। 'नक्षत्रहीन समय में' कविता-संग्रह की भूमिका में वे लिखते हैं कि 'हमारा समय कविता के लिए अनुकूल नहीं है लेकिन यह भी सही है कि प्रायः कोई भी समय कविता के लिए अनुकूल नहीं होता। कविता इस अनुकूलता के अभाव में ही अक्सर संभव होती है : वह समय की सारी प्रतिकूलता से जूझकर और अतिक्रमित करने का दुस्साहस करती रहती है।'[2] अनिमेष का कविता संसार उनकी निजी दुनिया की अनुभूतियों और सांसारिक गतिविधियों की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है। वे अपनी कविताओं के मार्फत यथार्थ की जमीन पर साहित्य और समाज को जाँचने-परखने का उपक्रम रचते हैं। उनकी कविताएँ शब्दों से अधिक अंतर्ध्वनियों, अनुगूँजों में अभिव्यक्त होती हैं। वे अपनी कविताओं में धार्मिक आस्थाओं, विश्वासों और मूल्यों के इस विघटनकारी युग में भी बेहतर कविता की उर्वर जमीन तैयार करते हैं जिसमें सब कुछ फूलता-फलता और बढ़ता है। उनके यहाँ एक भिखारी के लिए दस रुपए देने वाला भी भगवान है। इनकी कविताओं में संवेदनशीलता और मार्मिकता स्पष्टतः देखी जा सकती है। इनकी ऐसी कई मार्मिक कविताएँ हैं जिनमें भावुकता के अतिरेक से के अपने

आपको बचा नहीं पाते हैं।

अनिमेष जी की इन कविताओं में मानवीय संवेदना की प्रगाढ़ता देखने को मिलती है जो अच्छी कविता के लिए किसी उर्वरक से कम नहीं। ये तात्कालिक, अखबारी और नारेबाजी वाली कविता नहीं लिखते, बल्कि मनुष्य और उसके जीवन के अपरिहार्य प्रसंगों को बेहद संजीदगी और दायित्वपूर्ण ढंग से उठाने का साहस करते हैं। ये कविताएँ क्षणिक रसास्वादन से लैश न होकर जीवन संघर्षों की काव्यात्मक गाथा हैं जिनमें स्थायित्व का गुण विद्यमान हैं। इन कविताओं की अंतर्वस्तु में जिन छोटे-छोटे प्रसंगों को केंद्र में रखकर रचनाएँ की हैं, सच में वह गौरतलब हैं। यह सारी दुनिया अच्छे लोगों द्वारा बनाई गई है, मैं तो मानता हूँ कि बुरे लोगों का भी अहम् योगदान है क्योंकि यदि बुरे नहीं होंगे तो अच्छे का पता भी नहीं चल सकेगा कि कौन अच्छा और कौन बुरा? इसलिए अच्छे और बुरे दोनों का अपना महत्व है -

'अच्छा है/कि अच्छे आदमी को पता है/उसके होने का मतलन क्या है।'[3]

X X X

'यानी इस दुनिया के होने से /अच्छे लोगों के / होने का /पता चलता है।'[4]

आज हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं जहाँ किसी के पास समय नहीं है। किसी के दुःख में शामिल होने की जरूरत ही महसूस नहीं होती। किसी रोते हुए व्यक्ति से उसका कारण जानने की इच्छाएँ मर चुकी हैं। सबको 'पहले जाने' और 'पहले पाने' की होड़ लगी हो ऐसे में अनिमेष की ये कविताएँ एक उम्मीद जताती हैं कि मनुष्यता अब भी बरकरार है -

'एक स्त्री को अपने पहले बस में चढ़ने दिया /
किसी अनजान को देख मुस्कुराया बेमकसद /
बूढ़े के पास बैठकर सुनीं उसकी बातें।'[5]

यह जो स्त्री को बस में पहले चढ़ने देना, किसी अनजान व्यक्ति को देखकर मुस्कुराना या बूढ़े व्यक्ति की बातें सुनने का समय निकालने वाले कवि अनिमेष हैं जिनमें आज भी मनुष्यता बरकरार है।

कवि की कल्पना सूर्य की किरणों से भी तेज होती हैं अर्थात 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि' का निहितार्थ भाव हमें अनिमेष की कविताओं में भी दृष्टव्य है। वे चिट्ठियों के माध्यम से कहना चाहते हैं कि जिस तरह चिट्ठियों में सब अच्छे होते हैं तो क्यों न बहुत सारी चिट्ठियाँ एकसाथ लिखीं जाएँ जिससे यह सारी दुनिया ही अच्छी और बेहतर हो जाए। दुनिया को बेहतर बनाने की ये कवि-कल्पना हिन्दी कविता के लिए बहुत आशान्वित है और एक संवेदनशील रचनाकार की परिचायक भी। वे लिखते हैं कि -

'चिट्ठियों में/सब अच्छे होते हैं /एक चिट्ठी/कितनों को अच्छा कर देती है/उसने सोचा / इसी तरह / लिखी जायें/ ढेर सारी चिट्ठियाँ / तो अच्छी हो जाये /सारी दुनिया।'[6]

'चुनना' कविता में चावल और कंकड़ के मार्फत एक शरीफ आदमी की पहचान कराते हैं जिसमें एक जीवनदर्शन भी विद्यमान है। आज देखा जाए तो बुरे लोगों की तादाद लगातार बढती ही जा रही है ऐसे में अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए उनसे

बचना ही एकमात्र उपाय समझते हैं। यहाँ चावल और कंकड़ क्रमशः अच्छे और बुरे आदमी का प्रतीक हैं -

'जी मैं तो / चावल चुनता हूँ / यही जानता यही समझता हूँ
तो अमुक जी... एक शरीफ इनसान...
चावल ही चुनते हैं / चावल चुनना
क्या एक जीवनदृष्टि है
या आज कंकडों की बहुतायत में
चावल चुनने में ही समझदारी
या फिर कंकड़ चाहे कम हों
अब दौर ऐसा है / उन्हें कुछ कर नहीं सकते
कोई चारा नहीं इसके सिवाय
कि भले आदमी की तरह चुपचाप
अपने दाने बीन कर ले जाया जाय।'[7]

'स्वाद' कविता में वह अकेले खाना खाना दुर्भाग्य समझते हैं और जब दोस्तों और पड़ोसियों को खाने के लिए खोजने जाते हैं तो कई आवाजों के बावजूद लोग दरवाजा ही नहीं खोलते, उन्हें लगता है कि खाने के वक्त आये हैं तो उन्हें भी खिलाना पड़ेगा, लेकिन कवि इस मंशा से नहीं गया था। उन्होंने पहली दफह अपने हाथों से स्वादिष्ट खाना बनाया था जिसमें किसी और को भी शामिल करना चाहते थे, लेकिन हुआ उसके ठीक विपरीत। यह दृश्य आज की कटु सच्चाई को व्यक्त करता है कि हम अपने तक ही सीमित रह गए हैं। स्वार्थपरता इतनी बढ़ गई है कि सिर्फ काम रहने पर ही दूसरों को याद किया जाता है -

'दूसरे दोस्त ने यही समझा
हो न हो खाने के समय खाने के लिए
चला आया है / सो देखते अँगड़ाई ले बता दिया
अभी-अभी भोजन खत्म किया है
और अब उसे नींद आ रही।'[8]

'फेरा' कविता में कवि ने एक ही पेशे के दो अलग-अलग सोच और विचार वाले लोगों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। जिसमें एक व्यक्ति लोगों की मजबूरी को समझता है तो वहीं दूसरी ओर मजबूरियों का फायदा उठाते और सरे-राह कपड़े उतरवाकर जलील करने से भी नहीं चूकते हैं। ऐसे लोगों की संख्या दिनों-दिन बढती ही जा रही है जिस पर चिंता व्यक्त करते हुए अनिमेष जी लिखते हैं कि-

'गाड़ीवान ने सिर से पाँव तक / देखा थूक फेंका जमीन पर /कोई बात नहीं /
पैसे नहीं अभी तो / दे देना बाद में...कहा उसने / तब तक /
कमीज उतार कर रख दो अपनी।'[9]

'चुटकी' वात्सल प्रेम की अद्भुत कविता है जिसमें कवि रोते हुए बच्चे को शांत करने की जुगत लगाते हैं। एक रोते हुए बच्चे के समान हमारा जीवन है जिसे हम हँसाना चाहते हैं, खिलखिलाना चाहते हैं। बच्चों की खुशी भरी किलकारियों से जीवन को भर

देना चाहते हैं। 'पीठ पीछे प्यार' प्रेम-सौन्दर्य की कविता है जिसमें जीवन का अनछुआ अनुराग समाहित है। आज जहाँ एक स्त्री या प्रेमिका को महज देह और उपभोग की वस्तु माना जा रहा हो ऐसे में कवि अनिमेष प्रेम की निश्छल निस्वार्थ उद्भावना करते हुए प्रतीत होते हैं -

'ऐसी दुनिया ऐसे समय /जब पीठ की तरफ से / होते वार / किसी नामालूम परछाई सा / चलता रहा पीछे / कुछ भी जाहिर किये बगैर / चुप छुप करता प्यार ...।'[10]

'स्वभाव' कविता ऐसे मनुष्यों की कविता है जिनसे अब हमारी बनती भी नहीं, जो हमसे बात भी नहीं करते ऐसों के प्रति हमें कभी बुरा नहीं सोचना चाहिए, वह जो सोचता है उसे सोचने दो। हमें उसके साथ बिताये अच्छे पलों को याद रखना चाहिए, जो सुखकर है। यदि बुराइयों के पीछे भागेंगे तो जीवन यूँ ही नष्ट हो जायेगा, इसलिए जो जैसा है उसे वैसा ही छोड़ दो और अच्छे समय और अच्छी चीजों को याद रखना बेहतर होगा -

'जिससे अब बिगाड़ / जो अब / तकता नहीं / रुकता नहीं
मिलता न बोलता / उसे भी देख / कुछ बुरा सोच नहीं पाता
किसी अच्छे समय जो अच्छा किया उसने/ वही याद आता ...।'[11]

'खयाल' कविता में मकड़ी के मार्फत जीवन के महत्व को प्रतिपादित किया गया है जिसमें एक ऑफिस के प्रसाधन कक्ष में पानी के पात्रों में पड़ी मकड़ी का भी खयाल रखा गया। ऐसे नवीन प्रतीक और बिम्बों से कविता अधिक प्रभावशाली हुई है। 'बरताव' कीड़े मकौडों पर लिखी कविता है जो जीवन के महत्व और उसके मर्म को समझाती है। प्रकृति में रहने वाले नन्हें या बड़े कीड़े-मकौड़े बिना कोई हस्तक्षेप के किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते, लेकिन इंसान किसी दूसरे को आगे बढ़ते हुए भी देखना पसंद नहीं करते। यही फर्क होता है इंसान और कीड़े मकौडों में जिसके सन्दर्भ में अनिमेष जी लिखते हैं कि -

'नन्हें कीड़ों से सीखी थी उसने / यह छोटी सी बात /
कि इरादतन तफरीहन किसी को /न पहुँचाया जाये नुकसान।'[12]

अनिमेष जी अपनी कविताओं के मार्फत हमारे समाज में विद्यमान भले आदमी की पहचान कराते हैं कि वह किसी को बेवजह नुकसान नहीं पहुँचाता ऐसे ही हम बने रहें। इन कविताओं के मार्फत एक सुन्दर, सुखद और प्रेममय जीवन जीने का संदेश देते हैं। 'बरताव' कविता का एक अंश दृष्टव्य है-

'आदमी है वह भी /चलो यही सही / कम से कम आदमी से ही
बरतना आदमी की तरह / ओ भले आदमी ...।'[13]

आज देखा जाये तो हमारे साहित्य, समाज, राजनीति, पड़ोस और घरों में भी गलियों का खूब चलन हो गया है। जरा-जरा सी बातों या झगड़ों पर मुँह से तुरंत गालियाँ निकलती हैं जो एक असभ्य व्यक्ति और असभ्य समाज की परिचायक हैं। एक अपशब्द के भी निकलने पर बेहद अफसोस होता है जो आज के जमाने में अन्यत्र खोजना निरर्थक ही होगा। वे अपशब्दों का प्रयोग निहायत गलत मानते हैं और अपनी एक कविता में वे लिखते हैं कि -

'जीवन भर उसने / किसी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया था
और आज जैसे उम्र भर की सैंती हुई कमाई / सरक गयी गाँठ से।'[14]

प्रकृति जब क्रोधित होती है तब आपदाओं का आगमन होता है और उन आपदाओं में कई लोगों की बलि चढ़ जाती है। इसलिए प्रकृति से छेड़खानी बहुत महँगी पड़ती है, हमें प्रकृति का संरक्षण करना चाहिए न कि उसे उजाड़ने के उपक्रम रचने चाहिए। कवि पेड़ों का गिरना उनका विरोध प्रदर्शन मानते हैं। वे लिखते हैं कि -

'आगे सड़क पर पड़े हुए थे / कई पेड़ / और उसे लगा
गिरे नहीं जैसे / लेटे हुए हैं / विरोध में।'[15]

'ऐसा सफर' कविता ट्रेन बस आदि में सफर करते वक्त मिले चोरों की कहानी बयान करती है और जीवन में ऐसे लोगों से हमेशा सावधान रहने का पाठ भी पढ़ाती है -

'मतलब बस इतना / कैसे काम से रखा जाये काम
बच कर चला जाये / जहाँ तक हो सके / बिना किसी पचड़े में पड़े।'[16]

'भेद' कविता के मार्फत मनुष्यों के अच्छे बुरे होने का कारण उनके हालात या परिस्थियाँ होती हैं, जो मनुष्य को अच्छा और बुरा बनाने का काम करती हैं। यदि मनुष्य के हालात अच्छे न हों तब लाख कोशिशों के बाद भी वह इंसान कभी सुधरता नहीं और कुछ ऐसे भी होते हैं जो हालात चाहे कितने ही बदतर हों लेकिन सच्चाई और अच्छाई का मार्ग कभी नहीं छोड़ते। वे लिखते हैं कि -

'बुरा कोई / होता नहीं / हालात कर देते हैं / अच्छा / लेकिन/ बनना / पड़ता है।'[17]

'हाट में बेचारा एक भला आदमी' एक ऐसी कविता है जिसमें एक आदमी छँटी हुई चीजें चुनता है ताकि अच्छी चीजें दूसरों को मिल सकें। लेकिन आज के लोगों में इस तरह की चीजें और विचार खोजना बहुत मुश्किल है। इस कविता में देखा जाये तो अनिमेष जी गंभीर विचारशीलता और संवेदनशीलता की प्रगाढ़ता का प्रमाण देते हैं -

'नासमझी में नहीं / अगर उसे चुनना होता/ जान बूझकर / छाँट बीन कर
चुनता अपने लिए / छँटा हुआ /कि दूसरों की खातिर रहे /
औरों को मिल सके / अच्छा जो है ...।'[18]

'संकोच' कविता में अच्छे आदमी की संकोची प्रवृत्ति और उसके बड़प्पन को व्यक्त किया है। 'सोपान' बेहतरीन और मारक कविता है जिसमें एक सफल आदमी के सम्मानित होने पर उसके समझौंतों का भी जिक्र किया गया है। 'रेख्ता' की वेबसाइट htpps://www.rekhta.org पर अनिमेष जी की कविताओं के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी पढने को मिली, उसे मैं यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ 'प्रेम रंजन अनिमेष भारतीय लोक की जड़ों में जीवित जिजीविषा के गायक हैं। उनकी कविताएँ हमारे आसपास फैली उन चीजों तक पहुँचती हैं जिन्हें हमने अब लगभग देखना बन्द कर दिया है लेकिन इसके बावजूद वे दुनिया को चलाए रखने में अपनी भूमिका निभा रही हैं। ये कविताएँ न किसी बड़े परिवर्तन का आह्वान करती हैं और न ऊँची हाँक लगाकर हमें कुछ ऐसा करने को कहती हैं जो हमें हमारे अतीत से काटकर किसी नए अनोखे संसार में स्थापित कर दे। भले ही वह कितना भी सुन्दर, कितना भी अद्भुत, कितना भी पूरा क्यों न हो। ये कविताएँ हमें अपने इसी अधूरे संसार में रच-बसकर जीने के सूत्र थमाती हैं। इसके

दुखों की सुन्दरता, इसके अभावों का मोहक आकर्षण, इसकी विसंगतियों के भीतर छिपी आन्तरिक लय, और हर हाल में मौजूद उम्मीद, वे चीजें हैं जिन पर, लगता है कवि को आज के दावों-वादों की बड़बोली दुनिया में सबसे ज्यादा यकीन है।'[19]

इस मानी में देखा जाये तो हम पायेंगे कि अनिमेष की कविताएँ राह चलते राहगीरों, दुकानदारों, वाहन चालकों, स्कूल जाते बच्चों, बुजुर्गों, पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों और समाज के आखिरी या सबसे कमजोर व्यक्ति तक की खबर लेती हैं। इस संग्रह की लगभग सभी कविताएँ बहुत अच्छी और प्रभावशाली हैं। कुछ कविताएँ कवि के निजी जीवनानुभवों और समसामयिक घटनाओं के प्रसंगों से सम्बंधित हैं। देशज और लोक शब्दावली के साथ सरल-सहज और सम्प्रेषणीय भाषा कविताओं को अधिक प्रभावशाली तो बनाती ही है, साथ ही कविताओं में विद्यमान लोक बिम्बों के नवीन प्रयोग पाठकों के मन-मष्तिष्क में गहरे अर्थों में अपनी छाप छोडते हैं।

सन्दर्भ :

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, सत्रहवाँ संस्करण-2021, पृष्ठ - 82
2. अशोक वाजपेयी, नक्षत्रहीन समय में, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ - 7
3. https://www.hindisamay.com/conten३/850/1/प्रेम-रंजन-अनिमेष-कविताएँ-अच्छे-आदमी-की-कविताएँ,२स्त्र७, पृष्ठ - 9
4. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 10
5. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 13
6. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 14
7. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 25
8. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 27
9. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 29
10. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 33
11. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 37
12. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 63
13. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 63
14. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 65
15. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 67
16. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 73
17. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 74
18. अच्छे आदमी की कविताएँ, पृष्ठ - 83
19. https://www.rekhta.org, प्रेम रंजन अनिमेष

पी-एच.डी.-शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

ऊँट मुसकुराता है तो मरुथल में होती है बारिश

(रेत समय में जीवन और जिजीविषा का महाकाव्य)

- प्रतापराव कदम

कवि प्रेम रंजन अनिमेष से पहली मुलाकात भोपाल के एक आयोजन में हुई। वहाँ उनकी सुनायी कविता अब भी स्मृति में है- बच्चे के जूते का फीता बाँधते पुलिसकर्मी की संवेदनशीलता को गहराई से रेखांकित करती हुई! एक पाँच-छह साल का बच्चा चौराहा पार कर रहा है कि उसके जूते का फीता खुल जाता है। ट्रैफिक सिपाही सारी आवाजाही रोककर पहले जूते का फीता बाँधता है। बच्चा रास्ता पार करता है, और फिर शुरू होता है यातायात। एक अद्‌भुत दृश्यबिम्ब की रचना करती है यह कविता! वैसे, इस समाज व्यवस्था में पुलिस की संवेदनशीलता पर कम ही बात होती है लेकिन 'मदद' की ये पंक्तियाँ जैसे इस कमी की भरपाई कर देती हैं :

सिपाही ने बहुत दिनों से बाँधा नहीं था / किसी बच्चे के जूते का फीता / सो देर लगी उसे / ठिठका रहा तब तक / चारों तरफ का यातायात / किसी बच्चे की तरह / चाहता हूँ मैं / ताकत झुके तो इस तरह / रास्ता रुके तो इस तरह!

फिर 'पहल' पत्रिका में ऊँट पर केन्द्रित प्रेम रंजन अनिमेष की एकाधिक कविताएँ पढ़ीं। तब ऐसा लगा, मानो एक बड़े कैनवास पर ऊँट चहलकदमी कर रहा है- पाठकों की मौजूदगी के बीच! उस वक़्त मुझे कतई इस बात का इल्म नहीं था कि कवि अनिमेष का संग्रह 'ऊँट : हमारे समय का महाकाव्य' पढ़ने का ऐसा सुअवसर मिलेगा।

वस्तुतः ऊँट का संबंध खालिस रेगिस्तान से उतना नहीं, जितना जीवन के रेगिस्तान में एक आदमी के ऊँट हो जाने से है। लोक-जीवन में, लोक-गीतों में, पंचतंत्र में, जातक कथाओं में ऊँट जिस तरह से शामिल है; और लोकोक्तियों तथा मुहावरों में भी - ऊँट के मुँह में जीरा, ऊँट चढ़े पर कुत्ता काटे, ऊँट के गले में बिल्ली, सुई के छेद से ऊँट निकालना, ऊँट पर बैठकर बकरी चराना, अब आया ऊँट पहाड़ के नीचे- इन सबसे रूबरू कराते हुए यह कविता-संग्रह हमें अपने समय, समाज, राजनीति और तंत्र में अच्छे भले आदमी के ऊँट में तब्दील हो जाने की दारुण परिस्थितियों से भी अवगत कराता है, जिनसे हम रोज अपने गाँव-शहर में दो-चार होते रहते हैं। फिर भी कवि की खासियत यह कि कविता और काव्यात्मकता पूरी तरह बरकरार रहती है!

उष्ट्र, क्रमेलक, शुतुर, लंबोष्ठ, करभ, कंटकाशन- कितनी भाषाओं में ऊँट को कितनी तरह से संबोधित किया जाता है, पर यह खुरधारी एक आम आदमी की तरह आका को कह नहीं पाता कि ''बहुत खुर निकल आये हैं तुम्हारे'', बल्कि उसकी चिरौरी में ही लगा रहता है, भले ही वह कहे- क्या ऊँट जैसा मुँह लेकर चले आये यहाँ! जिस तरह से समय और समाज में बदलाव आया है, उसमें एक आदमी रह भी कहाँ गया है आदमी जैसा -

रेत ही है समय / और ऊँट पर क्या / इस रेत के खिसकने का असर

इस तरह की श्रृंखलाबद्ध कविताएँ, और उनसे जुड़े संकलन बहुत कम हैं हिन्दी साहित्य में। बाजार, युद्ध, प्रेम, जंगल, बादल, लड़की, माता-पिता पर केन्द्रित श्रृंखलाबद्ध

कविताएँ तो हैं, पर एक आदमी के ऊँट में, एक समाज के रेत के ढूह या फिर रेवड़ में बदलने और पंचतंत्र की कहानी से निकल कर ऊँट के इस तरह से कविता की शर्त पर कविता में आने के उदाहरण कम ही हैं या फिर नहीं के बराबर। ये कविताएँ एक लंबी साधना का परिणाम तो हैं ही, पर उससे भी अधिक जमीन से कान लगाकर, वक़्त की नब्ज पकड़कर सूक्ष्म-संवेदना और काव्य सरोकार रखने वाले कवि से साक्षात्कार करने का माध्यम भी हैं।

रेगिस्तान जैसी शुष्कता जब दिलो दिमाग में भर गयी हो, दूर-दूर तक न तो संवेदना की हरियाली हो, और न आँखों में पानी या नमी ही- तो फिर इन कठिनाइयों के मुकाबिल ऊँट ही साकार होता है सामने- वह जो संत्रस्त होकर नहीं बैठ जाता, बल्कि विपरीत परिस्थितियों में भी संघर्ष करते हुए जीवंतता और सकारात्मकता सृजित करता है तथा मरुथल में जीवन जल के लिए सारी करुणा और वेदना के बीच मुसकुराता भी है। संग्रह की कविता 'ऊँट की मुसकान' उसके इसी अप्रतिहत जीवट और जुझारूपन को रेखांकित करती है :

देखा है / क्या कभी आपने / किसी ऊँट को / मुसकाते?
.....सुनते हैं जब ऐसा होता / बारिश होती है मरुथल में...!

श्रृंखलाबद्ध होकर महाकाव्यात्मक वितान रचने वाली मगर स्वतंत्र रूप से भी स्वयं संपूर्ण और महत्वपूर्ण इन कविताओं में प्रत्येक पंक्ति अर्थ के अनेक संस्तर समेटे हुए है। 'अंतिम हँसी' कविता का यह अंश देखें जो एक तरह से 'ऊँट की मुसकान' का चरमोत्कर्ष है :

उगना सूर्य का हँसना / झरती चाँदनी हँसी चाँद की / कलकल बहना हँसना /
स्वच्छ झरनों नदियों का / पत्तों से लगना हँसी हवाओं की / पर अब कोई भी हँसी /
कहाँ वैसी / कहीं / कोई भी / हँसी नहीं / हँसता है ऊँट ...../ साथ ही /
धार धार फूटती आँखें / सूखे पत्तों सी उड़ती रेत /
आदमी सोचता था हर हँसी हँसेगा वही / उसने सोचा था क्या /
होगी उसी की अंतिम हँसी...?

ऊँट होना अपनी ज़िम्मेदारी से लैस होना भी है। कवि अनिमेष जीवन की आपा-धापी और दुनियावी डाँगे-फाँसे से इतर ऊँट और उँटपन को नये सिरे से परिभाषित करते हैं। अनिमेष की निगाह में यदि इनसान बने रहना मुश्किल है तो ऊँट होना भी आसान कहाँ :

ऊँट होना / एक यात्रा / अनथक अटूट होना / सत के पक्ष में सदा / रहना खड़ा /
नहीं कभी झूठ होना / अपने को भूल / हो जायें औरों के / सच्चे हृदय से /
अंतरात्मा की / इतनी छूट होना / बाँटना सुख-दुख / साथ सबके / नहीं कहीं से /
बेईमानी की लूट होना ...../ जीते जी / रखना गरदन ऊँची / झुकना तो /
मुश्किल में पड़े घिरे गिरे को / उठाने बचाने के लिए / मगर नहीं किसी /
अन्यायी आततायी / अहंकारी अत्याचारी की / तलवार या मूठ होना

ऊँट दृढ़ता का, विपरीत परिस्थितियों में भी जूझने का, लक्ष्य की ओर बढ़ने का- और जब अन्य बिदक जाते हैं या मुँह मोड़कर बदल लेते राह, उस हाल में भी अडिग

रहने का प्रतीक है। वह चारण-भाट, याचक नहीं, जिजीविषा को गहराई से प्रकट करने वाला जीवधारी है। प्रेम रंजन अनिमेष इस तरह से यह भी कहते हैं कि जो परिस्थितियों से लड़ते-झगड़ते ऊँट बन गये है, वे बेहतर हैं- उनसे तो जरूर, जो मौसम के मिजाज की तरह बदल रहे हैं या बदल जाते हैं। कवि 'वाहक' कविता में यही तो कहता है-

किन्हीं देवताओं के / वाहन नहीं हम / न सवारियाँ इतिहास मिथकों की /
जीवन मरुस्थल के जहाज/ डाकिये रेत महासमुद्र के / ढूहों में सीने की धड़कन /
हमारे पदचिन्ह / वाहक आदमी की अनंत जिजीविषा / और अपने ऊँटपन के...

क्षेपक की तरह मुझे वास्तुकला की व्याख्या करते एक मित्र की याद आ रही है। वास्तु के अनुसार ऊँट कभी हार न मानने और सभी बाधाओं को सफलतापूर्वक पार करने वाले प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित है। वह लम्बे समय तक भोजन-पानी के बिना भी रेगिस्तान में सफर कर सकता है। हर हाल में बने रहने का प्रतीक ऊँट दरअसल स्थिरता का उदाहरण है और सकारात्मकता का भी। इन्ही सब वजहों से साहित्य में तो ऊँट की उपस्थिति है ही- कला की बाकी विधाओं में भी वह मौजूद है- दृढ़ता, शक्ति, संयम और साहस के गट्ठरों को दोनों तरफ लटकाये! आज भी ऐसे कितने गाँव हैं, जहाँ न तो पीने का पानी उपलब्ध है और न दो जून की रोटी ही- बस एक ऊबड़-खाबड़ रास्ता होता है मंज़िल के बिना। ऐसे में कितने ही लोग चाहते-न-चाहते हुए ऊँट सा जीवन जी रहे हैं- जैसे उन्हें मालूम है कि कम होती मनुष्यता के बीच उँटपन ही सहारा होता है! कवि अनिमेष की 'उद्भव' कविता ध्यातव्य है -चार दरवाजे माँगने पर / जब नहीं मिला पानी का एक गिलास /

एक आदमी ऊँट हो गया / चार महीने जब नहीं हुआ मयस्सर /
नहाने का समय और स्रोत / तो दूसरा / बरसों गये जब इस शहर में /
नहीं हुई सिर पर एक छत / सपरिवार कोई ऊँट बन गया / पूरा का पूरा /
ऊँट में बदल गया एक नौजवान / कि थपथपायी नहीं किसी ने पीठ /
रखा नहीं कंधे पर हाथ ..... / इस मायानगर में / जो मार नहीं सके /
जो मर नहीं पाये / हो गये ऊँट!

इस सन्दर्भ में मायानगरी मुम्बई के लेखक-निर्देशक ख़्वाजा अहमद अब्बास की याद आती है- उनकी फि ल्म ''दो बूँद पानी'' के जरिये। राजस्थान की पृष्ठभूमि में बनी इस फि ल्म का एक दृश्य जो अवचेतन में दर्ज.है, वह प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं को पढ़कर उभरता है। दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान के बीच दो ऊँट अपने सवार के साथ रास्ता भटक जाते हैं और चले आते है दो प्रस्तर स्तंभों के नजदीक। उन स्तंभों पर अंकित है- ''तू पी, तू पी''। फिर एक ऊँट सवार दूसरे को बताता है 'तू पी, तू पी' के पीछे की कथा। दरअसल इस रेगिस्तान में भटके दो मुसाफिरों के पास इतना ही पानी था कि कोई एक जीवित रह सके। इस स्थिति में एक ने दूसरे से कहा- 'तू पी'। दूसरे ने भी कहा- नहीं, 'तू पी'। वे एक दूसरे से आग्रह करते रहे, पानी किसी ने नहीं पिया, और दोनों काल के गाल में समा गए। उन्हीं की याद दिलाते हैं ये स्तंभ- ''तू पी, तू पी''। इन स्तंभों के पास ऊँट ही लेकर आये अपने सवार को - यह जताने के लिए कि रेत होती जा रही दुनिया में प्रेम की दरकार है सभी को। प्रेम की इसी कसक की ताईद करता है

अनिमेष का यह कवितांश-

दिल में जागती कभी हूक / सीना हो जाता चाक / कलेजा फाँक / दिल दो टूक /
कैसा यह जीवन / होंठ बड़े इतने / और दूभर...../ एक भी चुंबन....।

हमारे सौंदर्य को आँकने-परखने के जो मापदंड हैं, उन्हें चुनौती भी दी है, 'सभ्य होते' समाज ने। रंग-रूप-नस्ल के आधार पर भेदभाव न केवल असभ्यता की निशानी है, बल्कि अपराध भी है। वैसे भी, एक बहुत प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि ''सुंदरता वस्तु में नहीं, देखने वाले की नजर में होती है।'' सौंदर्य मापने का नजरिया ही गड़बड़ हो, और आग्रह भी दुराग्राह युक्त, तो फिर बात बनती नहीं। फ़्लैशबैक की तरह कुछ दिन पूर्व दिल्ली में घटी घटना याद आती है। आई.आई.टी. में पढ़ने वाली एक लड़की ने इसलिए आत्महत्या कर ली कि वह मोटी थी, उसे अपना ओवरवेट होना शर्मिंदा करता था। इस वजह से वह अवसाद में चली गयी और परीक्षा में अव्वल आना भी उसे स्वस्थ नहीं कर पाया- यानी उसके विवेक से जुड़ी बौद्धिक क्षमता उसके कथित सौंदर्य के बनाये मापदंड से हार गयी। दरअसल इस अत्याधुनिक काल में 'सौंदर्य' की अवधारणा बहुत हद तक पूँजी और बाजार पर टिकी हुई है। हथियारों और दवाओं की तरह अरबों का कारोबार है सौंदर्य का। फिर एक नैसर्गिक गुण रह नहीं पाता है सौंदर्य- सवालिया निशान लग जाता है सौंदर्यशास्त्र पर! बहुत कम लोग समझ पाते हैं कि श्रम का भी अपना सौंदर्य होता है। लेकिन इस दुर्लभ दृष्टि द्वारा ही नया सौंदर्यशास्त्र रचा जा सकता है। 'संकल्प' कविता इसी संकल्प को तो बताती है-

बगैर सुविधाओं वाली / रात्रि पाठशाला में / लिया दाखिला / जहाँ विद्यार्थी वह / सबसे अधिक वय का / अक्षर सीख रहा ऊँट / साक्षर होना चाहता / रचना बनाना शब्द कोई / और इबादत नयी / इरादा उसका / खूब पढ़कर / नये सौंदर्यशास्त्र पर / एक शाश्वत शोध / पूरा करने का...

गौर करने वाली बात यह है कि ऊँट कभी ''मंकी सिंड्रोम'' से ग्रसित नहीं होता। यह तो मनुष्य की ही बीमारी है और गाहे-बगाहे उसके आचरण से भी झाँकती है यह व्याधि। ऊँट के माध्यम से अनिमेष दर्शन की ऊँचाइयों को छूते हैं- फिर भी ऐसा करते या ऐसा होते हुए कविता अपना मूल स्वरूप और स्वभाव नहीं बदलती - वह कविता ही रहती है, कोई प्रवचन या भाषण नहीं। यही एक समर्थ रचनाकर की खूबी है। कविता 'अन्तर्निहित' की ये पंक्तियाँ इसी तथ्य को रेखांकित करती हैं -

गौर करें अगर / कुछ तो सुंदर / सबमें कुछ श्रेयस्कर /
और यह कमी सभी में / कम या ज्यादा / मिली है भला किसे पूर्णता!

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं को पढ़ते हुए कई बार बिज्जी, यानी विजयदान देथा याद आते हैं- भारतीय साहित्य और राजस्थानी भाषा के महानतम रचनाकार, जिनकी वजह से भारतीय साहित्य में लोकतत्व प्रासंगिक होकर उभरा। वैसा ही लोक-तत्व अनिमेष की कविताओं में भरपूर है। उस लोकतत्व के कारण बेहद अनूठी बनकर जेहन में घर बनाने की क्षमता रखती हैं उनकी कवितायें! लोक-कथाओं, जातक-कथाओं, पंचतंत्र और लोक-स्मृति के ऊँट को इस तरह करीने से अनिमेष ने कविता में बुना है कि लोककथाओं से निकलकर वह हमारे समाज की सीवन उघाड़ने लगता है

और तथाकथित संभ्रातों को अपने गिरेबान में झाँकने को मजबूर भी करता है।

लोक तत्वों से मजबूत रिश्ता प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं का सहज सशक्त पक्ष है- संप्रेषणीय भाषा और समन्वित भावों विचारों के साथ। 'उत्सर्ग' कविता से गुजरते हुए आपको लगेगा, जैसे पंचतंत्र से रूबरू हो रहे हैं, और उन षड्यंत्रों से सावधान भी, जो इस समय यत्र-तत्र-सर्वत्र नजर आ रहे हैं। कविताओं में कथाओं की इस तरह आवाजाही है, और दोनों इस प्रकार घुली मिली हैं कि कभी कहीं यह 'महाकाव्य' किसी अद्भुत 'महागाथा' की तरह भी लग सकता है। इसका कारण है कि लोक-स्मृति में ये अंतर्कथाएँ पहले से दर्ज.हैं। आप एक पंक्ति पढ़ते हैं और पूरी कथा आपकी समझ की जद में आ जाती है। कह सकते हैं कि तमाम प्रतिकूलताओं के बीच जीवन और जीवट के सतत संघर्ष को निरूपित करने वाली कृति है 'ऊँट' !

'नैतिक प्रश्न' शीर्षक कविता में कवि वृद्ध निर्णायक की ऊहा-पोह को ही नहीं, हमारे समाज में उन सबकी स्थिति को दर्शाता है जो केवल करते रहने के लिए हैं, कुछ पाने के लिए नहीं। ऊँट भी खाली खटने-ढोने-चलते जाने के लिए है- हालाँकि यह प्रकृति का निर्णय उतना नहीं, जितना 'सभ्य समाज' ने उस पर लाद दिया है। हमारे परिवार के ज़िम्मेदार वृद्ध की यही तो दशा है कमोबेश -

अपनी पसंद के प्राणी का / चित्र बनाना था प्रतियोगिता में / किसी बच्चे ने बनाया हाथी / किसी ने हिरण / किसी ने शेर / या खरगोश / एक बच्चे ने लेकिन / पन्ने पर अपने / ऊँट बनाया / वृद्ध निर्णायक को / वह सबसे करीब लगा / बिल्कुल अपने जैसा / पर नैतिक दुविधा में पड़ गया / उसे चुनना / क्या अपनी प्रतिकृति की /संस्तुति नहीं माना जायेगा / उस चित्र को देकर पुरस्कार / वह चित्रकार का करेगा सम्मान / या आप अपना? इस वैचारिक द्वंद्व से दूर कहीं / तपती रेत में / सफर अपना / तय कर रहा था / ऊँट ...

प्रेम रंजन अनिमेष की ऊँट विषयक कविताओं को पढ़ते गुनते हुए निश्चित तौर पर यह विश्वास मजबूत होता है कि उनका नया काव्य संग्रह भी साहित्य जगत में मौजूद विभिन्न संकलनों के बीच अलग जगह और पहचान बनायेगा- अपनी उम्दा संप्रेषणीयता तथा प्रभावशाली रचनात्मकता के साथ। दरअसल सदियों से गहरी जिजीविषा के प्रतीक ऊँट का इस्तेमाल कई तरह से होता रहा है। शह और मात के खेल के लिए बिछायी जाती बिसात का भी हिस्सा रहा है ऊँट- तिरछा चलने वाले मोहरे की शक्ल में ढला! दूसरी तरफ वह ऊँट है, जो रेगिस्तान का जहाज बनकर बिना थके और भूख प्यास की परवाह किये बगैर लक्ष्य की तरफ बढ़ता जाता है। अनिमेष का सीधा सच्चा सहज सृजनकर्म इसी जीवट और जीवन्तता से भरे ऊँट की तरह जन मन से जुड़ा अनवरत अग्रसर है- हर काल अकाल में पूरी लगन, संवेदना और आत्मीयता से जीवन जगत के शाश्वत सत्वों को संकल्पपूर्वक सींचता सँजोता सहेजता हुआ!

शकुन नगर, खण्डवा

जीवन की धूपछाँव में फूलती फलती प्रेम रंजन अनिमेष की 'अमराई'

जनार्दन मिश्र 'जलज'

यह अपने आप में कितनी मुग्ध और चमत्कृत कर देने वाली कल्पना है कि 'अमराई' पर किसी कवि ने कविताओं की पूरी किताब रच दी हो, और वह भी इस तरह कि उसमें सारा जीवन जगत उतर आये -संपूर्ण जीवंतता, जिजीविषा, जीवट, जद्दोजहद, कूक-हूक, हुलस-ललक, टीस-कचोट-कसक,पीर-आह्लाद और अकथ व्यथा-कथा के साथ! अपने देश, अपनी भाषा में यह सच हुआ है तो कयास की सुई एक खास दिशा में घूमती है, उत्तर सहेजे प्रश्नाकुल विस्मय के साथ कहीं यह प्रेम रंजन अनिमेष की कलमकारी का कमाल तो नहीं, क्योंकि एक नहीं, कई बार इन्होंने अब तक अनकहा अनसुना अनसोचा संभव कर दिखाया है -नित नये सृजनात्मक शिखर छूते हुए!

अनिमेष की 'अमराई' भारतीय ही नहीं, विश्व साहित्य में अपनी तरह की अनूठी कृति है -एक ऐसा सृजन, जो अकेले अपने दम पर रचयिता का स्थान रचनाप्रेमियों के मन मानस में सदा के लिए सुनिश्चित कर दे। प्रख्यात आलोचक मैनेजर पाण्डेय के मत में वही कविता सच्ची और महान कविता मानने योग्य है, जिसमें प्रकृति और संस्कृति का सहज सार्थक सम्मिलन हो और इसी आधार पर 'अमराई' की कविताओं ने उन्हें पूरी तरह अभिभूत किया। कवि ने अपनी बातचीत में बताया है कि कैसे 'परिचय' पत्रिका में प्रकाशित ये कवितायें पढ़कर पाण्डेय जी अपने को रोक नहीं पाये और फोन पर देर तक सराहना करते रहे -रचना तथा रचनाशीलता की!

वैसे, आमों और आम लोगों से इस कदर जुड़ी इस अनमोल कृति की विशिष्टताओं को रेखांकित करना आसान कतई नहीं -क्योंकि वे बहुत सारी हैं, तथा और अधिक मर्मज्ञता तथा मीमांसा की माँग करती हैं। फिर भी जीवन और जमीन से जुड़े एक पाठक की तरह मिट्टी की सोंधी खुशबू, जल की जीवंतता, धूप की तपिश और हवा की प्राणवत्ता से अभिसिंचित भारतीयता से भरी इन सरस कविताओं से गुजरते हुए इनसे जुड़ी अनुभूतियों को साझा करने की ईमानदार कोशिश अवश्य की जा सकती है। सच में एक साहित्यिक अनुष्ठान की तरह लगता है ' अमराई ' की इन कविताओं को पढ़ना सुनना गुनना -क्योंकि देखने में जितनी सरल ये लगती हैं, उतनी ही गझिन हैं इनकी बनावट और बुनाई!

प्रेम रंजन अनिमेष प्रणीत ('हिन्दवी' पर उपलब्ध) काव्य संग्रह 'अमराई' की प्रथम कविता है 'चिरनव'। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, यह कविता पुनःपुनः नवीनता को रूपायित करती है -कम शब्दों में जैसे कोई जीवन सूत्र सौंपते हुए! वस्तुतः चिरनवीन सृजनशीलता से नित नयी भावभूमि तैयार कर ऊँचाइयाँ छूने वाले अनन्य रचनाकार अनिमेष की यह बड़ी विशेषता है। इनकी आकार में छोटी कवितायें भी व्यवहार एवं प्रभाव में बड़ी होती हैं। यह कविता भी इसी बात की तस्दीक करती है --

पास से गुजरते अकसर/ कभी दूर से बाँहें फैलाकर/
रोक लेता आम का वह पेड़ पुराना / हर बार / मिलता हूँ मैं उसे / जैसे पहली बार....

प्रेम रंजन अनिमेष अपनी काव्यात्मक सिद्धि के साथ हर बार जो कुछ रचते हैं, वह बिलकुल नये तरीके से हमारे सामने आता है। यह विरल रचना कौशल भी एक कारण है कि अनिमेष रसिक पाठकों और सच्चे साहित्य मनीषियों को एक साथ इतने प्रिय हैं। कवि का व्यक्तित्व जितना सहज और सरल है, उसकी कविता उतनी ही अधिक जीवन मूल्यों और सत्वों से भरी। कुल जमा 54 अक्षरों में निबद्ध उपर्युक्त कविता कायदे से गुँथी मनकों की माला सरीखी जान पड़ती है -जैसे दो चार मनके भी कम या अधिक हों तो बहुत कुछ छूट जायेगा।

'चिरनव' कविता की तरह चिरनव कवि अनिमेष अपने इस नित्यनवीन काव्योन्मेष में उन दृश्यों, अनुभूतियों और स्मृतियों को जीवंत करते हैं, जब बचपन में अमराई से होकर गुजरते हुए आमों के वृक्ष चुंबकीय ढंग से आकर्षित करते थे। अकसर ऐसा लगता, जैसे कोई पेड़ बाँहें फैलाये किसी बुजुर्ग की तरह अपनी गोद में बैठाने के लिए बुला रहा है। कविता में कवि ने पेड़ का चित्रण उसी अंदाज में किया है, जैसे कोई चिर परिचित मिलते ही अपनापे से भर उठता है, और हर बार उससे मिल कर वैसी ही खुशी होती है जैसे पहले पहल।

संग्रह की अगली कविता है 'घाम'। शीर्षक एक देशज शब्द है, वह भी भोजपुरी का। यह स्वाभाविक है कि भाषा संस्कार कवि ने अपनी परंपरा से पाया है। कवि पके हुए आम का वर्णन करते हुए कहता है कि यह भीषण गर्मी के ताप का प्रतिफल है। सबको ज्ञात है कि जून-जुलाई (जेठ-आषाढ़) में आम पकते हैं, और बिंब विस्तार कर देखें तो लोग भी। आषाढ़ के महीने में जब वर्षा की फुहार पड़ती है, आम के फलों में अमृत रस भर आता है। कवि का ध्यान उस कचरस आम की ओर भी है, जिसके डंठल से निकलते रस के कारण छोटे बच्चों के मुँह पर घाव या 'अपरस' हो जाता है। ऐसी नौबत न आए, इसके लिए सयाने लोग आम के अगले हिस्से को काट कर अलग कर देने के बाद उसे खाते हैं -यह एहतियात भी बरतते हुए कि घर ले आये आमों को कुछ देर तक जल में भिगोकर रखा जाये। ऐसी सावधानी इसलिए कि धूप के कारण फलों में आये 'ताप' से बचा जा सके।

प्रेम रंजन अनिमेष ने इस अमराई के आँगन में बचपन की अनगिनत अनमोल अनुभूतियों को साझा किया है। बच्चे कैसे आँधियों बारिशों के बीच आमों की तलाश में अमराई की ओर दौड़ पड़ते हैं, पकने के लिए कच्चे फलों को भूसे या अनाज के बरतन में गोड़ कर रखते हैं, या फिर बोरे और अखबार से लपेट कर हर दिन देखते हैं कि वे पके या नहीं। आमों के लस से मुँह पर घाव हो जाते हैं, जो चोरी छिपे उन्हें चखने तथा उनका आस्वाद लेने के सबूत की तरह भी होते हैं। कवि द्वारा इस तरह स्वयं के भीतर तथा अनगिनत पाठकों के मन मस्तिष्क में प्रवेश कर अनुभूतियों का इतना प्रामाणिक संचयन सचमुच स्पृहणीय है और उतना ही श्लाघनीय भी।

प्रेम के जो किसलय-पल्लव, बौर-मंजर और स्वर-गंध-रस-परस-आस्वाद हैं इस अमराई में, उस तरह तो अन्यत्र दुर्लभ! यहाँ प्रीति जितनी ऐंद्रिक और अनुभूतिपरक या अनुभवयोग्य है, उतनी ही आत्मिक और उदात्त भी। धीमी-धीमी आँच पर पके पाग की तरह रागरंजित स्नेहमज्जित कविता का यह 'परिपाक' देखिये- भूसे वाले घर में / लगा

रहता चित / गोड़कर जहाँ रखते / पकने के लिए / सपनों की तरह नींद में टूटे आम / और एक दिन वहीं / तुम पकड़ी गयी / रँगे हाथों / पगे होंठ / रस / तो उतर चुका था भीतर / बस / मैंने पोंछ दिया / लस / होंठों पर लगा...! और 'इतना सा' कविता की यह निश्छल आत्मीय उदात्तता -कोर तक भरे कलश में तुम्हारे / आम का पल्लव / पहला प्यार / इतना सा अमरित जो लेता / और उसी को फैला देता / चारों ओर / भरा का भरा रहता कलश तुम्हारा...। यहाँ कविता की लय प्रेम की लय में एकात्म हो जाती है, जो कविता के रेशे रेशे को भली भाँति जानने समझने और बरतने वाले इस नायाब कवि का एक और वैशिष्ट्य है।

आमों के रंग-रस में रँगी-पगी अमराई की भाषा में प्रेम की ऐसी भी अभिव्यक्ति हो सकती है, यह तो 'हक' कविता पढ़ने गुनने वाला ही कोई हक से बता सकता है : जानता हूँ / पहले पहल उभरेगा तिरस्कार / कबकी जमी तिक्तता हृदय की / चोप की तरह / तब फूटेगी मधुरता की धार /ऐसे अलग मत करो / पहले दूध की तरह। और 'आगार ' में तो मानो कवि ने अमराई और प्यार को साकार एकाकार कर दिया है -फल तो फल / अलग रंग रेशों के / फिर वो चटनी गुरमा कूचे अचार/ अमावट अमझोर अमचूर / प्यार के सिवा / और कहाँ / आस्वाद का ऐसा विपुल आगार...!

'ठिठोली', 'बेहद', 'प्रथम स्मरण', 'मनमान', 'स्वभाव', 'उत्स', 'बुलाना', 'आदिमराग' सरीखी कवितायें भी अमराई के प्रेम और प्रेम की अमराई के उसी उत्कर्ष की बेजोड़ बानगियाँ हैं। इसी तरह न जाने कितने ही काव्य प्रेमियों और आम्र अनुरागियों की अनुभूतियाँ इस 'अमराई' से जुड़ जाती हैं। कहीं आदिवासी बच्चे आम के पेड़ों की डालियों पर टायर अटका कर 'टायर झूला' झूलते हैं तो कहीं फलों को अगोरते वृद्ध उन वृक्षों की छाया में बैठ कर पहरा दे रहे होते हैं। कहीं ढेलों या गुलेलों से आम तोड़ने का जतन हो रहा है तो कहीं लग्गी और जाली के सहारे तोड़े हुए आमों को जमीन पर डाला जा रहा है। फिर कहीं आकार प्रकार के अनुसार उन्हें चुना सजाया जा रहा और खाट पटिहाट तले पकने के लिए पाल डाला जा रहा...।

पोर पोर पुलकाने और मज्जा तक सिरहाने वाले अद्भुत दृश्य हैं इस 'अमराई' में! उतनी ही अद्भुत हैं इनकी स्मृतियाँ, जिन्हें अनिमेष की लेखनी जीवंत करती है -जो पढ़ते सुनते गुनते, भीतर बुनते हुए सबकी अपनी हो जाती हैं। कुछ ऐसा चुंबकीय आकर्षण है कवि की इन कविताओं में, जिससे मँजराया बौराया मन बरबस खिंचता चला आता है इनकी ओर! जीवन से जोड़ने और प्रकृति व संसृति के प्रति आसक्ति और आश्वस्ति जगाती कवितायें हैं ये -जहाँ सृजनशीलता अपने श्रेयस्कर, महत्तर और वृहत्तर स्वरूप में है, जिसे अतिशय दुर्लभ प्रतिभासंपन्न यह कवि सहज संभव करता है!

कई किस्मों के आम अपनी पूरी इयत्ता और जीवंतता के साथ उपस्थित हैं इस अमराई में। ये ऐसे फल हैं, जिनके अपने व्यक्तित्व हैं और नाम भी। अपने समस्त और समग्र अस्तित्व के साथ मौजूद हैं वे इन कविताओं में -भले ही आज के इस आपाधापी भरे दौर में हममें से अधिकांश ने उन्हें खो दिया हो, और वे रह गये हों स्मृतियों की खोहों में : मिठुआ मिरचई तोतापरी / गुलाबखास हिमसागर दशहरी / सोचते / उभर आते एकदम से / बिलकुल अपने / उनके रंग रूप आस्वाद / क्या ऐसा होगा / एक

दिन नामों समेत हम उन्हें भूल जायेंगे / और फिर अचानक कौंधेगी किसी की याद / तो लेबल के पीछे से झाँकेगा / कोई अचीन्हा स्वाद...? 'लँगड़ा' आम से कितने ही लोग परिचित हैं, किन्तु 'गति' जैसी ऊँचे दर्जे की कविता के जरिये अनिमेष उसे अलग पहचान देते हैं जैसे : सही सलामत / चपल तत्पर अपने पाँव / फिर भी / हम कहीं नहीं /वहीं के वहीं / वही धूप वही छाँव /और यह जो / कहलाने को लँगड़ा / दुनिया भर में / पूछा जाता कहाँ कहाँ...

आम शब्द सर्वसाधारण से जुड़ा हुआ है, और उसका सूचक या द्योतक भी। जैसे -आम जनता, आम आदमी, आम जुबान, आम सभा, सरे-आम आदि। दूसरी ओर, तत्सम 'आम्र' से निकला तद्भव आम न केवल सर्वसुलभ सर्वप्रिय फल को इंगित करता है, बल्कि अपने संग साथ उस पूरे परिवेश को भी। यह हमें उस समय में ले जाता है, जब हर घर उपवन सा हुआ करता -पेड़ पौधों, पंछियों, वनस्पतियों, फूलों फलों से आबाद! उस घर और उस किलकती पुलकती फुलवारी को अब सीमित और संक्षिप्त कर दिया गया है -न केवल यथार्थ में, वरन स्वप्न और कल्पना में भी। अनिमेष की 'अमराई' उसी को पुनः पाने का प्रयास है, जो इस तरह सरस व गंध आस्वाद से परिपूरित और जीवंत है कि हमेशा यही महसूस होता -मानो हम साँस ले रहे प्रकृति, भावों, अनुभूतियों और संवेदनाओं की आपसदारी में!

मौसम चक्र में परिवर्तन के साथ साथ आमों में भी गुणात्मक परिवर्तन होता है। हम भारतीय उसके विकास के सभी रूपों का आस्वादन करते हैं - चाहे वह टिकोरों का बना कूंचा हो या चटनी, कुछ बड़े आमों का अमझोरा हो या आमपन्ना, खटमिट्ठी हो या अचार, और फिर पके फल से देर और दूर तक रिश्ता बनाये रखने के लिए अपनी पूरी तासीर के साथ सुरक्षित अमावट! पेड़ से ही पक कर उतरे आम के स्वाद का तो खैर कहना ही क्या! पुनः कहना होगा कि आम के जितने भी रूप-रस-गंध-आस्वाद हैं, सब के सब हैं अनिमेष की अमराई में, जिनकी ओर सहृदय मन खिंचा चला आता है। दरअसल रचना में भी अपनी शक्ति होती है रस आस्वाद सिरजने और भरने की -जीवन जगत प्रकृति के विविध अर्थ संदर्भों और संस्तरों से जुड़कर -और कवि की अनूठी नवोन्मेषी सृजनशीलता अप्रतिम अनन्य प्रविधि से इसे साधती और संभव करती है।

कई वर्ष पहले लब्धप्रतिष्ठ आलोचक नन्दकिशोर नवल जी ने अपने संपादन में प्रकाशित पत्रिका 'कसौटी' के प्रवेशांक में प्रेम रंजन अनिमेष को उनकी दस कविताओं के साथ पहले कवि के रूप में स्थान देते हुए उनके काव्य को 'सभ्यता समीक्षा' की संज्ञा से अभिहित किया था। इस अमराई की 'अंततोगत्वा' जैसे लासानी मेयार की कविताओं से गुजरते हुए महसूस होता है कि इस जौहरी की परख कितनी सटीक रही है :

फल का विकास / फल का परिष्कार / यानी अब के हिसाब से कहें तो / सफलता फल की / कि गुठली उसकी / कितनी छोटी /मामला यह बहुत कुछ / सभ्यता के विकास जैसा / इसका शिखर यह हो सकता/ कि गुठली का चले ही न पता / वह चरमोत्कर्ष / जहाँ से होती है/ अंत की शुरुआत...

प्रेम रंजन अनिमेष की 'अमराई' न केवल उनकी, बल्कि हर उस आदमी की

है, जिसका बचपन आमों और अमराइयों के सान्निध्य में बीता है। 'अमराई' की इन कविताओं में बचपन है, कैशोर्य है, कौतुक हैं, अठखेलियाँ हैं, और जीवन की हलचल और धड़कते हृदय की पुकार भी! साथ ही साथ विरोधाभासों और ऊपरी उपलब्धियों में आवृत खोखलेपन का बेधक और बेबाक उद्घाटन भी करती हैं संग्रह की अनेक रचनाएँ। 'यह समय' शीर्षक कविता इसी की बानगी प्रस्तुत करती है -अजब फल था / ऊपर से हरा / अंदर से सड़ा / कैसा जमाना आ गया राम / ऐसा आम / खाट पर पड़ी / बूढ़ी दादी ने ली करवट। समय यहाँ घड़ी की तरह कलाई पर बँधा, दीवाल पर जड़ा या फ्रेम में कैद नहीं है, और न ही मुट्ठी से रेत की तरह फिसलता हुआ -फिर नाते रिश्ते भी मिट्टी से सने सच्चे हैं, बनावटी दिखावटी या मिलावटी नहीं। जीवन की आँच यहाँ है और संबंधों की गरमाई भी; पर कवि के एक अन्य संग्रह की कविता के शब्द लेकर कहें तो आत्मीयता की स्नेहिल छाँह, सकारात्मकता और उछाह के शीतल झोंके में सूखते स्वेद सदृश सुखकर प्रतीति भी - यानी इस लोक का अलौकिक आनंद!

आम जन जीवन के हुलास और संघर्षों से जुड़े हैं आम! मंजरियों के आने, बढ़ने और पकने तक की पूरी प्रक्रिया आम जन और जीवन की आशाओं आकांक्षाओं और अस्तित्व को प्रतिबिंबित रेखांकित करती है। शीत ऋतु के उत्कर्ष काल में जब वसंत के आगमन की प्रतीक्षा और तैयारियाँ चल रही होती हैं, उसके अग्रदूत की तरह होती हैं आम्र मंजरियाँ -जिनका सुवास अमराई तक ही नहीं रहता, वरन हवाओं के रथ पर सवार नव पल्लवन, पुष्पन और प्रस्फुटन मधु उद्घोष की तरह सारे संसार में फैल जाता है! यह एक शंखनाद होता है बदलाव का, जो बेहतरी के लिए है -दुनिया, मनुष्यता और सकल प्राणीयता के लिए। अपने तीव्र, मगर मोहक गंध से घ्राण-तंतुओं को उद्भासित करती अमराई इस सार्थक और सृजनात्मक परिवर्तन के निनाद की तरह गूँजती है, अनिमेष की इस कविता-पुस्तक में।

'मैं तो मानता / तुम भी अब तो मानोगे/कि आम में है कुछ खास...(कुनबा)' का उद्घोष करने वाला यह सुकवि कविता के जरिये किस कदर आम और आदमी का 'सादृश्य' प्रस्तुत करता है, यह सचमुच देखने और सराहने योग्य है : अच्छे लगते हैं / वे आदमी वे आम / ऊपर से जो हरे / धुले पत्ते की तरह / या धूसर रंगत लिये / और भीतर से रत रत लाल / आम आदमी जैसे / आदमी आम सरीखे...। प्रकृति-संसृति-संस्कृति के स्वाभाविक सृजनात्मक सहमेल तथा जीवन जगत को जोड़ते और आम आदमी की आपसदारी के सूत्रों से उभरते आत्मिक राग अनुराग की पहचान बड़ी आसानी से इस 'अमराई' में की जा सकती है।

अभी स्थिति यह है कि गाँवों में भी अधिकतर लोगों के पास खेती और बागबानी के लिए जमीन नहीं। छूटे हुए भूखंडों में वे कुछ न कुछ उगा लेते हैं-- इसलिए कि रेगिस्तान में बची हुई हरियाली का एहसास हो सके। लेकिन कई पीढ़ियों की स्मृतियों में बसी हुई है अब भी अमराई -जहाँ बच्चे लुका छिपी, गिल्ली डंडा, कबड्डी, चिकनियाँ सरीखे खेल खेलते; बच्चियाँ और स्त्रियाँ घरौंदे बनातीं और झूला डालतीं, तथा बूढ़े जोगवारी करते अपने जीवन-अनुभव बाँटते! सबके भीतर कहीं अब तक भरी पूरी अमराई है -और उसकी खुशबू रची हवा में धड़कते साँस लेते रिश्ते नाते भी। कहीं दादी नानी के

घर 'कोठी' (अनाज रखने वाले मिट्टी के बड़े पात्र) में रखे आम पक कर महमहा रहे हैं, और कहीं पानी से भरी बाल्टियों में तैरते रसीले फल घर वालों को बुला रहे हैं अपने पास। माँ- पिता, भाई-बहन, यार-दोस्त, हित-नाते -सब एक साथ गोलाकार बैठे आमों की उस पंगत में संगत करते। आम्र... रसाल... अमृत...! अहा, कितना सुखद! ओह, कितना सुंदर! आह, कितना मधुर...!

अनिमेष आत्मीयता की ऊष्मा और आभायुक्त चिरनव रचनात्मकता के साथ पाठकों को जिस लोक में ले जाते हैं, वहाँ से कौन लौटना चाहेगा और किससे फिरते बनेगा ? यह एक ऐसी अमराई है जिसमें अपनी जड़ों और जमीन से जुड़ी हुई मनुष्यता है और जहाँ 'आमपन' भी फूलते फलते हुए खास बना रहता है। एक तरह से इन कविताओं में कवि ने मनुष्य को प्रकृति के साथ जोड़ दिया है और भाग-दौड़ भरी जीवनचर्या में उसे बरबस रुक कर सोचने पर विवश किया है। बार बार यह विचार उभरता रहा है कि इस आपाधापी में उससे जो छूट गया या छूट रहा, कहीं वही तो जीवन का कोश नहीं- किसलयों, कोंपलों, मंजरों, टिकोलों और पूर्णाकार फलों के साथ आमरूप, आम्रगंध, आमरस और अम्रास्वाद से भरी पूरी वह जीवंत अमराई! अनिमेष की रची हुई अमराई पूरी प्रकृति और समस्त संसृति से जैसे बार बार कह रही है, मौन को भी प्रश्नाकुल स्वर देते हुए - हर हाल में क्या सबकुछ इसी तरह रह नहीं सकता - सत्व, संवेदना, प्रेम और आपसदारी के साथ?

'अमराई' सरीखे संग्रहों के साक्ष्य से सविश्वास कहा जा सकता है कि प्रेम रंजन अनिमेष समग्र सृजनात्मकता के कवि हैं। 'सभ्यता समीक्षा' भी इसका एक हिस्सा है; अर्थात तथाकथित आधुनिकता, भौतिकता, व्यवस्था और विकास के अंतर्गत जो कुछ हो रहा है, उसकी गहन पड़ताल। साथ ही, कवि जो होना चाहिए उसकी भी पहचान और उसका आह्वान करता है, सार्थक विकल्पों की ओर प्रवृत्त करते हुए । वस्तुतः अनिमेष के विस्तृत काव्य संसार में मनुष्यता और समस्त चेतनता की महागाथा है और जीवन व सृजन का अप्रतिहत चिरंतन महाराग! कुल मिलाकर प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं से गुजरने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी रचना-प्रक्रिया किसी सधे साधक की तरह मँजी और तपी हुई है, जिसमें कम शब्दों के ताने-बाने में बहुत बड़े जीवनमूल्य, जीवनसत्य और जीवनसूत्र पिरोये गये हैं। बिहारी विरचित 'सतसैया' के दोहों के लिए जो कहा जाता है, वही सृजनात्मकता के धनी इस अनमोल कवि पर भी चरितार्थ है। अनिमेष की लघुतम कविताओं में भी महत्तम बात होती है और 'अमराई' इसकी बहुत बड़ी मिसाल है। इस संग्रह की कवितायें जीवंत लड़ियों की तरह हिल मिल कर एक महाकाव्यात्मक वितान रच देती हैं, जिसमें हर कविता की अन्तर्कथा एकाकार होकर महागाथा में बदल जाती है। रचनात्मकता के विस्तृत फलक पर बार बार यह चमत्कार संभव करने वाला अनिमेष सदृश बिरला कवि ही होता है -एक ऐसा रचनाकार जो खाकर फेंकी गयी गुठली में भी अगली दुनिया की संभावना देख लेता है :

खाकर फल / यूँ ही / उछाल दी/ जो गुठली / क्या पता /
सब खत्म हाने के बाद / बसे उसी से / दुनिया अगली...

- गली नंबर 3, वार्ड नंबर 2, तेलिया पोखरा, जयप्रकाश नगर, औरंगाबाद (बिहार)

अभावों में भी भाव रचता प्रेम रंजन अनिमेष का कविता-संग्रह 'साइकिल पर संसार'

-चंद्रकांत सिंह

साइकिल पर सवार इनसानी संबंधों की दुनिया को साकार करने वाला चर्चित कवि प्रेम रंजन अनिमेष का नया कविता संग्रह 'साइकिल पर संसार' एक यंत्र, एक वाहन की उपयोगिता या उपादेयता का चित्रण मात्र नहीं, वरन संवेदना के सूक्ष्म स्तरों पर सामान्य जन-जीवन के मार्मिक पहलुओं की रागात्मक अभिव्यक्ति है। शहरीकरण की चकाचौंध, आधुनिकता की आपाधापी में जनसाधारण के अनमोल असाधारण क्षण और सदाशयी मनुष्यता के बेशकीमती पहलू सदा के लिए ओझल न होने पायें, अनिमेष अपनी सकारात्मक सृजनात्मकता से इस संग्रह में यह सुनिश्चित करते हैं।

संग्रह की पहली कविता 'पुनश्च' एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक परंपरा की निरंतरता और भरोसे के प्रवाह का जीवंत बिंब खड़ा करती है : 'बच्चे/ एक अरसे बाद/ थामकर उसे/ नीचे उतार रहे/ मुझे भरोसा है/ वे फिर से/ ले आयेंगे/ उसे राह पर।' यही भरोसा तो मानव जीवन का आधार है। स्वस्थ परंपराओं को कभी बिसरने या दम तोड़ने नहीं देना चाहिए, बल्कि बार-बार, लगातार सुयोग्य हाथों को सौंपना चाहिए। सुपात्र ही उसकी कीमत पहचान सकते हैं।

इसी तरह 'सीखना' शीर्षक कविता साइकिल चलाने के अभ्यास का एक बिंब खड़ा करती है, मगर अर्थ के गहरे स्तरों पर समूचे मानव जीवन व्यापार को उद्घाटित करती हुई। साइकिल सीखते समय हमारा साथी हमसे कहता है, डरो मत! मैंने पीछे से पकड़ रखा है। तुम्हें गिरने नहीं देंगे। आश्वस्ति के उन्हीं अगाध क्षणों में वह धीरे से हमें छोड़ देता है। हम तब तक पैडल मारना सीख चुके होते हैं, हैंडल का संतुलन साध चुके होते हैं। वह दूर खड़ा हमें देखकर प्रसन्न होता है। मगर जिस पल हम मुड़कर देखते हैं कि उसने तो कबका हमें छोड़ दिया है, तब एक साथ खुद के छले जाने और अपने क्षमतावान होने, दोनों का एहसास होता है ।इस जीवन समर में सबको अपनी-अपनी परीक्षा खुद ही देनी होती है, मार्गदर्शक कुछ दूर तक रास्ता दिखाता है, और फिर छोड़ देता है। यही सच्ची सीख सबक है, जीवन की नियति और संभवतः उसका श्रेय ध्येय भी।

संग्रह की 'कैरियर वाली शीर्षक' कविता निम्न मध्यवर्गीय परिवारों में साइकिल के महत्व को रेखांकित करती है। इस यंत्र के सामाजीकरण की बारीकियाँ आज की हवा-हवाई शहराती पीढ़ियों को शायद समझ न आये, क्योंकि वे मेट्रो और ओला-उबर के जमाने की संवेदनाओं को जी रही हैं। मगर आज भी कस्बाई-ग्रामीण जिंदगी में साइकिल सामाजिकता का बखूबी निबाह करती है- गेहूँ पिसता रहा/ लकड़ियाँ आती रहीं/ सबको छोड़ता रहा/ संदेशे सामान के साथ उनके पड़ाव/ भाई-बहन पढ़ने पहुँचे समय पर/ वक्त-बेवक्त अस्पताल भी जाना हुआ/ बूढ़े-बुजुर्गों का...।

'साथ' कविता भी बेहद मार्मिक है। हमें अपनी उन चीजों से कितना लगाव होता है, जिनके साथ एहसास का नाता होता है! अक्सर जीवन की आपाधापी में कुछ पलों

के लिए हमें उनसे दूर होना पड़ता है या दूर जाना पड़ता है, मगर बिछोह के वे लम्हे मिलते ही ज्यादा गहरे रूप में सामने आ जाते हैं, तभी तो पहली फुर्सत में हम उन चीजों की सुध लेने दौड़ पड़ते हैं। एक कस्बाई किशोर का अपनी साइकिल से वही भावुक रिश्ता होता है। गाँव-कस्बा छोड़ बड़े शहर में पहुँचा कवि जब घर लौटता, तो आते ही 'साइकिल पोंछता, हवा भरता मरम्मत करता/ और लेकर चल देता बस्ती में/ अपनों से मिलने।' अपनी चीजों में जो निश्चिंतता होती है, वह अमानत की चीजों में नहीं, यह कविता अर्थमयता के स्तर पर इस दुनिया तजुर्बे को भी साझा करती चलती है।

संग्रह की आखिरी कविता 'आधार' तो आपको एक गहरे दर्शन की ओर ले जाती है- 'जो साइकिल नहीं जानता/ कुछ भी चला सकता नहीं ठीक से/ सबमें है साइकिल/ सुख में दुख में... दुनिया भर की आवाजाही में/ जिसने साइकिल को समझ साध लिया/ वह सँभाल सकता है सब कुछ ।' यह जो संतुलन साधना है, वही तो मानव जीवन की धुरी है। इसी की माँग सामाजिक संबंधों, वैयक्तिक रिश्तों में भी है। इसी तरह, संग्रह की 'अगोरना', 'अंदेशा', 'दाय', 'यकीन', आदि तमाम कवितायें साइकिल पर निम्न मध्यवर्गीय समाज का जीवन सार और संसार उठाये आगे बढ़ती हैं। ये एक कालखंड़ की समूची देहाती-कस्बाई दुनिया आपके सामने खोल देती हैं। इस संसार में टीस है, दर्द है, रिश्तों की दूरियाँ हैं, तो स्नेह में पगा आत्मीय आपसी संबंध भी।

प्रेम रंजन अनिमेष के इस संग्रह का शीर्षक अपनी सार्थकता पर खरा उतरता है। जीवों से लगाव तो सहज मानवीय गुण है, मगर किसी निर्जीव के साथ एहसास भरा जीवन एक संवेदनशील मनुष्य ही जी सकता है। मनुष्य होने की परख भी इसी संजीदगी में है। साइकिल को इस महत्व के साथ साहित्य में स्थापित करने के लिए तथा हमारी संवेदनाओं को झकझोरने के लिए कवि को बहुत साधुवाद! साहित्य के सभी सुधी पाठकों को यह संग्रह जरूर पढ़ना चाहिए। 'साइकिल पर संसार' की ये कवितायें न सिर्फ उनके बोध का विस्तार करेंगी, बल्कि उन्हें मानवीय बनने को भी प्रेरित करेंगी!

डिप्टी एडीटर (विचार), दैनिक हिन्दुस्तान, नयी दिल्ली
मो : 9818151030

अभिनव अनुभव संसार सिरजता प्रेम रंजन अनिमेष का 'लोकशास्त्र'

- संजीव रंजन

साहित्य के सच्चे सधे सर्जक के रूप में प्रेम रंजन अनिमेष की कई खूबियों में से एक है - विस्तृत अनुभव संसार का रचनात्मक नवोन्मेष कर सतत अभिनव सृजन संभव करते रहना। विविध विधाओं में समान अधिकार से रचने वाले अनिमेष ने काव्य लेखन के क्षेत्र में भी अलग पहचान बनायी है। 'प्रकाशन संस्थान' से प्रकाशित उनके चौथे कविता संग्रह 'अँधेरे में अंताक्षरी' के अंतर-आमुख (ब्लर्ब) में सही ही कहा गया है कि लीक से हटकर रची गयी इनकी कविताओं से गुजरते हुए हर बार एक अभिनव अनुभव होता है। अनिमेष के सृजनकोश में 'हमारे समय की महाकाव्यात्मकता' सहेजे अनेक वृहद कविता शृंखलाएँ हैं - सूक्ष्म, समग्र और समवेत, सबको साथ साथ साधे हुए। 'ऊँट : हमारे समय का महाकाव्य ', 'साइकिल पर संसार', 'अच्छे आदमी की कविताएँ', 'अमराई', 'आवाजें', 'जीवन खेल', 'कुछ जलचित्र कुछ जलचिह्न', 'नींद में कविताएँ', 'नयी कवितावली' जैसी महत-काव्य-शृंखलायें भी उन्हें हिन्दी जगत ही नहीं, समस्त विश्व वाङ्मय में विशिष्ट बनाती हैं, और 'ऊँची सोच' वाले एक बड़े कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। कथ्य और कहन, दोनों ही स्तरों से जुड़ी इस विशेषता के तो सब कायल हैं ही - अनिमेष वहाँ भी लाजवाब और लासानी कविताएँ रच लेते हैं, जहाँ उनके होने की कोई संभावना नहीं लगती। पढ़ने-सुनने सराहने वाला मंत्रमुग्ध सा सोचता रह जाता है कि क्या सचमुच इस तरह भी कविता संभव हो सकती है!

प्रेम रंजन अनिमेष के 'लोकशास्त्र' से गुजरते हुए भी ऐसी ही अनुभूति होती है! महानगर की लोकल गाड़ियों की नित्य-यात्राओं, या कहें कि 'नित्य-यातनाओं' से गुजरते हुए भी क्या ऐसी ऊँचाई और गहराई वाली कविताई और ऐसा जीवन दर्शन मुमकिन है, यह तो केवल इतना समर्थ और संवेदनासम्पन्न कवि ही सोच सकता है! जिस तरह साइकिल पर एक व्यापक आत्मीय दुनिया रची है अनिमेष ने अपने कविता संग्रह 'साइकिल पर संसार' 'में ('नाटनल' पर उपलब्ध), उसी तरह इस 'लोकशास्त्र' में महानगर की लोकल गाड़ियों में जीवनयात्रा का विहंगम चित्रण किया है, पूरी दृष्टिसम्पन्नता तथा दर्शनाभिलाषिता के साथ : पहियों पर / चलता यह जीवन / महानगर की /लोकल धड़कन / भीड़ भाड़ में / कुछ अपने क्षण / इसी लोक में/ दुनिया दर्शन... (जीवन दर्शन)।

कुछ साल पहले इस वृहद शृंखला की 53 कविताओं ने 'चिंतन दिशा' पत्रिका के जरिये साहित्य प्रेमियों को अभिभूत किया था। अब शताधिक कविताओं के साथ यह 'लोकशास्त्र' पुस्तकाकार आने को तैयार है, जिससे गुजरना अपने आप में एक अविस्मरणीय अनुभव से जुड़ना है और गहन चिंतन मंथन अनुशीलन से भी। 'महानगर की जीवन धड़कन' कही जाने वाली लोकल रेल की यात्राओं को कुछ इस तरह जीवंत करते हैं अनिमेष - मुँह अँधेरे उठकर तत्पर / रात के अंतिम और भोर के पहले पहर / कभी न सोने वाला यह शहर / झूलता चला जा रहा / लोकल में / घर से काम पर /

काम से घर..../ बढ़ता चला जा रहा / सुबह सुबह पहियों पर सवार / आने वाले दिन के लिए तैयार... (तत्पर)।

प्रेम रंजन अनिमेष अपनी कविताओं, कहानियों और किताबों के नाम भी बहुत ही सोच, सूझ और समझ के साथ रखते हैं। लोकल के पहियों पर चलते जीवन के इन विविध चित्रों के समवेत को 'लोकशास्त्र' सरीखा सहज और आकर्षक नाम देने का काम अनिमेष जैसा सुलझा हुआ कवि ही कर सकता है। अमूमन 'लोक' के साथ 'ग्राम्य' की प्रत्याशा जुड़ कर रूढ़ सी हो गयी है। दूसरी तरफ लोकल ट्रेन अमूमन महानगरों में चला करती है। इस तरह अनिमेष यह रूढ़ि भी तोड़ते हैं और रोजमर्रे के सफर के रोजनामचे के बीच एक तरह से एक नया अलौकिक संसार रचते हैं हमारे सामने - लोक को उसके मूल, अर्थात लोगों से जोड़ते, और जीवन जगत को पुनर्सृजित करते हुए- जो रोज हमारी आँखों के सामने रहकर भी अकसर अदेखा सा रह जाता है: ''चलती लोकल /चलता जीवन / भरे पूरे आँगन में जैसे / फिरे किलकता बचपन..'' ('जीवनरेखा')। जैसा कि 'अँधेरे में अंताक्षरी' के अंतर-आमुख में कहा गया है, हमारे बहुत करीब से कोई मामूली सी चीज लेकर अनिमेष उसे कविता में इस तरह रचते हैं, जैसे हम उसे पहली बार देख रहे हों! उसी तरह कोई छोटा-सा सूत्र लेकर जग जीवन के लिए बड़ी सोच और सद्भाव संवेदना का अनूठा 'मिलाप' भी सृजित करते हैं वे : दो सीटों की / पीठ एक ही / क्या दो सीटों पर / बैठे दो ओर / दो जनों के / दिल भी हो सकते / एक...?

अनिमेष की कविताएँ जोड़ने वाली रचनाएँ हैं - सृष्टि संसृति, प्रकृति संस्कृति और एक दूसरे से। इसीलिए ये और भी महत्वपूर्ण हैं - खासकर इस समय और दौर में, जहाँ तोड़ने और बिखराने वाली इतनी ताकतें और साज़िशें सक्रिय हैं। लिहाजा जीवन के संघर्षों और इम्तिहानों के बीच भागती दौड़ती लोकल ट्रेन में भी भाव-प्रेम रखने और बरतने की इल्तिजा करते हैं अनिमेष - इन कविता पंक्तियों के जरिये : जुड़ लो / जितना जुड़ सकते हैं..../ निरख परख लो / दरस परस लो / इक दूजे को / जितना संभव / तेज उखड़ती साँस सहेजे / बेसुध भाग रहे / पहियों पर / पाँव टिकाये... (लोकल में प्रेम)।

अनिमेष की इन कविताओं में जुड़ने के जतन के बावजूद जुड़ न पाने की टीस भी है उतनी ही गहरी - सफर इतना यूँ ही गया / जुड़ाव कोई बन न सका / दिल के पास धड़कते दिल का...! फिर 'जोड़े' शीर्षक कविता का यह बेजोड़ प्रेमांकन भी देखने लायक है : जब तब आते जाते / दिख जाते इन लोकलों में / डिब्बे इंजन सरीखे / एक दूसरे को पकड़े / एक दूसरे से जुड़े / प्रेम पंछी प्रेमी जोड़े / कभी दोनों एक दिशा में / कभी आमने सामने / अभी इंजन उनमें कौन / आप कर सकते अनुमान...! अनिमेष जीवन के हर 'जोड़' और जुड़ाव को जानते और उनके उत्स व स्रोत भी पहचानते हैं- तमाम विभक्तियों के बावजूद / क्या इसी जोड़ से / जुड़ा हुआ यह कुनबा...? 'सहसवा' कविता लगाव और जुड़ाव के इसी भाव को जगाती है - ईंधन का धुआँ नहीं लग रहा / तो किसी की बगल की / झाँस से क्या मुँह फेरना...? वह भी, तथाकथित आधुनिकता और सभ्यता के दिनों दिन कुछ ऐसे असहिष्णु होते जा रहे परिवेश में, जहाँ

'बस इतने भर से / हुआ वह सारा / खून खराबा / कि उस भरी भीड़ में / एक आदमी को लग रहा था / दूसरे का पसीना... ' (जीवनद्रव)। कभी कभी 'भीड़ों में इतने पास' होकर कुछ इस तरह समय और समाज के कड़े सवाल बड़ी मासूमियत से पूछ लेते हैं अनिमेष - क्या भीड़ों में / इतने पास / लगती है / इनसानों को / इनसानों की ही / झाँस...? उतनी ही सरलता और तरलता से जुड़ाव और अलगाव के जारी सिलसिले के बीच कह जाता है कवि इतनी गहरी बात : होगी तकलीफ/उतरने में फिर/अपना सिर / है अगर / बेखबर / और किसी / कंधे पर...। 'गठबंधन' कविता इस नये समय और भागमभागी गहमागहमी के बीच भी चट्टान में दूब की तरह परवान चढ़ते प्रेमांकुर को बड़ी ही नजाकत से पकड़ती है - एक मोबाइल / और उससे लगे / कनठेप के दो सिरे /दो सिर / दोनों एक एक सिरा / कान से लगाये / सुनते गुनते जाते/ मन ही मन गुनगुनाते / बड़ा अनूठा यह गठबंधन / इस लोकल में पलते / नवजीवन का ईंधन...।

कविताएँ हों या कथा-साहित्य, प्रेम रंजन अनिमेष की रचना-दृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष है नारी जीवन और मन के प्रति सम्पूर्ण सम्मान और संवेदना। ऐसे ही व्यक्ति की अभिव्यक्ति हो सकती है 'फैसला उसका' : उधर भी तो / भीड़ होगी / उतनी ही / चल कर आगे / किसी और से / रगड़ खायेंगे कंधे / पर यह उसका फैसला है /और उसे / फैसले का हक है...। 'आशय' की सदाशयता भी उतनी ही श्लाघनीय है - एक साथ हो कहीं / लाल और हरा / तो उलझन में मत पड़ना / यह भी तो हो सकता / अभिप्राय उसका / प्रथम श्रेणी की महिला...! शोर-शराबे या हंगामे के बिना सच्चा और गहन स्त्री विमर्श रचती हैं अनिमेष की कविताएँ - 'माँ के साथ', 'नींद में नाच' और 'स्त्री सूक्त 'सरीखे नारी प्रधान काव्य-संग्रहों में ही नहीं, वरन जीवन के विविध बहुरंगी फलक पर रचे उनके अन्य संकलनों में भी जो मौजूद है। 'आड़' शीर्षक कविता भी सच्चाई और सफाई के साथ सधे सुलझे ढंग से अपनी बात रखती है :भीड़ के तंग दायरे के भीतर/ दोनों हाथों से / बनाता एक और घेरा / खड़ा है लड़का / साथिन के साथ / जब यह भीड़ छँट जायेगी / क्या लड़की के लिए / आगे की दुनिया में भी / रह जायेगी अदृश्य सी / यह आड़ / जैसे कोई बाड़? / कितना अच्छा / होगा यह कितना बुरा ...? 'फिर कुल पंद्रह शब्दों में रची सीधी सादी सधी यह कविता भी कितनी बड़ी और गहरी बात कह जाती है - देश समाज का / सही प्रतीक यह / इस लोकल में / पहला डिब्बा / और आखिरी / स्त्रियों का...

स्त्रियों के संग संग बच्चे भी जिस धज से आते हैं इस बाकमाल कवि की कविता में, उसकी छटा देखते बनती है। 'वरीयता' कविता इसकी बानगी है:

गरोदर स्त्रियों को / अनुमति है / ज्येष्ठ नागरिकों के / डिब्बे में चढ़ने /
और उनकी जगह बैठने की भी / एक नहीं / एक साथ वे / दो होती हैं /
दोनों की उम्र जोड़ते होंगे / कहा किसी ने / पर मेरी कितनी उम्र लगाते...? /

आवाज गर्भ से दी बच्चे ने...। 'लोकशास्त्र 'की कविताओं में बार बार 'जगह' का बड़ा ही प्रभावशाली प्रयोग हुआ है - सारगर्भित और सार्थक बिम्ब की तरह। भीड़ भरी लोकलों में पाँव टिकाने और जगह बनाने की जद्दोजेहद के साथ जीवन में टिकने और बने रहने की कोशिशों का व्यापक रूपक बन जाती है 'जगह'। अनिमेष के एक

और प्रकाश्य कविता संग्रह 'प्रश्नकाल शून्यकाल' की कविता 'गुंजाइश' बड़ी मानीखेज होकर जेहन में उभरती है इस पृष्ठभूमि में : भीड़ भरे/इस महानगर में /जहाँ नहीं है / तिल रखने की जगह / ढूँढ़ रहा है/ भला इस तरह /कौन बावला / दिल रखने की जगह...?

वहीं 'लोकशास्त्र' के इस अलैकिक लोकल लोक में, जहाँ 'कौन कहाँ कुछ छोड़ना चाहता है / वह भी कसकर जगह पकड़े बैठा है / जिसे अगले पड़ाव पर उतरना है... (व्यामोह), रोज रोज के फेरों में कभी 'दिनों का फेर' ऐसा भी देखने में आता है जब ''कई बार जाते इधर से उधर / खाली होगी जगह किधर / इसी कयास में / और वह मिलती नहीं / आखिर आखिर 'तक / किसी दिन कहीं खड़े होते आकर / और बिठा लेता कोई हाथ पकड़ कर...।'' 'प्रतीक्षा' कविता भी जगह और जीवन की इस गहमागहमी का बड़ा ही प्यारा और सजीव चित्र सामने रखती है : पहले पाँव टिकाने की टेक मिली / किसी तरह जगह बैठने की थोड़ी / फिर सीट किनारे की / राह इसी की रहा देखता / कि पहले कायदे से / बैठने का हो जाये उपाय / फिर ले लूँगा झपकी भी / उधर लेने वाले / दरवाजे पर टँगे / हवा से झूलते / नींद ले गये...। लोकल यात्रा करते अनिमेष सरीखा कवि ही सोच सकता है और यह दर्ज.कर सकता है कि 'लगता है/ आयी थी अभी / एक झपकी / आकर चली गयी / नींद के भी / अपने पड़ाव होते हैं...। मर्म को' लेने वाली बातें इस तरह दबी जुबान या 'अंडरटोन' में कहना इसी काव्य-कला-कौशल का हिस्सा है।

अनिमेष कुछ कहते हैं और बहुत कुछ ऐसे रहने देते है कि वह पन्ने पर भले न दिखे, किन्तु अन्तस में गूँजता रहे! बिरले कलमकारों को मिलती है यह सलाहियत। अभी की 'आबोहवा' को बस बारह शब्दों में बोलती और खोलती यह अविस्मरणीय कविता इसका उदाहरण है - बाहर बारिश हो रही है / मुसाफि र दरवाजे खिड़कियाँ कसे / भीतर बंद हवायें...। आज आम तौर पर घर कर गयी है कैसी संकीर्णता, और बाहर फैले हुए लोग अपने अंदर कितने तंग हैं, 'स्थायी भाव 'कविता इसे बड़े सलीके से रेखांकित करती है इसे : बाहर हैं / जो पसरे /अंदर कितने सिकुड़े/कितने सँकरे / बस थोड़े से ही / निभाव से / हो सकती / पूरी गुंजाइश...। लगभग लयभंग हो चले वर्तमान समय समाज को कैसे लय देता है अनिमेष जैसा सुकवि, यह इन कविताओं में देखा जा सकता है। सबका मर्म छू लेती हैं 'बाहर भीतर' की ये पंक्तियाँ - बाहर नहीं जगह अंदर होती है / वह कहना चाहता है.... / जो वह कह नहीं पाता / बाहर उस पर हो जाता हंगामा / भीतर कोई / हलचल या हरकत नहीं। उसी तरह 'कारक' कविता कितनी सहजता से इतनी गहरी बात कह देती है : जिंदगी की तरह यहाँ भी / हुआ करतीं वजहें कई / जो सबसे देर से खड़ा है / जरूरी नहीं उसे मिले / जगह सबसे पहले...।

बाहर से जाहिर व्यथायें ही नहीं, अन्तर्मन का विज्ञान भी बड़ी बारीकी से समझते महसूस करते हैं अनिमेष, और उनसे हासिल करते हैं जीवन के अनुभव और अपनी कविता के गुणसूत्र - कोई जो उठे सीट से / नीचे उतरे / फिर यह पीठ जरा / सीधी की जाये.../ मानुस मन की ये इच्छाएँ / रह जातीं तो बन जातीं / फिर कहीं व्यथाएँ। कवि की इस लोकयात्रा के सहयात्री अधिकतर सीधे सादे जन हैं, जो आज के दौर में भी

संवेदनशील हैं। ऐसे लोग जो बिना नाम का कोई पड़ाव देखते हैं तो सोचने लगते हैं कि उसे नाम क्या दिया जा सकता है

अनिमेष की कविताओं के कई अंश जीवनसूत्र या जीवनसूक्त की तरह होते हैं - अनुभवों, अवलोकनों और अनुभूतियों से निकले और सहेजे सँजोये हुए। इसकी एक बानगी 'परख' शीर्षक कविता प्रस्तुत करती है : चख कर देखो पसीना जरा / अगर मुमकिन हो देखना / जो खारा है उतना ही खरा...! और फिर 'देखादेखी' भी : ऐसे कितने हैं / जो देखते ही देखते / सफर पूरा गुजार देते...। इस तरह के नायाब सूक्ष्म 'अवलोकन' से भरा पूरा है यह कविता संग्रह - इतने लोग भरे हैं / लेकिन यह भराव / देखने कहाँ कुछ देता! यहाँ जीवन की ऐसी सिखावन भी है, जिसे कोई सच्चा 'साधक' ही सौंप सकता है - इस भीड़ इस रेले में / जो थोड़ी नींद जोड़ लेते / कुछ हँसी / किंचित कोमलता / कहीं आत्मीयता / उनके लिए / शीश यह झुकता...।

प्रेम रंजन अनिमेष की निगाह से छोटी से छोटी बातें, स्थितियाँ , घटनायें , दैनंदिन के ब्योरे, दृश्य व क्रिया व्यापार छूट नहीं पाते और वे उनके माध्यम से सर्वसाधारण की असाधरणताओं को बड़े ही सहज और सशक्त ढंग से सामने रखते हैं। यहाँ पाँच पंक्तियों की 'विशेष' कविता द्रष्टव्य है : / दोनों हाथों में टँगे थैलों में / तरुणियों युवतियों महिलाओं के लिए / तरह तरह की चीजें लिये / लेडीज स्पेशल पर होता सवार दौड़ते हुए /छोकरा छोटा जिसके होंठों पर रोंये बड़े...। इस तरह की कई कविताएँ रची हैं अनिमेष ने, पाँच पंक्तियों के अपने विशेष प्रारूप में, प्यार से जिन्हें वे 'पाखी 'भी कहा करते हैं।

इस जीवनगाड़ी में सब सवार हैं - मासूम बचपन, अल्हड़ कैशौर्य, ऊर्जावान तरुणाई और उनके साथ ''चलता वह बूढ़ा / लटकाये / थैला / बच्चों वाला...'' (जीवन जीवट)। कुछ पंक्तियों की नन्ही सी कविता अपने भाव, अर्थ, ध्वनि और फलक में कितनी बड़ी हो सकती है, अनिमेष यह बार-बार दर्शाते हैं। 'लोकशास्त्र' में भी कविता के ऐसे कई नायाब मोती भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ 'बस इसी तरह' देखिये : कोई उठने वाला नहीं / सब ऊँघ रहे सो रहे /अपनी जगह घेरे /प्रतीक्षा में खड़े आदमी के लिए / अभी कोई उम्मीद नहीं...।

आम जन-जीवन और सर्वसाधारण से कोई रोजमर्रे की बात या सूत्र चुन बुन कर उससे कुछ असाधारण, अविस्मरणीय बुध देना या व्यापक बिंब रच देना इस कवि की बहुत बड़ी खूबी है। जैसे 'कसाव' का यह अंश : भीड़ पड़ी है /जाम लगा है / दुनिया के / इस पैदल पुल पर...। बहुत ही सीधे सादे शब्दों में बिना लाग लपेट 'आरोह अवरोह' के जरिये वह किस तरह दुनिया की आवाजाही को अभिव्यक्त करता है- गाड़ी छूट रही है / किसी को हड़बड़ी / सवार होने की / कोई उतर रहा / भरे हृदय / भारी कदमों से / गाड़ी छूट रही है...! इस सफर के ये मुसाफिर अमूमन जितने मामूली हैं, अपनी सीमाओं और खामियों के बावजूद अंदर से उतने सरल और मासूम भी। वे छोटे छोटे झूठों, थोड़ी बहुत बेईमानियों में ही अपना 'हिस्सा' पूरा कर लेते हैं : सांताक्रुज में है गाड़ी / पर बांद्रा हूँ अभी / कह रहा कोई / अपने मोबाइल से...../ अच्छा है / अगर झूठ हों इतने / नन्हें प्यारे / और मासूम से...!

लोकल पर सवार आम अवाम के प्रतिपल स्पंदन को सुनते सुनाते 'लोकशास्त्र' के माध्यम से कवि उस लोक, उस संसार को हमारे सामने रखता है; जिसमें जीवन, समय और समाज का द्वंद्व समाया हुआ है - इस छोटे से डिब्बे में / समायी पूरी दुनिया / एक ओर चल रहा भजन कीर्तन / वहीं दूसरी तरफ प्रवाहित / किसी छोटी सी बात पर / अपशब्दों की अविरल धारा...! 'सफर में संगीत' कविता किस बारीकी से लोकल के भरे डब्बों में झाल ढोल खड़ताल मजीरे डफ लिये कीर्तन यात्रा करते हुए नित्य यात्रियों के मनोभावों को पकड़ता है - आम ज़िंदगी से अलहदा / इधर का कायदा / शुरुआत होती उनकी /आध्यात्मिक...../ ठीक उतरने से पहले / गीत उनके हो जाते / लौकिक भौतिक सांसारिक...!

जीवन को बरतने और निभाने के अलग अलग तरीके और सलीके हैं, जिसके भेद को कई बार बड़े बड़े ज्ञानी और पंडित भी खोल नहीं पाते। समस्त प्रत्याशाओं और पूर्वधारणाओं को छकाती उसकी प्यारी अनिश्चितताओं को अनिमेष उतने ही स्नेहिल ढंग से रखते हैं 'संयोग वियोग' की इन पंक्तियों में: किसी दिन हर घड़ी हर जगह / चूक करोगे / बिलमोगे थमोगे / फिर भी लगी मिल जायेगी / खुलने के लिए सीटी देती गाड़ी / कभी / भरसक लगभग / सब होगा सही / और पहुँचोगे जब / प्लेटफॉर्म मिलेगा खाली...।

इस लोकल के जरिये और उसके बहाने देश और दुनिया का भी गहन अवलोकन और विवेचन प्रस्तुत करती हैं संकलन की कविताएँ - मानो पढ़ने वाला रेल की खिड़की पर बैठा उन विहंगम दृश्यों और उस दूर तक जाती दृष्टि और सोच से गुजर रहा हो। 'रेल खिड़की से एक दृश्य : छाजन' का यह अनूठा अवलोकन और अनन्य चिंतन हृदयहारी है - नीचे एक पर एक / करीने से सजे उपले / और ऊपर /सलीके से बना छप्पर / क्या अचंभा / इसमें भला .../ यह तो देश जहाँ / गोबर को भी / मिलता है घर...।

'रेल खिड़की से एक दृश्यः पहाड़ का अँगूठा' इस अनूठे अवलोकन और चिंतन का एक और उदाहरण प्रस्तुत करता है और यह दर्शाता है कि कवि की जमीन जितनी मजबूत है, उसका आकाश भी उतना ही फैला हुआ और अनंत - दूर तक चलती पर्वत शृंखला के बीच / पहाड़ एक जगह इस तरह उभरा / जैसे हो उठा हुआ अँगूठा पहाड़ का / अँगूठा यह / ठेंगे वाला / स्याही लगा / या चिह्न विजय का

अनिमेष की सुलझी सोच और विहंगम दृष्टि; एक साथ व्यापक, सूक्ष्म और सबल हैं। ऐसा नहीं कि इस जीवन- लोक में सब कुछ आलोकमय या वरेण्य है। आखिर यह भी इसी समय समाज का हिस्सा है- अपनी खूबियों खामियों के साथ। इसमें ऐसे 'आदत से लाचार' भी हैं जो 'कभी कहीं / धकेल दे सकते / माँ जैसी / स्त्री को भी...'। बातों बातों में बिना किसी वाचालता, वाग्मिता या बड़बोलेपन के चुभती टिप्पणियों के जरिये बड़ी विसंगतियों की जिस तरह'निशानदेही' करता है कवि, यह देखने योग्य है : जबकि अत्याचार अनाचार तो फि लहाल / हर तरफ तैर रहा / जैसे भीड़ भरी गाड़ी में / प्रदूषित हवा...। इन सबके बीच दृढ़ स्वर में मजबूती से अपना पक्ष रखता है वह- उन सबका पक्ष, जो जीवन मूल्यों और मनुष्यता के साथ हैं - 'जब तक इस तरह भविष्य देश का / दर दर की ठोकरें खा रहा / यह गाड़ी / कहीं नहीं है जाने वाली...'' (यह गाड़ी कहीं

जा नहीं रही)।

यह हादसों से भरा समय है और ये हादसे अपने आसपास और चारों ओर ही नहीं, भीतर भी हो रहे हैं। 'कुछ तो है' की ये पंक्तियाँ बड़ी ही निश्छलता के साथ इसे अंकित करती हैं : भरी भीड़ में / पँजरे से /छूता क्या / गरम गरम / बगलगीर के / थैले में / है टिफि न बॉक्स / या बम...? 'अपनी अपनी सोच' कविता के जरिये अनिमेष बखूबी इसकी शिनाख़्त करते हैं - जाने आज घर / पहुँचेंगे कितनी देर से / हादसा हो चुका है / बाहर से / भीतर कहीं पहले...। महानगरों में अमूमन आसपास और उसी भीड़ का हिस्सा होने के बावजूद लोग अपने आप में खोये रहते हैं और खुद को अकेला महसूस करते हैं। किन्तु फिर भी उनका जीवन, वर्तमान और आगत किस तरह 'सहबद्ध' हैं, कवि की पारखी निगाहें बड़ी बारीकी और बेबाकी से देखती और दिखाती हैं -

पीठ सटी / पीछे वाली की पीठ से / जब आती उसे खाँसी / तो लगता जैसे / अपने बिल्कुल पास / चली हो गोली...! कहीं आज के दौर और समय में व्याप्त आशंकाओं और अंदेशों को 'ताजा' जैसी कविताएँ संकेतों के जरिये रेखांकित करती हैं : किसी को खबर नहीं / न किसी को परवाह / इस तरह आते जाते / पैरों से कुचला जाता / शाम तक मारा जाता / एक अखबार बिना पढ़ा / किसी ने झुक कर यह भी / देखा नहीं / कि कहीं / इसमें उसी की / खबर तो नहीं...?। 'पलक भर : दृष्टिवेध' का यह अवलोकन, अपने पूरे आख्यान और सधे वृतांत के साथ जितना मार्मिक है, उतना ही 'मारक' भी : तब जाना कहीं / कि नजरें भी /हो सकतीं हत्यारी / मार सकतीं / बेध कर बींध कर / खत्म कर सकतीं / किस तरह / किसी दृश्य को/ और मनुष्य को..।

इसके साथ साथ कहीं कहीं एक गहरी और महीन व्यंजना भी बड़ी सफाई से छुपाई हुई होती है, जो कवि की एक और खासियत है : कुछ आगे चलकर / जो रह गया उसे भी / मिल ही जाता मौका / वरना जीवन में कहीं / हो जाती इतनी देरी / कि न्याय फिर न्याय नहीं रहता... ('न्यायोचित')। यह महीन व्यंजना कितनी धारदार हो सकती है, इसकी मिसाल 'समाई' कविता की इस 'सूक्ति' में महसूस की जा सकती है : पूँछ अपनी बहुत पहले / खत्म कर ली आदमी ने / शायद मालूम था सदियों बाद / महानगर की लोकल में / चलना होगा! 'काठी' कविता सँभाल सलीके से अपनी बात कहती भीतर गहराई तक उतर जाती है: डर लगता है/कड़क न जाये /कहीं कचकड़े जैसी काठी / इस भीड़ भाड़ के लिए बना /क्या पिंजर अपना? / यदि हाँ / तो फिर रचने वाला / सोचा करता है / कितना आगे की...? जन-साधारण के साथ इस दुश्वार सहयात्रा में सवार 'दूसरी भाषा का दुख' द्रष्टव्य है और इस बहुत ही महीन, मगर पैने व्यंग्य की धार भी - ओहो... क्रैम्प क्रैम्प! / दरवाजे के पास खड़ा / युवक कराहा सहसा / शुक्र है यह देश अभी / पूरा अंग्रेज हुआ नहीं / सुन कर किसी ने समझा नहीं / बस दुख इसका / कि हादसा हुआ...।

'सुरक्षित' कविता जितना जताती है, उतना ही सवाल भी करती है - यही कि फि लहाल कौन कितना सुरक्षित है : रात ग्यारह बजे से / सुबह सात बजे तक / महिला डिब्बे में / सुरक्षा के लिए / तैनात रहेंगे /दो आरक्षी..... / उनसे सुरक्षा / कौन करेगा / इसके बारे में / अभी सोचा नहीं गया...। उसी तरह प्रगति और विकास के तमाम नारों,

वादों और दावों के बीच दिन-ब-दिन और बढ़ती ही जा रही विषमता की खाई को अभिव्यंजित करती 'वातानुकूलित : एसी लोकल' की ये पंक्तियाँ देर तक अंतस को मथती रहती हैं - उन्नति की मिसाल /तरक़्क़ी का कमाल / इससे बढ़ कर क्या भला / कि अब वे भी / चलते वातानुकूलित कूपों में / पाँवों में जिनके / चप्पलें हवाई / ढंग की पनही भी नहीं...।

महीन और मारक व्यंजना की बहुतेरी बानगियाँ मिलती हैं वृहद जीवनरेखा सदृश कवि की सृजन शृंखला में। उदाहरणार्थ 'भीड़ में अनभावत' की ये पंक्तियाँ ध्यातव्य हैं - डिब्बे में/ सत्संगी सारे / कौन भला चाहता मारना / पर इतना भी पगा नहीं / अध्यात्म कि आये / जो भी / उसको गले लगा लें...! 'अगुआई' की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं- वैसे हर जगह जरूरी नहीं / आगे जो सबसे / अगुआ वही / जैसे रणभूमि में / सबसे आगे/ तो पदचारी...। विवशताओं और विडंबनाओं के बीच 'भीड़ में चुहल' जैसी ज़िंदादिल हँसी भी है : मालिश की / दरकार कहाँ /हो जाती ऐसे ही / पहले ने कहा.../ नहीं जरूरत / पालिश की भी /कितनी करो / उतर ही जाती ... / हँसा दूसरा..। ऐसी ही शिद्दत के साथ अनिमेष इस दुश्वार जिंदगी की 'विवशताओं' को भी चिह्नित करते हैं : इस जीवन में / मुश्किल कितना / बिना किये कोई समझौता / आगे बढ़ना / जैसे भरी हुई गाड़ी में / या शहरों की / चलती सड़कों पर / धक्के खाये / बिन चलना...।

रोजमर्रा की मुश्किलें कमजोर और बदहाल ही नहीं करतीं, बल्कि जिनके अंदर अदम्य जीवट और इच्छाबल है, उन्हें और अधिक मजबूत भी बनाती हैं। अनिमेष की कविताएँ इस जीवन-सत्य की भी भली-भाँति निशानदेही करती हैं : इन भरी लोकलों की / भीड़ों में चलने वालों को / पर डर कौन डरायेगा /जहाँ हमेशा/ अनुभव होता / कुछ पीछे से लगा... ('मुठभेड़')। विपरीत और विकट परिस्थितियों में भी न केवल निर्भीकता, बल्कि सँवरने निखरने का माद्दा भी दिखलाती सिखलाती हैं ये कविताएँ - जीवन को और जीवंत करती और उसमें संजीवनी भरती हुई। 'अवकाश' कविता का यह अंश द्रष्टव्य है : मुहाने पर खड़ा डिब्बे के / जेब की कंघी से / बना रहा बाल धीरे धीरे / मानो नहा कर धूप में भीगी लटें / सँवारती कोई स्त्री...! उसी तरह से, 'अभ्यास' कविता नित्य यात्राओं की यंत्रणा के साथ साथ यात्रियों की अलमस्ती को भी रेखांकित करती है।

तमाम कठिनाइयों के दरमियान भी मनुष्य और उसकी मनुष्यता पर अनिमेष का भरोसा बना रहता है, जबकि यह पता है कि आज यही विश्वास 'दाँव' पर लगा है : लेकिन फिर भी आदमीयत पर / भरोसा है उसे / वह भरोसा / जो अब हर पल दाँव पर लगा...। प्रतिकूलताओं के बीच, बावजूद और बरअक्स सकारात्मकता को सहेजना और सींचना हो तो कवि से सीखा जा सकता है - भीड़ में होने का एक फायदा / कि गिरने वाला सीधे नहीं गिरता / बल्कि कई कंधों हाथों से टकराता... ('सामान कक्ष में सफर करते')। कुछ इसी तरह की सकारात्मकता 'अपनी अपनी नींद' कविता में भी है - खा पीकर / नरम गद्देदार बिस्तर पर / पड़े पड़े / नींद के लिए / जूझते / कितने / और कुछ / इस लोकल की / असकस भीड़ में भी / खड़े खड़े/ भर लेते झपकी...। इस दुसह दौर और दुर्धर्ष परिस्थिति में भी मनुष्यता जीवित है, इसका 'अकाट्य साक्ष्य' है अनिमेष

के पास : कोई न कोई देख कर / हाथ गह लेता तत्पर / खींच लेता ऊपर / यह प्रमाण पर्याप्त / और साक्ष्य अकाट्य / कि इस दौर इस दुनिया में / अब भी बाकी / इनसानियत इतनी / जीवन में या उल्लंघन में / या दोनों के / अपनेपन में ...।

अपने एक साक्षात्कार में प्रेम रंजन अनिमेष ने अच्छी और कालातीत रचना को वह आईना माना है, जिसमें अतीत और आज के साथ साथ आगत भी झाँकता है। निश्चय ही अनिमेष की कविताएँ स्वयं इस निकष पर पूरी तरह खरी उतरती हैं। बतौर बानगी 'यंत्र तंत्र' कविता द्रष्टव्य है, जो तथाकथित अत्याधुनिक समय समाज में हो रहे विडंबनापूर्ण निर्णयों और बदलावों की खबर लेती है, जो आने वाले कल को दूर तक प्रभावित करेंगे।

'लोकल सौतन' कविता इस संग्रह की एक लाजवाब रचना है, जो गहन महानगरीय जीवन के बीच मानो एक दुर्लभ ग्राम्य लोक रचती हुई बड़ा ही अनमोल अनूठा आधुनिक लोकगीत सिरजती है। यह कविता अपनी सहज सरस भावात्मकता और सोंधी भीनी संवेदनशीलता के साथ जैसे समय के पार और परे पहुँच जाती है :

लोकल सौतन / यह क्या करती / गड़बड़ सरबर? / रोज सवेरे / उसे पठाऊँ / इस्त्री बन तह कर / सजा सँवार / इनसान बना कर / लौटाती तुम मगर / किस तरह रात पहर../ इसी रात की खातिर /भेजा करती क्या हर / सुबह सवेरे जीवन से भर / यूँ ज़िंदा कर / कि आये होकर /ऐसे बद से बदतर?/ लोकल सौतन / यह क्या फेरा / कैसा चक्कर...?

शहरों का स्याह सफेद तो कई रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के जरिये सामने रखा है, लेकिन महानगरीय जीवन को उसकी धड़कन तथा पूरी जीवंतता और सृजनात्मकता के साथ इस तरह शायद ही किसी ने पहले रखा हो। अनिमेष की रचनाओं में जहाँ चेतन सम्पूर्ण प्राणवत्ता के साथ मौजूद रहता है, वहीं तृण-कण में भी ऐसी हलचल होती है, जैसे वे बहुत कुछ कहना चाह रहे हों - बरसों से दबे मौन को पूरी तरह मुखर कर! सचमुच सृजनात्मकता का सर्वथा नया लोक रचा है प्रेम रंजन अनिमेष ने, हर बार की तरह अपने इस 'लोकशास्त्र 'के माध्यम से भी। आज के समय की तमाम जद्दोजहद के बीच और बावजूद आम जन-जीवन का जीवट अदम्य है, और कवि का यह 'लोकशास्त्र 'इस जिजीविषा और जीवंतता की सृजनात्मक संपुष्टि करता है। अनिमेष शब्द देते हैं उस व्यापक सच को, जिसमें संवेदना से भरपूर जीवन है, सफर के सीधे तिरछे रास्ते हैं , और इन पंक्तियों की तरह मंज़िल से भी आगे बढ़ते जाने का हौसला -

फिर भी / सच है यही / सफर यह / करने लायक है /
जो दरिया यह / पार कर सके / भीड़ होड़ से / गुजर सके /
वो ही सच्चा आशिक / सचमुच का / जन नायक है...

काल से होड़ लेता प्रेम रंजन अनिमेष का सार्वकालिक कविता-संग्रह 'संक्रमणकाल'

- शैलेश कुमार सिंह

प्रेम रंजन अनिमेष समकालीन कविता के ऐसे हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने आरंभ से अपनी गहन अनुभूति, यथार्थ अवलोकन, कलात्मक अनुशासन और अभिव्यक्ति के उत्कृष्ट निकष से सुधी पाठकों व आलोचकों का न केवल ध्यान खींचा, अपितु समकालीन कविता के परिदृश्य को ज्योतिर्मय बनाया है। अनिमेष लगातार लिख रहे हैं। उनके लेखन का परिसर बहुत व्यापक है। वे साहित्य की हर मकबूल विधा में सृजनरत हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि वे अभिव्यक्ति के जोखिमों व चुनौतियों से टकराते हैं और इस टकराहट में हर बार नवोन्मेष, नवानुसंधान व नवाविष्कार करते हुए कला के नक्षत्र को और चमकदार बना डालते हैं।

उनकी अन्यतम कृति 'संक्रमणकाल' की कवितायें कोविड 19 जैसी वैश्विक महामारी के घटाटोप में लिखी गयी अनूठी कवितायें हैं। इस संग्रह की सत्तर से अधिक कविताओं में प्रत्येक कविता अपने रूप, अर्थ और भाव में जीवन के उद्दात्त सौष्ठव का अप्रतिम गान है। इन कविताओं का रूप विन्यास भी असाधारण है- असाधारण इस सन्दर्भ में कि यहाँ अनावश्यक स्फीति नहीं है। कहन में पैनापन है। यथास्थान एक विशेष व्यंजना, वक्रता या बाँकपन भी। शब्दों में सजग व सतत मितव्ययिता विद्यमान रहती है। यहाँ शोक का विलाप नहीं। जीवन को बचाने व सँवारने का जतन व गुहार है। इन कविताओं की दूसरी खास बात यह कि आपदा में भी कला निकष की अनजाने में भी उपेक्षा नहीं दिखती-

जब था हासिल / सब था हासिल / कुछ भी उसका / था मान कहाँ?
रहे मानकर चलते / हम जिस तरह चलेंगे / चलती साथ रहेगी /
हरदम दुनिया यूँ ही/ और रहेगा चलता / अपना काम हमेशा /
जब जीवन था / तो क्या / अभिमुख उत्सुक / उसके लिए रहे /
आतुर तत्पर कब हुए / कि उसको / जीवन जैसा जियें?

प्रस्तावना की तरह संग्रह की यह आरंभिक कविता 'पूर्वराग' उस प्रवृत्ति को लक्षित करती है, जिसके तहत मनुष्य सहज उपलब्ध चीजों का मूल्य नहीं जान पाता; भले ही वह जीवन तत्व ही क्यों न हो? प्राणवायु ऑक्सीजन को ही लें, जब तक वह हमें उपलब्ध रहती है, तब तक हम उसका मूल्य कहाँ जान पाते हैं? पर जहाँ वह खत्म या दूभर हो जाता है, तब उसके लिए छटपटाने लगते हैं, दर-दर भटकने लगते हैं। हमने पेड़ों की चिंता कब की, हरियाली को कब सहेजा, जल, नीर और पानी को कहाँ सँजोया? जगत में तथाकथित रूप से आगे बढ़ने की जुगत में जो जीवनसूत्र हैं, उन्हें ही खोने लगते हैं सब :

वे नहीं जानते / धूल में पड़े / अंतिम अक्षरों जैसे / उस खत के बारे में /
जिसमें न सिर्फ उस वक्त की / बल्कि आने वाले समय की भी / कुंजी/
('धूल में इबारत')

कोरोना-कोविड19 जैसी वैश्विक महामारी ने पूरी दुनिया को एक ऐसे मोड़ पर ला खड़ा कर दिया, जहाँ से जीवन व समाज को देखने का ढंग ही बदल गया : राह नहीं है रुकी / सड़क भी खुली / मगर पहियों की है रफ्तार बंद / पगफेरी भी लाचार बंद / इस पार बंद / उस पार बंद / ज्यों हर इक खुला किवाड़ बंद..... / दलों मोर्चों मंचों को यूँ दिखा अँगूठा / हँसता ढीठ अदीठ जीव नन्हा अदना सा / बिना किसी आह्वान घोषणा / कर सारा संसार बंद... ('पृथ्वी 2020')। भले ही यह बदलाव श्मशान वैराग्य जैसी तात्कालिक अनुभूति हो, पर महामारी के दौरान और तत्पश्चात असहज व असंतुलित विकास के रफ्तार को रोक लगाने या नीतियों में बदलाव करने जैसे विचार पूरी दुनिया में सक्रिय हुए और कुछ करने के इरादे के लिए लोगों को प्रेरित अवश्य किया। साथ ही, इस वैश्विक महामारी ने प्रचलित विकास के मॉडल पर भी प्रश्नवाचक चिह्न लगा कर पुनर्विचार के लिए विवश तो कर ही दिया -

क्षमा करें / जीवन का नवविन्यास हो रहा / विस्थापित निर्वासित प्रकृति का /
पुनर्वास हो रहा / अगर असुविधा हो तो इसके लिए / खेद है /
सृष्टि संतुलन पथ निर्धारण / सूक्ष्म निरीक्षण पूर्ण परीक्षण / कार्य / प्रगति पर है...
('पृथ्वी 2020')

अकारण नहीं हैं कि इस संग्रह में भी अनेक सवाल करती कवितायें हैं। उदाहरण के बतौर कई कविताओं के नाम लिये जा सकते हैं, यथा 'कुछ सवाल (आने वाले दिनों के बारे में)', '(अ)सामाजिक दूरी', 'पार-अपार', 'अंतिम अवसान', 'उत्तर प्रश्न', 'उत्तर जीवन', 'माँ के लिए', 'साँसें', 'बिना साँस की बाँसुरी', 'उन्नीस बीस का फर्क', 'अबकी बार' आदि। उदाहरणार्थ, बड़ी ही छोटी मगर गहरी कविता 'उत्तर प्रश्न' देखी जा सकती है :

उस्तरे पर / सिर धर कर / सोचता / आँखें भर कर / आपदा और बंद के /
इन दिनों में / सीख ली है जिन्होंने / हजामत बनानी / आप ही अपनी /
वे क्या फिर / आयेंगे लौट कर / उसके दर पर...?

यहाँ उल्लेखनीय है कि प्रेम रंजन अनिमेष के प्रकाश्य कविता संग्रह 'प्रश्नकाल शून्यकाल' में सारी ही कवितायें बेधक प्रश्नपरक हैं जो हमारे समय के जरूरी और ज्वलंत सवाल उठाती हैं। संग्रह की प्रत्येक कविता की टेक प्रश्नवाचकता है और उसका विराम भी प्रश्नचिह्न। संभवतः दुनिया भर में यह अपनी तरह की अनूठी और अकेली कृति हो!

वर्तमान विकास मनुष्य केन्द्रित है, वह भी एक खास वर्ग के लिए समूची प्रकृति का दोहन। आज पूरी दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपभोग दुनिया के महज दस प्रतिशत लोग ही कर रहे हैं। विशिष्ट वर्ग के लिए विकास का यह मॉडल मानव समाज को भले ही स्वीकार्य हो, पर प्रकृति भला इस असमान, असहज, असामान्य व अप्राकृतिक विकास को कैसे स्वीकार कर सकती है! 'साँसें' कविता में इसी ओर संकेत करते कवि कहता है : ये हैं / तो हम हैं / पर क्या हमसे / है कहीं / पेड़ कोई / हरियाली / जंगल / नदी / बयार / या बहाव...? और आगाह करता है 'अभविष्यत' के लिए -

उस महानता से सावधान / जिसमें अपने आप से अनजान /

दरअसल और छोटा और छोटा / होता जाता इनसान /
उस महत्वाकांक्षा को दूर से प्रणाम / धँसता जिसमें जितना कोई /
और उठाता सिर उसका / अहंकार अभिमान / यह अंतिम न सही /
अग्रिम चेतावनी / अवश्य..

किसी भी वृहद आपदा की तरह महामारी को भी, विकास के पूँजीवादी व साम्राज्यवादी नीतियों का दुष्परिणाम कहा जा सकता है। अधिकतम लाभ आधारित अर्थव्यवस्था का कुफल आज पूरी दुनिया को भुगतना पड़ रहा है। यह और बात है कि जहाँ संवेदनशीलता न के बराबर है, प्रकृति के इस सांकेतिक संदेश को समझने की कोई सार्थक पहल दिखाई नहीं देती। संग्रह के उरुज पर 'अबकी बार' तथा 'एक और अवसर' जैसी कविताओं के जरिये इसी ओर अवधान दिलाना चाहते हैं अनिमेष -

एक और अवसर देगा जीवन / बना लेने के लिए भविष्य /
बदल कर यह वर्तमान... / एक और अवसर देगी /
उदारहृदया यह सृष्टि / अब हम पर है /
मिल कर उसका / क्या करते... / ('एक और अवसर')
अबकी बार / क्या हम इस आत्मवास से / करुणतर निकलेंगे /
विनम्रतर निकलेंगे / मनुष्यतर निकलेंगे / पहली सुबह देखते /
निश्छल शिशु आँखों के जैसे...? ('अबकी बार')

प्रेम रंजन अनिमेष की कविताओं की एक और खासियत उनकी सहज किंतु महीन कलात्मकता, लयात्मकता और संगीतात्मकता भी है। संगीत की वाटिका को नाद और शब्द मोहक बनाते हैं। इसी मोहकता का एक स्वर गीत होता है, जो शब्दों, छंदों और लय के अनुशासन से अपना स्वरूप ग्रहण करता है। महाकवि निराला ने जबसे हिन्दी कविता की राह को, छंदों के भार व अनुशासन की कठिन सरणि से मुक्त किया, तब से यह एक महामार्ग पर सरपट दौड़ने लगी। इस विस्तृत राह की जहाँ एक तरफ कुछ विशेषतायें हैं तो वहीं दूसरी तरफ कुछ सीमायें भी। इस राह की कविताओं ने गद्य-पद्य के विभाजन को लगभग खत्म-सा कर दिया है। इसका फल या कुफल जो भी कहें, कविता की अभिव्यक्ति की राह आसान तो अवश्य हुई है। यह और लोकतांत्रिक, बहुमुखी और ग्राह्य हुई है। इसके रचनाकारों की न केवल संख्या बढ़ी है, अपितु उनका आत्मविश्वास भी बढ़ा है। अनुभव की विविधता भी बयां हुई है। इस बहुलताई में किन्तु कविता का जो मूल स्वर था लय का, वह कहीं बिला सा गया है। वैसे उस अदृश्य लय की चाहना कभी खत्म नहीं हुई। उसका दूरागत आलाप गोधूलि के वक्त गड़ेरिए के कंपन भरे गान सा दृश्यमान हो उठता है, जिसमें कमाल की हूक होती है। यह हूक फरियाद की तरह तथा गुहार वाली भाव-भंगिमा में सहसा तब्दील होती दिखने लगती है।

यहाँ कविता के आन्तरिक लय की बात हो रही है। महाकवि निराला ने कविता को बाह्य लय से मुक्त कर उसके आन्तरिक लय से युक्त व मंडित किया था। 'राम की शक्ति पूजा' इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है। दुर्भाग्य से कालान्तर में कवि से कविता की आन्तरिक लय छूटती गई। और अब आलम यह है कि आज के कवियों में लय का राग सिरे से नदारद है। उन्हें इसका भान व ज्ञान ही नहीं है। प्रेम रंजन अनिमेष की

कविताओं में आन्तरिक व कभी कभी बाह्य लय छिटककर शब्दों के ललाट पर तिलक सोहे की नाईं दमकने लगता है। अनिमेष की काव्य-कला में किसी विलुप्त लोकगीत की सी दुर्लभ कशिश है। यह अंतर-लय- संगीत 'माँ' श्रृंखला की कविताओं सरीखी उनकी आत्मिक आत्मीय व जीवनराग भरी कविताओं में तो है ही :

एक उम्मीद को जन्म दिया है मैंने / मन का विश्वास बनना है तुम्हें /
कि यह दुनिया रहे / नदियाँ और हवायें यूँ ही बहें /
और आने वाला कल भी इन्हें कहें
('भोर की लोरी')
अबस अवस्था / जर्जर काया / विकट मामला / मन ने फिर भी /
बाँधा कैसे / अकथ हौसला / बच्चों यूँ / मत शोर मचाओ /
हँसो / तालियाँ और बजाओ... / ('प्रयाण')

एक बिलकुल अलग फलक पर लिखी संक्रमणकाल 'की कविताओं में भी लयात्मकता-संगीतात्मकता की आभा देखी जा सकती है। समय की कठिनतम चुनौतियों के सामने भी अनिमेष ने बड़ी ही सहजता और खूबी से जीवनसत्व के सदृश इसे बनाये-सँजोये रखा है, जो उनके सधे और मँजे हुए काव्य-कौशल का सशक्त साक्ष्य है। बल्कि काल से नजरें मिलाती किसी कालातीत श्रेष्ठ रचना सरीखी बहुसंस्तरीय 'बंद में निर्बंध' को, एक तरह से छंदमुक्त या मुक्तछंद कविता में लय-संगीतात्मकता के प्रस्तावना-पत्र के तौर पर भी देखा जा सकता है।

गेह बंद / हर देह बंद / है नेह बंद/ अब कौन छंद / इतना स्वछंद? /
हद बंद / बंद बेहद अनहद/ मगर कहीं निर्बंध / विहँसती मंद / छिटकती गंध /
तोड़ती बंद / अनाहत ज्यों कोई आनंद... /

कुछ और उदाहरण यथेष्ट होंगे :

जीवन यात्रा / स्वतः वस्तुतः / सत्य स्वप्नतः / स्त्रीयात्रा भी / यदि न पूर्णतः /
किंतु प्रमुखतः / स्त्रीयात्रा ही / भले देखने वाले / देख सकें ना /
यात्रा उनकी / चलती रहती / सतत निरंतर.. ('यात्रा उनकी')
दरवाजों पर / नहीं दिनों से / कोई दस्तक / मगर /
खिड़कियों पर / चिड़ियों की / खूब चहक..... / फिर भी तक तक
पूछे मन थक / रह रह कर यह / रहना ऐसे / कितने दिन तक /
कितने दिन तक... ('पार अपार')

प्रेम रंजन अनिमेष बहुपठ रचनाकार हैं। कला के प्रति जागरूकता, समर्पण, साधना और संधान उनके रचनात्मक अवदान का सुफल है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, वैचारिकी, गीत, गजल, वार्ता, अनुवाद, संस्मरण, पटकथा, रेडियो लेखन तथा संगीत आरेखन (स्वयं स्वरबद्ध संगीतबद्ध कम्पोजिशन) सदृश साहित्य कला विधाओं में सतत सार्थक सृजन इस बात का प्रमाण है कि वे एक प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। अनिमेष का विविधता भरा लेखन, 'बायोडाटा एक्टिविटीज' नहीं है और न ही 'सजनी हमहूँ राजकुमार' जैसा दर्ज व दर्शन कराने की मंशा से किया गया लेखन है। प्रेम रंजन अनिमेष पूरी तैयारी, लगन, निष्ठा और ईमानदार प्रतिबद्धता (कमिटमेंट्स) के

साथ लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। हिन्दी जाति व हिन्दी भाषा के गौरवशाली साहित्यिक परंपरा को और सुदृढ़, सुन्दर, व्यापक, सरोकारपरक तथा और रसात्मक-रागात्मक एवं लोकात्मक बनाने के संकल्प व दायित्व से बँधे होने के कारण उनमें लेखन के प्रति गहरी संपृक्ति दिखाई देती है। इस सकारात्मक और सृजनात्मक प्रतिबद्धता से ही यह संभव हो सका कि कोविड-19 के भयानक काल में भी कवि ने न केवल अपनी रचनाशीलता सतत अप्रतिहत रखी, बल्कि उसे नित और नयी ऊँचाइयों तक ले जाते रहे! इसी का सुफल है काल की कोख से निकला, सामयिक व प्रासंगिक, किन्तु समय को अतिक्रांत करता हुआ सार्वकालिक महत्व का यह कविता संग्रह 'संक्रमणकाल', जो हिन्दी ही नहीं, अपितु समस्त विश्व-साहित्य के लिए एक मील का पत्थर है और कविता का नया प्रस्थान बिंदु भी।

दूरभाष : 7208299906

'थोड़े अच्छों को खराबों ने बचा रक्खा है': प्रेम रंजन अनिमेष की ग़ज़लों का संसार

प्रदीप कान्त

कोई अच्छा न रहे तो न रहेगा कुछ भी,
थोड़े अच्छों को खराबों ने बचा रक्खा है।

प्रेम रंजन अनिमेष का यह शेर उनके कहन को बखूबी बयान कर देता है। सयाने लोग कहते हैं कि अच्छे लोगों के कारण ही यह दुनिया बची हुई है। अनिमेष अपने शेर में बड़ी खूबसूरती से इसका दूसरा पहलू भी बयान कर जाते हैं कि दुनिया में थोड़े बचे रह गये अच्छों की कद्र बुरों की ज्यादा तादाद के कारण है, और शायद कुछ अच्छे लोगों को बचाये रखने की उनकी मजबूरी की वजह से भी! प्रेम रंजन अनिमेष अपने बेहतरीन कथ्यों के साथ एक सुपरिचित कवि हैं। मुझे उनकी कविता 'छाता' हमेशा याद आती है, जहाँ वे छातों को रिश्ते-नातों की तरह बताते हैं -

बराबर लगता है / छाते / रिश्ते नाते हैं / बरसात में काम आते हैं /
और अक्सर छूट जाते हैं।

बतौर एक बिंब या प्रतीक छाता उनकी गजलों में भी आता है, और हर बार अपनी अलग अनूठी भाव छटा के साथ -

छातों से टकराते छाते / बरसाती ये रिश्ते नाते /
आज फिर घर पर ही छाता रह गया
आज फिर बरसात का इमकान है।

दुनिया के वर्तमान हालात को देखते हुए तो अनिमेष की यह बात सच लगने लगती है कि इस मुहब्बत को किताबों ने बचा रक्खा है:

एक सच है जिसे ख़्वाबों ने बचा रक्खा है /
इस मुहब्बत को किताबों ने बचा रक्खा है /
एक बच्चे के सवालों से बनी है दुनिया /
जिसको इक माँ के जवाबों ने बचा रक्खा है /

बच्चे के सवाल और माँ के जवाब – इससे बढ़कर मासूम और परिपक्व दुनिया क्या हो सकती है? बच्चों के सवालों का जवाब देना सबसे मुश्किल होता है, ग़ज़लकार अनिमेष एक बच्ची के सबसे कठिन सवाल को बड़ी सरलता के साथ उठाते हैं –

सबसे अच्छी पुस्तकों के पृष्ठ ही फटते हैं क्यों
पूछती है कोई बच्ची मुझसे पुरखन की तरह

अब अगर बच्चे गजल में आते हैं तो माँ भी अपनी पूरी शिद्दत के साथ आएगी–

माँओं की खोयी लोरियाँ ढूँढ़ो / घर में बिखरी कहानियाँ ढूँढ़ो /
माँ के आँचल की महक है ज़िंदा / मुझमें बचपन की किलक है ज़िंदा।
चाय तुलसी की पत्तियों वाली / माँ बहुत आज याद आई है /
गाढ़ी ही होती जाती है ममता तो दिन ब दिन

माँ तुझको और उम्र ने सुंदर बना दिया।

और माँ न केवल बच्चों को सँवारती-सजाती है, बल्कि पूरे परिवार के जीवन की धुरी है, उसे बचाये-बनाये रखने वाली। जिस तरह माँ परिवार की धुरी है उसी तरह सार्वभौमिक रूप से स्त्री संसार की धुरी है जो उसे सुन्दर बनाकर रखती है –

क्योंकि इसको बनाती है औरत / ज़िंदगी इतनी खूबसूरत है

हमारे समय के बहुत से मुद्दे, मुद्दों के सूत्र अतीत ही नहीं, भविष्य से भी जुड़े होते हैं। उनके कभी खत्म होने की कोई सम्भावना भी नजर नहीं आती। किसान, जिसे हम अन्नदाता कहते हैं, उसकी बदतर हालत भी एक शाश्वत मुद्दा है –

इस दफा भी फसल पिछली बार-सी है / खेत सूखे जख़्म.सबके सब हरे हैं /

X X X

आजाद हुए मुल्क को कितने बरस हुए / जाकर कभी तो खेत कछारों से पूछिये /

ऐसा ही एक मुद्दा है– साम्प्रदायिकता। हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, लेकिन साम्प्रादायिक मानसिकता की गुलामी से कब मुक्ति पायेंगे, यह पता नहीं। अनिमेष की गजलें इस मुद्दे को कई तरह से परखती हैं–

बात है क्या गाते मीरा को / हो जाते अब मीर दुखी क्यों /

सारे चेहरे हैं एक से झुलसे / मजहबों का जुनून क्या देगा।

अल्फाज कम हैं उनकी महारत के वास्ते।

जो मुल्क बाँटते हैं सदारत के वास्ते ।।

भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में एक बात कही जाती है- 'वसुधैव कुटुम्बकम'। यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि इस से हमारी भारतीयता की पहचान बनती है। इसीलिए साम्प्रदायिकता के मुद्दे के बावजूद अनिमेष का कहना है -

सारी दुनिया को मानता अपना। दिल में हिन्दोस्तान है कोई ।

फिर मछेरे नाव लेकर चल दिये । पेट से बढ़ कर कहाँ तूफान है॥

कुछ खा-खाकर अघाते हैं और कितने ऐसे जिन्हें आधी रोटी भी नसीब नहीं होती। इसके लिए मुख्य तौर पर जिम्मेदार है, धन का असमान वितरण, जिसके कारण दुनिया की आबादी का अधिकांश किस्सा चन्द अमीरों का चाकर है। जमीन के कारोबार में कितनी बस्तियाँ नष्ट कर दी जाती हैं कि बिल्डिंगें बनाकर करोड़ों कमाए जा सकें। साधन-संपन्न लोग आलीशान फ्लैट खरीद कर चैन से रहते हैं, पर अनिमेष का संवेदनशील मन यह कटु सत्य शेर में उठाता है कि क्या इन बिल्डिंगों के रहवासी चैन से रह सकते हैं-

कैसे रहेगा इसमें कहीं चैन या सुकून, / सौ झोंपड़े गिरे हैं इमारत के वास्ते।

और इसीलिए यह ग़ज़लकार इस बदतर दुनिया पर सवाल उठाता है –

आयें क्यों हम तुम्हारी दुनिया में / कोख से नौनिहाल पूछेंगे।

सवाल देश की जनता के हाल पर भी उठता है और अनिमेष को स्वराज का सपना देखने वाले बापू तस्वीरों में दुखी नजर आते हैं –

नोटों पर और दीवारों पर, / बापू की तस्वीर दुखी क्यों ।

दुनिया में वर्ग भेद कई तरीकों से नजर आता है– स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, प्रजा-

राजा या जनता-सत्ता आदि। जनता और सत्ता के बीच के मुद्दे को भी अनिमेष अच्छी तरह से जानते है–

मुद्दतों से घर अँधेरों से भरे हैं / जाने हम किस रोशनी के आसरे हैं। /
है यहाँ राजा घिरा अपने ही मोहरों से / शह बदल कर आप कैसे मात बदलेंगे। /
किसलिए 'अनिमेष' है जनता रुआँसी / मंच पर तो इतने सारे मसखरे हैं।
क्यों कुशासन हो न शासन में हैं दुश्शासन जहाँ /
कौन सिंहासन को अब समझे कुश आसन की तरह।

किसी भी समाज और देश को अनुशासित रूप से चलाने के लिए कुछ नियम बनाए जाते हैं। इस बड़े देश को चलाने के लिए भी एक लिपिबद्ध कानून है, जिसे हम अदब से संविधान कहते हैं। दुखद यह है कि संविधान न तो बोल सकता है, न ही निर्देश दे सकता है। अब नियम से चलने की जिम्मेदारी नागरिक की है और न चले तो पालन कराने जिम्मेदारी न्यायपालिकाओं की। पर ऐसा कितने मामलों में होता है? इसीलिये अनिमेष पूरी जनसंवेदना को इस तरह जुबान देते हैं –

सब कुछ भरा है दिल में मगर बेजुबान है / वो आम आदमी है नहीं संविधान है।
और बिना किसी धन या पहुँच, न्याय मिलना भी आसान नहीं –
एक है क्या विधान सबके लिए / सच में क्या संविधान है कोई ।

कुछ सवाल ऐसे होते हैं, जिनके जवाब अलग-अलग हो सकते हैं, अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार। ऐसा ही एक सवाल है कि गाँव और शहर में क्या अंतर है? कोई कहेगा जनसंख्या तो कोई कहेगा जात-पाँत, तो कोई इनसानियत और इनसाफ के मुद्दे भी उठायेगा। अनिमेष जवाब ढूँढते- ढूँढते रिश्तों तक पहुँच जाते हैं–

पहली बरसात में रस्ते ये उघड़ जाते हैं /
शहर के रिश्ते हैं बनते ही बिगड़ जाते हैं।
और फिर चार दिन की चाँदनी फिर वही अँधेरी रात भी –
जख़्म फिर अपने गिना करता है खाली मैदान
शामियाने तो कुछ एक दिन में उखड़ जाते हैं।

पिछले कुछ वर्षों में खासकर इक्कीसवीं सदी की शुरूआत से दुनिया में बहुत तेजी से बदलाव आया है। यह बदलाव कई चीजों में रेखांकित किया जा सकता है– मसलन, हमारी जीवन शैली बदल गई है, हमारे रिश्तों की गर्माहट और संवेदना में कमी आ रही है आदि-आदि। रचनाकार कोई भी हो, इस बदलाव को महसूस करता है। अनिमेष जैसा संवेदनशील रचनाकार कुछ कमियों को बड़ी गहराई से महसूस करता है -

घर में दीवारें तो हैं पर / खिड़कियाँ कम हो रही हैं /
अब किसी की याद वाली / हिचकियाँ कम हो रही हैं /
पेड़ सूखे हाथ उठाये / बदलियाँ कम हो रही हैं /
गाँवों में मौतें ही ज्यादा / खेतियाँ कम हो रही हैं /
ज़िंदगी की माचिसों में / तीलियाँ कम हो रही हैं।

ग़ज़ल हो और उसमें प्रेम की अभिव्यक्ति न हो, ऐसा हो ही न ही सकता। अपना अंदाज-ए-बयां रखने वाले एक सुलझे ग़ज़लकार की तरह अनिमेष प्रेम को भी अपने

अलहदा तरीके से बहुत प्यार और शिद्दत से छूते है, जैसे हवाएँ पानी को हौले-हौले सहला रही हो–

जैसे परसें हवाएँ पानी को / तुझको छूकर यूँ ही गुजर जाऊँ।

ग़ज़ल का एक तयशुदा शिल्प होता है, जिसमें बहर, काफिया और रदीफ का महत्वपूर्ण स्थान है। अनिमेष की कुछ ग़ज़लों में काफिया का उपयोग खूबसूरत तो है ही, अर्थपूर्ण भी है। उनकी एक ग़ज़ल है, जहाँ नमक, चहक, दहक, गमक आदि का खूबसूरत और सार्थक उपयोग हुआ है -

है हँसी सच्ची उन्हीं होंठों की / जिनमें आँसू का नमक है ज़िंदा /
भोली दुलहन में छिपी इक बच्ची / जिसमें चिड़ियों की चहक है ज़िंदा /
दोनों हाथों से सहेजो ये आँच / इस अँगीठी में दहक है ज़िंदा /
आदमी को जो बनाती इनसान / वो पसीने की गमक है ज़िंदा /
नींद आती नहीं नेकी के बिना / मुझमें पुरखों की सनक है ज़िंदा /
मारा जाऊँ न इसी के चलते / मेरी आँखों में चमक है ज़िंदा /
साथ बरतन हैं तो टकरायेंगे / इनसे रिश्तों में खनक है ज़िंदा /
मर गया वो मरा जिसका पानी / जिसकी भीगी है पलक है ज़िंदा /
ये नये सपने सँजो लो इनमें / इक नये सच की ललक है ज़िंदा /
ज़िंदगी प्यार भरोसा 'अनिमेष' / आज में कल की किलक है ज़िंदा।

यह रचनाकार की क्षमता होती है कि वह विधागत तयशुदा शिल्प में बखूबी रचे और यह क्षमता तब और बढ़ जाती है जब वह अपने कथ्यों को प्रयोगधर्मिता से रचे–

ज़िंदगी की अजीब गाड़ी है / बेटिकट इसमें हर सवारी है /
कोई जाने नहीं उतरना कब / अगले टेसन पे किसकी बारी है / xxx /
बन के विदूषक राजा पूछे / जनता यों गंभीर दुखी क्यों /
जिन किताबों को वक्त पढ़ता है / उन किताबों की गलतियाँ ढूँढ़ो /
पंख जिनके पड़े हैं पन्नों में / वो परिंदे वो तितलियाँ ढूँढ़ो /
दर जहाँ दिल की तरह खुलते हों / कोई तो ऐसा आशियाँ ढूँढ़ो /
देह तो तट नहीं है सागर का / इसमें मत शंख सीपियाँ ढूँढ़ो /
अपना सब कुछ लुटा के बेटों पर / तनहा पीरी में बेटियाँ ढूँढ़ो /
दिल ये सरकारी महकमा कोई / इसमें मत अपनी अर्जियाँ ढूँढ़ो /
रास्ते पर अब है दुलहन / सिसकियाँ कम हो रही हैं /
अनमना सा क्यों है बैठा तन का नर्तन देखता /
मन के पानी के लिए कर तन को बरतन की तरह /
इक वही रेखा अभी तक बाँधे जो लक्ष्मण ने दी /
इक वही धोखा सदा भरमाये रावन की तरह /
इस तरह भावुक नहीं होते / सबके तो सम्मुख नहीं होते /
अब है कहाँ इतवार वो जिसमें / सूरज उठता था अलसाते /

जमीनी जुड़ाव, सरोकार, संवेदना, सोच और आसमानी वितान और उड़ान रखने वाला अनिमेष का कवि मन किसानों और जनसामान्य के हालात से शुरुआत कर एक

छोटी बहर में पूरे देश और दुनिया को समेटता कितनी बड़ी बात कह जाता है, वह भी कितनी आसानी और अपनेपन से भरी जुबान में, यह ग़ज़ल उसकी एक बानगी है–

मेरे अंदर किसान है कोई / मोल जिसका न मान है कोई /
सातवें आसमान के ऊपर / सुनते हैं आसमान है कोई /
झाँक कर देखो उभरे सीनों में / रोज धँसती खदान है कोई /
अब ये तनहाई भी कहाँ तनहा / इसके भी दरमियान है कोई /
खोजती सीता क्या अयोध्या में / कहीं करुणानिधान है कोई /
अब लड़ाई है खुद की खुद से भी / कहाँ गीता का ज्ञान है कोई /
काटते वक़्त हाथ रुक जाते / जैसे फसलों में जान है कोई /
भाग्य का भी कहीं विधाता है / जन के मन में गुमान है कोई /
अब कफन से भी तन नहीं ढँकता / हर तरफ खींचतान है कोई /
शायरी कह के मत करो कमतर / दिल से निकली अजान है कोई

वह बच्चों का बचपन और उन निश्चल निर्दोष आँखों के मासूम सपनों को बचाना चाहता है, उन्हें अंदर से मजबूत कर, उनकी प्राणशक्ति और प्रतिरोधशक्ति को बढ़ाकर

धूल में सच की खेलने दो इन्हें / ख़्वाब पलकों के जो रुपहले हैं /

यही अंतर्निहित जिजीविषा और संजीवनी ही इस निर्मम और कठोर समय व परिस्थितियों में न केवल जीने बल्कि जीवन को जीवन बनाने और उसके लिए दुनिया में जरूरी बदलाव लाने का भी हौसला भरती है –

क्या क्या नहीं हुआ किसी बेबस के साथ रात /
फिर सुबह सुर्ख़ियों ने खबर भर बना दिया /
पानी था जिनमें ऐसी कुछ आँखों ने मिल के साथ /
सहरा को धीरे धीरे समुंदर बना दिया /

बच्चे हों, माँ हो, घर हो, संसार हो, खेत हो, किसान हो, जनता का दुःख हो या सत्ता की मसखरी– अनिमेष जिदगी इन तमाम रंगों को व्यक्त करते नजर आते हैं और अपनी आस को कभी नहीं छोड़ते –

आज भी धरती है ये उम्मीद से / दूब है आँचल में और कुछ धान है /
और यही उम्मीद तो जीने का हौसला प्रदान करती है !

जीवन के करीब पहुँचने का प्रयास करती हैं प्रेमरंजन अनिमेष की ग़ज़लें

– के. पी. अनमोल

यह सच है कि कविता का समकाल उसे खुरदुरेपन की ओर ले जाता है लेकिन वह उसे एक जरूरी तत्त्व भी देता है, वह है खरापन। कविता जीवन के जितनी करीब होगी, खरी होगी। प्रेमरंजन अनिमेष की ग़ज़लें यही खरापन तलाश करती हुई जीवन के करीब पहुँचने का प्रयास करती हैं। अनिमेष जी को पढ़ते हुए इनकी ग़ज़लों में ऐसे अनेक बिंदु मिलते हैं, जो इन्हें एक कामयाब ग़ज़लकार बनाने में सहायक होंगे। उनमें से एक बिंदु है, ग़ज़ल की सॉफ्टनेस को बरकरार रखते हुए अपने दौर की शायरी करना। इनकी ग़ज़लों में जीवन और उसकी जद्दोजहद साफ दिखायी पड़ती है।

अपने वर्तमान को जीते हुए जब वे ग़ज़लगोई करते हैं तो शहरी जीवन की चमक-दमक और भागदौड़ के बीच परिदृश्य का एक दूसरा पहलू बड़ी गंभीरता से उजागर होता है। अपनी मर्जी से जीने की ललक शहरी जीवन का एक ऐसा हिस्सा है, जो अपनी बगल में अकेलापन, तनहाई, अजनबीयत और ऊब जैसी कई घातक चीजें दबाये रहता है तथा बड़े ही शातिरपने से इंसानियत की गर्दन रेतता रहता है।

बड़े घरों और महँगी कॉलोनियों में रहना इंसान को अपने समाज और जड़ों से इतना दूर कर देता है कि न हमें अपने पड़ोसी से कोई सरोकार बचता है न सहभागिता पूर्ण जीवन से। जहाँ लोग सुबह-शाम घरों से आते या जाते समय अभिवादन भर कर लें या कभी-कभार कार्यकर्मों में अपनी शान दिखाने के बीच दो बोल बोल लेने में खुद को धन्य मानते हों, वहाँ किसी से मन भर बतियाने का खयाल ही बेकार है। ऐसे में लगता है कि इंसान जहाँ एक ओर चाँद-सितारों पर बसने की योजनाएँ बना रहा है, वहीं एक से दूसरे दिल की दूरियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। इस शहरी अजनबीपन की स्थिति को ध्यान में रहते हुए अनिमेष जी कहते हैं-

होती कहाँ है दिल से किसी दिल की गुफ़्तगू /
कहने को चाँद-तारों पे टॉवर बना दिया।

सुबह में हैं सुर्खियाँ अखबार की / शहर ये इक बंद रोशनदान है।

है बहुत अनजान गलियों से सड़क / सीढ़ियों से घर हर इक अनजान है।

सरहदें हैं और भी इन सरहदों में / घेरे सबको अपने-अपने दायरे हैं।

यह अपने-अपने दायरों में सिमटते जाने का रोग इंसान को अनेक मानसिक रोगों की तरफ धकेल रहा है। आने वाला समय इसके भयावह परिणाम लेकर आता है, तो कोई आश्चर्य नहीं। प्रेमरंजन अनिमेष जी की ग़ज़लों में इनका समकालीन परिदृश्य मुखर होकर प्रस्तुत होता है। परंपरागत शायरी की कहन में ये समकालीन सरोकारों के कथ्य का बहुत गंभीरता के साथ सम्मिश्रण करते हैं और इस कारण इनका ग़ज़ल लेखन इन्हें अन्य ग़ज़लकारों से कुछ अलग बना देता है। अपने समय का विसंगत किस तरह इनके शेरों में अभिव्यक्त होता है, देखें-

मुद्दतों से घर अँधेरों से भरे हैं / जाने हम किस रोशनी के आसरे हैं /

कैसे रहेगा इसमें कहीं चैन या सुकून / सौ झोंपड़े गिरे हैं इमारत के वास्ते /
कल के सपनों में कुछ तो हो तरतीब / आज के सच हैं कितने बेढब-से।

दुनियाभर में व्याप्त धार्मिक कट्टरपन के परिणामों पर अगर गौर किया जाए तो निष्कर्ष यही मिलेगा कि कट्टरता की आग सभी को झुलसाकर छोड़ती है, बख़्शा कोई नहीं जाता फिर भी आदमी बाज आने को तैयार नहीं। तभी एक रचनाकार को कहना पड़ जाता है-

सारे चेहरे हैं एक-से झुलसे / मजहबों का जुनून क्या देगा।

यहाँ शेर का दूसरा मिस्रा चिन्ता और चिंतन को एक साथ समेटे हुए है। काश यह चिन्ता हमारे भारतीय समाज के हर नागरिक की चिन्ता हो सके और चिंतन का कोई रास्ता निकल सके। खैर रचनाकार का दायित्व है कि वह प्रश्न खड़ा करे। चकाचौंध से भरे इण्डिया तथा संघर्षरत भारत के बीच बढ़ते हुए अंतर को देखने को आज कोई राजी नहीं। पूंजीवाद के दौर में जब भावनाएँ तक बाजारी वस्तु की तरह बेची जा रही हों, तब किसी पिछड़े हुए साथी के विषय में सोचना भी बेवकूफी से अधिक कुछ न होगा। इस तरह की स्थिति-मनःस्थिति में 'अब कौन सोचता है' एक तमाचे की तरह है। शेर देखें-

हर ओर दिख रहा है चमकदार इंडिया / अब कौन सोचता कहीं भारत के वास्ते।

प्रेमरंजन अनिमेष जी के ग़ज़ल लेखन से गुजरते हुए यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि इनकी संवेदना समाज के निचले स्तर के व्यक्ति के साथ खड़ी है। वे उस वर्ग के दर्द को केवल महसूस ही नहीं करते बल्कि उस पर चिंतन करने के लिए अपने पाठक से आग्रह भी करते हैं। वे जानते हैं कि कोई देश अगर इमारत है तो श्रमसाध्य वर्ग उसकी नींव की तरह है यानी इस वर्ग की मजबूती के बगैर देश की मजबूती का खयाल हकीकत नहीं हो सकता। इसी संवेदना का इनका यह शेर-

फिर मछेरे नाव लेकर चल दिये / पेट से बढ़ कर कहाँ तूफान है।

जिजीविषा और जद्दोजहद का यह शेर, मछुआरे को प्रतीक बनाकर भूख से लड़ते तमाम लोगों का प्रतिनिधित्व करता है।

समय अपने साथ स्वतः बदलाव लेकर आता है। यहाँ कोई भी चीज समय के साथ बदलती ही बदलती है। बदलाव को प्रकृति का नियम माना गया है। लेकिन नए समय में होने वाले बदलावों पर हमने हर जगह लोगों को कुढ़ते, बड़बड़ाते देखा है। हर चीज में नकारात्मकता तलाशने वाले लोग, सकारात्मकता को अनदेखा करते चलते हैं। अनिमेष जी ऐसा नहीं करते। ये अपने आसपास होने वाले सकारात्मक बदलाव का स्वागत भी करते हैं और उससे खुश भी दिखते हैं, यह बात हम इस शेर के माध्यम से जान सकते हैं। यहाँ एक चीज और ध्यान देने लायक है और वह है इनका ऑब्जेर्वेशन-

हम जो चुपचाप सहा करते थे अब उसके लिए
अच्छा लगता है जो बच्चे ये झगड़ जाते हैं।

यहाँ इस शेर में निहित एक तथ्य है 'अपने हितों के लिए संघर्ष करना' और यही तो एक प्रतिबद्ध रचनाकार अपने आसपास के लोगों से चाहता है। सकारात्मकता की बात चली है तो लगे हाथ हम अनिमेष जी की ग़ज़लगोई की एक और खासियत पर बात

कर लेते हैं। यह खासियत है सकारात्मक ऊर्जा से भरे शेर। जहाँ एक रचनाकार की जिम्मेदारी अपने समय के विसंगत की खबर लेने की होती है, वहीं एक जिम्मेदारी यह भी होती है कि वह आम लोगों को जीवन में आगे बढ़ने के लिए अपने लेखन के द्वारा प्रोत्साहित करता रहे। हमारे हिन्दी साहित्य की परम्परा में इस तरह का प्रेरक साहित्य हमेशा से रचा जाता रहा है। हिन्दी ग़ज़ल में भी वही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

अगर हो चाह निकल आती राह भी खुद ही / सिखाता कौन है पानी को रास्ता करना।
हथियार था कोई न ही औजार अपने पास / हम पैदलों ने रास्ता चलकर बना दिया।

यहाँ इन शेरों में जीवट के साथ-साथ कहन की खूबसूरती भी ध्यान खींचती है। मजबूत कहन इनकी ग़ज़लों की एक विशेषता है भी। दरअस्ल इस समय की हिन्दी ग़ज़ल में जिन तत्त्वों पर ध्यान दिए जाने की जरूरत जान पड़ती है, वे अनिमेष जी के पास अनायास उपस्थित मिलते हैं। ये तत्त्व हैं- ग़ज़ल का नाजुक स्वभाव, कहन की मजबूती तथा समकालीन कथ्य। हाँ, यह भी सच है कि इन्हें अभी अपनी ग़ज़लगोई पर बहुत काम करना है। परम्परागत शैली को थोड़ा-सा छोड़ते हुए सम्प्रेषण को और सरल बनाए जाने की जरूरत है। इसके लिए ये प्रयासरत भी दिखाई पड़ते हैं। बहरहाल सलीके की शायरी भी इनके यहाँ पायी जाती है, देखें-

अच्छाइयों की राह पे चलना सहल नहीं /
लेकिन ये ऐसी शै है कि जिसका बदल नहीं।

उसने जीवन को उस तरह जाना / जिसपे वो जिस तरह से बीता है।
लोहा तो एक ही है मगर सोच मुख़्तलिफ / जिसने उसे कुदाल या खंजर बना दिया।

इनकी ग़ज़लों को पढ़ते हुए एक चीज और जो ध्यान खींचती है, वह है स्त्री विमर्श के शेर। अनिमेष जी के पास समाज और परिवार में संघर्षरत महिला के लिए जरूरी सहानुभूति तो मिलती ही है, महत्वपूर्ण बात यह भी है कि ये महिलाओं के पक्ष में उनके साथ खड़े मिलते हैं। यहाँ पहला शेर, जहाँ हमारे समाज में एक महिला की स्थिति का अंकन करता है वहीं दूसरा शेर उसके उत्पीड़न के खिलाफ आक्रोश व्यक्त करते हुए व्यंग्यात्मकता के साथ प्रहार करता है। यहाँ दूसरे शेर में भाषाई शिष्टता में रहते हुए बहुत कुछ कह जाना प्रभावित करता है।

कभी इतिहास होती है, कभी उपहास होती है / किसे अहसास है औरत भी इक अहसास होती है। देते हर रोज कोख को गाली / तुम क्या आये हो और करतब से।

प्रेमरंजन अनिमेष जी का ग़ज़ल सृजन, हिन्दी ग़ज़ल की मुख्य प्रवृत्तियों की ओर तेजी से अग्रसर होता दिखता है। इनकी ग़ज़लों के क्रमिक विकास को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ये ग़ज़ल लेखन में सजगता, प्रतिबद्धता और परिश्रम के साथ संलग्न हैं। ग़ज़ल में सुनहरे भविष्य की शुभकामनाएँ प्रेषित करने से पहले उनके इस ताजादम खयाल और पुख़्ता कहन के शेर का उल्लेख करने से स्वयं को नहीं रोक पा रहा। आशा है अनिमेष जी ऐसे गूँज पैदा करने वाले शेरों का सृजन करते रहेंगे।

जख़्म फिर अपने गिना करता है खाली मैदान
शामियाने तो कुछ एक दिन में उखड़ जाते हैं।

-अनमोल-प्रतीक्षा 321/4, सोलानीपुरम, रुड़की (उत्तराखण्ड)- 247667

ऊँचे मेयार का एक शायर : प्रेम रंजन अनिमेष

-आतिश इंदौरी

मैं प्रेम रंजन अनिमेष की ग़ज़लों पर उनकी कविताओं के हवाले से बात नहीं करना चाहता, क्योंकि उनके पास कविताओं की जो कतार हैं, वह स्वयं यह बयां करती है कि वे कविता की विधा में माता सरस्वती कि कृपा से सिद्धहस्त हैं। हालाँकि ग़ज़लगोई भी कविता की ही एक विधा है, पर यह आलेख लिखने में उसको अपनी सुविधा के लिए अलग रखता हूँ। इसका एक कारण यह भी है कि ग़ज़ल लिखी नहीं, कही जाती है।

आज का वैश्विक माहौल जो प्रश्न खड़े करता है, प्रेम रंजन अनिमेष की ग़ज़लें उसके सटीक उत्तर प्रस्तुत करती हैं, भले ये उत्तर प्रश्न के रूप में ही क्यों न हों। मुझे लगता है इसके पीछे वजह यह भी हो सकती है कि अनिमेष ने गाँव, नगर और महानगर तीनों को करीब से जिया है।

एक बच्चे के सवालों से बनी है दुनिया /
जिसको इक माँ के जवाबों ने बचा रक्खा है ।

****

सब कुछ भरा है दिल में मगर बेजुबान है /
वो आम आदमी है नहीं संविधान है।

****

माँगता है शहर ये पानी के भी पैसे /
पीछे हम दरिया के दरिया छोड़ आये हैं।

****

दश्त में गर न हादसे होते / शहर कैसे भला बसे होते।

प्रेम रंजन अनिमेष का अध्ययन बहुत गहरा है, उनको बहुत सारे प्रबुद्ध व्यक्तियों का सानिध्य भी प्राप्त हुआ है, और उनके परिवार में गहन चिंतन करने की परंपरा है। एक शेर में तो वे हिंदी के मशहूर ग़ज़लकार स्वर्गीय दुष्यंत कुमार त्यागी जी से बात करते हुए प्रतीत होते हैं और उनको बता रहे हैं कि आपने जो क्रांति की अलख जलाई थी, वो अभी मकाम तक नहीं पहुँची है।

हुई सदियाँ कोई गंगा न निकली / पिघलते पीर परबत देखता हूँ।

अनिमेष ओस की बूँदों को यूँ छूते हैं कि वे खिल उठती हैं। मुझे अनायास ही बशीर बद्र साहब याद आ जाते हैं। इस तरह की शायरी करना बहुत कठिन होता है क्योंकि आपका मन इतना साफ होना चाहिए कि आप एक छोटे बच्चे की तरह घटनाओं को देख सकें।

चाय तुलसी की पत्तियों वाली / माँ बहुत आज याद आई है।

****

गली तो याद है लेकिन मकां मैं भूलूँगा / तुम्हारा घर वहीं निकले जहाँ मैं भूलूँगा

मजहब और धर्म की लकीर को स्पष्ट करने में उन्हें जरा भी गुरेज नहीं है। वे साफ-साफ संदेश देते हैं-

सारे चेहरे हैं एक से झुलसे / मजहबों का जुनून क्या देगा।

शायर रिश्ते नातों, जिंदगी आदि की सच्चाइयों को बखूबी जानता है। अनिमेष जी ने दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले, दोनों रिश्तों को बयां किया है-

ज़िंदगी की माचिसों में / तीलियाँ कम हो रही हैं।

****

छातों से टकराते छाते / बरसाती ये रिश्ते नाते।

एक शायर मीजान की तरह होता है और यह खूबी अनिमेष के अशआ'र में भली तरह दिखाई देता है, जिनमें से कुछ अशआ'र का उल्लेख ऊपर भी हो चुका है।

मंदिरों मस्जिदों को रहने दो / इश्क से बढ़ के क्या इबादत है।

****

कहीं बेहतर गँवारों की है सोहबत / जहीनों की जहालत देखता हूँ।

****

हो न खुदा तो चल जायेगा / पर इनसान बचाये रखना

अनिमेष जी के शिल्प को रचना-शिल्प (अरूज, बहर आदि) के आधार पर समालोचित करने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि वे भली भांति इस क्लासिक विधा को निभाने में पारंगत हैं और इसमें नए विषय और कवाफी जोड़कर इसको संवृद्ध-समृद्ध कर रहे हैं। कवाफी के कुछ उदाहरण देखिए - महक/ किलक/ नमक/ बनक/ पलक, भोथरे/ खुरदरे/ तरे/ मसखरे, मानसून/ कारकून/ जून/ परचून, अदहन/ माखन/ पुरखन/ जोरन/ पेवन/ अंजन/ ईंधन और भावुक/ सम्मुख/ कौतुक/ नवागंतुक आदि। शायरी में फ़्लो यानि प्रवाह या रवानी का होना बहुत जरूरी है। यह प्रवाह एक तरह से अच्छे विचारों में रमण करना है ताकि तन और मन दोनों स्वस्थ्य रहें। शायरी में फ़्लो का मेरा अर्थ है कि बात स्पष्ट तौर पर खुल सके। अनिमेष के अशआ'र बहुत ही अच्छी तरह इस प्रवाह का निर्वाह करते हैं-

दुख के प्याले न दे इतने भर के / रोज पीने से असर जाता है।

****

जख़्म फिर अपने गिना करता है खाली मैदान।

शामियाने तो कुछ एक दिन में उखड़ जाते हैं॥

मैं कुछ और बातें अनिमेष के बारें में यहाँ अधिकारपूर्वक रख सकता हूँ क्योंकि उनके भाई मनोरंजन जी के साथ मेरी बातें अनिमेष की कविता / ग़ज़ल को ले कर होती रहती हैं, जो स्वयं कविता के बड़े जानकार हैं। अनिमेष के लिए गजल लिखना उतना ही सहज है जितना कविता लिखना, और दोनों ही शुरू से सहचर रही हैं उनके यहाँ। साथ ही साथ अनिमेष संगीत की समझ और सलाहियत भी रखते हैं और उन्होंने अपनी कुछ ग़ज़लों को गाया भी है। उनकी गायकी अधिकतर मध्यम सप्तक में मान सकते हैं– यानी चमत्कृत करने की कोई कोशिश नहीं है। बात सीधी दिल तक पहुँचानी है। अनिमेष अपनी ग़ज़लों में भी चमत्कृत करने की कोशिश नहीं करते हैं, इसलिए सधे हुए अभिनय प्रयोगों के साथ-साथ पारम्परिक रदीफों का भी बहुत ही उम्दा इस्तेमाल करते हैं।

घर में दीवारें तो हैं पर / खिड़कियाँ कम हो रही हैं।

****

भीड़ों ने पहले पैरों की ठोकर बना दिया /
फिर रास्तों ने मील का पत्थर बना दिया।

****

देखो कि खुद में खोये यूँ अरसा गुजर गया /
आया न कोई मैं भी किसी के न घर गया

पाकिस्तान के मशहूर ग़ज़लकार अब्बास ताबिश साहब ने एक साक्षात्कार में इस बात की तरफ इशारा किया है कि ग़ज़ल ऐसी होना चाहिये जिसे पढ़कर कोई अवसाद में न चला जाए। अनिमेष की ग़ज़लें हौसला देती हैं और पाठकों को सच्ची राह दिखलाती हैं, समाज को नकारात्मकता और अवसाद से बचे रहने का संदेश देते हुए।

हथियार था कोई न ही औजार अपने पास /
हम पैदलों ने रास्ता चल कर बना दिया।

****

दिल पे रख हाथ झूठ मत कहना / सच में ये ही कुरान गीता है।

****

इस सफर में बोझ क्यों देंगे तुझे कोई / हाथ जब दुखने लगेगा हाथ बदलेंगे।

****

माँ के आँचल की महक है ज़िंदा / मुझमें बचपन की किलक है ज़िंदा।

****

माँओं की खोयी लोरियाँ ढूँढ़ो / घर में बिखरी कहानियाँ ढूँढ़ो।

अनिमेष की जो ग़ज़लें मैंने पढ़ी हैं, उनके साथ रचना तिथि का तो उल्लेख नहीं है। पर मेरा अनुमान है कि अनिमेष के विषय और भाव क्षेत्र में क्रमशः और लगातार विस्तार हो रहा है और उनकी ऊर्ध्वमुखी रचनात्मकता किसी पर्वतारोही के शिखर की ओर आरोहण की तरह अग्रसर है या किसी गायक के आलाप के उठान के समान! एक युवा ग़ज़लकार जब इस तरह की अच्छी ग़ज़लें कह रहा हो तो यह आश्वस्त करता है कि इस साहित्यिक विधा का भविष्य बहुत उज्जवल है ।

-C-9/1, RRCAT कॉलोनी, इंदौर (म. प्र.) 452013

'एक मधुर सपना'

- राजेंद्र यादव

दिसंबर अंक में प्रकाशित 'अमृतलाल नागर कहानी प्रतियोगिता' के परिणामों में कुछ फेर-बदल करनी पड़ रही है। यद्यपि निर्णायकों ने सोनी सिंह की कहानी 'अपना कमरा' को प्रथम कहानी के रूप में चुना है, मगर मुझे लगा कि प्रेमरंजन अनिमेष की कहानी 'एक मधुर सपना' को यह स्थान मिलना चाहिए। इसलिए अपने विशेषाधिकार (वीटो) का प्रयोग करते हुए मैं उसे ही प्रथम रखने की अनुशंसा कर रहा हूँ।

अधिकांश कहानियों से संपादक के नाते मुझे शिकायत रही है कि वे सीधे-सीधे विवरणों से भरी होती है– मानो किसी स्थान, व्यक्ति या घटना के ब्यौरे दिए जा रहे हों। कहानी एक बयान (स्टेटमेंट) होने के साथ एक कला भी है। मगर अधिकांश कहानियाँ यथार्थ से अधिक यथातथ्यता का वृत्तांत होती है, जो कहानी को एक बुरी अखबारी रिपोर्ट बना देता है- अच्छी अखबारी रिपोर्टिंग में कम से कम घटना की प्रामाणिकता होती है।

सोनी सिंह की कहानी निश्चय ही कहन और जीवन की इस विवरण बोझिल एकरसता को तोड़ती है और स्वप्न-फैंटेसी के माध्यम से कथ्य को अनेक स्तरीयता देती है। एक डायनैमिक लड़की है जो पारिवारिक 'पहचान-हीनता' से बाहर निकलना चाहती है। अकेले रहने की उत्कट आकांक्षा और अकेले होने का भय दोनों को ही इस टैक्नीक के माध्यम से एक साथ पकड़ने की कोशिश की गई है। इसे अनजाने भविष्य का चुनाव भी कह सकते हैं। मगर 'एक मधुर सपना' इस कल्पनाशीलता और प्रयोगात्मकता के द्वारा एक बड़ी सामाजिक विडंबना का प्रभावशाली चित्रण है। स्थितियों के अंतर्विरोधों को स्थितियों और भाषा के व्यंग्य में मारक बनाने का सहज प्रयास कहानी को पठनीय बनाता है। कागज पर समाप्त होने के बाद कहानी आसपास के परिवेश में घटित होने लगती है।

रामेश्वर द्विवेदी की कहानी 'देह धरे को दंड' ग्रामीण यथार्थ की पकड़ और आंचलिक भाषा के सहज प्रयोग के बावजूद अनावश्यक लंबाई और भाषा की अत्यधिक आंचलिकता के कारण पठनीय होने की अपेक्षा पूरी नहीं करती। यहाँ लेखक अपने ही रचे यथार्थ का मोह जल्दी नही छोड़ पाता। 'देह धरे को दंड' में स्रष्टा ही अपने में इतना तल्लीन है कि उसे द्रष्टा का ध्यान नही रहता। कथ्य के रूप में कहानी व्यक्तिगत प्रतिशोध से आगे नही जाती और 'आक्रोश' जैसी फि ल्मों की याद दिलाती है। (लेखक के आग्रह पर यह कहानी रोकी जा रही है)

'मेरी नाप के कपड़े' में लड़की अपनी अलग पहचान चाहती है यह और बिना कि- सी बनावट के परिचित भाषा और शिल्प में लिखी गई है। यहाँ नई है वह दृष्टि जो अपने को केंद्र में रखकर संबंधों, संदर्भों और स्वयं अपने आप को नए सिरे से आविष्कृत करती है। सोनी सिंह और कविता की ये कहानियाँ, बिना किसी बड़ी घोषणा के चुपचाप रूप लेने वाले उस 'साइलेंट रिवॉल्यूशन' को रेखांकित करती हैं जो स्त्री द्वारा और स्वयं स्त्री में घटित हो रहा है।

हंस, फरवरी 2004, संपादकीय से साभार

शायद यह कहानी उनके लिए न हो

- अर्चना वर्मा

'जन विकल्प' की साहित्य वार्षिकी 2008 में प्रेम कुमार मणि की टिप्पणी नजरों से गुजरी। टिप्पणी 'संगमन' की संगोष्ठी में उठे विवाद के बारे में है। संगमन-विवाद के बारे में सुना तो पहले भी था लेकिन सुनाने वाले बात को अपने-अपने नजरिये से सुनाते हैं और बात भी पूरी साफ नहीं होती। अब इस टिप्पणी में प्रेम कुमार मणि ने अपने पक्ष को स्वयं स्पष्ट किया है और शायद ज्यादा सोचे-समझे ढंग से भी किया होगा। बहस मुबाहिसे के माहौल में मुद्दे की बातें अकसर दब जाया करती हैं। प्रासंगिक अंश यहाँ उद्धृत है- 'मेरा मन टूटा कथा-विमर्श के दरम्यान... आरम्भ में तीन युवा लेखकों (शशिभूषण, मनोजकुमार पांडेय, प्रेमरंजन अनिमेष) की कहानियों के पाठ हुए। मगर दुर्भाग्य से केन्द्र में केवल प्रेमरंजन अनिमेष की कहानी रही। 'लड़की जिसे रोना नहीं आता।' कहानी निस्संदेह खूबसूरत भाषा में लिखी गयी थी और अन्दाजेबयां भी बुरा नहीं था। लेकिन जो कहानी थी उसे हम बकवास ही कह सकते हैं।

कहानी में अतिशयोक्तियाँ चलती हैं, लेकिन उनका भी एक विन्यास होता है। अतिशयोक्तियों की पिटारी को हम कहानी नहीं, बकवास कहेंगे और यदि भाषा ही कहानी है तो फिर गुलशन नन्दा की भाषा ही कौन बुरी थी। अनेक सड़क छाप किताबों में कोई लरजते बादलों, सपनीली आँखों और झील के उस पार के अभिराम दृश्यों के खूबसूरत विवरण देख सकता है, लेकिन उसे साहित्य का दर्जा नहीं दिला सकता।

अनिमेष की कहानी ऐसी ही कहानी थी। मुझे आश्चर्य हुआ जब विमर्श के अधिकांश सहभागी इसके अभिनन्दन में लग गये। मैत्रेयी पुष्पा और मैंने हस्तक्षेप किया तो कई सहभागियों को बुरा लगा। हमारा कहना था कि यह आज ही नहीं, भारतीय समाज में कभी की भी कहानी नहीं रही है। आज की अट्ठाइस साल की एम. ए. लड़की की कहानी यह नहीं हो सकती। फिर क्या यह सम्भव है कि कोई परिवार बेटे की मृत्यु को दबाकर विवाह का उत्सव करे, जैसा कि कहानी में वर्णित है। और लेखक का तंग नजरिया ऐसा कि इतने जिल्लत के माहौल से दुल्हन कन्या की बहन का महानिभिष्क्रमण भी महादुःखों की श्रेणी में ला खड़ा किया गया। प्रियंवद गुस्से में थे। उनका आग्रह था कि कंटेट को नजरअन्दाज कर कहानी के इतर पक्ष की ओर ध्यान दिया जाये। (जैसे दुल्हन की कुरूपता और विकलांगता पर नहीं, उसके परिधान पर ध्यान दिया जाये।) निश्चित ही वहाँ हम नितान्त अल्पमत में थे। मैत्रेयी जी ने तो दुःखी होकर यहाँ तक कहा कि जब हमें सुनना ही नहीं, तब हमें बुलाते क्यों हैं।'

अपनी इस पीड़ा को प्रेम कुमार मणि ने 'समय के साथ सम्वाद' की आकांक्षा से सन्दर्भित किया है। उनकी उधेड़बुन का विषय यह है कि 'आज का लेखक अपने समय और साहित्य से किस तरह संवाद करे। पाठ को कैसे देखे। उसका नजरिया कैसा हो। साहित्य के 'पाठ' और समय के साथ 'सम्वाद' के विषय में प्रेम कुमार मणि की प्रत्याशाओं का एक आधार भी है जिसे वे यूँ दर्ज करते हैं- 'वैचारिक तौर से इतने उथल-पुथल वाले दौर का अनुभव होता है। अपने समय का 'आँखों देखा और उसके पूर्व का कागद-लेखा हमारे जहन में होता है। इसीलिए मेरा मानना है कि इक्कीसवीं

सदी के इस दौर में हमारे पास अपेक्षाकृत व्यापक नजरिया और विश्लेषणात्मक क्षमता है, या होनी चाहिए। यह इसलिए कि हमने अनेक उतार चढ़ावों को देखा है। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों के बीच समाजवादी और लोकमंगलकारी नारों की विफलता देखी है। अपने साहित्य में नाना प्रकार के आन्दोलनों और प्रयोगों को देखा है। इत्ती सारी घटनाएँ हमारे अनुभव और ज्ञान को परिपक्व करने के लिए पर्याप्त सामग्री देती हैं।'

उद्धरण लम्बा हो गया है लेकिन जरूरी है ताकि मुद्दे सन्दर्भ सहित स्पष्ट हों, और इच्छानुसार तोड़-मरोड़ की गुंजाइश न रह जाये। इसे पढ़ने के बाद मैंने कहानी को दुबारा पढ़ा-ज्यादा गौर से। बात क्योंकि पाठ की है इसलिए पहले कहानी के विषय में।

लेखक ने कहानी की शुरूआत ही पाठ की दिशा के नियोजन से की है, निबन्धनुमा शुरुआत से कहानी की संरचना को एक नया आकार देते हुए लेखक ने स्त्री पुरुष के बीच रोने और न रोने के बँटवारे का जिक्र करके उन लैंगिक भूमिकाओं का संकेत दिया है जो संस्कृति के विकासक्रम में मरदाना और जनाना की तरह परिभाषित की जा चुकी हैं। कहानी इन रूढ़ साँचों को तोड़ती है। तोड़ने का पहला चरण वह लड़की है जिसे रोना नहीं आता। वह हँसती है। बिना बात हँसती है, रोने की बातों पर भी हँसती है क्योंकि बात तो हरएक सिर्फ रोने की ही है। वह जानती है कि अगर हँसना है तो उन्हीं बातों पर, उन बातों के बावजूद हँसना होगा। हँसना जिजीविषा की निशानी है। हँसना दर्द के हद से गुजर जाने का, बेअसर हो जाने का प्रमाण है। तो यह लड़की हँसती है और चिड़ियों से बातें करती है। लोककथा का यह अभिप्राय फिर कहानी की संरचना में कुछ इजाफा करते हुए इस एक लड़की के वजूद में समूची सृष्टि के स्त्री-तत्व को समाहित कर देता है। यह नयी स्त्री अपने आपको पुनः परिभाषित करने के क्रम में है। उसने रोने की बातों पर हँसना सीख लिया है। लेकिन अभी लड़ने मरने और आहत करने की शुरुआत नहीं की है, वह शायद इच्छित भी नहीं है।

लड़की शादी के इन्तजार में अट्ठाईस की उम्र तक पहुँचने के क्रम में एम.ए. पास कर लेती है। इन्तजार वह खुद नहीं, उसके घरवाले कर रहे हैं। उसका एम. ए. पढ़ने के लिए पढ़ना नहीं है, शादी तय न होने के एवज में पढ़ते जाना है। फिर भी वह नौकरी करना चाहती है लेकिन उसे नौकरी की इजाजत नहीं मिलती। जीवन के सहज साधारण क्रम की तरह उसके आसपास यह सब कुछ घटित होता जाता है क्योंकि ऐसा ही होना जीवन की सहज स्वाभाविक विधि है। शादी ही लड़की के जीवन का चरम परम लक्ष्य है। उसके अपने लिए उतना नहीं, जितना कि परिवार के लिए क्योंकि यह समाज में इज्जत का दारुण मामला है, भले ही इस सिलसिले में परिवार तबाह क्यों न जाये। निम्नवत परिवार में, सीमित साधनों के बावजूद दहेज की समस्या सुलझाने के असम्भव प्रयत्न में इकलौता बेटा मर जाता है, उसकी मृत्यु भी कहानी में लोकतत्व के प्रयोग से दर्ज की गयी है। उसकी मृत्यु का समाचार छिपाकर विवाह सम्पन्न किया जाता है। विकट अभाव की दारुण यातना में तैयारी की लागत को निरस्त कर देने का कोई उपाय नहीं। उसकी बहन घर से भाग गयी है। पिता को गबन के अपराध में जेल हो गयी है। कहानी में ये घटनाएँ नहीं हैं। हँसने वाली लड़की को ये सूचनाएँ चिड़ियों से मिलती हैं, जिस पेड़ के नीचे उसकी डोली रखी है उसी के ऊपर बैठी उन चिड़ियों से जो कभी उसके पिछवाड़े

आकर बैठती थीं। रोने के बदले हँसने वाली लड़की के दर्द पर सारी सृष्टि रोती है।

तोड़ने का दूसरा चरण है मझली लड़की का घर से भाग जाना। कहानी में इसे यूँ दर्ज किया गया है- शादी की रात ही वह मुहल्ले के लड़के के साथ चली गयी। इतने दिन चुपचाप देखा था घर लड़की को कितना कष्ट उठाना पड़ता है और लड़की के चलते घरवालों को कितना सामाजिक शादी में कितने पेंच हैं, यह भी देख लिया था। नहीं चाहती थी कि उसके लिए भी यह यंत्रणाचक्र फिर से चले जिसमें वह भी पिसे और परिवार भी। यह एक विकल्पहीन स्थिति में सेंध लगाकर निकाला गया विकल्प है, अपनी नियति को अपने हाथ में ले गुजरने की हिम्मत है। कहानी की नायिका लेकिन भाग निकलने वाली यह लड़की नहीं, वह स्त्री-सृष्टि में अब भी इक्का दुक्का व्यक्तिनिष्ठ निर्णय ही है, महाधारा नहीं।

भाई प्रेम कुमार मणि और मैत्रेयी जी को इस कहानी का यथार्थ असम्भव लगता है। आज की अट्ठाइस साल की एम. ए. लड़की की कहानी यह नहीं हो सकती, 'यह आज ही नहीं भारतीय समाज में कभी की भी कहानी नहीं रही', इन गिने चुने शब्दों में कहानी के समूचे सम्भार का जो मटियामेट है वह तो शायद कोई बुलडोजर भी किसी नाजुक से नाजुक चीज का नहीं कर पायेगा। पढ़कर आश्चर्य हुआ। 'भारतीय समाज में कभी की भी' की घोषणा कितनी बड़ी जानकारी का दावा है, सोचकर ही पसीना छूट जाता है। शायद अपनी जानी पहचानी दुनिया में ऐसा हादसा घटित होते उन्होंने कभी न देखा हो लेकिन अपनी जानी-पहचानी 'कितनी भी बड़ी दुनिया' आखिर होती ही कितनी बड़ी है कि ऐसा दावा किया जा सके और उसके बाहर की हर चीज को 'न भूतो न भविष्यति' ठहराया जा सके।

दिल्ली विश्वविद्यालय के जिस कॉलेज में मैं पढ़ाती हूँ उसे आधुनिकता का घर कहा जा सकता है। मधु किश्वर, रूथ विनीता पॉल, कीर्ति सिंह, सुजाता मधोक, मीरा नायर, नन्दिता दास जैसी स्त्रियाँ यहीं से निकली हैं। भारत में स्त्री-विमर्श की शुरूआती पत्रिका 'मानुषी' मधु किश्वर और रुथ ने निकाली थी, उसकी योजना यहीं होस्टल में बैठकर बनी थी। लेकिन यहाँ भी, इक्कीसवीं सदी में भारत की राजधानी दिल्ली शहर में भी ऐसी छात्राएँ मौजूद हैं जो अपने परिवार में पढ़ने वाली पहली पीढ़ी की लड़कियाँ हैं और इसलिए पढ़ रही हैं कि शादी तय होने में आसानी होगी। जो अविवाहित अध्यापिकाएँ हैं, उनसे पहला सवाल यही पूछा जाता है कि विवाह क्यों नहीं हुआ/ किया, और जो अभी-अभी नौकरी पा चुकी हैं उनके लिए अगला गन्तव्य विवाह ही है। विवाह आज भी बड़े पैमाने पर स्त्री के मर्म में गड़ी कील है और समाज की धुरी भी। लेकिन बात कुल इतनी नहीं कि इक्कीसवीं सदी में भी कहानी के बाहर समाज में यही यथार्थ 'रचित' ही होता है, कथ्य की जरूरत के हिसाब से रूपायित होता है, न कि शो विन्डो में पहले से इस लेबल के साथ मौजूद कोई उत्पाद कि यह भारतीय समाज का कभी का भी यथार्थ रहा है याकि नहीं रहा है। यह बात अलग रही कि नापे-जोखे स्थूल यथार्थ के उस और ठोस प्रतिमानों की दुनिया के बाहर आये भी हमें अब जमाना बीत चुका है।

इस कहानी में लोकतत्व के जरिये चरित्रों के व्यक्तिनिष्ठ अस्तित्व को घुलाकर उनका समष्टितत्व में कायाकल्प कर दिया गया है। भाई प्रेमकुमार मणि चाहें तो चिड़ियों

की बोली और लोटनी की दुम की इस भूमिका को नजरअन्दाज करके कहानी पर अंधविश्वास को पोसने का आरोप भी लगा सकते हैं। लेकिन अगर वे सुन पायें तो इसकी वजह से कहानी में एक मिथकीय प्राणवत्ता का सामूहिक स्मृतिकोश के रेशों से रचित अप्रतिहत सत्व की धड़कन महसूस होती है।

'कहानी की खूबसूरती वहीं से आती है, कोरी भाषा से नहीं, और न ही यहाँ' गुलशन नन्दा की भाषा में अनेक सड़क छाप किताबों में कोई लरजते बादलों, सपनीली आँखों और झील के उस पार के अभिराम दृश्यों के खूबसूरत विवरण हैं जो भाई प्रेम कुमार मणि ने देख लिये हैं। लोककथा के मुहावरे में एक आधुनिक कथ्य के नियोजन से स्त्री के जीवन का एक रचनात्मक सम्भावना विहीन दैनिक यथार्थ एक अप्रत्याशित कायाकल्प धारण करता है। प्रेम कुमार मणि और मैत्रेयी जी ने कहानी को केवल सुना था। सुनने के क्रम में कई बातें दर्ज होने से रह जाती हैं। टिप्पणी लिखने के पहले प्रेम कुमार मणि ने शायद कहानी को पढ़ा हो, शायद न पढ़ा हो। फिलहाल पुनर्विचार की जरूरत उन्हें हुई नहीं दीखता है।

उनके वक्तव्य में पहली बात समय के साथ सम्वाद को लेकर है और दूसरी बात रचना के पाठ को लेकर समय क्या हरेक के हिस्से में वही एक सा आता है जिसे ठीक वैसा ही बयान करना सम्भव हो जैसा कि आपने देखा है? बुनियादी बात यह है कि हर रचना अपने तौर पर समय के साथ सम्वाद है। जरूरत केवल पाठ की क्षमता की है। पाठ भी हर समय हरेक के लिए खुला नहीं होता। इसलिए पाठ और पुनः पाठ की सम्भावना बनी रहती है। समय के साथ सम्वाद और रचना का पाठ एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई बातें हो जाती हैं।

इस सिलसिले में मणि भाई ने उदाहरण के तौर पर रिटायर्ड पिता को लेकर तीन पाठों की चर्चा की है जिनमें एक अमिताभ बच्चन अभिनीत बागवाँ नाम की फिल्म, दूसरी निर्गुण की कहानी और तीसरी उषा प्रियम्वदा की वापसी। मणि भाई ने नामवरकृत वापसी कहानी के पाठ को रेखांकित किया है। सन साठ के इस पाठ के बाद से अब तक पाठ की विधियों में बहुत विस्तार, वैविध्य और प्रखरता का आगमन हो चुका है। पाठ के मूल्यांकन का प्रमुख आधार भी अस्वीकृत हो चुका है। रचना और आलोचना के इस जनतन्त्र में रचना तो स्वयं जीवन का एक पाठ है ही, आलोचना भी एक ओर जीवन का पाठ है तो दूसरी ओर रचना का। यह पाठ बहुलता का युग है। हर स्थिति हर व्यक्ति अलग है। जिस थीम के नामवरकृत पाठ की चर्चा उन्होंने की है, वह सम्भवतः आलोचक को इसलिए स्वीकार्य हुआ हो कि उषा प्रियंवदा की उस कहानी का जीवनपाठ युवा सन्तान को अपनी सुविधा के अनुरूप जान पड़ता है। किसी पिता के पक्ष से उतना स्वीकार्य वह शायद न भी हो। वह कहानी रिश्तों की असलियत को उजागर करने के लिए और पारिवारिक सम्बन्धों के प्रचलित मिथक को तोड़ने के लिए लिखी गयी है। इसलिए कथ्य के अनुकूल चरित्र और स्थितियाँ गढ़ ली गयी हैं। अगर यही पिता अस्वस्थ और अपनी देखभाल में असमर्थ हुआ होता तो लौट जाने की कोई जगह न होती, कहीं संगी साथी न होते, स्थिति का इतना सरल समाधान सम्भव न होता तो क्या पुत्र को हत्या की या पिता को आत्महत्या की सलाह दी जा सकती थी? 'बागवाँ' शायद

अपनी संचार विधा के अनुरूप निर्गुण ब्रांड अश्रुगलंद भावुकता का प्रमाण हो लेकिन पाठ का एक हिस्सा यह भी है कि यह दम्पति केवल अपने परिवार और सन्तानसुख में आत्मलिप्त ढंग से सीमित और केन्द्रित नहीं, वह अपने दायरे के बाहर आने और सामाजिक दायित्वों के जरिये परिवार का विकल्प रचने में भी समर्थ हुआ है। परेश रावल द्वारा अभिनीत सन्तानहीन चरित्र भी परिवार के विकल्प की रचना करता है। यानी एक ही स्थिति के अनेक पाठ हैं, होते रहेंगे, होते रहने चाहिए।

पता नहीं प्रियंवद को यह कहने की जरूरत क्यों पड़ी कि कन्टेन्ट को नजरअन्दाज करके कहानी के इतर पक्ष पर ध्यान दिया जाये। कहानी का कन्टेन्ट अपने आप में भी सबल और सार्थक है। लेकिन बात समय के साथ सम्वाद की हो रही थी। समय अनेक धाराओं में अनेक परतों में एक साथ बहता है और बहुत बार हमारी अपनी सारी सजगता के बावजूद किसी निचली, किसी बहुत भीतरी परत में छिपा ऐसा कुछ मुखर हो उठता है जो हमारी सजगता से ओझल रह गया था। उदाहरण के लिए प्रेम कुमार मणि जैसा समय-संवादी कन्टेन्ट से इतर पर ध्यान देने के आग्रह के प्रति आपत्ति दर्ज करते हुए कहता है कि (उपमा के तौर पर ही सही) जैसे दुल्हन की कुरूपता और विकलांगता पर नहीं, उसके परिधान पर ध्यान दिया जाये तो ऐसा ही एक अभिप्राय मुखर हो उठता है। कुरूप और विकलांग दुल्हन क्या व्यक्ति नहीं? क्या उसे मानवीय गरिमा का अधिकार नहीं? दुल्हन को सर्टीफिकेट देने के लिए वे परिधान के परे देह तक ही जा पाये, मन और आत्मा तक नहीं पहुँचे। क्षमा करें यह उन पर कोई आरोप नहीं केवल उन मानसिक अभ्यासों और संस्कारों की ओर इशारा है जो सारी सजगता के बावजूद हमारे दिमाग के किन्हीं कोनों अंतरों में मौजूद, वक्त बेवक्त खुद को बयान कर बैठते हैं। इन सबके समेत जो समय हमारे भीतर और बाहर मौजूद है, उसके साथ सम्वाद का कोई एक बना बनाया विधान नहीं हो सकता। मणि भाई

खुद संकेत करते हैं कि 'हमने राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रमों के बीच समाजवादी और लोकमंगलकारी नारों की विफलता देखी है।' फिर यह देख पाना उनके लिए सम्भव क्यों नहीं है कि स्त्री-विमर्श के सारे बाजे-गाजे और चकाचौंध के बीच भी विफलता के बहुत सारे बल्कि ज्यादातर इलाके बचे हुए हैं। स्त्री का कुल अस्तित्व कितनी धीमी तकलीफदेह प्रक्रिया और अपनी ही हिम्मत के सहारे बदलने की योजना बना रहा है। यह बदलाव केवल पहलवान किस्म की तथाकथित कद्दावर महिलाएँ ही नहीं कर रही हैं, चौखटे जगह-जगह पर, तरह तरह से तोड़े जा रहे हैं, टूट रहे हैं। यथास्थिति का बयान भी दरअसल सही पाठ के जरिये उसको उजागर करने वाला ऐसा इशारा साबित हो सकता है जो परदे उठाकर मासूमियत को छिन्न-भिन्न कर दे। क्या यह प्रक्रिया कहानी में शामिल होने की हकदार नहीं है? वैसे प्रस्तुत कहानी यथास्थिति की कहानी है भी नहीं। कहानी उन्हें या मैत्रेयी जी को पसन्द न आयी हो, यह बात समझी जा सकती है। कहानी से उनकी अपेक्षा आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी किस्म की हो सकती है। वे एक झटके में दुनिया बदल देने वाली नायिकाओं की तलाश में हो सकते हैं या केवल उन्हीं चरित्रों को कहानी में उठाने के हिमायती हो सकते हैं, जिन्हें नमूने की तरह पेश किया जा सके। हर व्यक्ति हर कहानी का पाठक नहीं हो सकता। शायद यह कहानी उनके लिए

न हो, लेकिन अगर अपनी निजी पसन्द-नापसन्द का मानकीकरण किया जा रहा हो तो अपनी बात को साबित करने के लिए 'आज के या कभी के भी' भारतीय समाज को ज्यादा प्रामाणिक और ठोस ढंग से उपस्थित करना पड़ेगा। यह फतवा देने से काम नहीं चलेगा कि यह आज की अट्ठाइस साल की एम. ए. लड़की की कहानी नहीं है। जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष के मुँह से यह बयान संघ की 'शासननीति' का घोषणापत्र और रचनाजगत में तानाशाही का सबूत बन जायेगा।

-9/11 मिराण्डा हाउस, टीचर्स फ्लैट्स,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रेम रंजन अनिमेष का कथा-साहित्य : समय और समाज की सबरंग कहानियाँ

-चेतन कश्यप

कवि के रूप में सुख्यात प्रेम रंजन अनिमेष एक मँजे हुए कथाकार भी हैं, लेकिन संभवतः उनका कथाकार-रूप ज्यादा सामने नहीं आया है, और जो सामने आया है उसकी उतनी चर्चा नहीं हुई है जितनी होनी चाहिए थी। हाल-फिलहाल उनके पाँच कहानी संग्रह तथा एक उपन्यासिका को पढ़ने का मौका मिला। कहानी संग्रह हैं- 'नटुआ नाच', 'थमी हुई साँसों का सफर', 'पानी पानी...', 'एक मधुर सपना' और 'एक स्वप्निल प्रेमकथा' तथा उपन्यासिका 'दि हिन्दी टीचर'।

कवि के रूप में प्रेम रंजन अनिमेष मितभाषी और मिष्टभाषी हैं। कहानी उतनी मितभाषी नहीं हो सकती। कहानियों में अपेक्षित विस्तार तो वे लेते ही हैं, भाषा का कौतुक, कल्पना की उड़ान, तिलिस्म की बुनावट- इन सबका एक संसार भी रचते चलते हैं। उनकी कहानियों में अपने आसपास की घटनाओं और मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है। कई बार तो इतनी बारीकी से और इतने विस्तार से चित्रण होता है कि पाठक एकबारगी विचलित हो सकता है, सकते में आ सकता है। हमारी रोज-रोज की चचाओं और ऑबजर्वेशन में आनेवाली चीजें, ऐसी बातें जिनका जिक्र हम पीठ पीछे फुसफुसा कर करते हैं, वही जब बिल्कुल निरावृत होकर सामने आ जाएँ, तो हतप्रभ हो जाना लाजिमी ही है। 'चंद खिलौनों की दास्तान' की उपकथा 'कुछ लेना न देना' एक ऐसी ही कहानी है, हमारे इतने अधिक आसपास की, कि हम सोचने लग पड़ते हैं कि ऐसा न हो, न होता हो! अनिमेष जी कहानियों से गुजरते हुए ऐसे क्षण बार-बार आपके सामने आते हैं।

ये कहानियाँ समय-समाज की कहानियाँ हैं- उसकी गहन छानबीन और गहरी पड़ताल करती हुई। ऐसी कहानियाँ जिनमें उनका हर पक्ष जीवंत है। इनमें समाज का निचला तबका है तो साथ ही वह मध्यवर्ग भी, जिसकी चिंता रोटी से बड़ी। या फिर वह हिस्सा जो निम्न आयवर्ग से निकल कर मध्यवर्ग में पहुँचने के लिए संघर्ष कर रहा। इनके साथ-साथ है आबादी के उस बड़े भाग की व्यथा कथा भी, जो विकास की सारी घोषणाओं और तरक्की की कवायद के दरमियान दिन-ब-दिन और पीछे छूटता जा रहा! ज्यादातर पात्र गाँवों, छोटे कस्बों से निकलकर कर जीवन की जरूरतों के लिए जूझते हुए बड़े शहरों में आए हैं। इन कहानियों में मायानगरी मुम्बई की उपस्थिति भी है, जैसे 'नन्हे फरिश्ते' 'जानी है जब जान पियारे' या 'दि हिन्दी टीचर' में। रेलगाड़ी जो रोजगार की तलाश और बेहतर जीवन की ओर यात्रा का प्रतीक मानी जा सकती है, वह भी कथा-प्रवाह में मुख्य रूप से उपस्थित होती है, जैसे कि 'नन्हें फरिश्ते' या 'पानीफल' में।

प्रेम रंजन अनिमेष अपनी कहानियों में एक कल्पनालोक भी बुनते चलते हैं। इस कल्पनालोक में कुछ असल-जिंदगी के सुपरिचित चरित्र हैं जिनका नाम भले ही न लिया गया हो, पर वे आसानी से पहचाने जा सकते हैं। उस कल्पनालोक में व्यक्ति की

आकांक्षाएँ, उसके स्वप्न या ललक-कौतुक के साथ कभी-कभी शायद एक मोहभंग का भाव भी झलक उठता है। 'एक मधुर सपना' में राष्ट्रपति के दौरे की बात, 'दि हिन्दी टीचर' में सबरीना-प्रसंग, 'गीतगाथा' में पतझर जी का प्रसंग, 'भागीरथी' में सचिन तेंदुलकर और अमिताभ बच्चन से संबंधित प्रसंग या फिर 'खेल' में प्रिंस और दिलनाज का प्रसंग। पाठक आसानी से पात्रों की पहचान कर सकता है, घटनाओं पर ऊँगली भले ही न रख सके। इन घटनाओं को हम निम्न-मध्यवर्गीय महत्वाकांक्षाओं, उसकी हसरतों या फिर 'सितारों तक पहुँचने या उन्हें छूने-पाने की लालसा' से जोड़ कर देख सकते हैं। कुछ कहानियाँ तो सीधे कल्पनालोक से उठा ली गई लगती हैं लेकिन उनमें जटिल और कठोर युगीन यथार्थ भी प्रतिबिंबित होता है। 'कुत्ते की मौत', 'जानी है जब जान पियारे' तथा 'जलकलश' और 'पंचमी' के कुछ हिस्से को एक तिलस्मी, जादुई कहानी कहा जाए तो कुछ गलत नहीं होगा। कुछ अन्य कहानियों के प्रसंग- जैसे 'नटुआ नाच' में 'भावी' का खुद को प्रस्तुत करना या 'पंच परमेश्वरी' में चुंबन के दृश्य को दुबारा करवाए जाने का प्रसंग- सरसरी निगाह से अविश्वसनीय प्रतीत हो सकते हैं, असंभव भले न लगें। कहानियों में अविश्वसनीय प्रसंग शायद बात को ज्यादा धार देने के उद्देश्य से ही रखे जाते हैं। 'अविश्वसनीय' कहानियों पर चर्चा करते हुए नामवर सिंह ने 'हिन्दी का भविष्य' शीर्षक लेख में कहा है, 'इस क्रम में यथार्थवादी माने जाने वाले लेखकों की कालजयी कहानियों को याद करें तो उनकी विश्वसनीयता भी संदिग्ध प्रतीत होगी। प्रेमचन्द की अमर कहानी 'कफन' को ही लें। घर में लाश को छोड़कर कफन के पैसों से शराब पीने वाले लोग कितने होते हैं?' इसी क्रम में वे प्रेमचन्द की कहानी 'बलिदान' और चेखव की कहानी 'क्लर्क की मौत' का भी जिक्र करते हैं। सदियों से सुनी-सुनाई जाने वाली कथा-कहानियों को जरा याद करें तो हमें याद आएगा कि कहानियाँ शुरू ही होती थीं 'एक राजा था' या 'एक बार की बात है' जैसे कथनों से। फिर कथा विभिन्न विश्वसनीय, अविश्वसनीय, कौतुकपूर्ण प्रसंगों के सहारे आगे बढ़ती थी। श्रोता उन कहानियों में खो-से जाते थे। वे कहानियाँ काल्पनिक होकर भी वास्तविक जगत को प्रतिबिम्बित करती थीं। कहानी की ग्राह्यता का संबंध श्रोता / पाठक के मनोजगत से है। कहानी कितनी आसानी से उसके मनोजगत में पैठ बना पाती है, वही उसकी सफलता का परिचायक है। कथा की यही रोचकता पाठक को आगे की घटनाओं को जानने के लिए उत्सुक बनाए रखती है।

'लेखक का दायित्व' पुस्तक में अज्ञेय कहते हैं, 'आधुनिक यथार्थ के सम्प्रेषण के लिए मनोजगत में प्रवेश करना अनिवार्य है। यथार्थ को हम अनुभव कैसे करते हैं, यह समझने के लिए मानव-मन की प्रक्रियाओं को समझना आवश्यक है। इसीलिए यथार्थ का सम्प्रेषण हम कैसे करें, इस प्रश्न के उत्तर के लिए हमें उसी प्रक्रिया की ओर मुड़ना होता हैः ग्रहण और सम्प्रेषण की क्रियाएँ परस्पर-संबद्ध हैं, यह स्वाभाविक ही है। यहाँ एक बार फिर हम कल्पना, फैंटेसी, दिवा-स्वप्न, मुक्त आसंग, मिथक आदि की उपयोगिता पहचानते हैं।' कथाकार अनिमेष की कहानियों में ऐसी घटनाएँ व स्थितियाँ प्रस्तुत होती रहती हैं- बंदर द्वारा गवाही देना, आदमी और कुत्तों के बीच बातचीत होना, खिलौनों का बोलना, कौए का बोलना आदि। हमारे पौराणिक कथाओं में भी अन्य

प्राणियों को प्रमुख चरित्र बनाए जाते रहे हैं। इसी तथ्य पर विचार करते हुए सुधामही रघुनाथ 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के अपने एक आलेख में कहती हैं कि पौराणिक कथाओं में पशुओं / प्राणियों के विभिन्न और विचित्र रूपों के समाहित किए जाने के पीछे मनुष्य जीवन के उदात्त लक्ष्यों को एक साथ लाकर उच्चतर जीवन की ओर अग्रसर होने की भावना रही है। सबों से सीखने, हर प्राणी के सर्वोत्तम गुणों को देख सकने और सबों का आदर करने की भावना से ही विकास संभव हो सकता है। कहा भी गया है 'अस्ति संघे शक्ति'। प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में इस तरह के पात्रों की उपस्थिति लेखक की कल्पनाशीलता का द्योतक तो है ही, यह हमारी संस्कृति और परंपरा में घुली मिली चली आ रही कथाविधियों व किस्सागोई का भी अत्यंत प्रभावी प्रयोग और सामयिक प्रतिरूपण है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में अक्सर एक कहानी में कई कहानियाँ गुंफित होती हैं, एक साथ कई ट्रैक कहानी में दिखने लगते हैं। 'विस्फोट' कहानी ऐसी ही एक कहानी है। एक असफल कवि की कथा से शुरू होने वाली बात पाठक को कहाँ-कहाँ ले जाती है- साहित्य-जगत की अंदरुनी राजनीति, प्रकाशक की (मन)मर्जी, पुलिसिया कुव्यवस्था, 'रेड लाइट एरिया' की झलक, राजनीतिक दखल और साथ ही साथ एक कवि की जिद, उसका छपास कि वो छप ही जाए और बस एक ही रचना की बदौलत शीर्ष का कवि हो जाए। इस कहानी को ऊपरी तौर पर एक कॉमेडी, हास्य कथा के रूप में भी देखा जा सकता है, लेकिन दूसरी तरफ आसपास व्याप्त विद्रूपताओं को दर्शाती ट्रेजेडी के रूप में भी। एक कहानी में कई कहानियों की बात करें तो 'पंचमी... एक स्मृति उत्सव' शीर्षक वृहतकथा अपने प्लॉट और कहने की शैली से एक नायाब कहानी है। पाँच दिनों की पाँच चीजों को पाँच-पाँच बार करने की कथा शुरू में तो बस एक खेल, एक कौतुक भर होने का आभास देती है, लेकिन जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है, पाठक को अपनी गिरफ्त में लेती चलती है। अंत तक पहुँचते- पहुँचते प्रेम-जनित दुख रिसता हुआ पूरी कहानी को ही जैसे भिगा देता है। कौतुक के अंदाज में ही कहानी समाप्त भी होती है, नायक की मृत्यु के समाचार से जो किसी सांध्यकालीन अखबार के छठे पृष्ठ के छठे कॉलम में छह पंक्तियों का समाचार होता है।

'थमी हुई साँसों का सफर' और 'अंतिम यात्रा' मुख्यतः दो शव-यात्राओं की कहानी है। इन कहानियों को पढ़ते हुए आप सोचने लग जाते हैं कि ऐसी विषम परिस्थियाँ उपस्थित हो भी सकती हैं क्या? दोनों ही कहानियों में मृत्यु के बाद के व्यावहारिक पक्षों को, दो एकदम ही अलग परिस्थियों में, दर्शाया गया है। ये कहानियाँ एक ऐसे यथार्थ को सामने रखती हैं जिनका सामना कोई नहीं करना चाहेगा। 'एक स्त्री का देह त्याग' भी एक मथ देने वाली कहानी है। अपने समाज, अपने घर-परिवार की ऐसी वास्तविकता को कल्पना का जामा पहना कर यह कहानी प्रस्तुत करती है कि मथनी के दाँतों से मन का मथा जाना महसूस होता है! कुछ-कुछ ऐसी ही अनुभूति 'संवाद' और 'न खोली गयी चिट्ठी' पढ़ने के बाद भी होती है।

थोड़ी बात भाषा के कौतुक, खिलंदड़पन की। पात्रों के नामों के चयन में भी लेखक की पूरी कल्पनाशीलता प्रदर्शित होती है। कुछ उदाहरण देखें- भावी, भावुक, रहमत राम

लिंगचू, तेजपुंज, बिढ़नी, ततैया, कुलबुल, अलबत्त, इजलास, टुनुक, तरेगनी, सुगना, बासमती, फतिंगी, सनातन शेषनाथ 'श्रेयस्कर', विचित्रा, भ्रू और कपूतलाल मातृशत्रु रोंटड़ा। इन नामों को पढ़ते-पढ़ते अगर आपको एक पुरानी कहानी से यह नाम याद आ जाए तो अचरज नहीं - श्रीयुत् गोलमिर्चफोरनदास भीम भंटा राव। हालाँकि अनिमेष जी द्वारा प्रयुक्त नामों में 'लोक' का भी तत्त्व है। आकशवाणी, पटना से बरसों पहले 'लोहा सिंह' नामक नाटक प्रसारित होता था। इसके पात्रों के लोहा सिंह, फाटक बाबा, खदेरन को मदर जैसे नाम आज भी लोगों को याद हैं। ऐसे ही, खासकर गाँवों-कस्बों में गुण-विशेष पर आधारित नाम अभी भी सुनने को मिल सकते हैं, जैसे बमकऊआ, चट्टान सिंह। इसी तरह कहानियों में संक्षिप्त नामों (एक्रोनिम्स) का भी प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण इस तरह से हैं - माममु (मानव मल मुक्ति), सास (सामजिक सरोकार), मामू (मानवीय मूल्य), एमएमएम (मुरली मनोहर माधव), बबब (बहुत बड़ा बदलाव)।

कभी-कभी लेखक हिन्दी की रौ में बह जाते हैं, या बहा ले जाते हैं। शायद यह भी एक कौतुक ही है लेखक की भाषा का। इन पंक्तियों को देखें- 'परिणाम अच्छे आये तो आगे प्रवेशिका के लिए वहाँ के सरकारी प्रवेशिका कनिष्ठ महाविद्यालय में नामंकन भी करा दिया। यद्यपि मास्टरनी जी मोहाविष्ट थीं और बहुत उत्साहित नहीं इस उदारता को लेकर।' एक तरफ तो ऐसे शुद्ध हिन्दी वाले शब्दों का प्रयोग है तो वहीं रोमन लिपि में हिन्दी के लिखे जाने और उसकी वजह से उत्पन्न हास्यास्पद स्थितियों का वर्णन, जैसे 'दि हिन्दी टीचर' में हिन्दी के ड़ के लिए अंग्रेजी के डी का प्रयोग और उससे अर्थ का अनर्थ।

इन कहानियों में कवि अनिमेष भी बारम्बार अपनी झलक दिखलाते हैं। कहानियों में कई स्थलों पर कविताएँ / गीत इस्तेमाल किए गए हैं, जो शायद कहानीकार के कवि होने के कारण ही हैं। 'दि हिन्दी टीचर' तो कविता / गीतों भरी कहानी ही है। सात खंडों में बँटी यह उपन्यासिका एक 'वेब सीरीज' की प्रतीति देती है। कविता वाले स्थलों के अलावा, सामान्य वर्णन में भी कई बार जो वाक्य विन्यास प्रयुक्त हुए हैं वो कविता के अधिक निकट लगते हैं। इसके कुछ उदाहरण देखिए- 'जान की कीमत कम इतनी', 'इंतजार और अभी', 'जिनसे होती नहीं उम्मीद अधिक', 'यही कहना और मान कर चलना शायद अधिक सही', 'वह भी तब जब अंतरात्मा हो साफ अपनी', 'अभी तो सब कुछ वैसे भी पार अपार'। 'एक स्त्री का देह त्याग' शीर्षक कहानी में मुख्य पात्र के संवादों के लिए भोजपुरी का प्रयोग लेखक ने किया है, जिससे कहानी की प्रामाणिकता बढ़ जाती है। लेखक ने अन्य कहानियों में भी लोक भाषा, बोलचाल की भाषा से शब्द उठाए हैं, जिनके कारण पाठकों को कहानियाँ और भी ज्यादा करीब लगती हैं। ऐसे शब्दों की एक बानगी देखिए - 'खाँख-खखार', 'पोतड़े', 'गेंदड़ा', 'कठकरेज', 'ठट पाना', 'बुतरू', 'खंती', 'थोड़े थाकर'।

कहानी के गुणों पर विचार करते हुए नलिन विलोचन शर्मा ने कहा है - 'कहानी की दुनिया छोटी-सी होती है, उसके प्राणी छोटे-छोटे। हीरे की कनी की तरह, हम प्रत्येक कहानी में लेखक के जीवन के विषय में अध्ययन के किसी एक पहलू का आभास पाते हैं, रस-विशेष का किसी कवित्वपूर्ण भावना का, किसी एकांकी नाटिका का सूक्ष्म,

निर्दोष प्रतिबिम्ब दर्शन करते हैं। ...छोटी कहानी एक सूक्ष्म-दर्शन-यंत्र है, जिसके नीचे मानवीय अस्तित्व के रूपक के दृश्य खुलते हैं।' प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियाँ भी जीवन के विभिन्न पहलुओं, विभिन्न रस-भावों से होकर गुजरती हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में उपस्थित स्त्रियाँ मजबूत स्त्रियाँ हैं, अपने बारे में स्वयं ही निर्णय लेने वाली। यह आज का समाज है। 'नटुआ नाच', 'चटनी' और 'एक स्त्री का देह त्याग' कहानियों में यह स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है जहाँ स्त्री पात्रों का विरोध मुखर है। अन्य कहानियों में भी जहाँ विरोध-प्रतिरोध की स्थिति नहीं बनती है, वहाँ भी निर्णय स्त्रियों के अपने हैं।

हमारे देश की अपनी भाषा जो कि 'राजभाषा' भी बना दी गई है, उसकी दशा-दुर्दशा पर दो कहानियाँ अपने रास्ते तय करती हैं। 'टिनी टॉट' बहुत ही महीन बाल-मनोविज्ञान के साथ थोड़े नाटकीय अंदाज में आगे बढ़ती है। 'दि हिन्दी टीचर' एक बड़े कैनवास पर इस चर्चा को ले जाती है। दोनों ही कहानियों में व्यंग्य की अंतधार्रा साथ-साथ चलती रहती है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में मुम्बई यानी मायानगरी और उसकी सिनेमाई दुनिया की बातें बार-बार आती हैं। वहाँ के किस्से, वहाँ का खोखलापन, वहाँ के तौर तरीके। मध्यवर्गीय हसरतों, महत्वाकांक्षाओं में फिल्में अभी भी अपना स्थान रखती हैं। कहानियों में कविताएँ और गीत भी हैं- अर्थविस्तार और प्रभाव गहन करते हुए। हमारे आसपास के जीवित और जीवंत चरित्र, हालाँकि बदले हुए नामों के साथ या सिर्फ उनके वर्णन के साथ, कहानियों में आवाजाही करते रहते हैं। दो कहानियों में लघुशंका को रोके रखने से उत्पन्न स्थितियों का सूक्ष्मता से वर्णन करती कहानी चलती है, कभी-कभी इतनी ज्यादा करीब की महसूस होती हुई कि पाठक थोड़ा बेचैन हो जाए। स्त्री-पुरुष के बीच के अंतरंग दृश्यों पर भी लेखक की कलम बेधड़क चली है। समाज में व्याप्त जातिगत पूर्वाग्रह की दुखती रग पर भी ये कहानियाँ उँगली रखती हैं, लेकिन किसी वैमनस्य को बढ़ावा देती नहीं, बल्कि यथा-स्थिति को सामने रखती हुई और उससे जल्द से जल्द उबरने की जरूरत को रेखांकित करती हुई। 'एक स्त्री का देह त्याग' और 'न खोली गयी चिट्ठी' आधुनिक समाज के कृतघ्न होती संतान की मानसिकता को सामने रखती है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियाँ समय और समाज को समग्र रूप से संबोधित करती हैं और साथ ही, आगत की संभावनाओं को भी- वर्तमान के साथ बीते और आने वाले कल की चाप सुनने और उनके रूपाकार उकेरने की चेष्टा करती हुई। जीवन की बुनियादी जरूरतों और अपने हक के लिए संघर्षशील वंचित तबका उनकी कई कथाओं, उपन्यासिकाओं आदि का नायक, मुख्य पात्र या अहम किरदार है। इनमें हंस व कथादेश द्वारा प्रथम पुरस्कार से सम्मानित कहानियों ('एक मधुर सपना' एवं 'पानी पानी') के अलावा 'पानीफल', 'जलकलश', 'चिड़िया का बुखार', 'वह आदमी कि- सी समय भी मारा जा सकता है', 'जानी है जब जान पियारे', 'दि हिन्दी टीचर', 'आगे बढ़ो', 'अगले जनम', 'बिछौना' जैसी अनेक उल्लेखनीय कहानियाँ शामिल हैं। इनका चित्रण व निर्वहन वे उतनी ही बारीकी से और बखूबी करते हैं, जिस तरह उच्चवर्गीय या

निम्न-मध्यवर्गीय पात्रों और उनसे जुड़े परिवेश व परिस्थितियों का। मध्यवर्ग भी उनकी कहानियों में पूरी सच्चाई के साथ उपस्थित है, चाहे मधुर हो या कठोर। और यह वही मध्यवर्ग है जो सारी आधुनिकता और प्रतिद्वंद्विता के साथ थोड़ा सा भावुक भी है, जो अब भी अपने को प्रेम में उत्सर्ग करने के लिए तत्पर हो उठता है जैसा 'उसने नहीं कहा था' कहानी में लेखक ने प्रस्तुत किया है।

लेखकीय तटस्थता के बावजूद उपेक्षितों के प्रति अनायास और अतिरिक्त संवेदना-सहानुभूति उनकी रचनाओं में सहज ही देखी जा सकती है। हालात और व्यवस्था के विद्रूप को व्यंजना से उभारते बाह्यावरण के बावजूद ये कहानियाँ भी, उनकी कविताओं की ही तरह, भीतर से कहीं तर होती हैं- जहाँ कहीं भी संवेदना हो, उसके अंतरतम को छूती झिंझोड़ती हुई। मनुष्य एवं मनुष्यता ही नहीं, समस्त मानवेतर जड़ चेतन एवं प्रकृति के कण कण के प्रति अपार करुण स्नेहसिक्त संवेदना उनके लेखन में नैसर्गिक रूप से परिलक्षित होती है। वही जनपक्षधरता, प्रीतप्रतिबद्धता और पारदर्शिता उनकी कहानियों में भी है, जिसे वे अपनी कविता पंक्तियों में इस तरह अभिव्यक्त करते हैंः

हर किसी को हद से ज्यादा प्यार
अपने हर मकसद से ज्यादा प्यार

'लेखक की आस्था' पुस्तक में निर्मल वर्मा कहते हैं 'एक महान कृति वह लालसा है, जो बची रहती है, कभी तृप्त नहीं होती।' प्रेम रंजन अनिमेष के संदर्भ में यह लालसा दोतरफा है- लेखक की तरफ से भी और पाठक की तरफ से भी।

जहाँ तक मेरी जानकारी है पुस्तक-रूप में प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियाँ एक ही पुस्तक में प्रकाशित हुई हैं अब तक, वह भी ई-बुक के रूप में। 'पहल' के यशस्वी संपादक ज्ञानरंजन जी ने एक साक्षात्कार में जिक्र किया है कि विष्णु नागर जी को दो पुस्तकों के बड़े प्रकाशकों के यहाँ से प्रकाशित होने के बाद भी अपनी अगली पुस्तक खुद प्रकाशित करवानी पड़ी। मैनेजर पाण्डेय ऐसी ही बात पर विचार करते हुए 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' पुस्तक की भूमिका में कहते हैं 'सच बात तो यह है कि आज के जमाने में साहित्य बनने के लिए किसी रचना का लिखा जाना काफी नहीं है। साहित्य बनने के लिए रचना का पाठक के पास पहुँचना जरूरी है और पाठक के पास पहुँचने के पहले उसे एक लम्बी आर्थिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।' आशा की जाए कि इस आर्थिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया में, जिसमें संभवतः काई लग चुकी है, ऊजार्वान और सकारात्मक बदलाव आएँगे, जिससे नए-नए और अच्छे लेखन प्रकाश में आएँगे।

समाज और सिस्टम की सड़ाँध पर सवाल करती कहानियाँ

-प्रकाश कान्त

पिछले ढाई-तीन दशकों में बिहार की पृष्ठभूमि से आये कवि-कथाकारों में प्रेम रंजन अनिमेष एक महत्तवपूर्ण नाम है। कविताओं के अलावा अपनी कथा रचनाओं के माध्यम से उन्होंने अपनी एक खास पहचान बनायी है। विशेषकर अपनी रचनाओं के स्थानीय संस्पर्शों के चलते! वैसे, बिहारी जीवन के गहरे स्थानीय रंगों के बावजूद उनकी रचनाएँ अंचल विशेष तक सीमित या आबद्ध नहीं हैं। उनका एक सार्वदेशिक सन्दर्भ है। यकीनन इस सार्वदेशिकता की जड़ें स्थानीयता में हैं। वहीं से उन्हें अपना पोषण मिलता है। सिर्फ.पोषण ही नहीं बल्कि पहचान भी! यह उन्हें विशेष भी बनाती है। इसी के चलते इधर के कथाकारों में उनका उल्लेख विशेष रूप से होता है।

अनिमेष बड़े कथाफलक के रचनाकार हैं। उनकी उपन्यासिकाएँ ('स्त्री गाथा' और 'द हिन्दी टीचर') तो बड़े कथाफलक की रचनाएँ हैं ही, 'माई रे..', 'पानी-पानी' जैसी कहानियाँ भी। बल्कि यह कहा जाना ज्यादा सही होगा कि वे औपन्यासिक फलक की रचनाएँ हैं। सिर्फ. अपने आकार या विस्तार की दृष्टि से ही नहीं बल्कि कथातत्त्व को देखते हुए भी! 'पेड़ होती हुई लड़की' जैसी कहानियाँ देखकर इसे समझा जा सकता है। लम्बी कहानियों को तो खासकर! वैसे, लम्बी कहानी और लघु उपन्यास में बहुत महीन-सा संरचनागत फर्क. रहता आया है। फिर भी इसे लेकर एक तरह की बहस तो रही है। 'आखरी छलाँग' (शिवमूर्त्ति) या 'ए लड़की' (कृष्णा सोबती) जैसी कई रचनाओं का इस सिलसिले में जिक्र हो सकता है। इस तथ्य के बावजूद कि दोनों अलग-अलग विधाओं की रचनाएँ रही हैं। विशेषकर 'ए लड़की को लेकर! पिछले तमाम सालों में लगातार लम्बी कहानियाँ प्रकाशित होती रही हैं। कुछ पत्रिकाओं ने अपने हर अंक में एक लम्बी कहानी प्रकाशित की है। कुछ ने लम्बी कहानियों के ही अंक भी निकाले हैं। कुछ ने लघु उपन्यासों के! इस सब में कहीं-कहीं यह दुर्घटना भी हुई कि जो लम्बी कहानियाँ थीं, वे औपन्यासिक कलेवर की थीं और अपने कलेवर में जो लघु उपन्यास थे वे लम्बी कहानियाँ थे। उदय प्रकाश की 'मेंगोसिल' या 'पीली छतरी वाली लड़की' ('और अन्त में प्रार्थना' भी) को भी उसमें मौजूद कथात्मक भराव को देखकर इसे समझा जा सकता है। 'ए लड़की' रवीन्द्र कालिया के अतिथि सम्पादन में 'वर्त्तमान साहित्य' के कहानी महाविशेषांक में कहानी की तरह प्रकाशित हुई थी। बाद में जब वह पुस्तकाकार आयी तो उसकी चर्चा उपन्यास की तरह होती रही। दरअसल, मानदण्डों के साथ बाजवक्त इस तरह का हादसा हो जाया करता है कि अपने अन्यतम रूप तक पहुँचते-पहुँचते वे महीन होते-होते धुंधलाने लगते हैं। खैर, कभी-कभी किसी लम्बी कहानी को पढ़कर यह पूछा जाने लगता है कि वह उतनी लम्बी क्यों है और जिसे लघु उपन्यास कहा जा रहा है वह असल में लम्बी कहानी क्यों नहीं है! दरहकीकत, मुद्दा उस कथात्मक दबाव और भराव का है जो किसी रचना को कहानी, लम्बी कहानी (लघु भी) और लघु उपन्यास बनाता है। 'ओल्डमॅन एण्ड द सी' (हेमिंग्वे) और 'ब्रदर्स कारमाजोव' (दास्तोएव्स्की) को आमने-सामने रखकर इसे देखा जा सकता है। टॉलस्टाय की लम्बी कहानियाँ और उन्हीं के उपन्यास 'वॉर एण्ड पीस' को देखकर

भी!

अनिमेष की कई कहानियाँ असल में औपन्यासिक कलेवर की हैं। खासकर 'माई रे...' जैसी कहानी जिसमें पृष्ठभूमि में सूचनात्मक ही उल्लेख होने के बावजूद एक तरह से तीन पीढ़ियों की बात है। वैसे कथा के केन्द्र में तो अबू-शिबू और उनका बेटा है लेकिन कथा के शुरूआत के सिरे पर अबू के पिता फजल कलाम आजाद भी हैं जो शायर, लेखक और कलाकार हैं। कथा का सिलसिला एक तरह से उन्हीं से शुरू होता है। पाकिस्तान से! और खत्म होता है अबू-शिबू के बेटे द्वारा संगीत प्रतियोगिता जीतने पर! बीच में है प्रभु की माँ जो लोक गायिका रही है। लेकिन अन्त में कैंसर का शिकार हो कर उसी दिन गुजर जाती है जिस दिन बेटा प्रभु प्रतियोगिता जीतता है। बीच में बहुत कुछ है- साम्प्रदायिक दंगे, दुआ जैसे शायर का मारा जाना, अबू का अपने मित्र के साथ एक असफल फिल्म बनाकर आर्थिक रूप से बर्बाद हो जाना, लकवे का शिकार होना और एक दिन गुजर जाना! कंटेंट के स्तर पर इतना सब!! एक बड़ा कथा फलक! अनिमेष के यहाँ 'पानी-पानी' और दूसरी कुछ इसी तरह की कहानियाँ हैं। पानी-पानी कॅरियर बनाने के लिए गाँव से शहर आये तीन युवा निर्धन मित्रों के संघर्षों की कहानी है। उन्हें अपने घर-परिवार की तंगहाली का पता है। वे अपने लक्ष्य को लेकर सजग और प्रतिबद्ध हैं। अपनी सारी दूसरी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ स्थगित रख वे अपना और अपने परिवार का सपना साकार करने में जुटे हैं। इसके लिए उन्होंने अपनी भूख और रात के लिए जरूरी रोशनी तक को स्थगित कर रखा है। विशेष यह कि इतनी कष्टप्रद परिस्थितियों में भी अपनी प्रकृत मानवीयता और ईमानदारी बचाये रखते हैं। उनकी इस गाथा की पृष्ठभूमि में गाँव में रह रहे उनके परिवारों के संघर्ष, ग्रामीण जीवन की बदहाली, नदी में आयी विनाशक बाढ़ भी है। इन सारी कोशिशों के बीच अन्ततः एक मित्र काली ठाकुर मार दिया जाता है। कुल मिलाकर एक बड़े कथाफलक की कहानी का यह एक कारुणिक अन्त है। 'ए आजी' कहानी का फलक भी इसी तरह काफी बड़ा है। वास्तव में अपनी हर कथा रचना में अनिमेष के पास कहने को बहुत सारा होता है। वे रचनाएँ अल्प कथापूँजी की रचनाएँ नहीं होतीं। चूँकि उनकी रचनाओं की जड़ें ग्रामीण जीवन में हैं और वे खुद बिहार के ग्रामीण जीवन से गहराई से जुड़े हैं, ऐसे में उनकी कथा रचनाओं में वहाँ के लोक जीवन के सारे भले-बुरे संघर्ष, संकट, सुख-दुःख, बदहाली स्वाभाविक एवं प्रामाणिक रूप से व्यक्त होते रहे हैं। ग्रामीण जीवनानुभवों पर केन्द्रित कहानियों में उस जीवन के श्वेत-श्याम रंगों को उनके पूरे गहरेपन में देखा जा सकता है। इसके अलावा, रोटी-रोजगार या दीगर जरूरतों के चलते गाँव छोड़कर आये पात्रों के लोक-व्यवहार और स्मृति में भी गाँवों की मौजूदगी देखी जा सकती है। कस्बों में रह रहे परिवारों के सोच और व्यवहार में तो गाँव और भी ज्यादा साफ दिखाई देता है, अपनी छोटी-बड़ी विकृतियों सहित भी!

अनिमेष की रचनाओं में ऐसे कई गाँव आते हैं जो उजाड़ के खण्डहर बन चुके हैं। संयुक्त परिवार टूटकर बिखर गये हैं या आखिरी साँसें ले रहे हैं। पुश्तैनी जमीनें पारिवारिक बँटवारे में बँटते-बँटते बित्ते-बित्ते-भर बची हुई हैं जिन पर खेती करना घाटे का धन्धा हो चुका है। जो जा सकते थे, वे अपना हिस्सा बेचकर शहर जा चुके हैं।

पारम्परिक और दीगर रोजगार खत्म हो चुके हैं। बचे हुए ग्रामीण समाज में सामन्ती समाज की प्रेतात्माएँ जातिवाद, छुआछूत, दहेज, स्त्री प्रताड़ना के रूप में मँडराती मिलती हैं। छोटे-बड़े रोजगार की तलाश में लोगों का शहरों की ओर पलायन जारी है। 'न खोली गयी चिट्ठी', 'चिड़िया का बुखार', 'फिर ठेस', 'संवाद' जैसी कहानियों में से गुजरकर इसे देखा-समझा जा सकता है। खास बात यह कि अनिमेष गाँवों को भावुक होकर नहीं, यथार्थवादी दृष्टि से देखते हैं। बिना किसी तरह का रंग-रोगन किये! साथ ही वे चीजों और स्थितियों को वहाँ से देखते हैं, जहाँ ग्रामीण समाज की सबसे निचली पायदान पर दबा-कुचला श्रमजीवी समुदाय सदियों से खड़ा है। हर तरह से मानवीय गरिमा और मनुष्योचित अधिकारों से वंचित! श्रम और कर्म का गुणगान करने वाले समाज ने उसे मनुष्य का दर्जा देना भी जरूरी नहीं समझा। पशु से भी निकृष्ट समझा! वास्तव में सदियों पुरानी ग्रामीण संरचना में जो मनुष्यविरोधी विकृतियाँ विकसित हुई हैं, यह उसी का परिणाम है। अनिमेष अपनी रचनाओं में इस सब को बिना किसी नारे के देखने की कोशिश करते हैं। उनकी उपन्यासिका 'द हिन्दी टीचर' या 'लिक्खी' जैसी कहानियों में इसे देखा जा सकता है। 'द हिन्दी टीचर' की समर्पण पंक्तियाँ इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं, 'भविष्य के लिए जूझते / दलित समाज / हिन्दी समाज को!' उनकी रचनाओं के कई चरित्र इसी समाज से आते हैं। उनमें से जो पढ़ा-लिखा वर्ग है, उसके सोच और बातों में अपने समुदाय के साथ सैकड़ों साल हुए दुर्व्यवहार की पीड़ा और दंश आक्रोश की शक्ल में व्यक्त होते हैं। दलित जीवनानुभवों का लेखन और प्रेमचन्द वाले विवाद का जिक्र भी उनके यहाँ मिलता है। दलित प्रसंग यूँ तो उनकी कई रचनाओं में आये हैं लेकिन 'लिक्खी' जैसी इस सिलसिले में बिलकुल अलग और बहुत महत्त्वपूर्ण कहानी भी उनके यहाँ है। पढ़े-लिखे बल्कि एक तरह से वर्गान्तरित हो चुके वर्ग की मानसिक उलझन, अन्तर्द्वन्द्व और ग्रन्थियों को कहानी बहुत महीन ढंग से उभारती है। अपने मनोवैज्ञानिक एप्रोच के चलते यह बहुत विशिष्ट कहानी है। बेहतरीन भी! 'ए आजी', 'माँ भंगन' जैसी कहानियों में ये चीजें भिन्न ढंग से आती हैं। खासकर पारिवारिक ढाँचे के भीतर! लेकिन, 'द हिन्दी टीचर' में मुम्बई जैसे शहर के महानगरीय परिवेश में मूल प्रश्न दूसरे कुछ अलग शेड में दिखाई देता है। और लगभग कहीं पीछे छूट जाता है। वैसे, स्त्री, युवा जैसे मुद्दों के अलावा अनिमेष की कथा रचनाओं में इसी श्रमजीवी समुदाय की चिन्ताएँ केन्द्रीय चिन्ताओं की तरह रही हैं। उनकी कई कहानियाँ उस प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपहास, अवहेलना और अपमान का नोटिस लेती हैं जिनका सामना दलित समुदाय से आये हुए नौकरी-पेशा व्यक्ति को अपने कार्यस्थल पर करना पड़ता है। यह सही है कि उनके इस तरह के अधिकांश चरित्र पुरुष हैं। जिनमें से कुछ से उनके पद, योग्यता और व्यक्तित्व इत्यादि से प्रभावित होकर गैऱ़दलित स्त्रियों ने उनसे विवाह किया है। 'लिक्खी', 'कहीं नहीं वही' में ऐसी ही स्त्रियाँ हैं। वे अपने वैवाहिक जीवन में काफी सुलझी हुई नजर आती हैं। इसे खासकर 'कहीं नहीं वही' में देखा जा सकता है। वैसे, कुछेक कहानियों में वैवाहिक जीवन के तनाव, खिंचाव भी हैं। 'माँ भंगन', 'गूँगी माँ का गीत', 'न खोली गयी चिट्ठी' इसी तरह की कहानियाँ हैं। आम पारम्परिक परिवारों में पाये जानेवाले सास-बहू के बीच के तनावपूर्ण सम्बन्ध अनिमेष की भी कहानियों में देखने

को मिलते हैं। जिनमें सासें आम तौर पर उपेक्षित, प्रताड़ित और अपमानित होती मिलती हैं। कुछ जगह तो बहू अपनी सास को साथ रखना भी नहीं चाहती और परिस्थितिवश अगर रखना ही पड़ जाता है तो उनसे सम्मानजनक व्यवहार नहीं करती। 'गूँगी माँ का गीत' या 'माँ भंगन' में यही होता है। पहली कहानी में तो बहू अपनी परिचिताओं के सामने भी सास को नहीं पड़ने देती। 'माँ भंगन' की बहू अपनी सास से न सिर्फ अनाज बिनवाती है बल्कि घर के टॉयलेट वगैरह की सफाई भी करवाती है। यह कहानी अपने उत्तरार्द्ध में एक कारुणिक व्यंग्य फैंटेसी में बदलती है। देवी के दर्शन करने आयी माँ से उसकी व्यथा सुनकर देवी उसे मूर्त्ति में अपनी जगह प्रविष्ट करवाकर खुद उसकी जगह काम करने पहुँच जाती है। आगे कई दिन - देवी विसर्जन के दिन तक यह क्रम चलता है। आखिरी दिन प्रतिमा में प्रविष्ट माँ घर लौटने से ज्यादा मूर्त्ति के साथ नदी में विसर्जित हो जाना ठीक समझती है लेकिन देवी अन्तिम समय में आकर बचा लेती है। अनिमेष ने अपनी और भी रचनाओं में फैंटेसी का प्रयोग किया है लेकिन इस कहानी में इसका प्रयोग कथा की व्यंजना को मारक और गहरा करता है।

अनिमेष की और भी कुछ कहानियों में विवाहित बेटों के यहाँ जाकर रहती माँएँ हैं और लगभग हर जगह उपेक्षित हैं। उन्हें अगर अपने दिवंगत पति की पेंशन मिल रही हो तब तो फिर भी थोड़ा-सा ठीक है वरना हाल बेहाल ही है। 'न खोली गयी चिट्ठी' की बहू के लिए हवाई यात्रा ज्यादा जरूरी है जिससे लौटकर वह सास की उत्तर क्रिया के लिए गाँव नहीं जाना चाहती।

अनिमेष के यहाँ ऐसी माँएँ तो हैं ही जो बेटों के लिए चिन्तित हैं, साथ ही वे माँएँ भी हैं जो बेटियों की शादी, अच्छे ससुराल को लेकर भी चिन्तित और परेशान हैं। ये गाँव-कस्बों की पारम्परिक माँएँ हैं। दिनों-दिन तेजी से पेड़ होती जाती लड़की जिनकी नींद उड़ा देती है। अल्प आय वाले पिता भी परेशान रहते हैं। 'पेड़ होती हुई लड़की', 'देखना', 'लड़की अब भी स्वेटर बुनती है' इत्यादि कहानियों में इसी तरह की लड़कियाँ और उनके शादी-ब्याह को लेकर चिन्तित माँ-पिता हैं। इनमें ऐसी जहीन लड़कियाँ भी हैं जो पढ़ाई में तेज हैं और डॉक्टर वगैरह बनना चाहती हैं। लेकिन, आर्थिक रूप से कमजोर पिता इस मामले में बेबस हैं। उनकी शादी एक अलग समस्या है। योग्य वर ढूँढने से लेकर दहेज जुटाने तक! बिहार के ग्रामीण अंचलों सहित अन्य जगह दहेज आज भी एक विकराल समस्या बना हुआ है। अपेक्षित दहेज न मिलने पर लड़कियाँ ससुराल में प्रताड़ित होती हैं, आत्महत्या करने के लिए विवश कर दी जाती हैं। छोड़ देना या माँग पूरी न होने तक माँ-पिता के घर भेज देना तो एक सामान्य बात है। 'देखना', 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'पेड़ होती हुई लड़की', 'कागज का हवाई जहाज', 'संवाद' जैसी कहानियों में इसी सब को देखा जा सकता है। कई लड़कियाँ शादी की प्रतीक्षा में स्वेटर बुनते हुए बड़ी होती रह जाती हैं। 'आधी लड़कियाँ-स्त्रियाँ स्वेटर बुन रही हैं।' यह एक कारुणिक टिप्पणी भी है ('लड़की अब भी स्वेटर बुनती है')! इस कहानी में 'अपलक' की कविताएँ युवती की मनोदशा को रेखांकित करती हैं। 'मौसमों के एक पड़ाव पर आकर / स्वेटर बुनने में हिचकती हैं लड़कियाँ / वे तब भी रेशा-रेशा होती हैं / पर जीवन की खींचतान में पुराने पड़े ऊन की तरह / टूट चुकी होती हैं

भीतर-भीतर / गिरहें उभर आयी होती हैं / रंग कुछ बह चले होते हैं पानी में / कुछ / उड़ गये होते धूप में!' यह एक ग्रामीण, कस्बाई या छोटे शहर के औसत परिवार की लड़की के जीवन का सच है।

वैसे, अनिमेष ने अपनी कथा रचनाओं में स्त्री और उसके संघर्षों को उसके माँ, बेटी, बहन, पत्नी इत्यादि सभी रूपों में देखने-समझने की कोशिश की है। इस सब में वे उसकी छोटी-छोटी दबी-छिपी उचित-अनुचित खुशियों का नोटिस लेना भी नहीं भूले हैं। उनके यहाँ कुछ बिन्दास किस्म की लड़कियाँ भी हैं जो प्रेम करने में सिर्फ.झिझकती ही नहीं बल्कि इसकी पहल भी करती हैं। 'एक स्वप्निल प्रेमकथा' या 'पंच परमेश्वरी' में इसे देखा जा सकता है। एक निम्न वित्त वर्ग की युवा होती लड़की के सपने, इच्छा और पीड़ा को अनिमेष ने अपनी कहानियों में बहुत महीन ढंग से उभारा है। उनमें पढ़ना चाह रही लड़की की पीड़ा भी है और नौकरीपेशा लड़की की भी! 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था' की ये पंक्तियाँ इस लड़की या स्त्री की त्रासदी को ही रेखांकित करती हैं, 'लड़की तो एक लकड़ी की तरह होती है जो चिता तक रिसती धुआँती जाती है।' निश्चय ही यह आज की शहरी-महानगरीय मॉड लड़की का जीवन-सत्य नहीं हो सकता लेकिन एक औसत सामान्य परिवार की लड़की का जीवन-सत्य तो है ही!

जहाँ तक स्त्री के बाकी संघर्षों की बात है, वे 'माँ भंगन', 'पेड़ होती हुई लड़की', 'देखना', 'उसने नहीं कहा था', 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'गूँगी माँ का गीत', 'माई रे...', 'ए आजी', 'एक स्त्री का देह त्याग', 'स्त्री गाथा' जैसी रचनाओं में बहुत मारक और मार्मिक ढंग से व्यक्त हुए ही हैं। अनिमेष की कई रचनाएँ भारतीय समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति को सामने रखती हैं। वह समाज जो अपनी भीतरी सड़ाँध और बदबू से बजबजा रहा है। खासकर ग्रामीण समाज! उन कहानियों में स्त्री की जो समग्र छवि बनती है वह शोषित-प्रताड़ित की है। जिसे वह चुपचाप बर्दाश्त करती है, पिता के घर की विवशताओं को जान-समझकर किसी तरह का विद्रोह नहीं करती। अपनी नियति मान लेती है। शिक्षित स्त्री तक अपनी स्थिति से समझौता करती मिलती है ('सात सहेलियाँ')। कुछेक स्त्रियाँ ही हैं जो इस नियति को मानने से इंकार कर देती हैं। बिना किसी विशेष क्रान्तिकारी मुद्रा के!

यहीं यह भी उल्लेखनीय है कि अनिमेष के यहाँ स्त्री की अपनी पहचान - अपने अस्तित्व की तलाश के प्रयास भी हैं। विशेषकर उनकी उपन्यासिका 'स्त्री गाथा' में! एक स्नातक लड़की की वास्तविक शैक्षणिक योग्यता को छिपाकर एक कम-पढ़े व्यक्ति से उसका विवाह कर दिया गया। वह दो बच्चों की माँ भी बन गयी। अपनी खुशहाल गृहस्थी में एक दिन उसे अचानक महसूस होता है कि सब कुछ तो है लेकिन उसकी अपनी पहचान क्या है! उसे तो अपना नाम भी याद नहीं!! पहचान और अस्तित्व की तलाश का प्रश्न नाम की तलाश में बदल जाता है। नाम की तलाश में वह घर-शहर को छोड़कर कई जगह पहुँचती है, अपने बरसों पहले छोड़े कॉलेज, आकाशवाणी केन्द्र जहाँ उसने लोकगीत गाये थे और अन्त में अपने चाचा के घर जहाँ उसकी दिवंगत माँ की पेटी में उसके शैक्षणिक प्रमाणपत्र रखे थे। लेकिन वहाँ उसे पता लगता है कि वे प्रमाणपत्र तो बहुत पहले नष्ट कर दिये गये हैं। लगभग किसी फंतासी की तरह नाम की

तलाश स्त्री के अस्तित्व और पहचान की तलाश बन जाती है। उपन्यासिका स्त्री से जुड़े सबसे बुनियादी प्रश्न को एक बिलकुल अलग ढंग से रेखांकित करती है।

निम्न वित्त या निम्न मध्यवर्ग के घर-परिवार की माँओं की तरह अनिमेष की रचनाओं में इन परिवारों के पिता भी हैं। घर-परिवार के लिए खटते, बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षा के लिए परेशान होते, बेटियों के ब्याह की चिन्ता और सही वर की तलाश में घुटते पिता! इनमें से कुछ सिद्धान्तवादी भी हैं। 'देखना', 'पेड़ होती हुई लड़की', 'नटुआ नाच', 'तोहरी सुरतिया देख के', 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'कागज का हवाई जहाज' में ऐसे पिता हैं। इनमें से कुछ तो ('तोहरी सुरतिया देख के') संस्कृत पढ़े-लिखे विद्वान हैं। चोरी-छिपे लिखते-छपते हैं। अनिमेष की कहानियों के पिताओं को अपनी असहायता का एहसास है, जिसे वे छिपाते भी नहीं! बेटे को बताकर उसी से बेटी के ससुरालवालों की मोटर साइकिल की माँग पूरी करने का आग्रह करते हैं ('कागज का हवाई जहाज')।

जहाँ तक इन कहानियों के युवाओं की बात है, वे अपने घर-परिवार की बदहाली के बीच एक उम्मीद और भरोसे की तरह हैं। छोटे हों या बड़े, परिवार में बहनों के विवाह को लेकर माँ-पिता द्वारा की जानेवाली चिन्ता में भागीदार! विवाहित बहनों के साथ उनके ससुराल में हो रहे दुर्व्यवहार से आहत और क्रोधित! लेकिन, अपनी ओर से कुछ न कर पाने के असहायताबोध से ग्रस्त और व्यथित भी! फिर भी, सम्भव सीमा में जो कुछ कर सकते हैं, करते हैं ('दी', 'देखना')। ये युवा पढ़-लिख रहे हैं या पढ़ाई कर चुके हैं और प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं। उनमें असफल भी हो रहे हैं। 'पानी-पानी' के गाँव के निर्धन परिवारों के शहर में अपना कॅरियर बनाने के लिए आये तीन युवा इसी तरह के हैं। जिन युवाओं को नौकरी वगैरह में आरक्षण का लाभ मिला है वे अपने कार्यस्थल पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उपहास के शिकार भी होते रहते हैं। 'द हिन्दी टीचर' के सनातन शेषनाथ 'श्रेयस्कर' के साथ यही होता है। इन युवाओं में से कुछ जैसे 'द हिन्दी टीचर' के श्रेयस्कर, 'हजामत' का नायक, 'विस्फोट' का असफल कवि, 'पानी-पानी' का सादी इत्यादि सर्जनात्मक क्षेत्र में भी सक्रिय हैं, कविताएँ लिखते हैं; जिनमें उनके संघर्षों का बयान है, जिनमें आशा-निराशा, सफलता-विफलता, सुख-दुःख की मिली-जुली आवाजें सुनायी देती हैं। अगर वे अपने कविकर्म में असफल हैं ('विस्फोट') तो कहीं-कहीं उनकी कविताएँ दूसरों के जीवन संघर्ष में सम्बल भी बनती हैं ('हजामत')। उनकी कविताएँ भले ही कई जगह अनगढ़ हों लेकिन उनमें गहरी संवेदना देखी जा सकती है। खासकर स्त्री के संघर्ष-प्रसंगों में! उनमें एक गहरी करुणा प्रवाहित महसूस होती है। जहाँ तक इन युवाओं के प्रेम प्रसंगों की बात है, उनमें से कुछ दब्बू भी हैं, अपनी ओर से पहल नहीं कर पाते। पहल कहीं-कहीं लड़की करती है ('एक स्वप्निल प्रेमकथा')

इस युवा पर अपने घर-परिवार की कई तरह की जिम्मेदारियाँ हैं। उसे अपने ससुराल में प्रताड़ित बहन को सम्भालना, उसके बच्चों को शिक्षा दिलवाना है, किसी बहन का इलाज करवाना है ('संवाद', 'दी'), कहीं बहन के ससुराल से की गयी मोटर साइकिल की माँग पूरी करना है। उसे न्यूनतम सुविधाओं और अधिकतम अभावों के बीच अपना

कॅरियर भी बनाना है। यहाँ तक कि साक्षात्कार देने जाते हुए उसके शैक्षणिक दस्तावेज चोरी तक हो जाते हैं। उसकी निरीहता और संघर्ष प्राणान्तक लगते हैं।

इस तरह की कहानियों के अलावा अनिमेष के यहाँ अन्य कई सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक मुद्दों को लेकर भी गम्भीर कहानियाँ हैं। कोरोना (कोविड-19) महामारी को लेकर 'जानी है जब जान पियारे', 'हजामत' हैं तो राष्ट्रपति को सपने में अपने घर आया देखनेवाले श्रमजीवी परिवार के बच्चे की कहानी भी है ('एक मधुर सपना')। 'अन्तिम यात्रा' के नारायण बाबू हैं जिनकी इतनी-सी इच्छा भी पूरी नहीं होती कि मरने के बाद उनकी अर्थी कुछ समय के लिए उस संस्थान के प्रांगण में रखी जाये जहाँ उन्होंने पूरे सेवाकाल में समर्पण भाव से काम किया। 'थमी हुई साँसों का सफर' उस भावनात्मक एवं व्यवस्थागत संकट की कहानी है जो मुम्बई जैसे महानगर से सैकड़ों किलोमीटर दूर अपने घर लौटते हुए पिता की ट्रेन में बीच रास्ते में हुई मृत्यु से पैदा होता है। किसी दाढ़ीवाले मुस्लिम की लिखी अस्पष्ट इबारत से उस पर आतंकवाद से जुड़े होने के सन्देह ('दाढ़ीवाला बूढ़ा') में व्यंग्य तो है ही, तन्त्र की कार्यपद्धति को लेकर एक तरह का मखौल भी है। 'आगम' के बी.बी. बाबू अचानक इस एहसास से घिर जाते हैं कि अब वे चले जाने वाले हैं। वे घर-बाहर सब के साथ अन्तिम भेंट वाले भाव से मिलते, व्यवहार करते हैं। गाँवों में कुम्हारी-सुतारी जैसे पारम्परिक व्यवसाय खत्म हो रहे हैं। नयी पीढ़ी रोजगार की तलाश में शहर-महानगर जाना-आना कर रही है। इसमें उसके अपने कई तरह के संघर्ष और बनते-बिगड़ते नये रिश्ते भी हैं। 'पानीफल' इसी की कथा है। जिसमें हिरोइन बनने का सपना देखने वाली फतिंगा की कथा भी है। बड़ा कथाफलक है।

अनिमेष के यहाँ जो विविध प्रकार के चरित्र मिलते हैं उनमें से कुछ मासूम और निरीह प्रकृति के भी हैं। जो सिस्टम में बुरी तरह छले जाते हैं। अगर वे निचले वर्ग के हुए तो और भी ज्यादा! 'जलकलश' ऐसे ही व्यक्ति की आपबीती है जो पानी के अभाव में मरे अपने पिता की स्मृति में सार्वजनिक प्याऊ के रूप में जलकलश स्थापित करना चाहता है। लेकिन, व्यवस्था के नाम पर जान-बूझकर खड़े किये गये व्यवधान और संकटों से घिर जाता है। अनिमेष अपनी कहानियों में साधारण मनुष्य में बेहतर मनुष्य का उत्खनन भी करते हैं। 'भागीरथी' के भागी 'चा में इसे देखा जा सकता है। बाहर से आया व्यक्ति एक ऐसे परिवार का सदस्य बन जाता है जिससे उसका कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं है। कहानी उसकी तेरहवीं तक जाती है। कहानी में विस्तार बहुत है। क्रिकेट, शोले जैसी फिल्म वगैरह बहुत कुछ है। 'वह आदमी कभी भी मारा जा सकता है' का नायक ततैया भी इसी तरह का व्यक्ति है। वह प्रेम में छली गयी स्त्री को न सिर्फ.अपना लेता है बल्कि उसके बच्चे को बचाने के लिए कई तरह के संघर्ष भी करता है। इसी मासूमियत की चरम अभिव्यक्ति 'ए आजी' के बल्लू में देखने को मिलती है। बिलकुल निचले पायदान के संघर्षमय जीवन में रिश्तों में बची हुई ऊष्मा इस कहानी के दादी-पोते में व्यक्त हुई है। इतने ही निरीह, सहज, सरल और लुटे-पिटे 'नन्हे फरिश्ते' के रहीम चाचा हैं। देश विभाजन की पृष्ठभूमि वाली इस कहानी में बच्चों का बिछड़ना, धर्मान्तरण, ट्रेन में मृत्यु, लोक गायन वगैरह बहुत कुछ है। घटनाक्रम काफी तेज है।

गाँव-देहात के रंगकर्म का अपना एक विशेष चरित्र रहा है। जिसकी जड़ें लोक जीवन में थीं। 'गीत गाथा' में ऐसा ही रंगकर्म, उसके गुमनाम रह गये कलाकार और साहित्य जगत के सक्रिय-सफल लोग हैं। 'पंचमी' में मुम्बई जैसे महानगर के पाँच दिनों में देखे गये पाँच अलग-अलग तरह के जीवन हैं। कहानी में एक विशेष प्रकार की गढ़न है। कहानी महानगर में रह रहे सामान्य व्यक्ति को रेखांकित करती है। अनिमेष 'खिलौनों की दास्तान' में यही काम खिलौनों के माध्यम से करते हैं, जबकि 'कुत्ते की मौत' में एक कुत्ता कम्पनी है और उसके जरिये बहुत सारी बातें हैं और कुछ अन्तर्कथाएँ भी हैं।

अनिमेष की कथा रचनाओं में कहानी कहने या सुनाने का अपना एक खास ढंग है। वे अपनी लगभग हर कहानी को किसी आख्यान तक ले जाते हैं। उनकी स्टोरी टेलिंग को सीधे-सीधे पुरानी किस्सागोई की तरह नहीं लिया जा सकता। हालाँकि, ग्रामीण जीवन के कथाकारों के यहाँ कथा-कथन में पुरानी किस्सागोई के काफी तत्त्व मिला करते हैं। और यह अपने-आप में काफी महत्त्वपूर्ण भी होता है। आखिर किस्सागाई दुनिया-भर के साहित्य की आदि प्रवृत्ति रही है। शुरू के कथा साहित्य का बड़ा हिस्सा किस्सागोई से निकला हुआ ही है। सारी भाषाओं की लोककथाएँ शानदार किस्सागोई की मिसाल रही हैं। ऐसे में आज के लोक जीवन को लेकर लिखी जा रही कहानियों में किस्सागोई का आस्वाद मिलना सहज-सामान्य बात है।

अनिमेष अपनी इन कथा रचनाओं में एक तरह से सीधे-सीधे अपनी कहानी सुनाते हैं। सारे छोटे-बड़े ब्यौरों के साथ आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ जाते हुए! उनका इस तरह कहानी 'सुनाना' एफर्टलेस है। उसमें 'सुना रहे होने' की अलग से कोई कोशिश नहीं है। लेकिन, उसी के चलते विस्तार भी है। यह विस्तार ब्यौरों का नहीं बल्कि कथा प्रसंगों का अपना है। कथा के आन्तरिक दबाव से आया हुआ। इस कारण उनकी कहानियाँ एक तरह से विस्तार की कहानियाँ हैं। लम्बी कहानियाँ इससे अलग हैं और उपन्यासिकाएँ तो और भी अलग! विशेष बात यह कि कहानियों में जो ब्यौरे आते हैं वे कथा के आन्तरिक प्रवाह को बाधित नहीं करते बल्कि कथा के प्रभाव को गहरा ही करते हैं। साथ ही कथा के चरित्रों को नजदीक लाते हैं। यह सही है कि हर रचनाकार के सामने अपने कथा-कथन या स्टोरी टेलिंग में बहुत ज्यादा सुविधाएँ नहीं होतीं। ऐसे में कई बार एकरसता का खतरा पैदा हो जाता है। निश्चय ही इससे अच्छी रचना भी कभी-कभी नष्ट हो जाती है। अनिमेष अपनी रचनाओं को इस दुर्घटना से बचाने के लिए अपनी कहानी सुनाने में नये तरीके भी इस्तेमाल करते चलते हैं। तब कहीं सात सहेलियाँ अपनी कहानियाँ सुनाती मिलती हैं तो कहीं खिलौनों की दुकान के खिलौने! और कहीं मुम्बई जैसे महानगर की दबी-कुचली पाँच अलग-अलग तरह की जिंदगियाँ देखने के लिए कथानायक पाँच दिन बस का पास बनवाकर घूमता मिलता है। बतौर अपने गठन और मनोवैज्ञानिक बुनावट उनके पास 'माई रे..' और 'लिक्खी' जैसी शानदार कहानियाँ हैं। और 'माँ भंगन' की फंतासी व्यंग्य को करुणा की एक विशिष्ट ऊँचाई तक ले जाती है। उनकी कहानियों के जो पात्र गीत-कविताएँ लिखते हैं वे बीच-बीच में इनका उपयोग कर कथा के मूल आशय को गहरा करते हैं। जरूरी नहीं कि वे रचनाएँ निर्धारित मानक स्तर की ही हों! यह सही है कि हर रचनाकार पर अपनी भाषा के क्लासिक्स का असर रहता है। और

ऐसा होना अच्छा ही होता है। इससे कम से कम एक महीन-सी परम्परा बनने में मदद तो मिलती है। अनिमेष की 'उसने नहीं कहा था' या 'पंच परमेश्वरी', 'फिर ठेस' जैसी कहानियाँ अपने पुराने क्लासिक्स की गूँज में खड़ी नजर आती हैं। जब कि 'पूस की एक और रात' में तो प्रेमचन्द अपनी आभासी उपस्थिति में दिखाई देते हैं।

अनिमेष अपनी इन कहानियों में समाज और सिस्टम में फैली हुई सड़ाँध को उघाड़ने का काम करते हैं। इसमें उनकी कथा भाषा सबसे ज्यादा मदद करती है। खासकर बिहार के सुदूर ग्रामीण जीवन से जुड़ी कहानियों में! यूँ भी बिहार से आनेवाली कथाएँ अपनी विशिष्ट भाषिक संरचना के लिए भी जानी-पहचानी जाती हैं। हालाँकि वे लोक कथाएँ नहीं होतीं फिर भी लोकजीवन उनके जरिये प्रामाणिक रूप में व्यक्त होता है। वैसे भी लोकभाषा के बिना लोक जीवन को समूचे तौर पर उसके सही रंगों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। अनिमेष अपनी कथा रचनाओं में इस बात का पूरा एहतियात बरते मिलते हैं। उनके जो चरित्र रोजगार आदि के कारण शहरों में रह रहे हैं उनके भी सोच और व्यवहार में लोकजीवन और वहाँ की भाषा की गूँज सुनी जा सकती हैं। 'ए आजी' की तो पूरी भीतरी-बाहरी संरचना ही ठेठ 'लोक' के भीतर पैठी हुई है। 'लोक' उनकी कहानियों का उत्स, साथ ही शक्ति भी है!

मोबा.- 7272228097

माँएँ, माँएँ और माँएँ

-देवेन्द्र राज अंकुर

बहुत दिन पहले 'कथादेश के किसी अंक में प्रेम रंजन अनिमेष की एक कहानी पढ़ी थी 'गूँगी माँ का गीत'। मुझे वह कहानी भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' से आगे की कहानी लगी थी। दोनों कहानियों की माँ लगभग चुप रहती है शुरू से लेकर आखिर तक ''चीफ की दावत का शामनाथ माँ के हाथ की बनी फुलकारी से घर आए अपने चीफ को खुश करके तरक्की पाना चाहता है। 'गूँगी माँ का गीत' में माँ अपने एकान्त में जो गीत गाया करती है, वह कथानायक के घर आई उसकी बॉस को इतना अच्छा लगता है कि वह कथानायक की पटकथा को भूल जाती है और अपने चैनल की निमार्णाधीन फि ल्म में उसका उपयोग करने का निर्णय ले लेती है। दोनों कहानियों को एक साथ पढ़ा जाए तो अनिमेष की कहानी सचमुच में एक ऐसी माँ को साकार करती है जो अपने भोलेपन में भी एक बड़े चरित्र में तब्दील हो जाती है। यों भी चीफ की दावत 20वीं शती के पाँचवें-छठें दशक की कहानी है, जब समाज और परिवार में पुरुष का वर्चस्व था। गूँगी माँ 21वीं शती में हमारे सामने आती है जहाँ स्त्री के केन्द्र में आने की भावी दस्तक सुनाई देने लगती है। कहानी पढ़ने के तुरन्त बाद मैंने प्रेम रंजन को इतनी अच्छी कहानी लिखने के लिए बधाई दी थी। कभी सम्भव हुआ तो मैं' चीफ की दावत' और 'गूँगी माँ का गीत' को एक साथ मंचित करुँगा।

इधर उनके प्रकाश्य कहानी संग्रह 'माई रे..' में उपर्युक्त कहानी को तो दुबारा पढ़ा ही इसके साथ ही पाँच और कहानियाँ पढ़ने का मौका मिला - 'तोहरी सुरतिया देख के,' 'बोल' 'माँ आंगन', 'कही नहीं यहीं' और 'माई रे...'। मुझे नहीं लगता कि किसी और कहानीकार के यहाँ माँ जैसे चरित्र को लेकर इतनी कहानियाँ एक साथ मिल जायेंगी। प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी' विश्वभर शर्मा 'कौशिक' की 'ताई' और मोहन राकेश की 'सिपाही की माँ' की सहज ही याद आ जाती है जो माँ या उस जैसे बुजुर्ग चरित्रों पर लिखी गई हैं। सम्भव है कुछ और कहानीकारों ने भी माँ को लेकर कोई न कोई कहानी जरूर लिखी होगी। लेकिन यह निश्चित है कि ऐसा कोई कहानी संग्रह नहीं मिलेगा जिसमें एक ही कहानीकार की सभी कहानियाँ माँ को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। इस दृष्टि से अनिमेष को एक अपवाद ही कहा जा सकता है।

सारी कहानियों को पढ़ने के बाद कुछ दिलचस्प बातों से हमारा साक्षात्कार होता है। उदाहरण के लिए कई सत्य और तथ्य एक समान दिखाई पड़ते हैं हर कहानी में। क्या ऐसा इसलिए हुआ है कि सभी कहानियाँ एक ही लेखक की हैं और उनका केन्द्रीय थीम भी लगभग एक जैसा है। हमें लगता है कि इसके लिए स्वयं लेखक की अपनी पृष्ठभूमि ज्यादा ज़िम्मेदार है। कहानीकार स्वयं संगीत की नैसर्गिक प्रतिभा से सम्पन्न है- गायक और संगीतकार है। मुम्बई महानगरी में सीरियल और फिल्मों की दुनिया से बहुत ही गहरे में जुड़ा हुआ है। पारिवारिक सत्र स्तर पर अपने पिता और माँ के साथ लेखक का व्यक्तिगत जीवन में जो गहन, सघन और अन्तरंग सम्बन्ध रहा है, उसने भी कहानियों की आन्तरिक बनावट को विशेषरूप से प्रभावित किया है।

सबसे ज्यादा जो चीज हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है कहानियों का नैरेटिव।

कहीं कहानीकार प्रथम पुरुष शैली को अपनाता है और कहीं तीसरे पुरुष की शैली में कहानी को आगे बढ़ाता है। ध्यान से पढें तो इसमें भी एक स्पष्ट विभाजन रेखा को चिन्हित किया जा सकता है। 'गूँगी माँ का गीत' और 'कहीं नहीं यहीं' में प्रथम पुरुष और शेष चारों कहानियाँ तीसरे पुरुष की शैली में लिखी गई हैं। यद्यपि 'गूँगी माँ का गीत' एक तरह से दोनों शैलियों का मिश्रण कहा जा सकता है। मजे की बात यह है कि इन दोनों कहानियों में स्थितियाँ भी लगभग एक समान हैं। तीन चार बेटे हैं और माँ बारी-बारी से अलग-अलग बेटे के पास रहती है। यह अलग बात है कि सबसे ज्यादा नैरेटर बेटे अर्थात् कहानीकार के साथ ही रहती है। यहाँ भी सास-बहू के बीच न निभ सकने वाला शाश्वत सम्बन्ध बीच-बीच में हस्तक्षेप करता रहता है। ऐसा लगता है कि अनिमेष की ये सारी कहानियाँ एक ही परिवार से सम्बद्ध हैं चाहे वे प्रथम पुरुष शैली वाली हों या तीसरे पुरुष की शैली वाली हों। मात्र एक उदाहरण देना ही पर्याप्त होगा। जब-जब किसी कहानी में माँ की मृत्यु होती है तो उसमें कैंसर जैसे रोग का हाथ होता है। उसके इलाज की लम्बी प्रक्रिया का चित्रण भी पूरी तरह से मिलता-जुलता है। हर कहानी में पिता की या तो पहले ही मृत्यु हो चुकी है या माँ से पहले वह चल बसते हैं। कहानीकार की खूबी यही है कि एक जैसी स्थितियों परिस्थितियों के बावजूद वह हर कहानी में एक नया नाटकीय मोड़ लाकर उसे विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं।

जैसा कि हम पहले भी उल्लेख कर चुके हैं कि इन कहानियों में संगीत की भी जबरदस्त भूमिका है। कम से कम तीन कहानियों 'गूँगी माँ का गीत' 'तोहरी सुरतिया देख के' और 'माई रे-' में मानो संगीत भी एक चरित्र की भूमिका अख्त्यार कर लेता है। हमने देखा कि पूरी कहानी में लगभग गूँगी सी रहने वाली माँ द्वारा अनजाने ही गाया गया एक गीत कथानायक द्वारा अपनी बॉस को पटाने के लिए बिछाए गए जाल को चिन्दी- चिन्दी कर डालता है। 'तोहरी सुरतिया देख के कहानी की माँ नायिका अपने पति के तमाम अत्याचारों को सहती हुई गीतों के सहारे ही बेटे-बेटी को पालती हुई एक लम्बी जीवन यात्रा पूरी करती है।

कहानी के अन्त में अपने बेटे को मारने के बाद बिना किसी अपराध बोध के जब वह आत्म समर्पण के लिए तैयार होती है तो वह क्षण नितान्त मार्मिक है। 'माई रे' के विषय में अलग से क्या कहा जाए? एक औपन्यासिका के रूप में लिखित एक गायिका के लम्बे जीवन संघर्ष का बहुत ही गहरा चित्रण है यहाँ। मुम्बई नगरी की फिल्मी दुनिया की अन्दरूनी तस्वीर जिस खुलेपन से उकेरी गई है उससे कहानीकार के अपने अनुभव संसार से भी हम रूबरू होते हैं। संगीत को ही केन्द्र में रखकर हिन्दी में यूँ भी बहुत कम कहानियाँ लिखी गई हैं। शायद इसके लिए रचनाकार को भी स्वयं संगीत का जानकार होना चाहिए। रेणु की रसप्रिया एक यादगार प्रेम कहानी है। अनिमेष की 'माई रे' उसी की एक अगली कड़ी के रूप में रेखांकित की जा सकती है

लगभग सभी कहानियाँ माँ जैसे जीवट चरित्र की लम्बी संघर्ष यात्रा को चित्रित करती हैं। यह माँ आज की आधुनिक और व्यावहारिक माँ नहीं है वरन अपने पारिवारिक-सामाजिक मूल्यों से बँधी माँ है। कई बार तो यह प्रश्न भी उठता है कि क्या सचमुच में आज ऐसे आदर्श भोले-भाले चरित्र मौजूद हैं या उनके अस्तित्व का

अब कोई अर्थ रह गया है? लेकिन जिस सहजता और उससे भी ज्यादा विश्वसनीयता से अनिमेष अपने कथा संसार की रचना करते हैं, वह इन चरित्रों को अत्यन्त सशक्त और जीवन्त बना देती है। यह सही है कि हर कहानी में माँ के संघर्ष का अन्त अन्ततः निराशाजनक या उसके अपने अन्त से होता है, इसके बावजूद यह जीत के जश्न में बदल जाता है। 'माई रे' में बेटे की जीत, 'कहीं नहीं यहीं' में एक नई माँ से मुलाकात, 'तोहरी सुरतिया देख के' की माँ द्वारा बेटे की हत्या प्रकारान्तर से उसी माँ की जीत को प्रमाणित करते हैं।

यह भी बहुत दिलचस्प है कि हर कहानी में माँ की यात्रा गाँव से शुरू होकर शहर तक पहुँचती है। कहना तो यह चाहिए कि माँ ही क्यों कहानियों के सभी पात्रों की यात्रा गाँव से ही शुरू होती है। आजादी के बाद और आज भी बहुत सी कहानियों में गाँव से शहर तक की इस यात्रा को बार-बार देखा जा सकता है। प्रेम रंजन की इन कहानियों में यह यात्रा किसी विवशता के तहत नहीं वरन माँ की सारी कोशिशों तकलीफों के भीतर से जानते, बूझते इसीलिए गुजरती है कि उसकी सन्तानें खूब पढ़-लिखकर आगे बढ़ें और शहर में जाकर नाम कमाएँ। यह अलग बात है कि सन्तानें आगे निकल जाती हैं और माँ अकेली रह जाती है। यही वह बिन्दु है जो उसे कहीं न कहीं एक दैनिक चरित्र में बदल डालता है। कमोबेश हर कहानी की माँ उसे रूपायित करती नजर आती है।

यों तो कहानीकार हर कहानी में पूरी तरह से यथार्थवादी वातावरण के चित्रण से उसकी पृष्ठभूमि तैयार करता है लेकिन कहीं-कहीं वह फन्तासी अथवा लोककथा के मुहावरे को इस्तेमाल करने के लोभ का संवरण नहीं कर पाता। इस संदर्भ में दो कहानियों का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है 'माँ भंगिन' और 'कहीं नहीं यहीं'। 'माँ भंगिन' में माँ के कष्टों से विचलित होकर मूर्ति रूप में स्थित देवी का जीवन्त हो उठना कहानी में एक अलग ही रंग पैदा कर देता है। स्थितियों में हास्य तो भरपूर उद् भूत होता ही है लेकिन अन्त में वह बहुत ही त्रासद हो उठता है। अंग्रेजी में कहें तो यह 'डार्क 'मूर' की बड़ी ही मार्मिक कहानी है। दूसरी ओर 'कहीं नहीं यहीं' में माँ की इच्छा पूर्ति हेतु ऋषिकेश में एक नई माँ से भेंट और उसे लेकर अपने साथ लौटना। इसी क्रम में हम चाहें तो माँ के उस पत्र को भी जोड़ सकते हैं जिसमें संगीत प्रतियोगिता की तारीख की पहले से भविष्यवाणी कर दी गई थी। सतही तौर पर ये दैवी संयोग भले ही अविश्वसनीय लगें लेकिन कहीं गहरे में हमारे भीतर बसे संस्कारों और विश्वासों को ही पुष्ट करते हैं। इतना ही नहीं, ऐसे प्रसंग किसी सीधी-सादी कथा को भी बेहद नाटकीय बना देते हैं

प्रेमरंजन अनिमेष अपनी हर कहानी को बहुत सब्र के साथ, धीरे-धीरे रचते हैं। 'माई रे–' और 'तोहरी सुरतिया देख के' बेहद लम्बी कहानियाँ हैं। यदि हम चाहें तो 'गूँगी माँ का गीत' को भी तीसरे नम्बर पर रख सकते हैं। इसीलिए शायद उन्हें औपन्यासिका भी कहा गया है क्योंकि ये कहानियाँ किसी एक घटना अथवा प्रसंग की बजाय एक पूरे जीवन खंड को अपने लम्बे कलेवर में प्रस्तुत करती हैं। पहली दो कहानियों 'माई–रे' और 'तोहरी....' के विषय में तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। दोनों में मुख्य पात्र की जीवन यात्रा को उनके पहले पड़ाव से अन्तिम पड़ाव तक सम्पूर्णता में प्रस्तुत किया गया है। एक छोटे से छोटे डिटेल को पूरे विवरण के साथ वर्णित किया गया है। हिन्दी में

लम्बी कहानियाँ लगातार लिखी जाती रही हैं। निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' रेणु की 'तीसरी कसम' धर्मवीर भारती की बन्द गली का आखिरी मकान, उदयप्रकाश, अखिलेश और उमाशंकर चौधरी की अधिकांश कहानियाँ - इस क्रम में अनिमेष की उपर्युक्त कहानियों को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

अनिमेष की इन कहानियों को एक साथ पढ़ने के अनुभव को कुछ इस प्रकार से व्याख्यायित किया जा सकता है कि माँ का अतीत, वर्तमान और भविष्य एक ही घर में मौजूद है- अलग- अलग खिड़कियों, दरवाजों और छतों के साथ।

स्त्री संवेदना के अप्रतिम चितेरे प्रेम रंजन अनिमेष

- उषाकिरण खान

प्रेम रंजन अनिमेष मुख्य तौर पर एक संवेदनशील कवि के रूप में जाने-पहचाने जाते हैं। लेकिन हाल के दिनों में उनके साहित्य सृजन के एक और महत्वपूर्ण हिस्से से रूबरू होने का मौका मिला- उनकी दो उपन्यासिकाएँ- 'माई रे' तथा '.....' स्त्रीगाथा'- पढ़ते हुए। स्त्री की जीवन यात्रा को समाहित करती ये गद्य रचनाएँ बेहद गहन हैं। एक प्रकार से भारतीय स्त्री की सम्पूर्ण गाथाएँ हैं ये– सुख-दुख, हर्ष-विषाद, मान-अपमान और अपेक्षा-उपेक्षा के बीच सघन जिजीविषा के साथ स्वत्व सहेजती, स्नेह-ममत्व साधती बाँटती हुई!

उपन्यासिका '.....' (स्त्रीगाथा) से गुजरते हुए लगातार डॉ. राजम पिल्लई की कविता याद आती रही -''तुम्हारा नाम क्या है गांधारी?' समाज व्यवस्था में जड़ता है जहाँ और सोच एकांगी, वहाँ स्त्री का कोई नाम नहीं होता, उसका कोई वजूद भी नहीं रहता। अनजान सब्जी वाले के उधार बही खाते की तरह पहचान के तौर पर केवल करियक्की, भुअरकी, मोटकी, पतरकी, नटकी, लमकी जैसे शब्द अंकित रहते हैं। यह स्थिति इतनी भयावह हो जाती है कि एक स्त्री अपना नाम भूल जाती है। जब किसी महिला संगठन की सदस्या उसे अपना नाम लिखने और हस्ताक्षर करने को कहती है तब उसे अस्तित्व खोने का भय सताने लगता है। स्त्री को जाने कब से अपना नाम बताना या पुकारा जाना याद नहीं। पतिगृह आने पर वह किसी गाँव या कस्बे वाली बहू हो गई थी। पति 'अजी, सुनती हो' कह कह कर पुकार लेता था, और वह बौरा जाती। आधार कार्ड के जमाने से पहले की कहानी है यह, उस वक़्त का यथार्थ! बेशक अब आधार कार्ड ही नहीं और भी प्रपत्रों पर स्त्री का नाम दर्ज.रहता है, लेकिन अपनी आधारभूत पहचान के लिए वह आज भी संघर्ष कर रही है। लेकिन बड़ी बात यह कि वह रुकी नहीं है कभी- परिस्थिति चाहे जो भी हो। सही है कि अधिकतर आम स्त्रियों का व्यक्तित्व पुरुषों के मुकाबले 'पैसिव' रहा है, फिर भी स्वतंत्र होने की उनकी इच्छा बलवती होने लगी है- जग चुकी हैं वे बदलाव की खातिर!

'स्त्री गाथा' उपन्यासिका की कथा अपने सम्मान को लेकर प्रतिबद्ध औरत की ललक को बड़े सूक्ष्मभाव से बताती है। शारीरिक और मानसिक कष्ट के साथ तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद अब वह बेबस या लाचार नहीं रहना चाहती। स्त्रीगाथा लिखते हुए नाम और पहचान से जुड़े इसी संघर्ष को दिल की गहराइयों से रेखांकित करते हैं अनिमेष। हमारे समाज की बड़ी विडम्बना है यह कि आज भी कई स्त्रियाँ अपनी बच्चियों को उनके नाम तक नहीं दे पातीं- शायद खुद भी वंचित रहती हैं। वे पहचान वाली संज्ञा से- बस जीना पड़ता है उन्हें हर वक़्त हर हाल में अजीबोगरीब सर्वनाम के साथ! निम्न मध्य वर्ग की एक त्रासदी यह भी है कि यदि स्त्री का पति दारूबाज या दूसरी गलत आदतों वाला निकल गया तो अपनी कमाई के साथ पत्नी की जमा पूँजी को भी गर्क.करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ता। वह अपनी ज़िद पूरी करने के लिए मारपीट तक करने में कोताही नहीं बरतता। शहर, कस्बों और गाँवों में इस वर्ग के कितने ही लोग मिल जायेंगे- और 'बड़की माई' जैसी कितनी ही स्त्रियाँ, जिनका

कोई नाम नहीं और पहचान भी बस इतनी कि पुकारने पर हाज़िर हो जायें- आवाज पकड़कर हर उस जगह जहाँ पूरे करने होते उन्हें सबके छूटे बचे काम! अनिमेष अपनी रचनात्मकता के साथ ऐसी ही संवेदनाओं को बड़ी बारीकी से उकेरते हैं।

'माई रे' गहन भावपूर्ण मनःस्थिति की कथा है, जिसमें पुत्र जो कुछ भी हासिल करता है, उसे अपनी माता के चरणों में निछावर कर देता है। इसी समर्पण के साथ वह गीत-संगीत प्रतियोगिता से भी जुड़ता है। फिर जब निर्णायक दिन यानी 'फिनाले' का वक्त आता है, अपने जीवन भर के संघर्षों के साथ माँ गुजर चुकी होती है। संवेदना से सराबोर और साधना में लिप्त बेटा भावविभोर हो जाता है। सहसा आर्तलय में गूँजती 'माई रे...' की भरी पुकार पूरी कायनात को हिलाकर रख देती है। 'माई रे' में अद्भुत बालक की सम्पूर्ण प्रतिभा साधना में माँ की वेदना, बिछोह और महत्वाकांक्षा सम्मिलित है। वैसे भी, दिल से किया गया कोई प्रयास कभी निष्फल नहीं होता। फिर यह कहने में भी कोई संकोच नहीं कि सदय सहृदय अनिमेष स्त्री संवेदना के अप्रतिम चितेरे हैं।

रंगमंच के सूत्रधार की तरह सृजन की बारीकियों को लक्ष्य कर रचना में रचनाकार की उपस्थिति और उसका वक्तव्य ध्यातव्य है- ''पता नहीं क्यों कभी-कभी लगता है, कोई कहानी लिखना किसी की ज़िन्दगी का इस्तेमाल करना है। मैं आपके सामने एक टुकड़ा ज़िन्दगी रख रहा हूँ। बहुत मुमकिन है यह कोई कहानी बन ही न पाये।'' दरअसल हर लेखक भी तो जीवन जगत से जुड़े अनुभवों और लेखन कला के उपकरणों का इस्तेमाल कर कथाओं की रचना करता है। वह भविष्य की आहटें भी सुनकर उन्हें पुख़्ता आवाज की शक्ल में समाहित करता है पूरी सृजनात्मकता के साथ।

यह सच है कि अब राजा रानी, परियों और बिजूकों की कहानियाँ बहुत कम लिखी जाती हैं। प्रेम रंजन अनिमेष तो कतई नहीं लिखते ऐसी कहानी। उनकी एक महत्वपूर्ण कहानी है-'लड़की अब भी स्वेटर बुनती है'। इसमें लड़की बहुत पुराने स्वेटर का ऊन निकालकर उँगलियों और सलाइयों के सहारे कुछ अलग रच रही है, तन्मयता और उत्सुकता से बुनते-बनाते हुए। वह बाजार से महँगे दाम पर नया ऊन खरीदने की जरूरत नहीं समझती- पहले के ही ऊन को अभिनव रूप देने और सूत्रबद्ध करने के साथ रिश्तों और संवेदनाओं के कई स्तरों से जुड़ती है। अनिमेष की रचनात्मकता की विशेषता यह भी है कि उनकी कथाओं में स्त्री किसी भी परिस्थिति में आत्मबल और स्वाभिमान नहीं छोड़ती। वैसे भी, स्त्री रचती है और सहेजती भी- और उसका यही निर्माणकारी, निर्मल और संघर्षशील रूप अनिमेष के साहित्य में विद्यमान है। अपने समाज में हमेशा एक साथ कई पीढ़ियाँ जीवन जीती हैं और हर वक़्त उनसे रचनात्मक स्तर पर जुड़ना जरूरी होता है बहुत। यह महत्वपूर्ण है कि प्रेम रंजन अनिमेष फैशनपरस्त लेखकों की राह से अलग बढ़ते हुए बड़ी सहजता के साथ सामान्य लोगों और मुद्दों से जुड़कर अपनी रचनात्मकता से उन्हें विशिष्ट बना देते हैं। 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था' ऐसी ही अद्भुत कहानी है, जिसमें जीवन और समाज की विडम्बनाएँ खुलकर सामने आती हैं। इस तरह की कई कहानियाँ अनिमेष को सघन संवेदना के धनी कथाकार के रूप में स्थापित करती हैं। विश्वास है, सच की जमीन से जुड़ी उनकी कितनी ही रचनाएँ साहित्य के फलक पर अंकित होती रहेंगी।

-मो : 8987041722

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में स्त्री

– डॉ. ममता पंत

वर्ष 2004 में युवा कविता के 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार' से सम्मानित समकालीन हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित, महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय कवि प्रेम रंजन अनिमेष ने हिंदी साहित्य में एक कथाकार के रूप में भी विशेष ख्याति अर्जित की है। उनकी कहानियाँ हिंदी साहित्य की लब्धप्रतिष्ठित पत्रिकाओं में छपती रहती हैं। जिनमें 'एक मधुर सपना' और 'पानी-पानी' हिंदी की अग्रणी कथा पत्रिका हंस एवं कथादेश द्वारा आयोजित अखिल भारतीय प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं; साथ ही उनकी अन्य कहानियों को भी समय-समय पर पुरस्कृत किया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं नया ज्ञानोदय, वागर्थ, वर्तमान साहित्य, परिकथा, कथादेश, एवं कथाचली पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों पर आधारित है।

जंगल हैं / पहाड़ हैं / नदियां हैं / इस धरती पर / पर जंगल / पहाड़ /
नदी / और यह पूरी धरती / स्त्री के भीतर है / ज्योंकि स्त्री सब कुछ है /
सब और कुछ दोनों ही / जंगल पहाड़ नदी / और धरती / है सब कुछ /
कि स्त्री है / यहाँ रहती / सब कुछ रचती / कुछ और सबको सहती...'[1]

'पंचमी' कहानी से उद्धृत यह गीत स्त्री जीवन के समस्त सार को समेटे है। प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी कवित्वमयी शैली में स्त्री जीवन के हर पहलू को व्यापक अभिव्यक्ति दी है। सृष्टि के आरंभ से ही स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। देखा जाए तो एक प्रकार से स्त्री ही मानव विकास के मूल में रही है। मानव विकास के इतिहास के किसी कालखंड में यदि उसने पुरुष की कोमल भावनाओं को उभारा है तो कभी उसे जीवन संग्राम में जूझने का दृढ़ संकल्प और आत्मोत्सर्ग की महती प्रेरणा भी दी है। मानवीय कार्य व्यापारों में स्त्री अपने अपरमित सौंदर्य, करुणा, सहानुभूति, शक्ति और प्रेरणा के साथ विद्यमान रही है। यही कारण है कि साहित्य के जन्म के साथ ही नारी विविध अर्थच्छबियों के साथ चित्रित होती आई है। प्रेम रंजन अनिमेष समकालीन हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण कथाकार हैं और इनके कथा साहित्य में हिंदी के अन्य कथाकारों की भाँति ही स्त्री विविध रूपों में व्यक्त हुई है। क्षेत्रीय दृष्टि के आधार पर इनकी कहानियों में चित्रित स्त्री ग्रामीण अंचल से लेकर महानगरीय जीवन के विविध वर्गों से संबद्ध है; जो शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार की है। इनकी कहानियों में जहाँ एक ओर आधुनिकता के रंग में रंगी किट्टी पार्टी में मशगूल नारी चरित्र हैं, वहीं पुरुष सत्ता के दबाव से दबी असहाय नारी चरित्र भी हैं। संबंधों की दृष्टि से देखा जाए तो इनकी कहानियों में नारी चरित्र मुख्यतः माँ, भाभी, बहन, बेटी, पत्नी की भूमिका में चित्रित हैं। माँ की भूमिका में चित्रित स्त्री चरित्र अपने परंपरित रूप में दिखाई देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनकी कहानियों में माँ के संबंधों में चित्रित स्त्री चरित्र भारतीय समाज में निरूपित माँ के आदर्श को व्यक्त करती हैं। यही कारण है कि ये चरित्र सामान्य भारतीय माताओं के समान अपने घर परिवार और बच्चों की चिंता में घुलती दिखाई देती हैं : 'बस इतना चाहती थी इतनी भर हसरत थी कि यह बच्चा उसके होते अपनी राह पकड़

ले...! उसके उंगली... उसका हाथ तो छूट ही गया था... अब जल्दी से अपने पैरों पर पूरी तरह से तनकर खड़ा हो जाये!... बिना तुझे कोई मुकाम हासिल करते देखे... मैं चैन की साँस नहीं ले सकती!'[2]

'देखना' कहानी की माँ अपनी बेटी के विवाह के लिए हमेशा चिंताग्रस्त रहती है और बार-बार लड़की को ठुकराए जाने पर उसकी चिंता और भी बढ़ जाती है। अचानक रिश्ता मिलने पर भी वह संदेह से घिरी रहती हैः 'ओहो! अन्नी की माँ को हठात खुशी हुई और किंचित संदेह भी। लड़का है और खुद शादी के लिए कह रहा है। क्या बात है! सब ठीक-ठाक तो है?'[3] इनकी कहानियों में बहन के रूप में भी कई स्त्री चरित्र हैं जिनमें कुछ तो सगी बहन हैं और कुछ रिश्तेदारी से संबंधित, जो आपस में कभी मिलने पर अपने दुख-सुख को साझा करते चित्रित हुई हैंः 'कुछ दिन एक साथ मिल बोलेंगे बतियायेंगे। इसी इरादे से बड़ी मौसी के यहाँ पहुँची हालाँकि पारिवारिक व्यस्तता के चलते छोटी मौसी का आना रह गया। फिर भी दोनों बहनों ने दिनों बाद एक साथ हो सुख-दुख साझा किए।'[4] प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में स्त्री का पत्नी के रुप में व्यापक चित्रण हुआ है। इनकी कहानियों में पति-पत्नी के संबंध अनेक रूपों में दिखाई देते हैं। इनके स्त्री पात्र पत्नी के भारतीय आदर्श को ही व्यक्त करते हैं। 'मां हमेशा होती है' कहानी में कहानीकार ने स्त्री जीवन के उस स्वरूप को चित्रित किया है जिसमें उसका पूरा जीवन उसके जीवन साथी के इर्द-गिर्द ही घूमता रहता हैः 'जीवन- साथी जीवन की धुरी होता है और उस धुरी के साथ जुड़ा होता स्त्री का अपना जीवन सारा। अंतिम बरसों में बीमारी ने पिता को लगभग शय्याशायी कर दिया था और उन्हें अगोरे हुए माँ भी मानो उसी खाट के पटिहाट से बँध कर रह गई। उस हाल में एक दिन क्या घंटे भर के लिए भी कहीं आ जा नहीं सकती थी। एक की मुक्ति में दूसरे की भी मुक्ति थी।'[5] स्त्री जीवन का और उसमें एक पत्नी का यह यथार्थ है कि वह अपने जीवन में कितनी ही आदर्शवादी रहे घरेलू हिंसा की शिकार होती ही है; इस तथ्य की ओर भी कहानीकार ने व्यापक दृष्टिपात किया हैः 'सब करती धरती नीमा ससुराल में भी जैसे अपने घर किया करती, साथ में सब सुनती और सहती भी, इस आस में कि शायद इतने पर वह हाथ नहीं उठाएगा, पर ऐसा होता नहीं एक-आध दिन बीच कर एक न एक निशानी मिल ही जाती।'[6] भारतीय परिवारों का जो ढाँचा है, उसमें स्त्री भले ही अंतिम पायदान पर हो लेकिन पूजा-पाठ, व्रत-विधान संबंधी नियमों में उसे सर्वथा आगे रखा गया है। परिवार में पुत्र एवं पति हेतु रखे जाने वाले व्रतों की डोर उसके साथ इस तरह बाँध दी गई है कि वह उन्हें अपने जीवन का परम कर्तव्य समझने हेतु कृतसंकल्प है। भले ही वह पुत्र द्वारा उपेक्षित हो या फिर पति द्वारा प्रताड़ित! उनकी सत्ता की कामना उसे करते ही रहनी है आजीवन। 'तोहरी सुरतिया देख के' कहानी की नीमा सास के मना करने पर भी दिनभर अपने पति के लिए भूखी-प्यासी रहकर तीज का व्रत रखती है वह भी निर्जला! और शाम को फिर पति द्वारा पीटी जाती हैः 'सास ने तो कहा बार-बार की जुग जमाना बदल गया है। ऐसा तो हमारी समय करते थे, अब किसी से कहाँ सहा जाता इतना? बात मान और पानी पीले कम से कम, व्रत फिर भी पूरा हो जाएगा भगवान सब देखते समझते हैं...! फिर भी निर्जला ही किया उसने अखंड व्रत। अपनी ओर से क्यों कोई कोर कसर

रहे! दिनभर की भूखी प्यासी सहे हुई थी, मगर उस रात भी हाथ छोड़ बैठा वह आदतन। चीख सास के कानों में पड़ी होगी, अगले दिन चेहरा बेटे का हाथ में भींचते-धिक्कारते हुए कहा सास ने- लाज नहीं आती तुम जैसों को! जिसके साथ सोते हो, उसी औरत पर हाथ उठाते? फिर उसके बाद हाथ लगाते हो कैसे?'[7] कभी-कभी तो स्त्री को यह भी पता नहीं होता कि आखिर उसका पति उसे मार क्यों रहा है! वह चुपचाप सब सहन करती चली जाती हैः '...पास पड़ी बेंत उठाई और सिंकाई शुरू कर दी। मेरी समझ में तब नहीं आया, वह किस बात की बात कर रहा। लेकिन डर के मारे कुछ कहा नहीं क्योंकि लगातार कहे जा रहा था... फिर बोलोगी...? और सपासप पतली बेंत चलाए जा रहा था...'[8] प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी लगभग सभी कहानियों में पति द्वारा स्त्री को पीटे जाने का यथार्थ चित्रण किया है। 'सात सहेलियाँ खड़ी खड़ी' कहानी में कहानीकार ने स्त्री के सदियों से पिटते जाने के दर्दनाक यथार्थ को गहरी व्यंग्यात्मक दृष्टि से उजागर किया हैः 'तो अगर स्याह रात भी हो यह जिंदगी तो अच्छा है न कि जीवन की इस रात में एक साथी हो साथ में? पिटने को तो लड़की जात पिता के यहाँ भी पिटती है... भाई से भी मार खाती है... उधर न डरी, न मरी तो अब किसलिए डर रही! मरने से पहले क्यों मर रही?[9] इतना ही नहीं एक पति द्वारा जब एक स्त्री बार-बार पीटी जाती है तो घर परिवार वाले उसे बचाने आते हैं तो वे भी उस पुरुष के गुस्से का शिकार बन जाते हैं; उसका भी यथार्थ चित्रण कहानीकार ने 'सात सहेलियाँ खड़ी खड़ी' कहानी में किया हैः 'मेरी दुहाई और गुहार सुनकर सास दौड़कर आई बचाने। पर झोंक में उसने उन्हें परे धकेल दिया। ननद भी मुझसे बेहद प्यार करने वाली, वह भी आई मगर दूसरी ओर जा गिरी। छोटा देवर तो मानो जान छिड़कता मुझ पर। वह तो बचाने के लिए सीधा मुझ से लिपट गया। मुझसे ज्यादा उसी की धुनाई हुई। सास का पैर मुचका अलग। ननद की पीठ बहुत दिनों तक सीधी नहीं हुई ...'[10] इनकी कहानियों के स्त्री पात्रों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वे पितृसत्तात्मक दुर्व्यवहार के विरोध में एक दूसरे के साथ तटस्थता से खड़ी रहती हैं। चाहे वह उनका पुत्र, भाई या फिर पति ही क्यों न हो। सदियों से हमारे समाज में परंपरागत स्त्री संबंधों का जो डाह सुनने को मिलता है कि एक स्त्री ही दूसरी स्त्री की दुश्मन होती है, वो डाह यहाँ बिल्कुल भी नहीं है चाहे वह सास-बहू का संबंध हो या फिर ननद-भाभी का; वे हमेशा एक-दूसरे के साथ खड़ी रहती हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में स्त्री जीवन के वे सारे गहरे रहस्य हैं जिनसे भारतीय स्त्री समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हुए भी परिवार और समाज में किसी न किसी रूप में कष्ट झेलने हेतु विवश है। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए ही यौन तृप्ति अनिवार्य होती है। जिसके लिए वैवाहिक संबंधों की सृष्टि की गई है। तब भी पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में स्त्री को गौणत्व प्रदान कर स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को रौंदकर अपमानित किया जाता है। इनकी कहानियों में स्त्री पात्र पति से निरंतर प्रताड़ित होती हुई चित्रित हैं। स्त्री कालांतर से ही पुरुष वर्ग की वासना पूर्ति का साधन रही है पुरुष ने कभी भी पत्नी की चाह या उसकी इच्छा का सम्मान नहीं किया। वह जबरन उसकी वासना की शिकार होकर प्रताड़ित एवं बलात्कृत होती है। उसका भी जीवंत एवं यथार्थ चित्रण कहानीकार ने 'तोहरी सुरतिया देख के' कहानी में किया हैः 'सब्र और इंतजार इन दोनों से कोई

वास्ता न था पति का और इसके बिना जो वह करता उसे कहता प्यार! नई नवेलियाँ तो आतुरता से करतीं प्रतीक्षा जीवनसाथी के साथ एकांत पलों की लेकिन उसके सामने जब एक अकेला होता वह तो एक-एक पल पड़ता उस पर भारी ...'[11]

पुरुष जाति ने सदियों से स्त्री जाति का अपमान ही किया है। वह एक वहशी दरिंदे की भाँति स्त्री के शरीर पर अपना जोर आजमाता है और स्त्री सदियों से पुरुष के वहशीपन की शिकार होती चली आई है; इसका यथार्थ चित्रण कहानीकार ने 'तोहरी सुरतिया देख के' कहानी में किया है: 'ऑपरेशन के बाद बच्चे को घर लेकर आ गई तो पति आया। इससे पहले दो बार आकर शक्ल भर दिखाई थी। बाबू जी के श्राद्ध के वक्त और बच्चे की सतइसा में। लेकिन उस रात रहा और रहने का पूरा रहन वसूला। अब तो कोई अड़चन नहीं! कहते हुए किया सब कुछ... बगल में पड़ा बच्चा रोता रहता और उसका काम होता रहता।'[12] वस्तुतः हमारे समाज में स्त्री का इस तरह का पीड़ादायक अपमान कोई नई बात नहीं है बल्कि वह सामाजिक यथार्थ है जिसको भारतीय स्त्री जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत भोगती है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में अनमेल विवाह और विधवा स्त्री के जीवन संदर्भों की पीड़ा भी व्यक्त हुई है। प्राचीन क्या वर्तमान समय में भी कुछ धनाढ्य या फिर प्रगतिशील परिवारों को छोड़कर वैवाहिक संबंधों में लड़की की इच्छा-अनिच्छा को अनदेखा कर दिया जाता है। परिवार का मुखिया उसे किसी भी अपात्र के गले बाँधकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर लेता है। बेटियों को उनके अनुसार वर मिलना असंभव प्रतीत हो तो घरवाले उसकी शादी किसी भी ऐसे व्यक्ति से कर देते हैं जो देखने या फिर सामान्यतः उसके लायक होता ही नहीं : 'कहाँ गोरी सुघर सोमा कहाँ जला-झुलसा जैसा स्याह वर उसका! चेहरे पर कटे का लंबा निशान, बस एक यह संतोष की नौकरी पेशा था। हालाँकि यहाँ भी धोखा हुआ, वह नौकरी भी अस्थाई थी। किसी और की जगह एवजी। एक साल के भीतर छूट गई।'[13] 'माई रे' कहानी में लोकगीत के माध्यम से कहानीकार ने अनमेल विवाह की त्रासदी की ओर संकेत किया है -

'सैंया मिले लरकइयां मैं का करूँ / आठ बरस की मैं ब्याह के आई /
सैंया चले पैंया पैंया मैं का करूँ / बारह बरस की मैं गौने से आई /
सैंया उड़ाए कनकइयाँ मैं का करूँ / सोलह बरस की मोरी चढ़ी जवानी /
सैंया पुकारे मैया मैया मैं का करूँ।'[14]

अनमेल विवाह एक स्त्री के लिए सदैव ही दमघोटू माहौल पैदा करता रहा है। ऐसे माहौल में एक स्त्री के लिए जीना बहुत मुश्किल हो जाता है। उसके हृदय की इस पीड़ा को वह सदियों से लोकगीतों के माध्यम से दर्ज करती आई है; जिसे प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी कहानियों में बड़ी तत्परता एवं सहजता से व्यक्त किया है।

आदिकाल से ही हमारे समाज में स्त्री दीन-हीन दशा में जीने के लिए विवश होती रही है। घर, परिवार अथवा जाति पर किसी भी ढंग से कलंक न लगे, इसलिए घर की बेटी-बहू का घर से बाहर कम से कम निकलना ही अच्छा माना जाता रहा है। मजबूरी वश समाज के डर से घर की माँएँ भी अपनी बेटी- बहू पर नियंत्रण रखती रही हैं। वर्तमान समय में भी गिने-चुने आधुनिक परिवारों को छोड़कर कोई भी अपनी बेटी-बहू

को खुली आजादी नहीं दे पाते हैं और उन पर रोक-टोक करने की कोशिशें जारी रहती हैं। उदाहरणार्थ : 'हद है! कैसी बेशऊर हो गई है! अरे, इतनी जोर से चीखा करती हैं लड़कियाँ! माँ ने चिढ़कर टोका।'[15] घर-परिवार वाले लड़कियों से यह आशा करते रहे हैं कि वह छोटे-बड़े का सम्मान करते हुए सभी दैनिक घरेलू कार्यों का निष्पादन करे। 'ए आजी' कहानी में एक छोटी बच्ची जो मात्र नौ साल की है, उसके ऊपर उसके छोटे भाई की जिम्मेदारी उसके माँ-पापा द्वारा लाद दी जाती है। खेलने-कूदने की छोटी-सी उम्र में उसके ऊपर जिम्मेदारी का बोझ डाल दिया जाता है : 'बड़ी बहन उससे तो बड़ी थी मगर थी वह भी छोटी ही। अलबत्ता शिशु बल्लू को जरूर माँ के काम पर गए फिरती माँ की तरह लादे लेकिन समझदारी तो बच्चों वाली ही थी।'[16] छोटी-सी बच्ची के ऊपर अचानक भाई की जिम्मेदारी आने से उसका बचपना छिन जाता है और लापरवाही होने पर वह अपने पिता के लात घूंसों की शिकार हो अन्ततः अपनी जान से हाथ गवा बैठती है: 'उधर फटकन ने आव देखा न ताव, दन दना दन लात घूंसे नासमझ-सी खड़ी चुन्नी पर बरसा दिए।... पर होनी ऐसे ही अबूझ होती। उसी में कोई एक प्रहार कहीं मर्म पर पड़ गया और मर्मांतक हो गया। चुन्नी बिना किसी चीख के अचेत हो गई वहीं। साँस खोकर और फिर जागी नहीं। उसी बालू में दफनाना पड़ा उसे। लेकिन लड़की थी वह। उसे भूलना आसान था।'[17]

हमारे शास्त्रों में नारी को हर जगह प्रतिबंधित बताया गया है। शारीरिक संगठन एवं उसकी कोमलता के कारण नारी को पुरुष का संरक्षण, उसकी अधीनता कहीं न कहीं तो स्वीकार करनी ही पड़ती है या फिर जबरन कराई जाती है। जिससे समाज में स्त्री एक अबला के रूप में जानी-पहचानी जाती है; जिस हेतु नारी शिक्षा बहुत जरूरी है। अगर कोई पिता इस तथ्य को समझते हुए अपनी बच्ची को पढ़ाना चाहे भी तो समाज उसे लड़कियों को पढ़ाने हेतु मना करता है। स्त्री शिक्षा के प्रति समाज की इस क्षुद्र सोच के प्रति भी कहानीकार की दृष्टि सजग रही है, जिसे उन्होंने 'पेड़ होती हुई लड़की' कहानी में व्यक्त किया है: 'सभी लोग यही कह रहे थे कि लड़कियों को इतना पढ़ाना पागलपन है आपका। आपने लोगों की सलाह नहीं मानी। अपनी जाति में इतनी पढ़ी-लिखी लड़की के लिए लड़का मिलना मुश्किल होता है और मिलता भी है तो 'मुनासिब रेट' नहीं होती उसकी।'[18] लड़की के जन्म लेते ही पिता चिंता ग्रस्त हो जाता है क्योंकि हमारे समाज में लड़कियों के जन्म लेते ही विवाह एवं सामाजिक मयार्दाओं की बेड़ियाँ उसे जकड़ने लगती हैं। लड़कियों के साथ होने वाली हिंसाएँ उसे चिंताकुल कर देती हैं। दैनिक व साप्ताहिक अखबार लड़कियों के साथ होने वाली हिंसात्मक घटनाओं से भरे रहते हैं, जिनसे एक पिता बहुत डर जाता है और अपनी बेटी को अकेले कहीं नहीं भेजना चाहता। उस मनोदशा की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है : 'अखबार सामने आते सीधे एक खबर से आँखें मिलती थीं... शनिवार, 9 जून। उसमें एक लड़की की तस्वीर थी। वह अकेली इंटरव्यू देने के लिए गई थी... और दूसरे तीसरे दिन उसकी लाश शहर के सीमांत पर मिली थी। उसके शरीर पर...। शब्द गड्ड-मड्ड हो गए थे। अखबार की काली स्याही पूरे पन्ने पर फैल गई थी... और तस्वीर एक क्षण पूरी तरह से अनु से मिल गई थी ...अनु तुम मत जाओ, एक अकेली लड़की इतने दिनों तक कैसे सुरक्षित

रह सकती है इस दौर में जब... मैं क्षमा चाहता हूं अनु।'[19]

शादी हमारे समाज का वह विशेष अंग है जिसे अनिवार्य माना गया है। इस स्थिति में लड़की को देखने दिखाने की जो परंपरा रही है, और पसंद ना किए जाने पर लड़की कैसे अवसादग्रस्त हो जाती है उसका जीवंत दस्तावेज है 'देखना' कहानी। जिसमें रिश्ता न हो पाने पर समाज के ताने भरे सवाल किस तरह एक लड़की को चुभन देते हैं उसका यथार्थ अंकन इस कहानी में किया गया हैः 'फिर अगर रिश्ता न हो पाया तो कई ओर से कई तरह के सवाल-अनचाहे... परेशान करने वाले। आते-जाते खँगालती कुरेदती आँखों की चुभन- देखो-देखो इस लड़की को... फिर से किसी ने देखकर नहीं पसंद किया!'[20]

हमारे समाज में दहेज के प्रति इतना मोह है कि उसके सामने तथाकथित सामाजिक लोगों को शिक्षा भी न के बराबर लगती है। लोग पढ़ी-लिखी, सीधी-सादी एवं गुणी लड़की की अपेक्षा दहेज को ही प्राथमिकता देते हैं। बाजारू होती इस विवाह व्यवस्था पर प्रेम रंजन अनिमेष ने तंज कसते हुए लिखा हैः 'अभी बाजार में चलता है 'नया' पैसा ही। आने बहुत पहले जा चुके थे। उसी तरह साधारण शक्ल सूरत सीधे-साधे रंग-ढंग की लड़कियों की कद्र नहीं थी इस विवाह व्यवस्था में जो कबकी बाजारू हो चुकी थी। थोड़ा-थोड़ा अहसास था उन्हें इस बात का खासा अंदेशा भी। और गहरी ग्लानि कि कितना असर पड़ता होगा लड़की के कोमल मन पर बार-बार परखने ठुकराने का।'[21] बार-बार देखने-परखने की स्थिति में लड़कियाँ अवसादग्रस्त हो जाती हैं; उनकी मनोदशा का चित्रण 'देखना' कहानी में यथार्थतः किया गया हैः 'जो भी हो, वह जैसा भी मुझे कोई एतराज नहीं। आप शादी तय कर दीजिए वहीं' बहुत हो चुका था। देखे परखे जाने की यंत्रणा से वह अब और नहीं गुजरना चाहती थी।'[22]

भारतीय समाज में स्त्री को न तो पुरुष के बराबर दर्जा दिया गया है और ना ही खुले दिल से उसकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार ही किया गया है। पारिवारिक स्तर पर भी नारी को पुरुष के समकक्ष दर्जा नहीं मिलता है। प्राचीन काल से ही कुछ घर और बाहर के कार्यों को छोड़ समस्त कार्यों का निष्पादन स्त्री को ही करना पड़ता है। चाहे वह काम बच्चों के पालन पोषण का हो, साफ-सफाई का हो, चूल्हा-चौका का हो या फिर समय आने पर घर परिवार को संभालने के वास्ते दूसरों के घरों में काम करने का वह बखूबी निभाती आई है। इसका चित्रण प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी कहानियों में किया हैः 'घर चलाने के वास्ते और घरों में माँजने-धोने सुखाने-पीसने चुनने-बीनने का काम करने लगी थी सुपली।'[23] वहीं 'तोहरी सुरतिया देख के' कहानी की स्वाभिमानी एवं हिम्मती बेटी सोमा का चित्रण है जो पति की नौकरी चले जाने के बाद घर गृहस्थी की नैया की पतवार खुद सँभालती है और पति को भी पक्की नौकरी पाने हेतु प्रेरित करती रहती हैः 'वह तो हिम्मत वाली सोमा ने हौसला बनाए रखते हुए अपनी पढ़ाई और योग्यता के बूते खुद नौकरी पकड़कर स्थिति सँभाली और गृहस्थी की नैया को डगमगाने से बचाया। संबल और उछाह भरकर पति को भी प्रेरित करती रही पक्की नौकरी पाने तक।'[24] प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में चित्रित स्त्रियाँ बहुत हिम्मती एवं स्वाभिमानी हैं। वह अपने साथ-साथ अपने आस-पास की स्त्रियों की मदद कर

उनके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन को भी ऊँचा करने की कोशिश में लगी रहती हैं: 'मन्मथ जी की माँ सामाजिक-राजनीतिक रूप से सक्रिय थीं। सामाजिक फिलहाल अधिक राजनीतिक कम। वह आगे की आकांक्षा थीं। घर में रहतीं भी तो वे घर के कार्य व्यापार तक सीमित नहीं रहतीं। उसे दोनों बेटियों और बड़ी बहू के जिम्मे छोड़ समाज सेवा में समय लगातीं। सिलाई मशीन ले रखी थी जिन पर लड़कियों औरतों को सिलाई सिखलातीं अपने बरामदे में।'[25]

वर्तमान समय में स्त्री शिक्षा ने स्त्री को इतनी तो हिम्मत और जागरुकता प्रदान की है कि वह किसी भी मुद्दे पर अपना मत प्रस्तुत कर सकती है। जहाँ पहले माँ-बाप अपनी बेटी को जिस खूँटे से बाँधना चाहते थे, उससे वह बँध जाती थी। अब वह खुलकर उसका विरोध करती है और अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहती है कि : 'तो क्या हुआ माँ? तू क्यों परेशान रहती है? क्या शादी जरूरी है? क्या इसके बगैर नहीं रह सकता कोई?'[26] इतना ही नहीं पिता द्वारा बार-बार अपनी बेटी को शादी करने के बारे में यह बोलने पर : 'अब नहीं करेगी तो कब भला? लड़की है, दो साल में तीस छू लेगी...।'[27] उसके मन-मस्तिष्क में पिता द्वारा अपनी माँ को प्रताड़ित होते देखने का जो दर्द सदियों से दबा था वह छलक उठाः 'अंदर हौसला भरकर तो बोल दिया दो टूक - पापा क्या गारंटी है कि दुनिया में आप अकेले हो अपनी तरह के? कि कहीं मुझे जो मिला आपके जैसा नहीं होगा! फिर मैं तो जी भी नहीं पाऊँगी। मुझमें माँ जैसी शक्ति नहीं जो हमारा मुँह देखते हमारे बारे में सोचते सब कुछ सहते दिन काट गई जैसे-तैसे! वह सब हमने अपनी आँखों से देखा है।'[28] वर्तमान में शिक्षा के प्रभाव से स्त्री की चेतना जागृत हुई है। इस बात को प्रेम रंजन अनिमेष ने अपनी कहानियों में व्यक्त किया है। इनकी कहानियों में स्त्री जीवन और उससे संबंधित समस्याओं का न केवल निरूपण हुआ है अपितु उनके संबंध में जीवन्त निष्कर्ष और समाधान भी प्रस्तुत हुए हैं। इन्होंने एक ओर स्त्री जीवन से संबंधित समस्याओं जैसे अशिक्षा, विवाह, वैधव्य, अनमेल विवाह, पारिवारिक संबंध एवं समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति की ओर संकेत किया है तो वहीं दूसरी ओर स्त्री के स्वाभिमान, धैर्य, सहनशीलता, ममत्व, मातृत्व, मर्यादा और महत्ता का भी सशक्त चित्रण किया है। अपनी कहानियों में वे स्त्रियों के हिमायती बनकर उपस्थित हुए हैं तथा उन्होंने स्त्री जीवन की समस्याओं के निदान के साथ-साथ उनके जीवन को स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर बनाने का समर्थन भी किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में स्त्री जीवन की त्रासदी, संघर्ष व मुक्ति की छटपटाहट को व्यापक अभिव्यक्ति मिली है। परिवार व समाज में सम्मानजनक पद की प्राप्ति हेतु स्त्री संघर्षरत है। वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध करती हुई अपनी इच्छानुसार जीवन यापन करने की कोशिशें करती है। अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर वह सदियों की चुप्पी तोड़ने लगी है। पीड़ा एवं संघर्षमय जीवन के इतिहास एवं अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाकर उन बंधनों को उखाड़ फेंकने हेतु उद्यत है जो उसकी प्रगति में बाधक सिद्ध हुए हैं।

संदर्भ :

1. नया ज्ञानोदय; अंक 107, जनवरी 2012, पृ. 32
2. कथादेश; वर्ष 35, अंक 2, अप्रैल 2016, पृ. 78
3. वागर्थ; अंक 237, अप्रैल 2015, पृ. 36
4. कथाचली; वर्ष 2, अंक 3, दिसम्बर 2019, पृ. 23-24
5. वही; पृ. 23
6. कथादेश; वर्ष 35, अंक 8, अक्टूबर 2017, पृ. 36
7. वही; पृ. 36
8. परिकथा; वर्ष 5, अंक 29, नवंबर-दिसंबर 2010, पृ. 29
9. वही; पृ. 32
10. वही; पृ. 34
11. कथादेश; वर्ष 35, अंक 8, अक्टूबर 2017, पृ. 37
12. वही; पृ. 38
13. वही; पृ. 34
14. कथादेश; वर्ष 35, अंक 2, अप्रैल 2016, पृ. 67
15. परिकथा; वर्ष 9, अंक 52, सितंबर- अक्टूबर 2014, पृ. 58
16. वागर्थ; अंक 205, अगस्त 2012, पृ. 39
17. वही; पृ. 39
18. वर्तमान साहित्य; वर्ष 6, अंक 4, जनवरी 1989, पृ. 55
19. वही; पृ. 56
20. वागर्थ; अंक 237, अप्रैल 2015, पृ. 34
21. वही; पृ. 35
22. वही; पृ. 37
23. वही; पृ. 41
24. कथादेश; वर्ष 35, अंक 8, अक्टूबर 2017, पृ. 34
25. वही; पृ. 35
26. वही; पृ. 34
27. वही; पृ. 42
28. वही; पृ. 42

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय
एस. एस. जे. परिसर, अल्मोड़ा-263601

उत्कृष्ट एवं कालजयी रचनाओं के प्रणेता प्रेम रंजन अनिमेष

- गुरबख़्श सिंह मोंगा

प्रेम रंजन अनिमेष का रचना संसार बहुआयामी, बहुस्तरीय और बहुरंगी है। व्यापक रचनात्मक सरोकारों से जुड़े इनके साहित्य का विवेचन आसान तो नहीं, लेकिन इस पर प्रकाश डालना आवश्यक और अपरिहार्य है। अनिमेष की कविताएँ हों या कहानियाँ, इनमें आम तौर पर छिपा हुआ या अनदेखा किया गया यथार्थ इतनी सहजता से सामने आता है कि पाठक आश्चर्यचकित रह जाते हैं। इनकी सारगर्भित रचनाओं में अतिसाधारणता की असाधारण प्रभावोत्पादकता साहित्य कला को उसके असल उद्देश्य से जोड़ती है।

'गूँगी माँ का गीत' प्रेम रंजन अनिमेष की बेमिसाल कृति है। लीक से हटकर लिखी गई इस कथा में बुजुर्गों के प्रति युवाओं के उदासीन और तिरस्कारपूर्ण व्यवहार को बड़े प्रभावपूर्ण तरीके से दशार्या गया है। कहानी में माँ बदतर आर्थिक स्थिति का सामना करते हुए भी बेटे को स्वादिष्ट लिट्टी बना कर देती हैं, लेकिन महिला बॉस को खिलाते वक़्त वह इसका श्रेय अपनी पत्नी को देता है। वह अपनी माँ का नाम आगे नहीं रखता- कभी इसकी आवश्यकता ही नहीं समझता। अनिमेष की कहानी यह सन्देश भी देती है कि आधुनिकता और प्रगतिशीलता के नाम पर पीढ़ियों के बीच बढ़ती जा रही दूरी गम्भीर और चिन्ताजनक है। जाहिर तौर पर इसे कम करते हुए मिटाने की बड़ी ज़िम्मेदारी नयी जमात की ही है। यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि बुजुर्गों को सम्मान देना और उनका खयाल रखना सबके लिए हितकारी है। फिर अनुपम अनन्य माँ की अवहेलना की बात कोई सोच भी कैसे सकता है!

'तोहरी सुरतिया देख के' कथा में 250 वर्ष पूर्व पुनर्जागरण काल से जारी नारी विमर्श के बावजूद बच्चियों की शिक्षा-दीक्षा में कोताही और विवाह के पश्चात उनकी प्रताड़ना को न केवल अलग-अलग कोणों से व्यक्त करने में अनिमेष जी सफल रहे हैं, बल्कि इसके अंत ने रचना को कालजयी बना दिया है। एक औरत, जो सारी उम्र बेमेल विवाह का दंश और पति का दुर्व्यवहार सहती रही- इस उम्मीद के साथ कि शायद बच्चों के सहारे बुढ़ापा अच्छी तरह कट जाएगा- अपने बेटे का बहू के प्रति अपमानजनक व्यवहार देखकर उस पर हाथ उठा देती है। हमेशा करुणा और अहिंसा पर विश्वास रखने वाली माँ के उस थप्पड़ में इतनी शक्ति उतर आती है कि बेटा लड़खड़ाकर सीढ़ियों से लुढ़कता हुआ मरणासन्न हो जाता है। फिर माँ का यह वक्तव्य कि ''बताओ सबको कि मैंने अपने बेटे को मारा है, एक आदमी को मारा है जो औरत को मारता था'', कहानी को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा देता है। इस तरह यह रचना देश की सीमाओं को लाँघकर विश्व-पटल पर स्थापित हो जाती है- अंदर तक आंदोलित करती एक अद्वितीय कृति के रूप में।

अनिमेष जी की कहानी ' माँ भंगन ' मानवीय सम्बन्धों के पतन की पराकाष्ठा प्रकट करती है। अपनी माँ के प्रति बेटे-बहू का व्यवहार कितना निम्न हो सकता है, इसकी

जीती-जागती मिसाल है यह रचना। ''हारी बीमारी लाचारी... औरत को इस सूरत में जीना नहीं चाहिए''- बूढ़ी माई के इस वक्तव्य के पश्चात कुछ शेष नहीं रहता कहने के लिए। यह श्रेष्ठ कहानी हमें बार बार सोचने पर मजबूर करती है, साथ ही परिवार समाज में जरूरी हस्तक्षेप के लिए भी- ताकि स्थितियाँ बदलें और नयी सूरत दिखायी दे- मनुष्यता को बचाये बनाये रखने वाली! दरअसल साहित्य कला का उद्देश्य और काम भी तो यही है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कथा 'एक मधुर सपना', जिसे फरवरी, 2004 में 'हंस' पत्रिका द्वारा 'अमृतलाल नागर कहानी प्रतियोगिता' का प्रथम पुरस्कार मिला, लाज़िम तौर पर बेहतरीन रचनाओं में से एक है। मुख्य पात्र प्राथमिक पाठशाला शिक्षक अमरेश के माध्यम से सरकारी भर्तियों में घोटाला, अध्यापन के प्रति शिक्षकों की उदासीनता और पढ़ाने के बजाय बच्चों का अन्यत्र उपयोग- ऐसे मुद्दों और मसलों को कहानी में बड़ी संजीदगी से उभारा गया है। इनके अलावा, अमरेश का नियुक्ति पत्र रिश्तेदारों द्वारा छिपा लिया जाना और बीमार होने पर ही गरीब बच्चों को बिस्कुट दिया जाना- इस तरह की घटनाएँ विद्वेष, भेदभाव और गुर्बत को बड़ी तल्खी के साथ दशार्ती हैं। पशुगणना का कार्य करते हुए मास्टर अमरेश के मन में घरों में मौजूद साइकिलों, रेडियो एवं मिट्टी के बरतनों आदि की गणना का भी खयाल समूचे तंत्र पर गहरा तंज है। वाकई अनिमेष जी की यह कहानी व्यवस्था की विसंगतियों और विद्रूपताओं को प्रकट करने में पूरी तरह सफल रही है।

'चिड़िया का बुखार' कहानी में प्रेम रंजन अनिमेष ने गुर्बत और धर्मिक विद्वेष के बरअक्स सकारात्मक सोच को विकल्प के तौर पर बेहतरीन ढंग से पेश किया है। 'लमही' पत्रिका में जुलाई, 2012 में छपी इस कहानी के जरिये लेखक ने आने वाले समय के और कठिन तथा संकटपूर्ण होने की तरफ इशारा किया है। वर्ष 1964 में लिखी गयी मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' कविता की स्मृति को ताजा कर देती है यह रचना, जिसमें फासीवाद की आशंका जाहिर की गयी थी। दूसरी तरफ अनिमेष जी की कथा 'जलकलश' दहेज, अफसरशाही की संवेदनहीनता, जातिगत विद्वेष और वर्तमान सामाजिक-राजनैतिक परिवेश में 'आम राय' के नाम पर चौतरफा 'आक्रामक हस्तक्षेप' का सशक्त दस्तावेज है।

विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार लेव तालस्ताय से एक बार सवाल किया गया था कि लेखक कौन होता है? प्रत्युतर में तालस्ताय ने कहा था- ''मैं यह तो नहीं बता सकता कि लेखक कौन होता है, परन्तु यह अवश्य बता सकता हूँ कि लेखक कौन नहीं होता।' अनिमेष जी इस विचार को पूरी शिद्दत से आगे बढ़ाते हुए यह संदेश देने में सफल हैं कि प्रत्येक संजीदा मानस लेखक है, कवि है, सर्जक है.....। इसका प्रमाण 'नन्हें फरिश्ते' शीर्षक कहानी है। इसके मुख्य पात्र छोटू और मुन्नी गरीब किंतु नैसर्गिक प्रतिभा के धनी बच्चे हैं। वे पत्थर के टुकड़े बजा बजाकर गीत बनाते गाते रहते हैं। इस तरह का स्वतःस्फूर्त गीत भी बहुत कुछ कह जाता है और सीधे जुड़ जाता है सहज निर्मल संवेदना के साथ! इसकी एक बानगी ध्यातव्य है-

इस दुनिया को जब भी सोचा / पाया इसमें कोई लोचा /

लोचा लोचा...सोचा सोचा...
सब कुछ कब है मन का होता / उड़े अगर हाथों का तोता /
बाल न कर फिर अपने नोचा...

साहित्य को शाश्वत प्रतिपक्ष की भी संज्ञा देते हैं। प्रेम रंजन अनिमेष अपनी रचना प्रक्रिया में जहाँ जरूरी है, इस 'असहमति' और हस्तक्षेप को पूरी तन्मयता और प्रतिबद्धता से समाहित करते हैं। असहमति के चलते ही रामानुज, कबीर, रवीन्द्रनाथ, अम्बेडकर, प्रेमचन्द, फुले दम्पति, निराला आदि समाज को कुछ सार्थक दे सके। यथास्थिति से यह असहमति ही संघनित होकर असमानता, भेदभाव, अन्याय और अत्याचार के खिलाफ सशक्त प्रतिरोध का रूप लेती है, और जब अनिमेष सरीखे खरे सर्जक इसे स्वर देते हैं तब इसकी पहुँच जन-जन तक होती है- समय और समष्टि में दूर तक प्रतिध्वनित होती हुई। दुनिया की बेहतरी के लिए बहुत जरूरी है इस तरह का रचनात्मक प्रतिरोध और प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियाँ इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनकी सतत और अथक रचनाशीलता भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है और नया विश्वास जगाती है।

- एल-102, सुषमा जायनेस्ट,
एयरपोर्ट रोड, जीरकपुर,
ज़िला - मोहाली; पंजाब

दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना

(संदर्भ प्रेम रंजन अनिमेष की कहानी 'जानी है जब जान पियारे')

राकेश बिहारी

मुझे हमेशा लगता है कि कवि के रूप में ख्यात प्रेम रंजन अनिमेष स्वभावतः एक किस्सागो हैं। ऐसा कहने का उद्देश्य उनके कवि रूप को कम आँकना नहीं, बल्कि अपेक्षाकृत कम चर्चा में रहनेवाले उनके कथाकार रूप को रेखांकित करना है। हालाँकि यह टिप्पणी प्रेम रंजन अनिमेष की सिर्फ एक कहानी पर केंद्रित है, पर उन्हें स्वाभाविक किस्सागो बताते हुए मेरे जहन में उनकी वो तमाम कहानियाँ आ-जा रही हैं, जो पिछले दो-ढाई दशकों के बीच हंस और कथादेश जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर पाठकों के मानस पर गहरा प्रभाव छोड़ती रही हैं। कवि प्रेम रंजन अनिमेष के भीतर बसने वाले कहानीकार से मेरा परिचय उनकी शुरूआती कहानियों में एक 'एक मधुर सपना' ने कराया था। यदि मुझे ठीक याद है तो वह साल 2004 था और आकार में सामान्य से लंबी वह कहानी हंस द्वारा आयोजित अमृत लाल नागर कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान पर चयनित हुई थी। इक्कीसवीं सदी के आरंभ में लिखी गई उस कहानी ने राष्ट्रपति के आगमन और उस अवसर की तैयारियों के बीच एक दलित छात्र के मनोभावों के बहाने समाज के आखिरी आदमी के स्वप्न और जीवन-यथार्थ के बीच स्थिति अंतरालों को जिस गहराई के साथ रेखांकित किया था, लगभग बीस बरस बीत जाने के बाद आज भी उसका प्रभाव मेरे पाठक मन पर उसी तरह अंकित है। बीस वर्षों के इस लंबे कालखंड में उनकी कोई दो दर्जन से ज्यादा कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, जिनमें 'सात सहेलियाँ खड़ी-खड़ी', 'लड़की जिसे रोना नहीं आता', 'जानी है जब जान पियारे', 'चंद खिलौनों की दास्तान' आदि कहानियों ने पाठकों का विशेष ध्यान खींचा है। समाज के आखिरी व्यक्ति के प्रति अविचल प्रतिबद्धता, औत्सुक्य से भरी किस्सागोई और वर्णनात्मकता ये तीन विशेषताएँ हैं, जो प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों को विशिष्ट बनाती हैं।

विवेच्य कहानी 'जानी है जब जान पियारे' प्रेम रंजन अनिमेष की इन रचनात्मक विशेषताओं को रेखांकित करनेवाली प्रतिनिधि कहानी है। यह कहानी साहित्य, विचार और संस्कृति का संवाहक 'संवेद' द्वारा संचालित 'कथा-संवेद' शृंखला के अंतर्गत अक्टूबर 2020 में प्रकाशित-प्रसारित हुई थी। विशुद्ध किस्सागोई की शैली में लिखी यह कहानी जितनी रोचक है, उतनी ही मारक भी। कामलाल नामक एक व्यक्ति की कथा कहती यह कहानी ऊपर से जितनी सरल, रोचक और आसान दिखती है, भीतर से उतनी ही संश्लिष्ट और बहुपरतीय है। कथारम्भ की प्राचीनतम शैली 'एक समय की बात है' के तर्ज पर यह कहानी 'कभी पहले वहले की बात है', के जुमले से शुरू होती है। कहानी का दूसरा वाक्य है- 'अभी तो यह बात हो ही नहीं सकती।' पाठकों के भीतर उत्सुकता जगाते हुए कहानी शुरू होती है और पहले ही अनुच्छेद में पता चलता है कि अनिमेष 'कामलाल' नाम के एक ऐसे व्यक्ति की कहानी कहने जा रहे हैं, जो 'आदमी' बनने के लिए गाँव से शहर आया है। आया क्या है, अपनी माँ के द्वारा शहर भेज दिया गया है।

इसी हिस्से में वाचक यह भी बताता है कि कामलाल के पिता का नाम रामलाल था, जो दो भाई थे। परिवार की परिपाटी के अनुसार उनके दूसरे भाई श्यामलाल निःसंतान रह गए थे। रामलाल और श्यामलाल के पिता का नाम आमलाल था। अपने पिता की तरह ही कामलाल भी दो भाई थे। दूसरे भाई का नाम आरामलाल था। कहानी के चरित्रों और उनकी पृष्ठभूमि से एक पारंपरिक सूत्रधार की तरह रोचक परिचय कराते हुए वाचक के एक कथन पर भी खास ध्यान दिए जाने की जरूरत है- 'इन दिनों की तरह हिंगलिश उस जमाने का हिस्सा होता तो क्या पता कामलाल को कोई काम'रेड' भी कह देता!' गौर किया जाना चाहिए कि महज दो-ढाई सौ शब्दों के इस आरंभिक पैराग्राफ में कहानी अपने पाठकों से कई बार यह कहती है कि जो कथा आप सुनने जा रहे हैं, वह आज की नहीं है। लेकिन जैसे-जैसे आप कहानी में धँसते जाते हैं, आपको पता चलता है कि कथा कहने का यह तरीका भले दादियों-नानियों वाला हो, पर कहानी बिलकुल आज की है। 'अस्वीकार' या 'ना' पर बलाघात के बहाने 'स्वीकार' या 'हाँ' की बात करने की यह तकनीक दिलचस्प ही नहीं मानीखेज भी है। एक रोचक कहानी के माध्यम से मौजूदा आर्थिक, राजनैतिक और वैश्विक सत्ता की असलियत और उनकी शृंखलाबद्ध पारस्परिकता को इस तरह बेनकाब करना कि किसी को पता भी न चले और सबको पता भी चल जाय, इसके लिए कहानीकार में कुशल किस्सागोई के साथ सूक्ष्म पर्यवेक्षण और तीक्ष्ण विश्लेषण की क्षमता भी होनी चाहिए। यह आश्वस्तिदायक है कि इस कहानी में किस्सागोई, पर्यवेक्षण और विश्लेषण का एक विरल संतुलन दिखाई पड़ता है। पात्रों के आमलाल और कामलाल जैसे नाम हों, या हिंगलिश का जिक्र, कामलाल और आरामलाल के बहाने एक खास तरह की सामाजिक-आर्थिक द्वन्द्वात्मकता की तरफ इशारा हो, या आदमी बनने के लिए गाँव से शहर जाने की बात, या फिर कथा की शुरूआत में माँ की निर्णयकारी उपस्थिति,...कहानी की इस लघु आधारशिला में ही इसकी बहुपरतीयता और विराटता के संकेत मिल जाते हैं।

कहानी आगे बढ़ती है और पाठकों का दो और नए पात्रों से परिचय होता है- एक कुलबुल कौवा और दूसरा राजू चाभी वाला। ये दोनों ही कामलाल के दोस्त हैं। इनके माध्यम से ही पता चलता है कि कामलाल को कोई 'अजब गजब बुखार' हुआ है, यह बुखार जानलेवा भी है और संक्रामक भी। उल्लेखनीय है कि यह कहानी जब प्रकाशित हुई भारत सहित पूरी दुनिया कोरोना महामारी से जूझ रही थी। कोरोना की छाया, जनकल्याण के सरकारी इंतजाम व चिकित्सा व्यवस्था की असलियत और इन सबके बीच आमलाल के पोते कामलाल की करुण और दारुण विवशताओं के बहाने एक आम आदमी की दुखद नियति उदास कर जाने वाले संगीत की तरह कहानी में लगातार उपस्थित है। बिना कोरोना का नाम लिए उस पूरे परिदृश्य की भयावहता को प्रकट करने की यह युक्ति कथा में वर्तमान की उपस्थिति को तात्कालिक वर्तमान हो जाने की नियति से दूर करते हुए उसे एक ऐतिहासिक वर्तमान की तरह जीवित करती है।

'लौटते हुए शरीर से बेहद कमजोर महसूस कर रहा था वह, मगर मन से मजबूत। जान जाने का डर जा चुका था। मान लिया था कि जा सकती है कभी। लिहाजा डर अब कोई था नहीं। उससे अधिक फिक्र तो कुलबुल को थी। रात भर पास से गया नहीं।

दुबका रहा वहीं। लगा रहा ज्वर से तपती उसकी देह से। राजू भी आया था रात में। कहा कि अपने सारे पैसे मिलाकर मँहगी दवा खरीदने की कोशिश करेगा। पर कामलाल ने मना कर दिया। अजब गजब बुखार हुआ हो तो हो। जानी होगी जान तो दवा खाकर भी चली जायेगी। इसलिए हकीम वाली सस्ती दवा लेने से भी अब मना कर दिया। एक बार डर से उबर लिया तो फिर क्या! अब उसे पार कर दूसरी ओर उतर चुका था।'

'अजब गजब बुखार' से पीड़ित होने की पुष्टि के बाद कामलाल का डर से उबर कर इलाज करवाने से इनकार करने का यह दृश्य बरबस ही मिर्जा गालिब के एक प्रसिद्ध शेर की याद दिला जाता है-

'इशरत-ए-कतरा है दरिया में फना हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना'

महामारी में लगभग तय मृत्यु के भय को जीत कर एक आम आदमी का अपनी पहुँच से बाहर महँगे इलाज की नियति को समझते हुए हकीम वाली सस्ती दवा लेने से भी मना करने में दर्द की जो इंतहा छिपी हुई है, वह हमारे समय की बड़ी त्रासदी है। ऊपर उद्धृत प्रसंग में कुलबुल कौवा का आमलाल की देह से दुबका रहना भी बहुत मानीखेज है। कोरोना काल में जब मृत्यु के भय ने मनुष्यों के बीच एक नए तरह की अस्पृश्यता का व्याकरण खड़ा कर दिया था, दो प्राणियों के बीच की यह बॉन्डिंग अद्भुत है। मनुष्य और मनुष्येतर की यह पारस्परिकता जो सर्वथा प्राकृतिक है, हमारी प्राचीन कथा परंपरा का हिस्सा रही है। इस बात पर भी गौर किए जाने की जरूरत है कि पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी कहानी में मनुष्येतर प्राणियों की मजबूत वापसी हुई है। हमारे समय के कुछ महत्त्वपूर्ण कथाकारों, यथा अवधेश प्रीत, हरि भटनागर, योगेंद्र आहूजा, मनोज रूपड़ा, रवि बुले, आशुतोष आदि ने अपनी कथा कृतियों में कुछ यादगार पशु चरित्रों (जिनमें गाय, कुत्ता, बिल्ली, गदहा आदि शामिल हैं) की रचना की है। प्रेम रंजन अनिमेष की इस कहानी का कुलबुल कौवा उसी शृंखला की एक मजबूत कड़ी है।

अपनी आसन्न मृत्यु की आशंका से घिरा आमलाल इलाज से भले इनकार करता हो, लेकिन एक बेहतर समाज का सपना अब भी उसके भीतर जिंदा है। जीते जी तो वह इस दुनिया को बदलता नहीं देख सका, मरते-मरते किसी एक बुरे को खत्म करके धरती का भार थोड़ा कम कर जाना चाहता है। किसी एक बुरे को खत्म करने के लिए आमलाल तलवार नहीं, कलम का उपयोग करना चाहता है। कहानी के इस मोड़ पर पता चलता है कि वह एक कवि है। आमलाल कुलबुल से कहता है- 'मैं तुम्हें अपनी कविताएँ याद करा दूँगा। वे कवितायें तुम जिसे सुना दोगे एक साथ वह बच नहीं पायेगा।' यहीं से कहानी में उस एक बुरे व्यक्ति की तलाश शुरू हो जाती है, जिसे खत्म हुआ जान आमलाल चैन से यह दुनिया छोड़ सके। मुहल्ले के उठाईगीर से शुरू हो कर यह तलाश नगर कोतवाल, साहूकार, मंत्री और देश का राजा से होते हुए दुनिया के राजा तक पहुँच जाती है। देश का राजा कुलबुल को दुनिया के राजा का पता बताते हुए कहता है कि उसका पूरा परिसर उजला है और उसे काले से सख्त नफरत और परहेज है। इसलिए उस तक पहुँचने के लिए उसे खुद को उजले रंग में रंगना होगा। सात समंदर पार दुनिया के राजा तक पहुँचने के कुलबुल के संकल्प और आमलाल की कविता पंक्तियों के

साथ कहानी समाप्त होती है -

'खूब कमाया पर सब माया / सोच भला क्यों जग में आया
अपने को पहचान पियारे / इतराता आसान पर पर तन कर
खुश है जाने क्या क्या बन कर / होना था इनसान पियारे
जानी है जब जान पियारे / मन का रख कुछ मान पियारे'

आमलाल का कवि होना जहाँ श्रम और मेधा के सहकार की जरूरत का रूपक है, वहीं कविता सुनाकर बुरे को मारने की योजना विचार के प्रसार और परिमार्जन से बुराई को खत्म करने की स्वप्न-योजना को पुनः रेखांकित करना है।

लोक कथा की शैली में लिखी गई यह कहानी जिस तरह मूल कारण विश्लेषण (Root cause Anlysis) की तकनीक का प्रयोग करते हुये स्वप्न, फंतासी और जादू के रचनात्मक उपकरणों का समस्या पूर्ति के जटिल प्रश्नों की तरह नहीं, बल्कि रस और औत्सुक्य की स्वादपरक डली की तरह उपयोग करती है, वह इस कहानी की संरचना को विशिष्ट बनाता है। कौआ, कविता और किस्सागोई के तीन सूत्रों से बुनी गई यह कहानी समाज के आखिरी या सबसे कमजोर व्यक्ति की ताकत और जिजीविषा को रेखांकित करते हुये बड़ी सहजता से लोकल और ग्लोबल के अंतसंबंधों तथा दुरभिसंधियों का उद्घाटन करती है। घरेलू हिंसा से लेकर वैश्विक हिंसा और रंगभेद तक की नाड़ी पर किसी कुशल वैद्य की तरह उंगली रखने वाली यह कहानी वाचिक और लिखित के बीच जिस सेतु का निर्माण करती है वह इसे बच्चों और बालिगों दोनों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण बना देता है। बचपन में भरी साँझ दादी-नानी से सुनी गई बढ़ई और गौरैये की कहानी के रस, रूप और गंध से सिक्त यह कहानी समकालीन वैश्विक आर्थिक राजनैतिक परिदृश्य का एक बड़ा रूपक है, जो सत्ता और प्रतिपक्ष दोनों की समीक्षा करता है।

मोबाईल - 9425823033

आख्यान की नयी जमीन तैयार करता 'विस्फोट'

- शशिभूषण मिश्र

प्रेम रंजन अनिमेष हिन्दी की सृजनशील परम्परा के उन लेखकों में हैं, जिन्होंने कविता के साथ साथ कथा साहित्य, समालोचना, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में न सिर्फ. सार्थक हस्तक्षेप किया है, बल्कि उनकी नयी उर्वर भूमि भी तैयार की है। जहाँ कविता के लिए इन्हें भारतभूषण अग्रवाल जैसा प्रतिष्ठित सम्मान मिल चुका है, वहीं इनकी कहानियाँ भी देश की ख्यात कथा पत्रिकाओं- 'हंस', 'कथादेश' तथा 'वर्तमान साहित्य' द्वारा पुरस्कृत हुई हैं। एक लेखक के रूप में इनका लगातार गुणात्मक और विधागत विस्तार हुआ है। अनिमेष का उपन्यास 'स्त्रीगाथा' अभी प्रकाशन की प्रक्रिया में है। 'कथादेश' में प्रकाशित इनकी उपन्यासिकाएँ- 'माई रे..' तथा 'दि हिन्दी टीचर' बहुचर्चित और बहुप्रशंसित हैं। साथ ही लंबी कहानी की तरह कथा पत्रिकाओं में प्रकाशित 'तोहरी सुरतिया देख के', 'दी' एवं 'पानी पानी' भी औपन्यासिक फलक की अद्भुत कृतियाँ हैं। फिर महाकाव्यात्मकता लिये हुए 'ऊँट', 'साइकिल पर संसार', 'स्त्री सूक्त' तथा 'बचपन का महाकाव्य' जैसी अनेक वृहद कविता श्रृंखलाएँ इन्हें अलग और विशिष्ट पहचान प्रदान करती हैं।

अपने अब तक प्रकाशित हर कविता संग्रह में अनिमेष ने जैसे नयी जमीन तोड़ने और नये प्रतिमान गढ़ने का सराहनीय काम किया है, उसी तरह अपनी अनूठी कहानियों के जरिये भी हर बार कुछ नया गढ़ने और नयी तरह से रचने के सृजनात्मक साहस का परिचय दिया है। 'नॉटनल' पर उपलब्ध कहानी संग्रह 'एक स्वप्निल प्रेमकथा' व प्रकाशनाधीन संग्रहों- 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'एक मधुर सपना', 'नटुआ नाच', 'पानी पानी' एवं 'थमी हुई साँसों का सफर' सहित विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित इनकी अनेक कहानियाँ एक से बढ़कर एक हैं- कथ्य, कथानक, शिल्प, निर्वाह, पात्र, स्थितियाँ, संवाद और समग्र प्रभाव व पठनीयता के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण और विचारणीय!

उल्लिखित संकलनों की शीर्षक कथाएँ हों, या फिर दादी-पोते का विलक्षण वृत्तांत 'ए आजी' (वागर्थ), स्त्री विमर्श की अनन्य कथा 'सात सहेलियाँ' (परिकथा), लोककथा की गहराई और सहज प्रवाह के साथ बदलाव की बेचैनी जाहिर करने वाली कहानी 'जानी है जब जान पियारे' (कथा संवेद), ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच एक व्यक्ति के संकट और अंतर्द्वन्द्व को बारीकी से उद्घाटित करती तथा पारिवारिकता, स्त्री पुरुष सम्बन्ध, जीवन मूल्यों एवं वर्तमान विडंबनाओं की ओर ध्यान खींचती कथा 'न खोली गयी चिट्ठी' (वागर्थ) या फिर अपने अनूठे कथातत्व की दृष्टि से विशिष्ट और विश्वस्तरीय गाथा 'बाल चिकित्सक' (कथा विशेषांक, 'किरण वार्ता', हाजीपुर) - सारी कहानियाँ अनूठी, अप्रतिम, असाधारण और अविस्मरणीय हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की लगभग सभी कहानियाँ दिल के करीब तो हैं ही, कई स्तरों पर दिमाग को भी झकझोरती हैं। इनमें प्रथम अमृतलाल नागर पुरस्कार प्राप्त 'एक मधुर सपना' सरीखी कई कथाएँ हैं, जो व्यवस्था के तथाकथित विकास और भोले निश्छल निर्धन जन के स्वप्न के बीच की गहरी खाई को दिखाती हैं, और राष्ट्र-राज्य

की राजनीतिक हकीकत के बीच यह सवाल छोड़ जाती हैं कि इस व्यवस्था में गरीबों और वंचितों के लिए कितनी जगह बची है या बची भी है कि नहीं? फिर यह भी कि लोक कल्याण का मुखौटा पहने तंत्र में लोक कहाँ है और तंत्र भी किस हालत में? ये सब प्रश्न ऐसे हैं, और उन्हें महारत के साथ सामने रखने वाले ये महाख्यान भी, जिन पर गौर किया जाना चाहिए। इसी दृष्टि से 'माटी' पत्रिका के कथा विशेषांक में प्रकाशित उनकी कहानी 'विस्फोट' अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिसका व्यापक विवेचन और गहन विश्लेषण आवश्यक है।

अनिमेष की एक बड़ी खूबी है - बहुत ही गहरे, बेधक और संजीदा कथ्यों का अत्यंत जीवंत और पठनीय निर्वाह। जैसे संगीत में कुछ 'हॉन्टिंग मेलोडीज' हुआ करती हैं- उसी तरह ऊपर-ऊपर हँसी खेल के आवरण में अंदर-अंदर मथने, झिंझोड़ने, मर्म को छूने, बेधने और बेचैन करने वाली कि स्सागोई तथा बेमिसाल कला-कौशल वाली हैं उनकी कई कहानियाँ- गहन व्यंजना और प्रश्नवाचकता के शिल्प में ढली। अनिमेष की ये कहानियाँ हमारे लिए इसलिए भी जरूरी हो जाती हैं कि इनमें अपने समय का संबल है और आने वाले कल की स्पष्ट पदचाप भी। ऐसी रचनाओं से जुड़ना तो जरूरी है ही, इनके सूत्र पकड़कर आगे बढ़ना भी - आगत की आहटें साफ सुनते और भविष्य को नये सिरे से बुनते हुए!

कहन और प्रस्तुति की विशिष्टता के साथ विषय के ट्रीटमेंट के कारण अनिमेष की बहुचर्चित कहानी 'विस्फोट' अप्रतिम है। चूँकि कहानी का विषय साहित्य समाज से जुड़ा हुआ है और कथाकार ने इस समाज का आलोचनात्मक विश्लेषण (क्रिटिकल एनालिसिस) किया है, इसलिए भी इस पर बात होनी चाहिए। यह कहानी एक लिहाज से हमारे वर्तमान रचना परिदृश्य में उभरी नकारात्मक प्रवृत्तियों का निर्मम भाष्य है। लेखन के नाम पर जिस तरह की रचनाएँ हमारे बीच आये दिन नुमाया हो रही हैं, उन्हें देखकर 'छपास' के सर्वग्रासी संकट को महसूस किया जा सकता है। अनिमेष इस कहानी में दिखाते हैं कि किस-किस तरह के लोग अपने को लेखक मान बैठे हैं- 'ऊँचे आसनों' पर स्वयं को विराजमान कर!

कहानी 'विस्फोट' की केन्द्रीय चिंता है- लिखे हुए शब्दों या 'साहित्य सृजन' का मोल खुद साहित्य जगत और बाहर समाज में आज क्या है? आत्म प्रकाशन के बढ़ते लोभ और 'लेखक का टैग' लगाने की प्रवृत्ति के कारण साहित्यिक मूल्यों में जिस कदर गिरावट आई है, उसके सन्दर्भ में इस कहानी का महत्व असंदिग्ध है। ऐसे भ्रमित लोग न सिर्फ. लेखकीय नैतिकता को धराशायी करते हैं, बल्कि उसकी विश्वसनीयता को भी क्षरित करते हैं। दरअसल ऐसे लोगों के लिए साहित्य स्वान्तःसुखाय या समाज को रास्ता दिखाने वाली विधा नहीं, आत्म प्रचार का माध्यम हो गया है, और शब्दों का चतुर खेल भी। साहित्यिक परिदृश्य की इस विडंबना को कहानी के बाहर देखे जाने की विशेष जरूरत है- मसलन साहित्य समाज में जहाँ तहाँ उग आए तथाकथित कवियों का सतहीपन, कविता लिखने और छपने की जुगत, नाम बदलकर रचनाएँ प्रकाशित करवाने का जुगाड़, शैक्षिक और साहित्यिक पिछड़ापन तथा उसे लेकर उदासीनता। ऐसे कई महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिन्हें इस कहानी में बुनने की कोशिश की गयी है।

यह कथा एक 'उभरते' कवि की प्रकाशित होने की जी-तोड़ 'चाह' का रोजनामचा है। कवि महोदय की समस्या यही है कि उनकी कविताएँ अस्वीकृत होकर पत्रिकाओं द्वारा वापस भेज दी जाती हैं। वे जहाँ भी अपनी कविताएँ भेजते हैं, वहीं से न छपने की मनहूस खबर आ जाती है। जब कवि महाशय पत्रिकाओं के संपादकों की इस निर्दयता से बेइंतिहा परेशान हो जाते हैं, तब उनके पास एक ही रास्ता बचता है- 'गुरुदेव' की शरणागति। 'गुरुदेव', मतलब साहित्य के जानकार- कवि को रास्ता दिखाने वाले! नहीं छपने की पीड़ा और ग्लानि से भरे कवि महोदय इन्हीं 'गुरुदेव' को फोन लगाकर अपनी व्यथा-कथा सुनाते हैं- यह याचना करते हुए कि वे कोई राह दिखायें! 'गुरु' बार-बार समझाते हैं कि अपने सुख के लिए लिखो, छपने के लिए नहीं, लेकिन शिष्य तो है 'छपास का रोगी कवि' - वह कहाँ मानने वाला!

कई बार 'गुरुदेव' छपने के तरह-तरह के तरीके और नुस्खे बताते हुए छोटी जगहों से निकलने वाली कम चर्चित पत्रिकाओं में रचनाएँ भेजने का सुझाव देकर कहते हैं - ' उनका बहुत नाम भले ही न हो, और प्रतिष्ठा भी उतनी नहीं, फिर भी 'सत' है उनमें'। वह 'शिष्यनुमा कवि' या 'कविनुमा शिष्य' भी गुरुदेव की सिखावन को शिरोधार्य करते हुए कविता लिखने की कई तरकीबें अपनाता है, कई तरह के प्रयोग करता है, किन्तु कविताएँ कहीं भी नहीं छपतीं। फिर एक दिन गुरुदेव एक अनोखा रास्ता कवि को सुझाते हैं- 'सास' वाली यानी सामाजिक सरोकार की कविताएँ लिखने का! किन्तु यह जुगत भी काम नहीं आती है। लेखक, संपादक और प्रकाशक के जटिल रिश्ते को बड़े कायदे से रेखांकित करती यह कहानी उस वास्तविकता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, जहाँ साहित्य के नाम पर 'बहुत कुछ' है।

आखिरकार वह दिन भी आता है जब कवि महोदय को सफलता मिल जाती है। उनका सामना 'आग राग' नामक एक साप्ताहिक अखबार से होता है, जिसका कोई नामलेवा तक नहीं। कवि जी 'अखबार के नामानुसार' रातोरात एक क्रांतिकारी कविता लिख कर अगले ही दिन पोस्ट भी कर देते हैं। तीसरे सप्ताह 'विस्फोट' शीर्षक वह कविता प्रकाशित होती है- कवि, कविता और पाठकों को 'धन्य' करती हुई -

'भीड़ भरे / शहर के / सुनसान एक कोने में / होंठों से / मिल रहे / होंठ /
विस्फोट! / विस्फोट!! / विस्फोट!!! / हो रहा है / प्यार का / विस्फोट!!!!
पत्तों पंखुरियों पर / टप टप गिरती / ओस कणों की चोट /
विस्फोट विस्फोट विस्फोट / हो रहा / प्रकृति का / प्रस्फोट!
पवन के / झोंकों झँकोरों से / बालियों सहित फसलें / हो रहीं खेतों में /
लहालोट / विस्फोट विस्फोट विस्फोट /
देखो यह / सौंदर्य का / कैसा सुस्फोट!
.... दिल डूबने लगता / शाम ढले / कौन बैठ जाता पहने /
गहरी उदासी का / काला कोट / विस्फोट विस्फोट विस्फोट /
अब तो हो / नन्हे दीयों में / सजग लौ का / विस्फोट...'

गहरी व्यंजना वाली इस 'कविता' में विस्फोट का जितने रूपों में और जिस तरह से प्रयोग हुआ है, वह अद्भुत और ध्यातव्य है। जहाँ तक कवि जी की बात है, 'आग

राग' में कविता प्रकाशन से अभिभूत होकर वे साप्ताहिक पत्र की प्रतियाँ चाय-समोसे की दुकानों और केश कर्तनालयों तक बाँट आते हैं- जहाँ कविता पढ़ी जाने की शायद सबसे अधिक उम्मीद थी! इसके बाद उत्साह से भरकर कई और लोगों को भी प्रतियाँ बाँटने का निर्णय लेते हैं। हर बार कवि जी यह कहने से नहीं चूकते- 'एक अच्छा हिन्दी साप्ताहिक निकल रहा है! आप जरूर देखना चाहेंगे! सम्मानार्थ प्रति है, कुछ देना नहीं है आपको इसके बदले। बस आप रख लें।' साप्ताहिक पत्र की प्रतियाँ वितरित करते हुए कवि द्रवित भी होते हैं - अपनी भाषा और साहित्य की शोचनीय स्थिति को लेकर। अंततः कवि के पास पत्र की वही तैलीय प्रति बचती है, जिसमें किसी ने मुरमुरा खाया था और उसके कुछ अंश चिपक गये थे उसमें। कवि सोचता है- एक प्रति तो डेरे पर है ही, तो क्यों न इसे हवाई जहाज बनाकर उड़ा दिया जाये!

कवि अपनी सोच को साकार करता हुआ कागजी हवाई जहाज उड़ा देता है। फिर उसे लपक कर एक कौवा पेड़ की ऊँची टहनी पर जा बैठता है। कवि का मन भाव विभोर हो उठता है- यह देखकर कि उसकी आँखों के सामने उसकी कविता किस 'ऊँचाई' तक पहुँच गयी! फिर व्यंग्य और चुहलबाजी की मिश्रित शैली में 'कवि-कथा' आगे बढ़ती है। कौवे की पूरी मनःस्थिति समझ में आते न आते उसके पंजे से छूटकर वह जहाज एक स्त्री के कदमों के सामने जा गिरता है। फिर एक अजीबोगरीब घटना घटती है। स्त्री हवाई जहाज की नोक सही कर उसे उछाल देती है और वह थानेदार की चाय में गिर जाता है। प्याले से चाय के छींटे उड़ते ही थानेदार की चीख निकल जाती है, जिसे सुनकर सिपाही इस उद्घोष के साथ अपनी उलटी बन्दूकें लिये दौड़ पड़ते हैं कि थाने पर हमला हो गया है! कहानी में थाने का यह दृश्यबंध पुलिस व्यवस्था की पोल खोल कर रख देता है।

इस तरह 'विस्फोट' कविता दारोगा तक पहुँच जाती है, जिसे पढ़कर उसकी आँखें चौड़ी हो जाती हैं। 'विस्फोटकों से भरी, आग उगलती, दहशत फैलाती कविता' के नीचे कवि के नाम के साथ उसका फोन नंबर भी लिखा होता है। पुलिस को यह बात 'समझने' में देर नहीं लगती कि आगे कोई विस्फोट होने वाला है। साज़िश को सूँघ लेने की 'पुलिसिया क्षमता' से सब वाकिफ हैं ही! सो थानेदार सहित पूरा महकमा कवि महोदय को ढूँढ़ने लगता है। आखिरकार सफलता मिलती है और कवि को जेल में ठूँस दिया जाता है।

धीरे धीरे यह खबर साहित्यिक बिरादरी में पहुँचने लगती है कि कोई कवि है जो अपनी कविता के कारण जेल में है। साहित्यिक जगत में कइयों को बेचैनी होने लगती है - यह सोचकर कि अगर वह कवि एकाध महीने भी जेल में रहा तो चर्चित और महान हो जाएगा! यह नयी महानता कई पूर्व प्रतिष्ठित गणमान्य शब्दजीवियों पर भारी पड़ सकती है, इसलिए जरा भी देर करना उनके लिए मुनासिब नहीं। फिर अधिकारियों को समझाने और व्यवस्था को विश्वास दिलाने में पूरी ताकत झोंक दी जाती है- आग्रह किया जाता है कि गिरफ़्तार कवि एक मामूली आदमी है, अतः उसे छोड़ दिया जाए! अन्ततः मृत्यु और महानता के लगभग करीब पहुँचकर कवि रिहा होता है। उसकी इस स्वतंत्रता पर सब राहत की साँस लेते हैं।

अनिमेष की यह कहानी अखबार और संपादकों की बदहाली, वर्तनी की स्तरहीनता, खबरिया न्यूज चैनलों का खोखलापन, पुलिस व्यवस्था की धूर्तता, साहित्यिक समाज की विसंगतियाँ- सबकी खूब खबर लेती है। प्रिंटिंग स्तर, वर्तनी, अखबारी कागज, अनुदान, विज्ञापन और लाभ हानि से जुड़े बड़े जरूरी सवालों के साथ पुलिसकर्मियों की मानसिकता और प्रशासनिक व्यवस्था की विद्रूपताओं की भी जबरदस्त रचनात्मक पड़ताल करती है यह रचना!

हास्य और व्यंग्य के सहकार से कई जीवंत दृश्य प्रस्तुत किए गए हैं इस लाजवाब कहानी में। समकालीन सामाजिक, साहित्यिक और प्रशासनिक चरित्र को यह कहानी निर्ममता से अनावृत्त करती है। अनिमेष की कथा-दृष्टि सहज, स्पष्ट और प्रभावपूर्ण है। उनकी यह कृति हलके-फुलके हास-परिहास के प्रसंगों के माध्यम से साहित्य और समाज की बेधक और बेबाक पड़ताल करती है- लगभग एक 'छलना' की तरह व्यंजना के मनभावन परिधान में! वर्तमान समय की विडंबना है कि जीवन एक नकली छवि में ढल गया है। इस कहानी में साहित्य, समाज, नागरिकता और व्यवस्था के संकटों पर गहरी चिंता और गहन चिंतन व्याप्त है। यह भी कि ऐसे मुद्दों और मसलों पर शीघ्रातिशीघ्र समुचित ध्यान दिए जाने की सख़्त जरूरत है- गहरी संवेदना के साथ मनुष्यता को बचाये रखते हुए जीवन जगत की बेहतरी के लिए।

पता- सहायक प्रोफेसर, हिन्दी,
राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांदा

नटुआ नाच : मानवता के पक्ष की अभिव्यक्ति

-डॉ. रीना सिंह

प्रेम रंजन अनिमेष आधुनिक हिंदी साहित्य जगत में एक उभरते हुए साहित्यकार हैं। इन्होंने अपनी मर्मस्पर्शी, यथार्थवादी, जमीन से जुड़ी हुई रचनाओं के आधार पर शीघ्र ही साहित्य जगत में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा ली है। इनका लेखन सहज एवं स्वाभाविक है। इनके लेखन में कहीं भी कृत्रिमता दृष्टिगोचर नहीं होती। 'नटुआ नाच' प्रेम रंजन अनिमेष एक प्रसिद्ध कहानी संग्रह है। इस कहानी संग्रह में कुल छः कहानियाँ हैं। विभिन्न विषयों पर लिखी गई प्रत्येक कहानी पाठक की चेतना को झकझोर कर रख देती है।

इस संग्रह की प्रथम कहानी 'नटुआ नाच' हमारे समाज में प्राचीन एवं रूढ़ परंपराओं पर प्रहार करती है। आज भी हमारे समाज में लड़कियों को परखने का एकमात्र मापदंड उनकी सुंदरता है। यदि कोई लड़की सुंदर है तो उसके लिए लड़का आसानी से मिल जाता है। इस कहानी की भावी की छोटी बहन पढ़ी-लिखी जरूर थी लेकिन सुंदर नहीं थी। इस कारण उसे आसानी से कोई रिश्ता नहीं मिल रहा था। अतः सभी का मानना था कि उसे कैसा भी वर मिल जाए, बस मिल जाए। भावी अपनी बहन छोटी के लिए एक लड़का पसंद करती है। भावी लड़के से उसकी राय लेती है, उसकी पसंद-नापसंद के विषय में पूछती है, लेकिन अपनी बहन से कुछ भी नहीं पूछती, उसकी राय कोई मायने नहीं रखती, क्योंकि वह लड़की है। भावी का विवाह उसके दादाजी ने दौड़-धूप कर करवा दिया था। उसके पिताजी को दुनियादारी से कोई मतलब नहीं था। चूंकि दादा जी अब नहीं थे इसलिए पिताजी की बीमारी को देखते हुए भावी अपनी छोटी बहन के लिए वर खोजने का बीड़ा स्वयं उठाती है।

सिद्धांतों पर चलने वाले मनुष्य के लिए हमारे समाज में कोई स्थान नहीं होता। यह हमारे समाज की विडंबना है कि ऐसे व्यक्तियों का जीवन अत्यंत कष्टप्रद एवं दुखद ही गुजरता है। ऐसा ही कुछ आजीवन ईमानदारी के पथ पर चलने वाले बाबूजी के साथ होता है। उन्होंने अंत तक अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया। दहेज देना उनके उसूलों के विरुद्ध था, इसीलिए अपनी छोटी बेटी को न वे दहेज देने के लिए राजी हुए न हीं नटुआ नाच के लिए, जिसकी पेशकश लड़के वालों ने दहेज न लेने के एवज में की थी। हमारे समाज में जो व्यक्ति या परिवार दहेज नहीं लेता वह स्वयं को किसी महान पुरुष से कम नहीं समझता। लेकिन दहेज ना लेते हुए भी वह बारातियों के स्वागत के नाम पर लड़कीवालों से इतने पैसे खर्च कराता है, जो दहेज से कम नहीं होता। कुछ ऐसा ही भावी के ससुर उसके पिता के सामने दहेज न लेने के एवज में मांग रखते हैं, 'बारात के स्वागत सत्कार में तीन तरह का मांसाहार यानी मछली- मुर्गा- बकरा तैयार करना और जनवासे में 'नटुआ नाच' का बंदोबस्त जरूरी है- वह भी जाने-माने जुगनू सितारा पार्टी का। चूंकि बाकी लेनदेन में पहले ही भरसक छूट दी हुई है इसलिए इस पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। यह उनके खानदान की बरसों से चली आई परंपरा है जिसका अब तक हर लड़के के ब्याह में निर्वाह किया गया है...'[1]

इस कहानी में लेखक ने भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध पर भी प्रकाश डाला है।

स्त्रियों को सिर्फ जन्म लेने के बाद से ही कई संघर्षों से नहीं गुजरना पड़ता बल्कि कई बार तो उनके भ्रूण को ही विकसित होने नहीं दिया जाता। समाज में फैली कुरीतियों के कारण कन्याओं की हत्या उनके भ्रूण रूप में ही कर दी जाती है। भावी के जन्म से पहले ही उसके दादाजी ने पंडित को बुलवाया था यह जानने के लिए कि आगंतुक शिशु कन्या होगी या बालक। वे यदि 'लक्ष्मी' बता देते तो गर्भ गिरा दिया जाता। भावी की मां को अपने में आए हुए परिवर्तन को देखकर पूर्ण आभास था कि गर्भ में लड़की है। वह पंडित जी को सोने के कंगन का लालच देती है तब कहीं जाकर पंडित जी कुछ भी स्पष्ट बोलने से इंकार कर देते हैं। लेकिन सभी की किस्मत भावी की तरह नहीं होती। कन्या भ्रूण जैसा अपराध हमारे समाज के लिए कलंक है। कहानी को चरम सीमा पर पहुंचा कर उसका अंत भावी की बहन छोटी का विवाह के लिए इंकार करना पाठक को एक सुखद अनुभूति देता है क्योंकि इसके अलावा भी उसे करने के लिए और बहुत कुछ है दुनिया में, और बदलने के लिए भी बहुत कुछ। भावी का अपने बहन के प्रति प्रेम और चिंता सामान्य है। लेकिन लड़के द्वारा आसानी से तैयार होने पर उसमें कोई त्रुटि तो नहीं है इसकी परीक्षा लेने के लिए वह जो कदम उठाती है, वह सामान्य नहीं है। कुल मिलाकर ग्रामीण जीवन की कई विसंगतियों से रूबरू कराती यह कहानी नारी वर्ग के लिए प्रेरणा का काम करती है।

'टीनी टॉट' कहानी बाल मनोविज्ञान और मातृभाषा के महत्त्व पर केंद्रित है। व्यक्ति के जीवन में प्राथमिक शिक्षा का वही स्थान है, जो माँ का। देखा जाए तो यह व्यक्ति के जीवन की वह व्यवस्था है जब संपूर्ण जीवन-विकास-क्रम को गति मिलती है। बालक अपनी मातृभाषा में स्वयं को व्यक्त करने में अधिक सहज होता है क्योंकि इसी भाषा में बच्चे का मस्तिष्क सबसे पहले क्रियाशील होता है। हमारे देश में वर्तमान में चारों ओर अंग्रेजी का बोलबाला है। विशेषकर यदि प्राथमिक शिक्षा की बात की जाए तो देश में ऐसा वातावरण बना हुआ है कि अंग्रेजी के बिना उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती। इसलिए लोग अपने बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा भी अंग्रेजी में कराना चाहते हैं। 'टीनी टॉट' कहानी में प्राथमिक शिक्षा की समस्याओं के साथ ही एकल परिवार की समस्या पर प्रकाश डाला गया है। आज के युग में पति-पत्नी दोनों ही वर्किंग होते हैं। ऐसे में उनके घर पर न रहने पर बच्चों को संभालने की मुश्किलें बढ़ जाती हैं। लगभग तीन साल के टुकटुक को अंग्रेजी के परिवेश में ढालने की कोशिश में उसका बचपन छिन जाता है। बाबा को 'पापा' कहने जैसी शब्दावली उसे बताई जाती है। वह अपनी उम्र भी 'थर्टी फाइव मंथ' इसी अंदाज में बताता है। टुकटुक के माता-पिता को पड़ोसी बताते हैं कि शहरों में अच्छा जीवन यापन करने के लिए 'डी. आई. जी.' अर्थात् डबल इनकम ग्रुप भी होना जरूरी है। अंग्रेजी सीखना बहुत जरुरी है क्योंकि बिना अंग्रेजी के यहां कोई काम नहीं मिलेगा। यहां लेखक ने 'न्यू कल्चर' मानसिकता वाले समाज पर व्यंग्य किया है, जहां नौकरी के चक्कर में दस दिन के नवजात बच्चे को छोड़ कर नौकरी करनी पड़ती है। वह भी ऐसी नौकरी जिसकी कोई इतनी आवश्यकता भी नहीं। इसके बिना भी अच्छी जिंदगी अपने बच्चों की परवरिश करते हुए जी जा सकती है। चूंकि नई नौकरी के चलते छुट्टी मिलना मुश्किल था, इसलिए मम्मा को अपनी फुआ का ध्यान आता है।

हालांकि 'मुंबई घूम देख लेना इसी बहाने' कहकर जिस फूआ को बुलाया गया था, आने के बाद उतना ही देख पाती हैं, जितना कि कॉलोनी के फ्लैट की बालकनी से दिखता है। आते ही वे बच्चे की देखरेख में लग जाती हैं। वह अपना काम बखूबी करती है, लेकिन एक दिक्कत थी उनकी भाषा को लेकर। फूआ को तो खड़ीबोली हिंदी में भी क्रैश कोर्स की जरूरत थी। वह उनकी सोसाइटी के हिसाब से फिट नहीं बैठती थीं। इसलिए काम भर बच्चे के बड़े होने के बाद उनका गाँव का टिकट कटवा दिया जाता है।

अक्सर देखा जाता है कि मुंबई जैसे शहर में हिंदी वाली बोली भाषा को सभ्य समाज में बहुत कम, लगभग न के बराबर प्रयोग किया जाता है। स्थानीय भाषा-बोली को तो फिर भी जातीय-प्रांतीय अस्मिता के नाम पर बढ़ावा दिया जाता है। नेतागण चुनाव के समय उसके अधिक प्रयोग पर बल देते हैं लेकिन हिंदी की बोलियाँ पिछड़ेपन और बीमारूपन की तरह देखी जाती हैं। सभ्य और पढ़े-लिखे परिवार के बच्चों की तरह टुकटुक को भी 'टीनी टॉट इंटरनेशनल अकैडमी' में डाल दिया जाता है। टुकटुक को अंग्रेजी माध्यम की शिक्षिका नानी की कहानी की जादूगरनी की तरह लगती। अनजानी भाषा, अनजाना चेहरा देखकर टुकटुक सहम जाता है। बच्चे अंग्रेजी शब्दों को अपनी भाषा के शब्दों के अर्थ से जोड़कर समझने की कोशिश करते। 'लू' को 'इलू' की तरह लव यू समझना, 'ओके' को ओ के? उल्टी करना आदि। स्पष्ट है, जहाँ मातृभाषा बच्चों के संपूर्ण विकास में सहायक होती है, वहां विदेशी भाषा से उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसे हमारे देश की विडंबना ही समझनी चाहिए, जहाँ पर हमारी राजभाषा को स्कूलों में बोलने पर फाइन लिया जाता है। जिस भाषा को अपने ही देश में बोलने पर सजा मिले ऐसी भाषा की दुर्दशा स्वयं निश्चित है। आज सभी अंग्रेजी माध्यमों के विद्यालयों में इसी तरह के निर्देश दिए जाते हैं। अपनी भाषा बोलने पर चांटा भी जड़ दिया जाता है, 'लौटते हुए गलियारे यानी कॉरिडोर में अपेक्षाकृत बड़ी क्लास के एक बच्चे ने टीचर को सामने देखकर सर झुका कर कहा- प्रणाम सर जी! अगले पल त्वरित प्रतिसाद में एक तेज चांटा पड़ा उसके चेहरे पर। व्हाट प्रणाम? व्हाट इज दिस? नॉनसेंस? फॉलो द रूल्स ऑफ द स्कूल!'[2] इस उम्र की शिक्षा जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षा होती है। बच्चों के शारीरिक, बौद्धिक, सृजनात्मक अभिव्यक्ति आदि का विकास सही दिशा में हो इसके लिए आवश्यक है बच्चों से बात उनकी मातृभाषा में की जाए। लेकिन अंग्रेजी माध्यमों के स्कूलों का चोंचलापन, स्लीपिंग आवर्स, स्पोर्ट्स, जी. के. उनकी किसी भी चीजों से बच्चे कनेक्ट नहीं कर पाते। जिस उम्र में जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षा की आवश्यकता होती है उस उम्र में विदेशी भाषा के रूप में बच्चों पर किया गया ये अत्याचार अत्यंत भयंकर है।

'नन्हें फरिश्ते' यह कहानी 'कला जीवन के लिए' प्रयोजन को सिद्ध करती हुई कला के क्षेत्र में चोरी की विसंगति को दर्शाती है। एक सच्चा कलाकार अपनी कला के प्रति सदैव समर्पित रहता है। वह अपने परिश्रम से, अपनी मौलिकता से कला को नया आयाम देता है। लेकिन मायानगरी में लोक गीतों की धुनों या शब्दों को चुराकर उन्हें अपना नाम देकर लोकप्रिय बनने की होड़ लगी हुई है। 'नन्हें फरिश्ते' कहानी इसी समस्या को केंद्र में रखकर लिखी गई है। साथ ही उन मानवीय संवेदनाओं की पड़ताल भी करती

है, जहाँ जाति-धर्म से परे मानव की महत्ता सर्वोपरि होती है। रहीम चाचा को छोटू और मुन्नी दोनों बच्चे ट्रेन में मिले थे। उन्हें अनाथ देखकर रहीम चाचा अपने साथ ले आते हैं। उनके माता-पिता का सामान एक चोर लेकर भागा जिसे पकड़ने के लिए दोनों उसके पीछे भागे और स्टेशन पर ही रह गए। उनके पिताजी ने एक लोकगीत बनाया था, जो कुछ दिनों बाद थोड़े से बदलाव के साथ रेडियो पर सुनाई दिया। लेकिन नाम किसी और का था, किसी नामी गिरामी कलाकार का। यही बताने कि ये गीत उनकी मिट्टी का है, वे आ रहे थे तभी ये हादसा हो गया।

आज जहाँ मानवीय संवेदनाएँ शून्य होती जा रही हैं, वहाँ यह कहानी मानवीय संवेदनाओं को उच्चतम धरातल पर ले जाती हुई दिखाई देती है। जिस प्रकार अपने पास कुछ ना होते हुए भी रहीम चाचा दोनों अनाथ बच्चों की जिम्मेदारी लेते हैं वह सराहनीय है। इसी तरह रहीम चाचा को भी किसी फकीर ने पनाह दी थी। रहीम चाचा के बाद काम भरोसे पान वाले ने अपनी छोटी सी पान की दुकान में दोनों को जगह दी। कहा जा सकता है कि इन लोगों को मुकद्दर ने भले ही फकीर बनाया हो परंतु दिल से ये सभी बादशाह हैं। लेखक यहां राजनीति परस्त नेताओं पर भी करारा तंज कसते हैं, जो सिर्फ वोटों की राजनीति करना जानते हैं। 'टीनी टॉट' कहानी में लेखक ने जहां इन राजनीतिज्ञों की गंदी भाषाई राजनीति पर प्रकाश डाला है, वहीं इस कहानी में प्रांतीय राजनीति के दुष्परिणाम को उजागर किया है। इसी सियासत में दोनों मासूम बच्चों का वह अस्थाई आशियाना भी छिन गया, 'वोटों की राजनीति के मकसद से इलाके के कुछ सियासतदानों ने ऐसा फेंकना-फैलाना शुरू कर दिया कि बाहर से आने वाले लोग कचरे की तरह हैं इस महानगर के लिए, जो दिन- दिन अपनी तादाद बढ़ाते गंदला कर रहे हैं इसे, लिहाजा जितनी जल्दी हो सके चुन-चुन कर निकाल देना चाहिए इससे माहौल बिगड़ जाता है।'[3] रहीम चाचा दोनों को उनके गांव में छोड़ना चाहते हैं। लेकिन बीच सफर में ही ट्रेन में उनकी मौत हो जाती है।

अपने मिट्टी से जुड़े हुए दोनों बच्चों को लोकगीत की विरासत उनके माता-पिता से मिली थी। वे भी अपने गीतों को लोकप्रिय बनाना चाहते थे। इसी उद्देश्य से वे किसी तरह मुंबई महानगर में आए, जहां उनकी मुलाकात एक पत्रकार से होती है। वह उनके गीतों की रिकॉर्डिंग करता है और फिल्मकार दीन खान के स्टूडियो के पास छोड़ देता है। चालाक दीन खान उनके गीतों के बदले उन्हें दो-दो हजार देकर विदा कर देता है। नासमझ बच्चे एक उम्मीद लेकर वापस आ जाते हैं। कुछ दिनों बाद वही गीत रेडियो पर सुनाई देता है, लेकिन गीतकार के रूप में उनके नाम के स्थान पर दीन ईमान का नाम सुनाई देता है। वे ठगे से रह जाते हैं। दोनों के बड़े संघर्ष के बाद उन गीतों को असली गीतकारों का नाम मिल पाता है। अंत में बच्चों को न्याय मिलना कला को न्याय मिलने के समान है। कला की चोरी आज सामान्य बात हो गई है। ऐसे में इस कहानी के माध्यम से समाज की इस विसंगति को पाठकों के समक्ष लाकर लेखक ने अत्यंत सराहनीय कार्य किया है। 'लिक्खी' समाज के उस वर्ग की कहानी है, जो आज भी कहीं ना कहीं समाज के उच्च वर्ग की क्रूरता का शिकार बना हुआ है। अशिक्षा सदियों से ही दलित वर्ग की बहुत ही कठिन समस्या रही है। लेकिन इस कहानी का मुख्य दलित पात्र शिक्षित है, वह

गरीब भी नहीं है, परंतु उसके मन में एक आक्रोश है जो शताब्दियों से उनकी जाति पर किए गए अत्याचार, शोषण, अपमान आदि का परिणाम है।

इस पूरी कहानी का केंद्र' लिक्खी' (कलम) है। वह कलम जो हमारी सोच, हमारे रहन-सहन, हमारे आचार व्यवहार सभी को व्यक्त करती है। ऐसी ही एक कलम निर्मल साहब को उनके पिताजी ने दी थी, जिन्हें अपना नाम तक नहीं पता था क्योंकि कोई उन्हें उनके नाम से बुलाता ही नहीं था। लेखक यहाँ उनके जीवन की त्रासदी दशार्ते हैं जहाँ उनकी पहचान के लिए कोई नाम भी नहीं है। नाम पूछने पर निर्मल के पिता का यह उत्तर बड़ा ही उद्वेलित करता है, 'नाम मतलब क्या? हमारा नाम क्या होगा? कलुआ, डोमा, चांडाल मलेच्छ..! यही सब कहकर बुलाते हैं जिसके जी में जो आए!'[4] लेकिन थोड़ी समझ होने पर उन्होंने बच्चे का नाम मास्टर साहब से पूछ कर निर्मल राम रखा और जीवन के बवंडर के बीच गिरे बालक निर्मल को ऐसी कलम लाकर दी, जिसने उसे हर क्षेत्र में अव्वल ला दिया और निर्मल से निर्मल साहब बना दिया। जिससे निर्मल का भाग्य बदला वह फाउंटेन पेन थी, जिसे प्यार से झरनी नाम दिया गया था। निर्मल साहब यह कलम अपने बेटे को देने वाले थे, जो तीसरी कक्षा में जाने वाला था। अपनी जाति नाम से पीछा छुड़ाने में असफल निर्मल जी अपने बेटे को जाति नाम से छुटकारा दिलाने में सफल हो जाते हैं। निर्मल विवाह भी उच्च जाति की लड़की से करते हैं। उसका नाम बिंदु था। दोनों के नाम को मिलाकर उन्होंने अपने बच्चे का नाम अमलेंदु 'अम्लान' रखा। नाम के कारण इस वर्ग को समाज से सम्मान मिलने में बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए यह वर्ग अपने नाम की पहचान छुपाना चाहता है।

जिस चमत्कारी 'लिक्खी' को अब तक निर्मल राम ने बड़े ही जतन से संभाल कर रखा था वह दुर्भाग्य से कमोड में गिर जाती है। उसे हाथों से बाहर निकालने में उन्हें हिचकिचाहट होती है। दूसरे दिन वही कलम सफाई कर्मी की जेब में देख वे उसे मांग लेते हैं और बाथरूम की ताक पर रखने के लिए कह देते हैं। सफाई कर्मी वह कलम अपने बेटे को देना चाहता था लेकिन निर्मल राम चाह कर भी गंदगी से निकाली गई कलम को अपने बेटे को ना दे पाए। यह घटना निर्मल को सोच में डाल देती है। उसके पिता को यह कलम कहां से मिली? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक था। जिस गंदगी से सफाई कर्मी ने यह कलम निकाली थी, हो सकता है ऐसे ही किसी गंदगी को साफ करते हुए उसके पिता को भी यह कलम मिली हो। या फिर जैसी काबिलियत उसमें है, हो सकता है वह अपने पिता को कहीं पड़ा मिला हो या उसकी मां में किसी और का गर्भ हो। निर्मल के मन में चल रहे यह सारे विचार एक सुलगता प्रश्न खड़ा करते हैं। उच्च वर्ग के प्रति उसके आक्रोश की सीमा तब हद पार कर जाती है, जब अपने ही बच्चे से संडास साफ करवाते हुए वह कहता है, 'खाली गंदा करना जानता है साफ करना नहीं आता? चल साफ कर। देखें आता है या नहीं।'[5]

गांव से शहरों की ओर पलायन का सिलसिला कोई नया मसला नहीं है। गांव में बुनियादी सुविधाओं की कमी के कारण रोजी-रोटी की तलाश में ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन करना आम बात हो गई है। इन बुनियादी कमियों के साथ-साथ गांव में भेदभाव पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के चलते शोषण और उत्पीड़न से तंग आकर भी बहुत

से लोग शहरों का रुख कर लेते हैं। 'भागीरथी' की कहानी एक ऐसे ही खैरगाम से जुड़ी हुई है। हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचंद अपने उपन्यास गोदान में लगभग नौ दशक पहले गांव छोड़कर शहर जाने की समस्या को उठाया था जो आज भी एक मूलभूत सामाजिक समस्या बनी हुई है। इसे लेखक ने अपनी कहानी 'भागीरथी' के माध्यम से प्रकाश में लाया है। पहले तो लोग त्योहारों में खासकर होली, दिवाली, दशहरा आदि पर खैरगाम में एकत्रित हो जाते। लेकिन धीरे-धीरे वह आना भी ना के बराबर हो गया। खैरगाम में भागीरथी चाचा भी कहीं से भाग कर आए थे लेकिन बड़े बाबा के आश्रय देने पर वे वहीं के होकर रह गए। बड़े बाबा के गुजर जाने के बाद भागीरथी चाचा खैरगाम से विदा लेने ही वाले थे, लेकिन छोटे बाबा ने उन्हें रोक लिया और तब से वे उनके घर रह गए।

इस कहानी में लेखक ने आधुनिक युग की उपभोक्तावादी संस्कृति पर भी व्यंग्य किया है। आज के युग में मुनाफे के आगे मानवीय भावनाओं का कोई मूल्य नहीं रह गया है। कंपनी अपने लाभ के लिए हाड़ दुखा देने वाली मेहनत अपने कर्मचारियों से करवाती है। कर्मचारियों के सिर पर नौकरी छूटने की तलवार हमेशा लटकी रहती है। छुट्टी मांगने पर नौकरी से निकाल देने का डर भी उन्हें लगा रहता है। प्रस्तुत कहानी में सूत्रधार कथा नायक द्वारा भागी चा की अंतिम विदाई के लिए छुट्टी माँगने पर मैनेजर द्वारा दिया गया यह जवाब बेहद दुखद है, 'देखो समझ सकता हूँ अभी तुम भावुक हो रहे हो। भावनाओं से जिंदगी नहीं चलती। ऐसे डूब उतरा कर फैसले लोगे तो जिंदगी खराब करोगे। हमारा प्रोजेक्ट भी फाइनल स्टेज में है। क्लाइंट भी परेशान करने वाला है। फिलहाल तो मरने की भी फुर्सत नहीं। बाहर मंदी छाई हुई है। उसमें हमें काम मिला है यही बहुत है। मैनेजमेंट छाँटने के मूड में है। वैसे तो मैंने कह सुनकर अपनी टीम को हाथ लगाने से बचाए रखा है। मेरी बात मानो अभी तुम्हारा जाना ठीक नहीं। जाओगे तो काम से जा सकते हो। कोई गारंटी नहीं दे सकता आखिर मैं कब तक बचा सकता हूँ। मेरे हाथ में भी क्या है।'[6]

भारत में क्रिकेट एक ऐसा खेल है, जो देश का सबसे लोकप्रिय खेल है। यह भारत में लगभग हर जगह खेला जाता है।। भारत में क्रिकेट के प्रति लोगों की दीवानगी जगजाहिर है। अपने चाहने वाले लोगों के लिए क्रिकेटर्स किसी भगवान से कम नहीं होते। क्रिकेटर सचिन तेंदुलकर के प्रति लोगों की दीवानगी भी कुछ इसी प्रकार की है। खैरगाम के भागी चा सचिन तेंदुलकर और अमिताभ बच्चन के बहुत बड़े प्रशंसक थे। वे दोनों के इतने बड़े प्रशंसक थे कि उनकी आखिरी इच्छा पूरी करने के लिए सचिन और अमिताभ स्वयं खैरगाम पधारे थे। लेखक ने क्रिकेट के नए रूप आई. पी. एल. का भी जिक्र किया है, जो पैसे कमाने की फैक्ट्री है। 'खिलौनों की दास्तान' कहानी में क्रिकेट के इसी नए रूप और इसे जीतने के लिए हर पैंतरे का प्रयोग करने वाले बॉलीवुड सितारों और क्रिकेटरों पर तीखा व्यंग्य किया है।

लेखक बच्चों के विकास में मातृभाषा के महत्व पर जोर तो देते ही हैं, साथ ही वे बड़ों द्वारा भाषा के गलत प्रयोग पर भी चिंतित हैं। आठवें खिलौने का किस्सा 'कुछ लेना ना देना' कहानी में कई शब्दों के अर्थ को समाज में किस तरह से गंदे अर्थों में

लिया जाता है इस पर प्रकाश डाला गया है। ऐसे छिछोरे लोगों से भाषा को बचाने की आवश्यकता पर लेखक ने जोर दिया है। दसवें खिलौने का किस्सा 'चटनी' कहानी में लेखक ने एक स्त्री मन की सूक्ष्म परतों को बड़ी सतर्कता से उभारा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'नटुआ नाच' कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ समाज से जुड़ी किसी न किसी ज्वलंत समस्या को प्रकाश में लाती है। समाज में प्रचलित जातीय विसंगतियां, स्त्री की दयनीय दशा, बालकों पर भावनात्मक अत्याचार, टूटते परिवार, ग्रामीण समस्या, राजनीतिक वैमनस्य आदि समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती हैं। अतः कहा जा सकता है कि उनकी कहानी आम आदमी का दस्तावेज है, जिसमें जीवन की पकड़ गहराई से है। चूंकि लेखक आरा, भोजपुर से संबंध रखते हैं, इसलिए देखा जा सकता है कि इनके कहानियों के पात्रों के संवादों पर भोजपुरी अंचल का विशेष प्रभाव है। 'टीनी टॉट' और 'भागीरथी' कहानी में भोजपुरी लोक भाषा का अधिक प्रयोग हुआ है। 'टीनी टॉट' की फूआ के संवाद का एक उदाहरण द्दष्टव्य है- 'अबीदा? ई कइसन नाम ह रे! कहउँ मूसलमानिन त ना? हाय राम धरमो ले लेलख लइकवा के!'[7] लेखक ने व्यंग्य शैली का प्रयोग भी कई स्थानों पर किया है। टीनी टॉट कहानी में लेखक ने टुकटुक के मम्मा की अंग्रेजी मानसिकता पर व्यंग्य किया है, जिसमें मातृभाषा में गाए शीशुगीत का अंग्रेजी में रूपांतरण करके वह यह सोचती है कि 'मीनिंग चाहे जो हो कम से कम वड्र्स तो रुआब वाली भाषा के हैं-

ओलसन पोलसन / जॉनसन निकोलसन/
मोल हैव अ मोलसन' / एंड कक्कू अ कोलसन'[8]

इनकी कहानियों के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि भाषा पर इनका गहरा आधिपत्य है। ये भाषा के धनी रचनाकार हैं। उनकी भाषा शैली पर उनके विचारों की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। अतः कहा जा सकता है कि प्रेम रंजन अनिमेष ने कहानियों के कथ्य के अनुरूप पात्रानुकूल भाषा, व्यंग्यात्मक भाषा, संगीतात्मक भाषा, प्रसंगानुकूल भाषा, प्रतीकों की योजना तथा अलंकारिक भाषा का प्रयोग कर अपने भावों और विचारों को सही तरीके से अभिव्यक्त करने में सफलता प्राप्त की है। निश्चित ही इस दृष्टि से इनकी कहानियां एक अभूतपूर्व उपलब्धि हैं।

संदर्भ-

1. नटुआ नाच, नटुआ नाच, प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 11
2. नटुआ नाच, टीनी टॉट, प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 21
3. नटुआ नाच, नन्हे फरिश्ते' प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 25
4. नटुआ नाच, लिक्खी, प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 36
5. नटुआ नाच, लिक्खी प्रेम रंजन अनिमेष, पृ, 45
6. नटुआ नाच, भागीरथी प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 49
7. नटुआ नाच, टीनी टॉट, प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 17
8. नटुआ नाच, टीनी टॉट, प्रेम रंजन अनिमेष, पृ. 18

सहायक प्राध्यापक
आर. के. तलरेजा महाविद्यालय, उल्हासनगर, जि. थाना, महाराष्ट्र

सर्वसाधारण की असाधारण महागाथाएँ

- अलका अग्रवाल सिगतिया

कविताओं और कहानियों को एक साथ उतनी ही खूबी से साधना एक दुर्लभ सिद्धि है। प्रेम रंजन अनिमेष उन गिने चुने रचयिताओं में अग्रगण्य हैं, जिन्होंने सतत निश्छल और लगभग निष्काम कर्मयोग से यह महारत हासिल की है। कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित अनिमेष हिन्दी जगत के ऐसे विरले रचनाकार हैं, जिन्हें समकालीन कथा साहित्य की शीर्ष पत्रिकाओं- 'हंस' ('एक मधुर सपना', 2004) एवं 'कथादेश' ('पानी पानी, 2008) द्वारा कहानियों के लिए प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया है। उनके एक से एक कविता संग्रहों की आभा में कई बार यह सत्य कहीं नेपथ्य में या जाने अजाने ध्यान से परे चला जाता है कि हिन्दी की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिकाओं में उनकी पचास से अधिक अद्भुत अद्वितीय कहानियाँ भी प्रकाशित होकर प्रशंसित और बहुचर्चित हुई हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों से गुजरना अपने आप में एक अनुभव है। अनोखी कशिश भरी ये कहानियाँ जैसे अपनी गिरफ़्त में ले लेती हैं और बेचैन कर देती हैं भीतर से! उनकी सम्मानित कहानी 'पानी पानी' अपने रचनात्मक प्रवाह से पाठकों को आप्लावित करने वाली है! असाधारण साधारणता वाले इसके मुख्य पात्र - लाल, काली और सादी - तीनों लड़के बहुत ही गरीब परिवार के हैं। उनके पिता की आय भी बहुत कम, वह भी निरंतरता में नहीं। यह इन पिताओं और पुत्रों की अनोखी कहानी है। लाल पंडित भोला का और काली नाई कनछेदी का पुत्र है जबकि सादी अतरबाश का गोद लिया बेटा है। कनछेदी की पत्नी, यानी काली की माँ देवर के साथ घर से चली गई थी। अब कनछेदी ही काली के लिए माँ पिता दोनों है। तीनों ही दोस्त पढ़ने में कुशाग्र हैं। दसवीं कक्षा की परीक्षा अच्छे नंबरों से पास कर वे बारहवीं में नामांकन कराते हैं और पढ़ने जाते समय किराये के पैसे नहीं रहने के कारण तैर कर नदी पार करते हैं। इसके बाद प्रशासनिक सेवा, अर्थात आईएएस की परीक्षा के लिए वे राजधानी आ जाते हैं, क्योंकि उसकी समुचित तैयारी वहीं संभव है।

लेखक ने यथार्थ और कल्पना का बड़ा ही अद्भुत ताना-बाना बुना है। एक ओर जहाँ सामर्थ्यवानों के बच्चे लोकसेवा यानी यूपीएससी की तैयारी के लिए सारी सुविधाओं के बावजूद कई साल तक प्रारंभिक परीक्षा (प्रीलिम्स) भी नहीं निकाल पाते- ये तीनों मित्र तमाम परेशानियों के बावजूद अपना लक्ष्य नहीं भूलते। कितनी बार भूखे रहते हैं, पर हार नहीं मानते कभी। शहर में जहाँ अकसर आदमी भी आदमी के काम नहीं आता, उनकी चौथी दोस्त बनती है डूसी नाम की एक बिल्ली- तीनों के अंदरूनी लगाव और मनोभाव जान समझकर मदद के लिए तत्पर रहने वाली!

अपनी मेहनत की बदौलत तीनों दोस्त आईएएस की प्रारम्भिक परीक्षा में तो उत्तीर्ण हो जाते हैं, लेकिन पाठक लगातार जिज्ञासा के झूले में झूलता रहता है कि क्या वे मुख्य परीक्षा दे पायेंगे- अगर दे पायेंगे तो क्या सफल हो सकेंगे? उधर गाँव में बाढ़ आ जाती है। पूरा गाँव जलमग्न हो जाता है। बहुत समय से उनके पिता और घर परिवार का कोई समाचार नहीं मिलता। लाल मकान मालकिन के बंद कमरे को खोल कर रुपये भी चुराता

है, ताकि गाँव जाकर पता कर सके, पर नहीं जा पाता। वह रुपये वापस रख देता है। डूसी भी एक बार कहीं से मोबाइल फोन उठाकर ले आती है। दोस्त उसे समझाते हैं कि जाकर वापस रख आये। उसी क्रम में वह बहुत मार भी खाती है।

एक बार तीनों मित्र बाढ़ पीड़ितों के लिए कुछ राशि जमा करते हैं और खुद दाने-दाने को मोहताज होने के बाद भी सम्बद्ध संस्था की मदद करते हैं। पाठक सोचता है कि वे भी तो प्रभावित हुए हैं, क्योंकि उसी गाँव के हैं। फिर अनैतिक कहाँ होता अगर जुटाये गये पैसे खुद रख लेते! पर वे दिल के भले हैं और मन के सच्चे। मुख्य परीक्षा तक किसी तरह कम से कम में गुजारा करना उनका उद्देश्य होता है।

एक बार तीनों किसी शादी समारोह में बिन बुलाये जाते हैं, मगर पहचान लिये जाते हैं। तब काली अपने दोनों दोस्तों की मदद करता है भाग जाने में। लोग काली को पकड़कर मारते पीटते हैं। ऐसे में पार्लरवाली उसे पानी पिलाती है- माँ की तरह स्नेह देती हुई। उधर दोनों दोस्त इंतजार कर रहे हैं कि काली आयेगा लेकिन पैसेवालों की अमानवीयता गरीब भूखे प्रतिभाशाली बच्चे के साथ हैवानियत करती है। मरते-मरते भी वह सोचता है- काश, अपने दोस्तों को बता पाता कि चिट्ठी उसने लिखी थी, गाँव से नहीं आयी थी। पर दम टूटने लगता है और आखिरी साँस लेता है वह। पाठकों की आँखें नम हो जाती हैं और फिर सादी की करुण काव्यात्मकता अथाह व्यथा को कुछ इस तरह शब्द देती हैः

इस दुनिया में तो हम आये/ इसी तरह बस बिना बुलाये/बिन दानों पर नाम लिखाये...!

कहानी मन को व्यग्र और विचलित कर देती है- इस सोच के साथ कि समाज में अमीर-गरीब के बीच की खाई कितनी त्रासद है! लेखक ने पानी से जुड़ी अपनी कहानियों के संचयन का नाम भी इसी शीर्षकथा से रखा है- 'पानी पानी', जिसके आगे लिखा हैः पानी की कहानियाँ...पानी-सी कहानियाँ'! सचमुच तरल विकलता की कहानियाँ हैं ये- आँखों के पानी की, और आँखों में पानी भर देने वाली भी! 'कथादेश' में प्रकाशित पुरस्कृत यह कहानी 'पानी पानी' वाकई उस सराहना की हकदार है जो उसे प्राप्त हुई है।

प्रेम रंजन अनिमेष की विशेषता यह है कि उनकी कहानियों में विषय वैविध्य है और निर्वाह भी वे बखूबी करते हैं। पात्रों को वे कुम्हार की तरह गढ़ते हैं, चित्रकार की मानिन्द रँगते हैं- सच्चा रचयिता बनकर। विषम परिस्थितियों के बावजूद तीनों दोस्त हालात पर रोते नहीं रहते- जीने की नयी राह तलाशते हैं हर वक़्त। निराशावादी परिस्थितियों से मुकाबला करती यह अदम्य जिजीविषा की कहानी है। लेखक का कवि रूप भी कहानियों के बीच में अपनी मौजूदगी दर्ज.कराता रहता है। यह एक सार्थक और आवश्यक उपस्थिति है, जो कहानी और उसके कहानीपन को आगे बढ़ाती है। यहाँ कवि का होना कहानी की माँग है।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में व्यंग्य का तेवर भी है - एक महीन व्यंजना की तरह! यहाँ करुणाजनक विसंगतियाँ चेतना को झकझोरती झिंझोड़ती हैं। ऐसी कहानियाँ यशपाल की 'पर्दा', प्रेमचंद की 'सद्गति' सरीखी कालजयी कहानियों की याद दिलाती हैं, जो साहित्य के आकाश में ध्रुवतारे की तरह देदीप्यमान हैं!

'जलकलश' कहानी सामाजिक भेदभाव और नौकरशाहों की विसंगतियों की बेधक पड़ताल करती है- 'रामराज्य' के नाम पर पनपते 'रामभरोसे राज' को उद्घाटित करती हुई। जिन इलाकों में पानी की कमी होती है, पानी की कालाबाजारी करने वाले गैंग उधर फलते फूलते हैं। कहानी के दलित नायक के पिता की मृत्यु प्यास के कारण होती है। माँ भी इसी दुख में दम तोड़ देती है। नायक एक जलकलश बनाना अपने जीवन का उद्देश्य बना लेता है पर दलित होने के कारण और भी अधिक परेशानियाँ आती हैं। अगड़ी जाति का एक अधिकारी उसकी सहायता तो करता है, पर उसके पीछे भी है जलकलश पर अपना नाम लिखवाने की चाह। मंत्री भी राजनीतिक लाभ के लिए दलित द्वारा बनवाये जलकलश का उद्घाटन करते हैं। यह कहानी व्यवस्था के विद्रूप की परतें प्याज के छिलकों की मानिंद खोलती चलती है। निश्चय ही यह व्यंजनाओं के कई संस्तरों वाली एक उत्कृष्ट कहानी है।

प्रेम रंजन अनिमेष के कथा संसार के विशद वैविध्य और वितान को सामने रखने के लिए 'पानी पानी' के अलावा कुछ और कहानियों की चर्चा लाज़िमी है। 'नटुआ नाच' उनके एक अन्य कहानी संचयन की शीर्षक-कथा है। सबसे पहले तो कहानी का शीर्षक ही जिज्ञासा से भर देता है। फिर जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, उसकी पकड़ और मजबूत होती जाती है। पात्रों के जीवन पृष्ठों के साथ समय, समाज और हालात की गिरहें खुलती रहती हैं और सुबह की धूप में पंखुरियों पर झलकती ओस की तरह उनका सच प्रकाशित होता जाता है। भावी, भोला और भावुक- एक सुंदर और निराला रिश्ता तीनों का! कहानी की नायिका है भावी। वह माता पिता का बोझ कम करने के लिए छोटी बहन का रिश्ता कराना अपना दायित्व समझती है। फिर जब दिल में सवाल खड़ा होता है कि क्या भावुक सचमुच 'पुरुष' है, तब वह एक ऐसा कदम उठाने का फैसला करती है, जिससे पाठक चौंक उठता है, चकित रह जाता है।

लेखक की कल्पना, यथार्थ के साथ लगातार कहानी को रुचिकर बनाती चलती है। पाठक सोचता रहता है कि अब क्या होगा! फिर भावुक के घरवाले कुछ ऐसी शर्तें रख देते हैं, जिन्हें पूरा कर पाना भावी के पिता के लिए सम्भव नहीं है। उनमें एक है- नटुआ नाच। भावी का सारा प्रयास व्यर्थ हो जाता है। उसके पिता परेशान होकर नींद की गोली खा लेते हैं। देखते- देखते सब कुछ बिखर जाता है, बदले हुए परिदृश्य के साथ।

कहानी का अंत स्त्री सशक्तिकरण की अनोखी मिसाल पेश करता है- जब भावी की बहन छोटी ब्याह न करने का निर्णय सुना देती है। यह नारीवाद का परचम लहराने जैसा कतई नहीं, बल्कि दुख के अतिरेक से निकला, साहसी निर्णय है। अनिमेष ने भाषा और शैली को बखूबी साधते हुए कथा का बहुत ही सुंदर निर्वाह किया है। पात्र के अनुरूप भाषा है और शब्द प्रयोग सधा हुआ। इसकी एक बानगी काबिलेगौर है-'अरे बोलने बतियाने में तो तुम्हीं हो बढ़िया! तुम्हारी बात कोई उठायेगा भी नहीं।' और यह भी-'तुम ही तनिक टोह-टटोल कर देखो। तुम्हारा तो आऊर मान आदर करता है ऊ भवुकवा! फिर हम तो हइये हैं। सँभालेंगे आगे।'

कहानी में भावुकता के माध्यम से कहानीकार ने एक आदर्श चरित्र गढ़ा है। कथा का उत्कर्ष एक दुविधापूर्ण स्थिति से दो चार कराता है- यही कि क्या भावी की कोशिश

और भावुक की भलमनसाहत हार गयी छोटी के विवाह न करने के निर्णय से? पाठक कशमकश में फँस जाता है कि क्या सही है या फिर क्या होना चाहिए। कहानी की सबसे बड़ी सलाहियत है कि वह पाठक के मन में कुछ प्रश्न जगाये, उसके भीतर भारी उथल पुथल मचाये। और यह भी कि जहाँ कहानी पूरी होती हो, वहाँ से वह फिर जुड़ सके और सच के साथ बढ़ता रहे आगे! यह प्रेम रंजन अनिमेष की तकरीबन सारी कहानियों में है। वे उन्हें किसी 'डेड एंड' पर खत्म नहीं करते।

अनिमेष की 'टिनी टॉट' बाल मनोविज्ञान की एक बहुत ही बेहतरीन कहानी है जो पढ़ने सुनने वालों के साथ चलती है- उनके मन मानस पर चित्र उकेरती हुई। एक और महत्वपूर्ण विशेषता है प्रेम रंजन अनिमेष की कि वे बहुत ही खूबसूरती से स्थानीय 'लोकेल' चित्रित करते हैं और पात्रों को भी इस तरह जीते हैं कि हर पात्र का यथार्थ उनका यथार्थ बन जाता है। जैसे धूमिल जब 'मोचीराम' लिखते हैं, तब वहाँ कवि धूमिल कहीं नहीं, मोचीराम ही होता है। वैसे ही प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों में लेखक मानो पात्र में ही समाहित हो जाता है।

कहानी पढ़ते-सुनते जान पड़ता है, जैसे कहानीकार उस कहानी को कह नहीं रहा, बल्कि जी रहा है। ईमानदारी से कहूँ, शायद किसी महिला ने भी आज तक प्री स्कूल की ऐसी कहानी नहीं लिखी होगी। ऐसा लगता है मानो पल-पल लेखक उस टिनी टॉट स्कूल में हाज़िर है। कुछ संदर्भों में इसे पढ़ते हुए सूर्यबाला जी की एक कहानी याद आती है- 'माय नेम इज ताता'। मध्यवर्ग किस तरह जो है नहीं, उसे जीने की कोशिश में अपने मासूम बच्चों के साथ अनजाने में क्या क्या कर रहा है, यह कितनी कहानियाँ बताती हैं? टुकटुक हो या ताता, दिखावे की बेलगाम होड़ के मोहरे बनाकर अंधाधुनिक सभ्यता की बिसात पर बैठा दिये गये हैं। लगातार चल रहा है यह खेल, जिसमें हार पहले से ही तय होती है।

नन्हा बच्चा, स्कूल में डर के माहौल में रहता है। मध्यवर्ग में 'स्टेटस मेंटेन' करने के लिए पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हैं। इस आपाधापी में पारिवारिक मूल्य रेत की तरह मुट्ठी से फिसलते जाते हैं। टुकटुक की 'मम्मा' प्रयास कर अंग्रेजी सीखती है। इस बीच टुकटुक का जन्म होता है तो बड़की बुआ का ध्यान आता है। लेखक ने बड़की बुआ के रूप में एक अप्रतिम चरित्र रचा है। नन्हे बच्चे की मालिश के लिए जो सावधानियाँ बरतनी होती हैं, पुरुष होकर भी लेखक ने बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। लेखक की कहानियों में व्यंग्य भी स्वाभाविक रूप से आता है।

सामाजिक विसंगतियाँ और संस्कृतिगत विशृंखलतायें जीवन को असहज बना रही हैं। अनिमेष बखूबी उन्हें उजागर करते हैं। बुआ जो बोलती हैं उस बोली को पिछड़ेपन और बीमारूपन से जोड़ा जाता है। वे बारजे में बच्चे को खिलाते-पिलाते हुए जो बोलतीं-बतियातीं, लोग उसका उपहास करते। वे 'लँगटा बिलँगटा...' लोककवित्त सुनाते बहलाते उसे खिलातीं। टुकटुक के मम्मी- पापा जो फिल्मी गीत सुनाते, उन्हें भी बुआ अपनी बोली में ढाल लेतीं। यहाँ लेखक का 'सेंस ऑफ ह्यूमर' काबिले तारीफ है। बुआ गा रही हैं : आवऽ कि बढ़ियाँ से तहरा कर लीं प्यार / कि उतर जाये तोहर सगरे बोखार...। दरअसल यह फि ल्म बाजार के इस गीत का कायान्तरण है : आओ अच्छी

तरह से कर लो प्यार / कि निकल जाये कुछ दिल का बुखार।

आखिरकार दूसरों के सामने अपनी शान बनाये रखने के लिए, बल्कि कहें कि कृत्रिम रिश्तों को बचाये रखने के लिए टुकटुक के मम्मा-पापा उसे बुआ के स्नेह से वंचित कर देते हैं। उन्हें वापस गाँव भेज दिया जाता है, और फिर 'डोमेस्टिक हेल्पर' के लिए मशक्कत चालू हो जाती है। यहाँ अनिमेष शहरों में बसी न्यूक्लिअर फेमिली की परेशानी को बहुत रोचक तरीके से, मगर संजीदगी के साथ सामने रखते हैं। कहानीकार की कलम में करुणा और हास्य दोनों का संतुलन है। गिने चुने कलमकारों में एक साथ हँसी और आँसू को बड़ी संवेदना के साथ सहेजने का ऐसा माद्दा है, और सत्सर्जक प्रेम रंजन अनिमेष उनमें अग्रगण्य हैं।

कहानी का अंत करुणामय है, जहाँ नन्हा मासूम टुकटुक इस झूठी बनावटी शान की बलि चढ़ता दिखता है। वह अपनी उम्र से बहुत पहले ही बड़ा हो जाता है। हमें याद है, हम अपने बचपन या किशोरावस्था में टेंशन, एंग्जाइटी जैसे शब्दों से परिचित भी नहीं थे। पर आज के अधिकतर नन्हें-मुन्ने डर, अंदेशे और घबराहट के माहौल में जी रहे हैं। कुछ ऐसा ही टुकटुक के साथ होता है। प्री स्कूल की क्लास में वह 'सूसू' रोके रखता है और अंततः बेहोश होकर गिर जाता है। यह कहानी आज की सतही और दिखावटी शिक्षा व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करती है। आज जरूरत है ऐसे संस्थानों की, जो रटी-रटायी नर्सरी राइम्स की जगह उनके बचपन को जीना सिखायें- अधिक से अधिक फीस लेकर कुछ सुविधायें देने के बदले बाल मन को समझें, उनसे पूरी संवेदना के साथ जुड़ें।

अपनी बात रखने के लिए प्रेम रंजन बहुत से रचनात्मक उपकरणों का अत्यन्त सहज स्वाभाविक तरीके से सार्थक प्रयोग करते हैं। एक बच्चे की बोली, बुआ की आंचलिक भाषा, टीचर की विदेशी भंगिमा वाली धाराप्रवाह अंग्रेजी- सबकुछ बिलकुल सटीक! निश्चय ही 'टिनी टॉट' बालपन और बाल-मन से जुड़े साहित्य सृजन के क्षेत्र में मील का पत्थर है।

बच्चों से जुड़ी प्रेम रंजन अनिमेष की एक अन्य कहानी 'नन्हें फरिश्ते' साहित्य और कला के क्षेत्र में 'इंटेलेक्चुअल प्रापर्टी' या बौद्धिक सम्पदा के दोहन पर गम्भीर कटाक्ष करती है। अनिमेष जाने माने कवि और गीतकार भी हैं। इस कहानी में उनका यह रूप सामने आता है- एक सबल सशक्त पक्ष की तरह। कहानी के प्रमुख पात्र हैं- छोटी और मुन्नी, जो गरीब और अनाथ होने के बावजूद अपनी प्रतिभा के बल पर पत्थर के टुकड़े बजा बजाकर अपने मन के गीत रचते रहते हैं। विषम परिस्थिति में रहीम चाचा उन्हें सहारा देते हैं और कामभरोसे पान वाला और पत्रकार पेनजी बचाते हैं उन्हें शोषण से।

यह कहानी इस सच को उजागर करती है कि जहाँ एक ओर संदिग्ध चरित्र वाले शोषक और मठाधीश हैं; फिल्म, साहित्य और कला की दुनिया में भी, जिनके द्वारा दूसरों की रचनाओं को अपना नाम दे देना बहुत आम है, वहीं कुछ दिल के भले और औरों की मदद करने वाले लोग भी हैं कहीं न कहीं। प्रवाहपूर्ण व प्रभावपूर्ण भाषा शिल्प में आगे बढ़ती हुई यह कथा बड़ी ही सहजता और रोचकता के साथ, आज के दौर में किसी भी कीमत पर औरों को रोकने, हक से बेदखल करने और अपने को आगे बढ़ाने

की प्रवृत्ति को बेनकाब करती है।

अनिमेष की 'लिक्खी' कहानी दलित विमर्श की एक सशक्त रचना माना जायेगी। समानता के तमाम दावों और नारों के बावजूद अब भी समाज में विद्यमान वंचित और सुविधासम्पन्न के बीच की खाई को रेखांकित करती है यह कहानी। इसके नायक निर्मल राम के मन मस्तिष्क में बचपन की कटु यादों ने डेरा जमा रखा है। अपने सफाईकर्मी पिता चाम राम को उन्होंने लोगों का मैला साफ करते देखा हुआ है। हॉस्टल में भी शुरूआत के दिनों में सहपाठी उनके दलित होने का मजाक उड़ाते हैं, लेकिन पढ़ाई में अव्वल रहने के कारण स्थिति थोड़ी बहुत बदलती है। निर्मल राम का दृढ़ विश्वास है कि उनकी 'लिक्खी' या निर्झरिणी, यानी वह कलम बहुत सौभाग्यशाली है उनके लिए, जो बचपन में उनके पिता ने उन्हें दी थी। अब वे ज्ञान के पुण्यपथ पर नन्हें पग धरने वाले अपने बेटे को कलम की विरासत सौंपना चाहते हैं लेकिन दुर्योग से वह छिटक कर कमोड में गिर जाती है और एक सफाईकर्मी के हाथ लगती है। फिर बचपन की स्मृतियाँ निर्मल राम को परेशान करने लगती हैं- कहीं वह कलम उनके पिता को भी गंदगी में ही तो नहीं मिली थी?

यह मानव मन और सामाजिक स्थिति का सघन द्वंद्व है। कभी यह इतना हावी हो जाता है कि व्यक्ति खुद अपनी हँसती बोलती दुनिया को दुखी और तबाह कर लेता है। एक ओर मुख्य पात्र सोचता है कि क्यों कई लोग दूसरों की गंदगी साफ करते हैं, दूसरी तरफ वह खुद अपने बेटे से कमोड साफ करवाता है। लेखक किसी आदर्श या निष्कर्ष पर कहानी को नहीं लाता, बल्कि उसी दुधारी द्वंद्व की स्थिति में ही कथा का समाहार होता है।

प्रेम रंजन अनिमेष दुर्लभ प्रतिभा के धनी रचनाकार कलाकार हैं, और उनकी यह प्रतिभा हर जगह दृष्टिगोचर होती है। वे ऐसे बहुआयामी बहुमुखी सर्जकों की परंपरा को आगे बढ़ाते हैं, जो वैविध्य व उत्कृष्टता एक साथ सुनिश्चित करते हुए विभिन्न विधाओं में सतत और समान रूप से सक्रिय हैं। विश्वास है, उनकी उर्वर लेखनी इसी तरह नवोन्मेष और नवोत्कर्ष के साथ नयी ऊँचाइयाँ और नये शिखर चूमती रहेगी - साहित्य कला के परिदृश्य पर नये नवेले चित्र अंकित करते हुए!

-मोबा. 98695 55194

लोक से जुड़ी मार्मिक कहानियाँ

-वंदना बाजपेयी

मॉल कल्चर के साथ सरपट दौड़ती दुनिया में बहुत कुछ हाशिये पर छूटने लगा है- हमारा लोक, अपनी संस्कृति, परम्पराएँ और सुख-दुख! आभिजात्य संस्कृति ने कहानियों को दुरूह ही नहीं बनाया, बल्कि शिल्प और अतिबौद्धिकता के भार तले वे दबती भी रहीं। अपनी मिट्टी से कटा साहित्य न तो समकाल को पूरी तरह दर्ज कर पाता है और न पाठकों को संतुष्ट ही। इस परिस्थिति में कुछ लेखकों ने मजबूती के साथ अपनी जमीन से जुड़े रहने का दायित्व सँभाला हुआ है' प्रेम रंजन अनिमेष उनमें अग्रगण्य हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं और कथा साहित्य, दोनों के ही माध्यम से पाठकों के हृदय में अपनी पहचान बनायी है। वे आसपास के परिवेश, वहाँ की ज़िंदगी और घटनाओं का ताना- बाना बुनते हुए बड़े कायदे से रचनाकर्म को आगे बढ़ाते हैं।

अनिमेष की कहानियों में लोक और जीवन की सोंधी महक है। लोक भाषा का प्रयोग रचना की सुंदरता और जीवंतता को कई गुण बढ़ा देता है। ज्यादातर कहानियों की धुरी में स्त्री उसी तरह से है, जैसे घर में रसोई - जिसके दाय से तो सब अवगत हैं, पर चूल्हे की आग में धधकती उसकी पीड़ा पर किसी का ध्यान नहीं जाता। अनिमेष उस पीड़ा को न केवल महसूस करते हैं, अपितु उसे गहनता से उकेरते हैं- इस तरह कि पाठकों को भी उस दर्द का शिद्दत से एहसास हो। इधर लंबी कहानियों का दौर आया है और उनकी कहानियाँ भी इसी परंपरा में आती हैं। वे अचानक किसी एक बिन्दु पर समाप्त नहीं हो जातीं, बल्कि हौले-हौले तय दिशा में बढ़ती हुई पाठकों के मन पर गहरी छाप छोड़ती हैं। कुल मिलाकर अनिमेष की कहानियाँ संप्रेषणीयता, सुस्पष्टता, संवेदना, सदाशयता और भावनात्मकता का उद्देश्यपूर्ण और मानीखेज कोलाज हैं। कथा के साथ कई अंतर्कथाएँ समेटे उनकी अनेक कहानियाँ औपन्यासिक तत्वों को समाहित किये हुए हैं।

कवि के साथ कथाकार के तौर पर भी हिन्दी साहित्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले प्रेम रंजन अनिमेष ने जीवन के बहुस्तरीय बहुरंगी आयामों को समेटने वाली कई कहानियों की रचना की हैं। उनके कथा-साहित्य के अक्षय पात्र में से स्त्री जीवन को केन्द्र में रखकर रची गयी तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण कहानियाँ- 'ए आजी', 'दी' और 'माई रे' प्रतिदर्श के रूप में देखी जा सकती हैं, जो हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

'ए आजी' कहानी जीवन के विविध रंग समेटे हुए है- नटखट पोते और दादी के माध्यम से बाल मनोविज्ञान के बड़े फलक पर। आज जबकि साहित्य और फिल्मों से भी दादा-दादी गायब होते जा रहे हैं, यह कहानी दादी और पोते के बीच के मधुर रिश्ते को सहेजती है- पीढ़ियों के बीच समन्वय के सूत्र तलाशती हुई। आधुनिक परिवेश में भी संयुक्त परिवार की महत्ता स्थापित करने वाली इस कहानी को पढ़ते हुए सहसा प्रेमचंद की कथा 'ईदगाह' याद आ जाती है।

अनिमेष की यह कहानी एकरेखीय नहीं है, बल्कि इसमें कई उतार चढ़ाव आते हैं- घटनाओं के साथ भावों और संवेदनाओं के। शुरुआत मौज- मस्ती के साथ होती

है, फिर धीरे-धीरे यह गाथा गंभीर होती जाती है। कहानी के केंद्र में बल्लू और उसकी दादी हैं। दादी को मोतियाबिंद की वजह से दिखायी नहीं देता। गाँव का छोटा सा घर है और गुजारे के लिए माता-पिता, दोनों काम पर जाते हैं। दादी के साथ ही बल्लू का समय गुजरता है। बल्लू दादी से प्यार तो बहुत करता है, पर शरारत की वजह से उन्हें सताता भी उतना ही है। इस तरह पोते और दादी के बीच दोस्ती की अनोखी दास्तान भी है यह।

बल्लू की बालसुलभ हरकतों से कहानी की शुरुआत होती है। दादी के नहाते समय बल्लू पूरा वजन डालकर चापाकल चलाता है। छकाने के लिए वह अपनी कमीज पर गिरी चिड़िया की बीट नहा चुकी दादी के सिर पर गिरा देता है, जिससे उन्हें फिर से स्नान करना पड़ता है। वह कभी पूजा के समय हनुमान जी की जगह सलमान खान की तसवीर लगा देता है। बल्लू हर बार शरारत कर भाग जाता है और दिखायी न देने की वजह से दादी उसे पकड़ भी नहीं पातीं। ऐसा नहीं है कि दादी की आँखों का इलाज करवाने की कोशिश नहीं की गयी। गाँव में मोतियाबिन्द के मुफ़्त कैंप में बल्लू के माता पिता उन्हें ले जाते हैं, पर वहाँ कहीं बानर की आँख न लगा दी जाये - इस डर से दादी भाग आती हैं। धीरे-धीरे घर वाले और दादी, दोनों इस परिस्थिति को लेकर अभ्यस्त हो जाते हैं। 'डॉक्टर बानर की आँख लगा देगा'- दादी के इस अंदेशे के जरिये हमारे गाँवों में स्वास्थ्य सुविधाओं में कमी व इलाज के प्रति दुष्प्रचार को रेखांकित कर अनिमेष अपनी गहन दृष्टि का परिचय देते हैं।

बल्लू का ध्यान दादी की नेत्रहीनता पर तब जाता है जब उसे महसूस होता है कि उसके दोस्तों की दादियों की तरह उसकी दादी उसे पकड़ने के लिए उसके पीछे नहीं आ सकतीं। संयोगवश फिर से फ्री कैंप लगता है और नन्हा बल्लू दादी का मनोविज्ञान समझते हुए उन्हें चमत्कारी बाबा को दिखाने के बहाने वहाँ ले जाता है तथा अनुनय विनय कर आँखों का ऑपरेशन करवाने में सफल हो जाता है। यहाँ पर बल्लू एक समझदार और ज़िम्मेदार बालक की भूमिका में नजर आता है। दादी की आँखों की रोशनी आ जाती है, मगर बल्लू की मुसीबत बढ़ जाती है। अब दादी उसकी शरारत आसानी से पकड़ लेती हैं। इससे परेशान बल्लू उनके चश्मे का एक शीशा निकाल कर छुपा देता है और दादी को बताता है कि बंदर ले गया। दादी चश्मे के एक शीशे से देखकर काम चलाती रहती हैं। फिर बल्लू को एक नयी योजना बनानी पड़ती है, जिसमें वो चश्मे को ऐसी जगह रख देता है कि वह सुबह दादी के ही पैर के नीचे आ जाये। चश्मा टूटने से निराश हुई दादी को देखकर बल्लू अपना छिपाया शीशा देने की बात करता है, पर दादी नहीं लेतीं। उन्हें लगता है कि इतनी उम्र तक बिना देखे ही काम चलाया है तो अब आगे भी चला लेंगी!

दादी की अत्यधिक निराशा देखकर बल्लू का दिल बोझिल हो जाता है। तभी उसे माँ के साथ ननिहाल जाना पड़ता है। वहीं उसे दादी के पैर टूट जाने की खबर मिलती है। माँ उसे वहीं छोड़ कर घर लौट जाती हैं। फिर बल्लू अपराध बोध से भर जाता है और उसे लगता है कि नहीं दिखने के कारण ही दादी गिरी हैं। वह नये चश्मे की क़ीमत पूछता है, पर उसके लिए जरूरी पैसों का दसवाँ हिस्सा भी उसके पास नहीं है। फिर

वह मेहनत का रास्ता अपनाता है और नाना की दुकान पर मदद करने लगता है। पैसे जुटाने के लिए वह चमड़े की कतरनों से छोटी सी चप्पल बनाता है, जिसे एक बच्चा खरीद लेता है। उत्साहित होकर बल्लू हुनर और कलाकारी से भरी ऐसी और नन्ही प्यारी सौगातें बनाता है जो खूब सराही जाती हैं और हाथों हाथ बिकती हैं। बल्लू आखिरकार चश्मा खरीद कर दादी के पास लौट आता है।

कहानी की इस मुख्य कथा के अंदर कई उपकथाएँ चलती हैं- जैसे बल्लू के माता-पिता की प्रेम कहानी और बड़ी बहन का पिता की मार की वजह से निधन। दुकानदारी बढ़ाने के लिए चोरी तक का हथकंडा अपनाना पड़ता है, जो कहानी में हलके-फुलके मनोरंजन का रस घोलता है। बल्लू की बड़ी बहन की मौत हालाँकि कहानी का बहुत छोटा सा हिस्सा है, लेकिन पाठक उसके असर से मुक्त नहीं हो पाता। पिटाई से बच्ची की मृत्यु और इस अमानवीय घटना को लेकर गाँव घर की संवेदनहीनता गम्भीर प्रश्न खड़े करती है। गाँव के दृश्यों का वर्णन करते हुए अनिमेष जिस बारीक नजर से उसे रेशा-रेशा प्रस्तुत करते हैं, उससे स्पष्ट होता है कि उन्हें ग्रामीण परिवेश का गहरा अनुभव है। इसीलिए गाँव और लोक जीवन पर लिखी जाने वाली 'क्राफ़्टेड कहानियों' से बिलकुल अलग है यह, जिनमें ड्रॉइंग रूम में बैठ कर लेखक गाँव घर की कल्पना को मूर्त रूप देने की कृत्रिम कोशिश करते रहते हैं।

कहानी मुख्य रूप से दादी के साथ बल्लू की जीवन यात्रा का क्रमिक विकास दर्शाती है, जो केवल बाह्य न होकर आंतरिक भी है। नटखटपन, मस्ती, अपराधबोध, कर्तव्यबोध और कार्यशीलता- ये सारे इस यात्रा के पड़ाव हैं। बल्लू का चरित्र उत्तरोत्तर जिस तरीके से बड़ा होता है, उससे पता चलता है कि लेखक की बाल मनोविज्ञान पर बहुत गहरी पकड़ है। बच्चे के मानस पर परिवर्तन के इन भावों को उकेरना सहज नहीं है, लेकिन अनिमेष इस मामले में सफल रहे हैं। कहानी का आखिरी हिस्सा प्रतीकात्मक होते हुए भी पाठकों को बाँधे रखता है। इसे पढ़ते हुए पाठक प्रेमचंद की 'ईदगाह' के हामिद की तरह दादी की आँखों में खुशी के आँसू देखना चाहते हैं, पर लेखक अंत को खुला छोड़ देता है। ऐसा करते हुए वह कहानी को दोहराव से तो बचाता ही है, पाठकों को भी अपनी कल्पना से खाली स्थान भरने की पूरी छूट देता है।

स्त्री पात्रों की बात करें तो बल्लू की माँ, दादी और बहन, तीन ही मुख्य हैं, जिनके जरिये जीवन की विभिन्न परतें उद्घाटित होती हैं। दादी को दिखाई नहीं देता, लेकिन उन्होंने समझौता कर लिया है। माँ घर और बाहर के काम सँभाले रहती है। बड़ी बहन की उम्र अधिक नहीं होने के बावजूद उस पर छोटे भाई की देखभाल का भार है। बच्ची की मृत्यु पर स्त्री अपने पति को दोषी नहीं मानती...वह दुखी होती है, पर क्रोध को दबा लेती है अपने भीतर। इनके साथ चलता रहता है कभी खत्म नहीं होने वाला स्त्री संघर्ष!

'दी' कहानी, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, भाई-बहन की कहानी है। भाई अपनी दी से कहता है कि 'तुम इतना अत्याचार कैसे सहती हो?' उसके बाद दीदी की जीवन यात्रा के साथ-साथ स्त्री जीवन की विवशता की कथा खुलती जाती है। कहानी मुख्य रूप से 'दी' पर केंद्रित है, पर दूसरी बहन भी है रचना में रची बसी। दोनों ही बहनें जहाँ

ब्याही गयी हैं, वहाँ उन पर अत्याचार होता है। माता-पिता लड़कों के दोषों के बारे में जानते थे, फिर भी ब्याह कर दिया, क्योंकि उनके पास दहेज के पैसे नहीं थे। जीजा का व्यवहार बाकी लोगों के लिए अच्छा है, पर वह 'दी' के साथ मारपीट करता है। यहाँ कहानी पितृसत्ता के उस विद्रूप चेहरे को दिखाती है, जहाँ पुरुष अपनी पत्नी को जागीर समझता है। दरअसल यह पितृसत्ता ही है जो माँ में देवी देखती है और पत्नी में संगिनी सहचरी के बदले अनुचरी। माँ के हाथों थोड़ी-सी सत्ता देकर वह स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण करवाती है।

माँ पर होते अत्याचार को देखकर बेटा उसके जीवन को सुखमय बनाना चाहता है, पर अपनी पत्नी का जीवन खाली छोड़ देता है और उस पर ध्यान नहीं देता। यह सिलसिला चलता रहता है और सिद्ध करना मुश्किल हो जाता है कि जो अच्छा बेटा है, अच्छा भाई है, क्या वह अच्छा पति नहीं? कई बार जानबूझ कर स्त्रियाँ अपना दर्द छिपाती हैं ताकि मायके वालों के जीवन पर उनके दुखों की छाया भी न पड़े। 'दी' ने भी ऐसी कोशिश की, पर संयोगवश बात खुल गयी। भाई अपनी बहन को उस ज़िंदगी से निकालने की पूरी कोशिश करता है, लेकिन बहन हर बार मना कर देती है। अंततः बच्चों की शिक्षा के नाम पर बहन मान जाती है, लेकिन फिर पति की बीमारी की खबर सुन कर वापस चली जाती है।

अंतर्कथा के रूप में भाई के जीवन का दूसरा पक्ष भी सामने आता है। वह अपनी बहन की खुशियों के लिए शादी नहीं करने का फैसला लेता है। फिर उसकी प्रेमिका भी शादी नहीं कर इस निर्णय को स्वीकार करती है। कहानी स्त्री जीवन के कई बिंदुओं पर प्रश्न उठाती है- जैसे भार समझ कर किया गया विवाह, पति द्वारा मारपीट, स्कूल में अभिभावक के रूप में स्त्री द्वारा भाई का नाम लिखवाने में समस्या, पुरुष द्वारा अपनी बहन के हित में प्रेयसी से बिना मशविरा किये विवाह न करने का फैसला, कुँवारे छोटे भाई के साथ रह रही बहन के आपसी रिश्तों पर लांछन, पति के बुरे समय में उसके पास लौटने का फैसला...। इनमें से कुछ भी ऐसा नहीं है जो हम आस-पास के समाज में नहीं देखते हैं। इसी में छिपा है स्त्री जीवन का सारा दर्द। स्त्री की करुणा और ममता ही नहीं, भाई के जीवन का बिखराव और सामाजिक उलाहना से उपजा दर्द- सब मिलकर अंततः उसे शोषक पति के पास लौटने को विवश करते हैं। यह कहानी पितृसत्तात्मक व्यवस्था के तहत दबते कुचलते और उबरने की कोशिश करते स्त्री जीवन के रचनात्मक विवेचन की क्षमता को प्रमाणित करती है।

'माई रे' औपन्यासिक कलेवर की महागाथा हैः एक उपन्यासिका या लघु उपन्यास! इसमें कई पात्र हैं और कलेवर इतना विशाल कि उसकी खूबियों को कुछ पंक्तियों में समेटना मुश्किल है। एक के बाद एक घटनाओं को पिरोने वाली यह अनन्य रचना मुख्य रूप से माँ और बेटे के अनुपम रिश्ते को रेखांकित करती है। कहते हैं कि जब किसी की मृत्यु होने वाली होती है तब उसकी आँखों के सामने उसका सारा जीवन किसी चलचित्र सा घूमता है। माई, यानी शिबू की अंतिम साँसे चल रही हैं, और स्लाइड्स की तरह चल रही है उसकी अतीत-यात्रा - बालपन से शुरू हुई! देश का विभाजन, हिन्दू मुस्लिम के बीच दरार का पड़ना, बच्चे के स्कूल के दाखिले में आने वाली मुश्किल और रबू

का नाम प्रभु लिखा देना - इनसे सम्बद्ध विडंबनाओं, विरोधाभासों एवं विसंगतियों को संकेतित व रेखांकित करती घटनाओं के साथ आगे बढ़ती हुई इस महागाथा के बीच-बीच में कई अंतर्कथाएँ चलती रहती हैं।

अबू के लकवाग्रस्त होने के बाद कहानी यू टर्न लेती है और वहीं से माई, यानी शिबू एक सशक्त महिला के रूप में उभर कर आती है। घर की आजीविका का प्रबंध करने वाली एक माँ के रूप में वह सुरों को साधने के साथ बेटे की देखभाल भी करती है। गायत्री मंत्र साधना से वह अनंत से जुड़ने लगती है और उसे पूवार्भास भी होने लगता है। स्कूल द्वारा निकाले जाने पर वह प्रभु की औपचारिक शिक्षा के ऊपर कला और रचनात्मकता को महत्व देती है और उसे जीवन और आजीविका, दोनों के लिए ध्यान और संगीत सिखाती है। जैसे-तैसे जीवन पटरी पर आ रहा होता है कि वह कैंसर से पीड़ित हो जाती है। उसे मृत्यु का पूवार्भास हो जाता है, फिर भी वह अपने बेटे को सफल गायक बनते देखना चाहती है और उससे मैदान छोड़ कर नहीं भागने की शपथ लेती है। प्रभु एक गायक के रूप में जब सफल होता है तब तक माई की इहलीला समाप्त हो चुकी होती है। प्रभु के मन के अंतर्द्वंद्व को लेखक ने इतनी मार्मिकता से उकेरा है कि पाठकों की आँखें नम हो जाती हैं और द्रवित हो जाता है दिल!

प्रेम रंजन अनिमेष की और बहुतेरी कहानियाँ भी इसी तरह के औपन्यासिक कलेवर वाली हैं, जिनके भीतर कई घटनायें और अंतर्कथाएँ सहज प्रवाह के साथ आगे बढ़ती रहती हैं। ये कथाएँ यह प्रतिपादित करती हैं कि रचनाकार की लोक भाषा और जीवन पर अच्छी पकड़ तो है ही, मानव मनोविज्ञान की भी बेहतर समझ है। जितनी भी कहानियाँ स्त्री को केन्द्र में रखकर रची गयी हैं, उनके रचनात्मक विकास में लेखक को सफलता मिली है। 'ए आजी' की स्त्रियाँ जहाँ जीवन की यथास्थिति को स्वीकारती हैं, 'दी' भाई का सहारा लेकर संघर्ष की कोशिश करती है, लेकिन पुनः अपने घर लौट जाती है। 'माई' ऐसी वर्जनाओं को तोड़ती हुई एक सशक्त स्त्री के रूप में स्वयं को स्थापित करती है, जो न केवल आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों से निपटती है, बल्कि भावनात्मक उथल-पुथल पर भी नियंत्रण रखती है। कुल मिला कर अनिमेष की कहानियों का विकास स्त्री संघर्ष के विस्तार को दिशा देता है - रचनात्मक धरातल पर सोच विचार की तार्किक परिणति तक पहुँचकर पाठकों को कई मुद्दों पर उद्वेलित करता हुआ!

मोबा. 9818350904

अंतरतम तक उतरने वाले अन्यतम शब्द-साधक प्रेम रंजन अनिमेष

- सुशील कृष्ण गोरे

हिंदी में सभी तरह के कोलाहाल से विरत होकर पूरी शिद्दत और ज़िम्मेदारी से लिखते रहना बहुत धैर्य और रचनाशीलता के प्रति गहरी प्रतिबद्धता की माँग करता है। प्रतिष्ठित कवि कथाकार प्रेम रंजन अनिमेष एक ऐसे ही रचनाकार हैं, जो लंबे समय से निरंतर मूल्यवान सृजन कर रहे हैं। कहानी एवं कविता एवं कथा साहित्य, दोनों में ही इन्होंने हिंदी जगत को अपनी बड़ी महत्वपूर्ण कृतियों से समृद्ध किया हैं। इनकी शुरुआती पहचान कविता के एक अत्यंत महत्तर हस्ताक्षर के रूप में बनी। युवा और संभावनाशील कवि के रूप में इन्हें भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार से भी नवाजा गया। लेकिन साथ ही साथ अनिमेष के साहित्य का एक बहुत ही बेहतरीन हिस्सा कथाकर्म से भी जुड़ा हुआ है, जिसकी कायदे से अभी तक पड़ताल नहीं हुई है। दरअसल अनिमेष ने गद्यकार के रूप में इतना कुछ दर्ज.किया है कि सारे अंतर्सूत्रों को मिलाकर एक सुदृढ़ सशक्त सृजन-संसार तैयार होता है।

अनिमेष की कहानियों के अधिकांश संवाद छोटे, मगर सीधे हृदय तक पहुँचने वाले होते हैं। इस बड़ी खूबी के साथ अनिमेष कथा को बुनते चले जाते हैं - पात्रों के अंतरतम में प्रवेश के साथ मनोभावों को उनके समग्र स्पंदनों में उभारते हुए। अनिमेष कहीं कहानी बनाते नहीं, बल्कि कथात्मकता को अपने आसपास से पकड़ते हैं - पूरी दृष्टिसम्पन्नता के साथ। इनकी कहानियाँ पढ़ते हुए आपको लगेगा नहीं कि कुछ पढ़ रहे हैं - एक सचित्र कथा मानो सामने किसी पर्दे पर चलती रहती है - जहाँ किरदार बड़ी सहजता के साथ भावनात्मक संवेदनों और प्रतिक्रियाओं के जरिये उभरते चले जाते हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष के विभिन्न कहानी संग्रहों - 'एक स्वप्निल प्रेमकथा' ('नॉटनल' पर उपलब्ध), 'लड़की जिसे रोना नहीं आता था', 'एक मधुर सपना', 'नटुआ नाच', 'थमी हुई साँसों का सफर' और 'पानी पानी' में एक से एक कथाएँ हैं। इन संग्रहों में शीर्ष-कथाओं के साथ 'ए आजी', 'सात सहेलियाँ', 'तोहरी सुरतिया देख के', 'जानी है जब जान पियारे', 'बाल चिकित्सक', 'अंतिम यात्रा', 'उसने नहीं कहा था', 'पंच परमेश्वरी', 'पंचमी', 'गीतगाथा', 'विस्फोट' और 'चंद खिलौनों की दास्तान' जैसी प्रशंसित-पुरस्कृत कालजयी कहानियाँ शामिल हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की उपन्यासिकाएँ ('माई रे...', 'स्त्रीगाथा' तथा 'दि हिन्दी टीचर') भी असाधारण कृतियाँ हैं, जो आख्यान की नयी जमीन तैयार करती हैं। 'माई रे...' के साथ साथ माँ के इर्द गिर्द बुनी कुछ और अविस्मरणीय कहानियाँ हैं इनके पास। 'पानी पानी' में शीर्षक कथा के साथ पानी से जुड़ी अन्य बेमिसाल कथाएँ हैं। कविता के क्षेत्र में तो अनिमेष लब्धप्रतिष्ठ हैं ही। इनके प्रकाशित कविता संग्रह - 'मिट्टी के फल', 'कोई नया समाचार' , 'संगत', 'अंधेरे में अंताक्षरी', 'बिना मुँडेर की छत', 'अच्छे आदमी की कविताएँ' और 'अमराई ' अपने आप में अनूठे और अनन्य हैं

-- बहुआयामी कविता संसार एवं असाधारण कवि-व्यक्तित्व का कायल बनाने वाले। साहित्य से जुड़े लोग जानते हैं कि इनके अलावा भी सतत और सार्थक सृजन का आगार है इनके पास, रचनात्मक शिखर को स्पर्श करती वृहद कविता श्रृंखलाओं के रूप में भी, जो कई पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर चर्चा और प्रशंसा का विषय बनी हैं। संगीत से जुड़ी नैसर्गिक प्रतिभा भी इनके कलाकर्म को विशिष्ट बनाती है, जिसकी मिसाल स्वयं संगीतबद्ध और स्वरबद्ध की गयी अनेक सुमधुर सारगर्भित रचनाएँ हैं।

अनिमेष की कहानियों के अधिकतर पात्र गाँवों और कस्बों से आने वाले साधारण जन हैं -- महानगरीय माहौल के कृत्रिम आभिजात्य से सर्वथा परे। वे अपनी जड़ों से लगे और जमीन से जुड़े चरित्र हैं, जिनकी जीवन यात्रा को देखना किसी चिर कथासूत्र की समानांतर यात्रा का साक्षी बनने जैसा है। जब हम अनिमेष की विस्तृत कथाभूमि पर उतरते हैं तब किसी आरोपित वैभव के बिना निराले ठसकपन के साथ बोलते- बतियाते किरदार हमें विस्मित कर देते हैं। विस्मित इसलिए कि इनकी कहानियों और कथा-चरित्रों के विन्यास और विस्तार में उन खोखले प्रतीकों का कोई दखल नहीं है, जो दिन-ब-दिन 'नागर' होती सभ्यता का क्रूर मायाजाल रचते हैं।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियाँ पूँजी और प्रौद्योगिकी के प्रकोप से त्रस्त माहौल के बरअक्स एक सहज संवेदनशील शाश्वत मूल्यों वाले मानवीय संसार की आकांक्षी कहानियाँ हैं - जीवन के मूल तत्वों और सत्वों से जुड़कर पाठकों की समझ, संवेदना और विवेक को झकझोरने तथा उन्हें परिमार्जित करने वाली। यह स्पष्ट है कि अनिमेष व्यापक स्तर पर मनुष्यता के कहानीकार हैं, और मानवता पर चोट पहुँचाने वाले कारकों की पड़ताल कर उनका प्रतिकार भी करते हैं। इसलिए उनमें प्रेम की विह्वलता बहुत है, ईमानदारी खूब है, तथा दृढ़ता पर टिके रहने का अटूट विश्वास और उत्कट स्वाभिमान भी।

अनिमेष अपनी कहानी और कविता, दोनों के परिसर में विडंबनापूर्ण स्थितियों से उपजी वास्तविकताओं को बेहद मार्मिकता और टीस के साथ दर्ज करते हैं। एक सिहरा देने वाली कचोट उनके लेखन का आधार है, जो आगे बढ़कर सभी प्रकार की अमानुषिकता, असहायता और अन्याय के विरुद्ध रचनात्मक आह्वान के रूप में उनके लेखन का अभिन्न हिस्सा बन जाता है। जिजीविषा और जीवंतता के पक्ष में प्रतिबद्धता इनकी कविताओं और कहानियों दोनों को बड़े अर्थों में बहुत समर्थ और मूल्यवान बनाती है।

अनिमेष की कहानियों का फलक व्यापक है, जिनमें हर प्रकार के चरित्र को बहुत बारीकी से उकेरा गया है। इनकी कहानियों में बहुत सारे बाल पात्र भी आते हैं, और इन चरित्रों को अभिनव अनुभव के साथ शिखर पर पहुँचाते हैं। इन बाल पात्रों को जिस सहजता, सूक्ष्मता और कौशल के साथ अनिमेष प्रस्तुत करते हैं, वह काबिले तारीफ है। कहानियों के अन्य पात्रों के सापेक्ष बुनी गयी यह रचनात्मकता बाल मनोविज्ञान पर इनकी गहरी पकड़ को प्रमाणित करती है।

अनिमेष की अनेक विशिष्ट कहानियों के बीच 'देखना' भी ध्यातव्य है। कहानी के नन्हे पात्र टुटुल के संवाद ही काफी हैं उसे समझने के लिए। महज पाँच साल का टुटुल

स्वाभाविक मनोभावों और संवेदनाओं के साथ कहानी के कैनवास पर दिखता है। फिर उसके जरिये दिखती और खुलती है, अनन्या, यानी अन्नी। दरअसल पच्चीस साल की अन्नी का 'दोस्त' है टुटुल। वह पूरी अनौपचारिकता के साथ अनन्या को उसके पुकार के नाम से संबोधित करता है। अन्नी की माँ से भी सीधे संवाद कर लेने में उतना ही सहज है वह। कहानी के प्रारंभ में ही एक जगह अन्नी की माँ उससे पूछती है - नाश्ता हुआ? रोटी खानी है? तब वह सीधा-सा उत्तर देता है - नहाये बिना नहीं खाता मैं। वह बड़ों सी बात बालसुलभ लहजे में कह देता है। जब उसके पिता सवेरे काम पर चले जाते हैं और माँ घर का काम सलटाती है तब वह सीढ़ियाँ उतरकर अन्नी के घर आ जाता है। वहीं दिन-भर उसका उठना-बैठना, खाना-पीना और खेलना-कूदना होता है।

एक दिन अन्नी के घर का माहौल अलग दिखने पर टुटुल पूछ बैठता है - घर में इतना बदलाव क्यों दिख रहा है? तब अन्नी बतलाती है - यह मेरे दूसरे घर जाने की तैयारी है। टुटुल फिर सवाल करता है -- दूसरे घर क्यों? यह प्रश्नाकुलता निश्छल अबोध मानस में उभरती नयी सोच और समझ को प्रतिबिंबित करती है - बाल-मन पर उत्कीर्ण होती जैविक और संवेदनात्मक रेखाओं से रचित 'क्यों' बनकर ! कथाकार ने इस 'क्यों' का विस्तार बड़ी खूबी से करते हुए उत्तर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया है।

टुटुल अन्नी को सवालों के साथ घेरता है, उसके साथ ज्यादा से ज्यादा संवाद करना चाहता है। वह अन्नी से बड़ी सहजता से कहता है - 'मैं तो अपने मन से आता हूँ यहाँ। तुम भी अपने मन से जा रही हो?' इस पर अन्नी का हँसते हुए दिया जाने वाला जवाब भी कितना मार्मिक है - 'मन से तुम आ सकते हो, मैं नहीं' ! दरअसल यह कहानी गाँव-कस्बों में शादी के पहले लड़की को देखने की परंपरा को केंद्र में रखकर लिखी गयी है - जहाँ सब कुछ इस बात से जुड़ा रहता है कि कैसे एक लड़की को सज-सँवर कर इतना सुंदर दिखना है कि देखने वाले उसे पसंद कर लें और लड़के के लिए 'छेंक' लें।

न पसंद किये जाने, यानी ठुकराये जाने का कितना असर पड़ता है किसी लड़की के कोमल मन पर, कितनी आहत होती है वह - इन स्थितियों को कथासूत्रों में पिरोते हुए अनिमेष ने स्त्री-अस्मिता विरोधी मान्यताओं पर करारा प्रहार किया है। उस दंश को वह लड़की ही जानती होगी, जिसे वस्तु की तरह देखकर पसंद किया या छोड़ दिया जाता है। अन्नी यानी अनन्या भी पाँच आदमियों और चार औरतों (जिन्हें कथाकार ने व्यंजना से 'गिरोह' कहा है) द्वारा अपने रंग के कारण नापसंद किये जाने के बाद बेचैनी, घुटन और दुख से भर जाती है। अनिमेष ने स्त्री जीवन की इस वेदना को बड़ी ही मार्मिकता और संवेदनशीलता से शब्दों में ढाला है।

इसी प्रकार, 'टिनी टॉट', 'नन्हे फरिश्ते, 'एक मधुर सपना', 'कागज का हवाई जहाज' जैसी बालमन की गहराइयों की थाह लेने वाली कई कहानियाँ अनिमेष के कथा लेखन को नये उत्कर्ष तक ले जाती हैं। 'कागज का हवाई जहाज' का टक्की बस चार बरस का है और वह 'साथी' है तीस पार कर चुके नौजवान का, जो उसके दोमंज़िले घर की छत पर बने अकेले कमरे में रहता है - भलमनसाहत और मेल मिलाप वाले

माहौल में। लेकिन अब उसने वहाँ से जाने का मन बना लिया है, क्योंकि कुछ कर न सका, कुछ हो न सका इतने दिन रह कर - अपनी पूरी काबिलियत और सारी कोशिशों के बावजूद। कभी कभी तो लक्ष्य के बिलकुल करीब पहुँच कर रह जाने का दारुण दुख झूलना पड़ा। फिर भी कोई उज्र या मलाल जाहिर नहीं करता वह। बस देख रहा होता है कि क्या कुछ लेकर और क्या छोड़ कर जाना है यहाँ से।

उसी समय टक्की आ जाता है। वह 'कागज का हवाई जहाज' बनाने के लिए कहता है उसे। उसके साथ दिलचस्प बातचीत और कौतुक के साथ बढ़ती जाती है गहरी संवेदना से भरी यह कहानी, जो चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर अन्तस को द्रवित करती है तथा मन मस्तिष्क को झकझोरती भी। अनिमेष इस फन में माहिर हैं और वे जिस तरह यह संभव करते हैं, बहुत कम लोग ऐसा कर पाते हैं समकालीन कथा संसार में। पूरी कहानी में व्यवस्था के विरुद्ध सीधे सीधे कोई वाक्य या शब्द नहीं है। लेकिन पढ़ने वाला सोचने पर मजबूर हो जाता है कि यह कैसा समय और संसार है जहाँ सीधे सच्चे और अच्छे भले के बचे और बने रहने की जगह बहुत कम है या नहीं के बराबर।

बालक टक्की का नौजवान साथी कागज का हवाई जहाज बनाने की देर तक कोशिश करता रहता है। जीवन की आपाधापी और आजीविका पाने में असफल होने के कारण शहर की भीड़ और होड़ के बीच उसके बालपन से जुड़ा हुनर भी विस्मृत हो जाता है जैसे। अंततः बड़ी मुश्किल से वह कागज के दो हवाई जहाज तैयार कर टक्की को सौंपने में सफल होता है। पहला हवाई जहाज सटीक उड़ान के साथ अपने 'सही ठिकाने' को पा भी लेता है, लेकिन तंत्र और समाज की विद्रूपता आड़े आ जाती है। मासूम टक्की ने हवाई जहाज के लिए नौजवान की पुरानी डायरी से जो चिकने रंगीन पन्ने निकाले थे, उनमें 'किसी' के लिए शब्दों में रची बसी भावनाएँ होती हैं, जो असहिष्णुताओं और संकीर्णताओं के दौर में क्षमा के योग्य बिलकुल नहीं।

इस 'अक्षम्य अपराध' का पता चलने पर जब नौजवान दोस्त को गली में खींचते हुए ले जाया जा रहा होता है तब नन्हा टक्की निशाना साधकर कागज का दूसरा हवाई जहाज उछालता है उसे बचाने के लिए। वह कहता है - ' लो, यह लो... और इसे पकड़ कर निकल जाओ इनके बीच से...!' लेकिन उस दूसरे पन्ने पर भी गहरे जज्बात होते हैं खत की सूरत में। फिर नौजवान के बचने की रही सही उम्मीद भी चली जाती है - और रह जाता है एक बच्चे के माध्यम से अनिमेष द्वारा रचा गया वृहद सच, जो हमें आगाह करता है और सावधान भी।

प्रेम रंजन अनिमेष की कहानी 'ए आजी' कम शब्दों में रची गयी एक विराट महागाथा की तरह है -- अभावों के जीवन में भाव भरती हुई। दादी पोते के आत्मीय रिश्ते को सघन संवेदना के साथ उकेरती हुई औपन्यासिक फलक की यह कहानी जितनी जीवंत है, उतनी ही प्रेरक और मार्मिक भी -- किसी सुंदर चलचित्र की तरह, जिसे बार बार देखने पर भी जी न भरे ! अपनी नेत्रहीन दादी (आजी) के संग बालसुलभ कौतुक करने वाला बल्लू कैसे बचपना छोड़कर बड़ा बन जाता है, इसकी मिसाल है यह कहानी, जिसे अद्वितीय शैली में अद्भुत ढंग से रचा बुना है अनिमेष ने। सही मायने में अंतधार्राओं और 'अंडरटोन' के भी मास्टर हैं अनिमेष और अपने लेखन में इनका

लाजवाब इस्तेमाल करते हैं। इशारों इशारों में बहुत ही गहरी बात रखना उनकी इसी कला का एक अहम हिस्सा है। 'खेल खेल में' बल्लू की बड़ी बहन की छुटपन में ही 'हत्या' को पूरे परिवार द्वारा बड़ी आसानी से भुला दिया जाना बच्चियों की घोर उपेक्षा और उनके प्रति भेदभाव भरी परिस्थितियों को बड़े ही बेधक ढंग से रेखांकित करता है।

'टिनी टॉट' का महज दो साल का बालक टुकटुक यानी सूर्यप्रकाश किस तरह एक महानगर में स्वयं अपने घर और बाहर की दुनिया के अंदर पसरते हुए तथाकथित दमघोंटू चोंचलों के बीच एक असहाय प्रयोक्ता और भोक्ता बनकर तमाम जोखिमों से भरी पथरीली जिंदगी पर नन्हें कदमों से बढ़ते जाने के लिए अभिशप्त है, यह सचमुच शोचनीय है और अंतरतम को मरने वाला भी। उसके मम्मी-पापा कितनी जल्दीबाजी में हैं, खुद को एक खोखले, संवेदनहीन और निहायत निर्मम एवं स्वार्थी आदमी बनाने के लिए, और महानगरीय समाज के निष्प्राण अभिजात्य को ओढ़ने के चक्कर में उनका ओछापन कितना घिनौना और विवेकहीन लगने लगता है, इसे कथाकार ने संवाद और भाव-भंगिमाओं से जीवंत कर दिया है। संभवतः हिन्दी या भारतीय साहित्य में ही नहीं, समूचे सृजन संसार के लिए एक अनूठी और अविस्मरणीय कहानी है यह -- देर तक साथ रहने वाली भेंट या सर्जनात्मक सौगात की तरह !

बच्चों पर केंद्रित कहानी कैसे पूरे देश और दुनिया की बड़ी रचना हो सकती है, इसकी मिसाल देखनी हो तो हंस (फरवरी 2004) में प्रकाशित अनिमेष की प्रथम अमृतलाल नागर पुरस्कार प्राप्त कहानी ' एक मधुर सपना ' पढ़ी जा सकती है। सपनों के इतने संस्तर, उनकी ऐसी आख्या, सच और सपनों का ऐसा लासानी अंतर्नाट्य (इंटरप्ले) कथा संसार में विरल है। मुख्य बाल-पात्र है पेड़ के नीचे लोगों की हजामत बनाने वाले नाई का बेटा तेजा, जो सरकारी विद्यालय में पाँचवीं कक्षा का छात्र है - मेहनती, मेधावी और धुन कापक्का ! आँधी हो या मूसलधार बारिश, कोई और आये न आये, भले ही शिक्षक भी अनुपस्थित रहें, वह जरूर आता है स्कूल। सहृदय मास्टर अमरेश उसका नाम तेजा से बदल कर तेजपुंज कर देते हैं, गोस्वामीजी की इन पंक्तियों का स्मरण करते हुए - ' तेजपुंज लघु वयस सुहावा' !

बिलकुल अलग फलक पर रची गयी इस कहानी की शुरुआत दरअसल कहानीकार के अनोखे सपने से होती है। सपने में महान आलोचक या बड़े बुजुर्ग लेखक या कि साधारण, लेकिन सजग पाठक की शर्त भरी हिदायत यह होती है कि कहानी में सबकुछ सच से लिया जाये। लेकिन उन कलात्मक युक्तियों और उपकरणों का क्या, जो पात्रों से जुड़ी घटनाओं तथा वाकयों को कहानी या फिर साहित्य की किसी भी विधा का रूप देती हैं? आखिरकार कहानीकार को एक जगह 'आजादी लेने की छूट मिलती है, जिसे वह चरमोत्कर्ष में इस्तेमाल करने का मन बनाता है।

पूरी कहानी दरअसल तीनों प्रमुख पात्रों, मास्टर अमरेश, सड़क किनारे हजामत बनाने वाले नाई और उसके बेटे तेजा, यानी तेजपुंज के जरिये सपनों और सच के बीच सोच में पड़े,, विसंगतियों का सामना करते और विद्रूपताओं से जूझते आम आदमी का रचनात्मक आख्यान है। रचनाकार के सपने से शुरू होती कथा मास्टर

अमरेश के सपने से आगे बढ़ती हुई महामहिम राष्ट्रपति के दौरे के बीच तेजा के साथ चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है - बड़े कठोर सच से जुड़े ऐसे दृश्य बिम्ब रचते हुए, जहाँ एक अतिसाधारण व्यक्ति उठते बैठते, सोते जगते, सोचते विचारते जीवन की छोटी से छोटी आवश्यकताओं के लिए जूझता रहता है। मरते मरते भी बची हुई मनुष्यता के साथ यह कामना कायम रहती है कि भले ही जीने के न्यूनतम साधनों की भी किल्लत हो, जो बचे हुए हैं और जूझ रहे, उन्हें सफलता अवश्य मिले। अपने पिता के लिए तेजा की 'अन्तिम इच्छा' इसी सोच को रेखांकित करती है; और इस विश्वास को भी कि यदि 'आवाज' बची रहे तो कुछ न कुछ बदलाव जरूर आयेगा। कहानी में शुरू से आखिर तक यह महीन, लेकिन मजबूत सूत्र मौजूद रहता है।

कथा का चरमोत्कर्ष बड़ी मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ 'एक मधुर सपना' को व्यापक रचनात्मक आयाम देता है। दरअसल राष्ट्रपति, यानी महामहिम के आगमन की खबर सुनकर तेजा ने जो मधुर सपना देखा था, वही उसके गाँव दुलहिन बाजार के गरीबों और वंचितों की भुखमरी का सबब बन जाता है। राष्ट्रपति के दौरे के हफ़्ते भर पहले से ही फुटपाथी दुकानदारों, मजदूरों और भिखारियों को हटा दिया जाता है ताकि सबकुछ बड़ी 'सफाई' के साथ सम्पन्न हो सके। यह स्थिति नारायण ठाकुर की तरह रोज कमा कर खाने वालों के लिए भारी पड़ जाती है। वे बाहर जाकर कुछ कमाने की कोशिश में भगा दिये जाते हैं तथा इलाके के भीतर कुछ और करने की कोई सूरत दिखायी नहीं देती।

वस्तुतः समाज का एक बड़ा वर्ग ऐसा है, जिनके लिए साधन और सुविधाएँ बहुत ही कम हैं। इस वर्ग में भी हाशिये पर पड़े ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं, जो रोज खेतों खलिहानों और कल कारखानों में मेहनत मजदूरी कर या फिर सड़कों पर घूम घूमकर, कभी फुटपाथ के किसी कोने को अपनाकर कुछ न कुछ बेचते हुए किसी तरह अपना पेट पालते हैं। इनके सपने बहुत छोटे होते हैं, और सच भी खुद को पहचानने भर। ऐसे लोगों के लिए जीवन यापन के न्यूनतम साधनों पर कुछ दिन के लिए भी प्रहार उन्हें घोर संकट में डाल देता है। महामहिम के आगमन पर दुलहिन बाजार के गरीब ऐसे ही 'मानव-निर्मित' संकट का सामना करते हैं - पहले से मौजूद प्राकृतिक मुश्किलों के अलावा।

इन सबके बीच सबसे बुरी हालत तेजा, यानी तेजपुंज की होती है - खटपरू हो जाता है वह। शायद इसीलिए भी कि अच्छे और बड़े सपने देखने की शिक्षा सबसे अधिक वही ग्रहण करता रहा - हर हाल में विद्यालय जाते हुए, हर वक़्त सबक याद करते हुए। मास्टर अमरेश मानते हैं कि अच्छे सपने न रहें तो सच में मनुष्य का जीना दूभर हो जाता है। इसी आधार पर वे बच्चों की मौलिकता, कल्पनाशक्ति और सृजनशीलता को विकसित करना चाहते हैं। लेकिन जो आम जन हैं - और उनमें भी अन्तिम कतार में खड़े, हाशिये पर पड़े लोग -- उनका सच ही इतना सख़्त और जटिल होता है कि जीवन की बेहतरी के सपनों का साकार होना बहुत कठिन होता है। जीवन किसी तरह कहने भर जीवन बना रहे, यही अतिसामान्य आशा होती है अकसर। ऐसे लोगों के लिए छोटे सपने भी बड़े नजर आते हैं और कई बार इनके साकार होते न होते

उम्र गुजर जाती है।

तेजपुंज की इच्छाएँ छोटी हैं - किन्तु शिक्षा से जुड़े रहने का आग्रह है और सोच विचार को साथ रखने की उत्कंठा भी। सच सपनों को बड़ी बेधक दृष्टि से देखते हुए किसी 'मास्टरपीस' की तरह इस अप्रतिम कहानी के जरिये कथाकार बड़े होते बच्चे के मनोविज्ञान को निरूपित करता है और व्यवस्था व सत्ता के मुखौटे मुलम्भे उतारते हुए असल को उद्घाटित करता जाता है। कहानी का चरमोत्कर्ष ऐसा दृश्य बिम्ब रचता है, जहाँ सच और सपने समानान्तर चलते हुए एक दूसरे के भीतर आवाजाही करते हैं, मिलते भी हैं - सच के सपने और सपने के सच के साथ विपन्न वंचित वर्ग के त्रासद यथार्थ को गहराई से रेखांकित करते हुए। आज भी समाज के एक बड़े तबके की यह स्थिति देख जानकर जितना दुख होता है उतना ही क्षोभ भी - जहाँ न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकतर लोगों को मर मरकर जीना पड़ता है, अपने होने के मकसद को बार बार थामने की कोशिश करते हुए।

भले ही तात्कालिकता और फौरी लोकप्रियता के मारे बहुतेरे चर्चा परिचर्चा में कोरे कागद कारे करते पत्र पत्रिकाओं को घेरे रहें, परन्तु सुलझी और ऊँची सोच रखने वाले अनिमेष सरीखे दृष्टिसंपन सर्जक की प्रत्येक पंक्ति जीवन की रोशनाई से भरी होती है। साहित्य की हर विधा में अपनी बात बड़ी ही सहजता और गहराई से कहने वाले अनिमेष का मानना है कि रचना वह आईना है जिसमें आज के साथ बीता और आनेवाला कल भी धड़कता झलकता है। और यह भी कि आँखें सच और सपने, दोनों को देखने के लिए बनी होती हैं और उनमें रोशनी का होना जितना जरूरी है उतना ही पानी का रहना भी ! निस्संदेह प्रेम रंजन अनिमेष की सर्जना इसका स्वयंसंपूर्ण साक्ष्य है, जिसमें भीतर की तरी भी है और अंतस का अजस्त्र उजास भी। साथ ही सच और सपने के मेल से सिरजा वह 'सचपना' भी, जिसकी बात वह बारहा करते हैं - 'बचपना है सचपना है/ सपनों से ही सच बना है' ; या फिर ' सच सपनों को साथ मिलाकर / एक नया सचपना करेंगे'।

कठिन से कठिन होती जा रही मौजूदा परिस्थितियों में आम जन के लिए बुनियादी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति भी संकटग्रस्त होती जा रही है - विघटनकारी गतिविधियों और दमन एवं हिंसा से भरी क्रूरताओं के बीच! गरीब और वंचित वर्ग के बच्चों और स्त्रियों की दशा तो और भी खराब है। ऐसी स्थिति में साहित्य या फिर कला की किसी भी विधा से जुड़े व्यक्ति की ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी हो जाती है। प्रेम रंजन अनिमेष भी साहित्य कला के विविध उपकरणों उपादानों का प्रयोग करते हुए रचनाकर्म का संकल्पपूर्वक निर्वाह करते हैं। इनकी गाथाएँ अतीत से सबक लेकर वर्तमान से गुजरती हुई भविष्योन्मुख दृष्टि के साथ उत्कर्ष तक पहुँचती हैं। ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान से संपन्न रचनाकार अनिमेष की कहानियों के जरिये मानवीय अस्मिता की ऐसी अनेक चिंताओं की शिनाख़्त की जा सकती है, जिन्हें वैचारिक स्तर पर समय के बेहतरीन भाष्य की तरह पढ़ा जाना बहुत जरूरी है - और संवेदना व संभावना से भरे जीवनसूत्र की तरह मन मस्तिष्क में दर्ज करना भी!

दूरभाष : 8005488449

सामाजिक विषमताओं की पुरजोर अभिव्यक्ति : प्रेमरंजन के उपन्यास

– प्रोफेसर उषा मिश्रा

प्रेमरंजन अनिमेष 90 के दशक के रचनाकार हैं। वे मूलतः कवि हैं और कवि होने की प्रामाणिकता उनके दो उपन्यास पढ़ते हुए और अधिक पुष्ट हो जाती है। गद्य पर भी उनकी अच्छी पकड़ है पर उपन्यास विधा में भी काव्य रूप अपने प्रभाव को कम नहीं होने देता। ठीक उसी तरह जैसे अंग्रेजी भाषा और साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि पाने के बावजूद अपनी मातृभाषा के प्रवाह में कहीं कोई बाधा नहीं जान पड़ती। अनिमेष जी का एक उपन्यास है 'दि हिंदी टीचर'। शीर्षक से संकेत मिलता है कि किसी हिंदी विषय की अध्यापिका के जीवन का संघर्ष या विवरण होगा परंतु उपन्यासिका होने के बावजूद इसमें कई मुद्दों को उठाया गया है। उपन्यासिका इसलिए क्योंकि लेखक ने स्वयं इसे उपन्यासिका कहा है। मोटे तौर पर देखें तो जाति व्यवस्था, वैचारिक चोरी, सरकारी कार्यालयों में ज्ञान न होने पर भी बड़े ओहदों पर बैठ जाना, राजभाषा विभाग में हिंदी की स्थिति, अधिकांश क्षेत्रों में अंग्रेजी के बढ़ते प्रयोग पर चिंता एवं दुख, देश-भाषा के प्रति जन का जाग्रत न होना, वर्तमान समय में प्रचलित होने के लिए तमाम हथकंडे अपनाना और सबरीना के माध्यम से स्त्री जीवन की पीड़ा, उसकी मजबूरी इत्यादि विषयों पर लेखक ने अपना पक्ष कथा-रूप में रखा है।

कथा-तत्व की बात करें तो 'दि हिंदी टीचर' उपन्यासिका सात पर्वों में बँटी है- (अथकथा, मूलमंत्र, जाति न पूछो साधु की, मैं प्रस्तुत हूँ, मुझको पहचान लो, दिल को जरा थाम लो और सशेष) जिसका मूल स्वर भारतीय समाज में कोढ़ की तरह फैली गैरबराबरी है। हमारे संविधान में जातिगत भेदभाव को गैर कानूनी घोषित किया गया है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को सर्वोपरि माना गया है परंतु हकीकत में स्थिति कुछ और ही है। और उसी हकीकत को बयाँ करती कहानी है इस उपन्यासिका की। लेखक प्रारंभ में ही स्वीकार करता है कि कहानी का बीज तत्व उसे सनातन शेषनाथ 'श्रेयस्कर', जिन्हें उपन्यासिका का प्रमुख पात्र कहा जा सकता है, की डायरी से मिला। श्रेयस्कर जी राजभाषा सहायक थे। लेखक उन्हीं के विभाग में तब तक कार्य करने के इच्छुक थे जब तक उन्हें वह नौकरी न मिल जाती, जहाँ उन्होंने पहले आवेदन किया था और वहाँ साक्षात्कार भी अच्छा ही हुआ था। अपने कई गुणों के कारण श्रेयस्कर जी लेखक के करीब आए। जैसे वे बड़े मिलनसार थे, बड़ी निश्छलता से सबसे मिलते थे, सबके प्रति सहयोग भाव रखते थे। उन्होंने लेखक को कई मूलमंत्र भी दिए जिसका समय-समय पर उपयोग किया जा सकता था। यही मूलमंत्र बताते-बताते उन्होंने अपनी डायरी लेखक को आधिकारिक रूप से मदद करने के लिए दे दी। जिसमें आधिकारिक कार्यों के विवरण के साथ उनकी पीड़ा, विद्वता, सहजता, स्वाभिमान इत्यादि गुणों का पता लेखक को चलता है। उसी डायरी से उनके असफल प्रेम का भास लेखक को होता है। इतना ही नहीं, यह भी पता चलता है कि वे कवि भाव भी रखते थे पर संकोच में किसी से कहते नहीं थे।

श्रेयस्कर जी की डायरी समाज में, सरकारी कार्यालयों में फैली विषमता को विशेषतः राजभाषा कार्यालय में हिंदी की दयनीय होती स्थिति को उजागर करती है। सरकारी कार्यालयों में आवेदन पत्र देने से लेकर नियुक्ति तक आवेदक को कई अनावश्यक एवं स्वाभिमान विरोधी प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। जैसा कि मैंने पहले भी संकेत किया है कि योग्यता के बावजूद आवेदक को जाति के नाम पर अनेक मानसिक प्रताड़नाएँ झेलनी पड़ती हैं। जातिगत भेदभाव को दूर करने के लिए उन्होंने एक पंथ बनाने की भी सोची लेकिन -'फिर एक दिन पीपल के पेड़ के नीचे यह बोध हुआ उन्हें कि पंथ, संप्रदाय दीन, मजहब आदि का अंततः मनुष्य और मनुष्य को काटने और बाँटने, उन्हें एक दूसरे का बैरी बनाने के साधन के तौर पर ही अधिक इस्तेमाल हुआ है और व्यापक मानवता के हित में उन्होंने एक और पंथ बनाने का यह विचार त्याग दिया। ' (पृ. 15) जाति के कारण उन्हें कार्यालय में अक्सर उपहास का पात्र बना दिया जाता था। जातिगत स्थिति का चित्रण तो वैसे पूरी कथा में चलता है पर 'जाति न पूछो साधु की' शीर्षक में कविताओं के रूप में विशेष रूप से चित्रित है, जिसमें यह भी स्पष्ट रूप से लिखा गया है कि आरक्षण किसे चाहिए? वास्तव में जीने का आधार तो आत्मबल होता है न कि जाति बल। लेकिन शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के बावजूद जाति को आधार मानकर व्यक्ति की पहचान हो रही है। और देश के समुचित विकास में ऐसी स्थितियाँ बड़ी घातक होती हैं। यद्यपि उन्हें अपने कार्य की गहरी समझ और दायित्व भाव था पर अनेक स्थलों पर अच्छे अनुवाद और अच्छे सुझाव के बावजूद उनका अपमान कर दिया जाता है। एक अन्य स्थान पर अपनी स्थिति की तुलना हिंदी भाषा के साथ करते हुए वे कहते हैं -'वैसे कभी-कभी लगता है कि मैं सही जगह पर और सही काम पर हूँ। हिंदी से मुझे पूरी और सच्ची सहानुभूति होती है। लगता है कि कार्यालय में जैसी स्थिति अपनी है, वैसी ही राजभाषा की भी।' (पृ.13) जाति का प्रभाव सरकारी कार्यालयों में इतना अधिक है कि लोग छोटा दिखाने के लिए नाम के साथ भी छेड़छाड़ करने लगते हैं। जैसे श्रेयस्कर के पिता का नाम शेषनाथ था पर जटाशंकर ने उसे शेषनाग बणा दिया। यद्यपि पूरे तर्क के साथ श्रेयस्कर ने इसका विरोध किया और बात ऊपर तक जाने पर जटशंकर को उनकी गलती का एहसास भी दिलाया गया। श्रेयस्कर के साथ उठने-बैठने के कारण लेखक को भी कटघरे में खड़ा किया गया।

डायरी में लिखी कविताएँ जितनी उनके मन की अभिव्यक्ति थीं, उतनी ही उनके जीवन को पढ़ने और समझने का जरिया भी थीं। चाहे उनकी व्यक्तिगत अनुभूतियाँ हों चाहे समाज में फैली विषमताएँ हों। हम आज 21वीं शताब्दी में जी रहे हैं। विकास के तमाम मानक बताए जा रहे हैं। विश्व की महाशक्ति बनने के सपने दिखाए जाने लगे हैं। वहीं आज भी हमारे देश के कई गाँवों की स्थिति 'ठाकुर के कुएँ' जैसी है। ऊँची जाति आज भी जाति के नाम पर अपना प्रभुत्व जमाए हुए है। इतना ही नहीं विवाह के लिए भी ऊँची जाति ही लोगों की पहली पसंद है। तभी यह जातिगत व्यवस्था समाज से निकल नहीं पा रही है। जिसके शिकार स्वयं श्रेयस्कर हुए। जिस लड़की को वे चाहते थे वह किसी ऊँची जाति के लड़के से विवाह कर चली गई। यद्यपि यह एकतरफा प्यार था पर श्रेयस्कर ने यह प्रतिज्ञा ले ली कि विवाह करेंगे तो किसी ऊँची जाति की लड़की से ही

करेंगे, जो संभव नहीं हो पाया।

तमाम दावों और वादों के बावजूद आज तक हम देश की प्रतिनिधि भाषा पर निर्णय नहीं ले पाए। हमारी भाषाओं के बीच लड़ाई करवाई जाती रही और बाहरी भाषाएँ अपना दबदबा बढ़ाती गईं। हर देश को यह चाहिए कि उसी भाषा का प्रचुरता से प्रयोग करे जिससे उसका विदेशी संपर्क निरंतर बना रहे और बढ़ता रहे पर लंबे समय की गुलामी के बाद हम अंग्रेजों से तो मुक्त हो गए पर उनकी भाषा अभी भी हम पर राज कर रही है यहाँ तक भी स्थिति ठीक है पर हमारी भाषाओं के बीच फूट डालकर या उसे अनुवाद के माध्यम से कठिन और प्रयोगहीन बनाकर दूसरी भाषा को शिरोधार्य करना किसी भी देश के लिए चिंतनीय होता है और हम दशकों से इस दशा को झेल रहे हैं। सरकारी कार्यालयों के अनुवाद से सामान्य जन अक्सर रूबरू होते रहते हैं। ऐसे क्लिष्ट और उच्चारण-दुरूह शब्द रख दिए जाते हैं कि लोग उससे दूर भागने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर 'जेंडर सेंसिटिविटी' पर रखे गए व्याख्यान को 'लिंग संवेदनशीलता पर व्याख्यान', अनुवाद ने पूरे लिंग के सामने प्रश्न लगा दिया। अनुवाद को लेकर ऐसे कई शब्द नकार दिए जाते हैं और मजाक के पात्र बना दिए जाते हैं। स्थिति तब और अराजक हो जाती है जब राजभाषा अधिकारी उसे सुधारने की अपेक्षा अपनी गलती मानकर शब्दों को ज्यों का त्यों प्रयोग करते रहते हैं। चूँकि प्रेमरंजन अनिमेष जी राजभाषा अधिकारी हैं इसलिए यह चित्रण बड़ी प्रामाणिकता से उपन्यास में दर्ज है।

इन तमाम विरोधी परिस्थतियों के बीच भी कई ऐसे अधिकारी आज भी हैं जो न तो गलत भाषा का प्रयोग करते हैं और न ही किसी को करने की भरसक अनुमति देते हैं। श्रेयस्कर के रूप में लेखक ने ऐसे ही चरित्र को सामने रखा है, जो सरकारी आदेश को न मानकर त्यागपत्र दे देते हैं। यहीं पर लेखक ने मात्र सरकारी कार्यालयों में ही नहीं अपितु पत्र-पत्रिकाओं में भी धड़ल्ले से प्रयुक्त होने वाले अंग्रेजी शब्दों की सूची दी है। हमारी भारतीय भाषाओं में न तो शब्दों की कमी है और न ही उसकी लिपि उसे व्यक्त करने में असमर्थ है फिर भी उसके प्रयोग को नकार दिया जाता है। लेखक के शब्दों में- 'भाषा, चाहे कोई भी हो, आदत की बात होती है। आदत लगाने और लगाने की।' (पृ. 37) कई भारतीय भाषाओं के शब्द बहुत क्लिष्ट होते हैं पर बड़ी आसानी से प्रयोग में लाए जाते हैं। जन सामान्य भी उसे बड़ी सहजता से बोल लेते हैं। लेखक का कथन है कि 'पानी कितना भी उदार क्यों न हो खुद प्यासे होठों तक नहीं आता....और अगर खुद आ जाए तो उसके सिर के ऊपर जाने का अंदेशा भी होता है।' (पृ.37) फिर हिंदी में अधिक से अधिक अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग पर जोर क्यों? क्यों ऐसे फरमान सरकार की तरह से जारी किए जाते हैं? उनकी दृष्टि में यह मात्र भाषा की ही बात नहीं है अपितु देश की बात भी है। इन्हीं सब के विरोध में श्रेयस्कर अपना त्यागपत्र देकर लेखक के पास मुंबई चले आते हैं। यद्यपि मुंबई आने के पहले उन्होंने कई स्थानों पर नौकरी के लिए प्रयास किया पर बात कहीं भी बनी नहीं। श्रेयस्कर की मुंबई यात्रा में ही लेखक ने मुंबई में हिंदी की स्थिति का ब्यौरा भी प्रस्तुत किया है। लोगों की नजर में फिल्मी क्षेत्र में हिंदी की दशा बहुत अच्छी है, पर वे यह नहीं जानते कि यहाँ हिंदी बोली भले ही जाती है पर उसका लिखित रूप तो रोमन में ही होता है। भाषा की सरलता और

लिपि की वैज्ञानिकता के बावजूद उसे वह स्थान नहीं मिल पा रहा है जो उसे चाहिए। हिंदी की स्थिति और लोगों की नीयत दोनों पर सवाल उठाते हुए श्रेयस्कर ने अपना त्यागपत्र दे दिया।

मुंबई आकर भी उन्हें इतनी आसानी से कुछ नहीं मिला। संघर्ष का दौर यहाँ भी चला। पर जाति के नाम पर उन्हें वह जिल्लत नहीं झेलनी पड़ी जो राजभाषा अधिकारी के रूप में झेलनी पड़ी थी। हाँ, रोजगार के लिए कई दिनों तक चप्पलें घिसनी पड़ीं। यहाँ आकर उन्होंने अपने आप को फेसबुक पर सक्रिय कर लिया। हिंदी टायपिंग में तो वे पहले से ही कुशल थे। ऑन लाइन होकर अब कविताएँ लिखने लगे। महानगर में आकर एक बदलाव जो उनमें आया, वह यह कि वे प्रेमपरक कविताएँ लिखने लगे। इसे मायानगरी का प्रभाव कहा जा सकता है। इस कविता कर्म के साथ वे दो बच्चों को हिंदी पढ़ाने का कार्य करने लगे। एक घटना के माध्यम से लेखक ने यह उजागर किया है कि इस महानगर में भाषा के नाम पर भले ही हिंदी का प्रचार हो रहा है पर उसकी स्थिति अभी भी नाजुक ही है। हिंदी के प्रति तो श्रेयस्कर जी समर्पित ही थे, मुंबई में हिंदी दिवस पर आयोजित एक कार्यक्रम, जो फ्री फॉल अर्थात फ्री फॉर ऑल था, में ऐसा भाषण दे आए जो कि लेखक के अनुसार नहीं देना चाहिए था। लेकिन वहाँ से उनके भाग्य के ताले लगभग खुल गए। और अहसान अली जो फिल्म जगत का मशहूर नाम था, उसने वर्तमान हिंदी फिल्म जगत की नामी तारिका सबरीना को हिंदी सिखाने के लिए तीन महीने के लिए नियुक्त कर लिया। उन्होंने सबरीना को बड़ी मेहनत और ईमानदारी से हिंदी सिखाना शुरू कर दिया। वह भी एक अच्छे विद्यार्थी की तरह श्रेयस्कर से हिंदी सीखने लगी। इसी बीच उन्होंने कई प्रेमपरक कविताएँ लिखीं और अवधि के पहले ही वे लेखक का घर छोड़कर अहसान द्वारा दिए गए कमरे में रहने चले गए। सबरीना बहुत तेजी से हिंदी बोलने और समझने लगी। यहाँ भी उनके सामने एक समस्या आती है, वह यह कि सबरीना की डबिंग आर्टिस्ट उनसे यह कहती है कि यदि वे सबरीना को अच्छी हिंदी सिखा देंगे तो उसकी रोजी-रोटी खतरे में आ जाएगी। श्रेयस्कर के सामने यह बड़ी चुनौती थी कि यदि उसके लिए सबरीना को हिंदी सिखाना छोड़ दें तो उनका क्या होगा और अब उन्हें सबरीना से लगाव भी हो गया था। लेखक को इस बात का आभास हुआ कि सबरीना के दिल के एक कोने में श्रेयस्कर के लिए खास जगह है। श्रेयस्कर से बातचीत के दौरान लेखन ने उन्हें आगाह किया कि वे इस बात को कभी न भूलें कि सबरीना केवल और केवल अहसान अली की है। और उसकी पकड़ इतनी है कि सबरीना पर आँख उठाने वाले का वह बहुत बुरा हश्र कर सकता है। लेकिन यह कहा गया है न कि प्यार होने पर उसे अपने अलावा सब कुछ गलत दिखाई देने लगता है। सबरीना के जन्मदिन पर श्रेयस्कर ने उसे अपने प्यार का एहसास कराने वाली एक कविता तोहफे में दे दी। वे सबरीना की दी हुई गुरुदक्षिणा नहीं स्वीकार करते हैं। श्रेयस्कर जब सबरीना से अंतिम बार मिलते हैं तो वह स्पष्ट करती है कि उनकी प्रेमल भावनाओं से वह वाकिफ है पर वे अहसान को नहीं जानते। यहीं महानगरीय जीवन और वह भी फिल्मी जगत में स्त्रियों की स्थति कितनी दयनीय है, इसका चित्रण भी हुआ है। बाहर की चमक-दमक के बीच उसकी जिंदगी कितनी खोखली होती है, यह सबरीना के उस

कथन से स्पष्ट होता है जब वह श्रेयस्कर को गले लगाने के बाद कहती है- 'बस इतना ही। इतने तक ही जा सकती हूँ। अहसान से अब तक बची हूँ तो यह उसकी माँ का अहसान है। लेकिन हर महीने मुझे परीक्षा देनी होती है और अपने चरित्र का प्रमाणपत्र लेना होता है उसके डॉक्टर से। कि बची हुई हूँ उसके लिए पूरी तरह से....।' यहाँ यह स्पष्ट होता है कि स्त्री किसी भी वर्ग की हो, जाति की हो, उसकी स्थिति में, समाज की सोच में कोई परिवर्तन नहीं होता। जिस अहसान के लिए उसे बचाया जा रहा था विदेश जाकर उसने विदेशी महिला से संबंध बन लिया और एक संदेश में सबरीना को आजाद कर दिया। उसे इस बात का बिल्कुल एहसास नहीं होता कि उसने सबरीना से क्या वादा किया था या इस समय बिना किसी घटना/दुर्घटना के छोड़ देना उसके लिए कितना दुखदायी हो सकता है। सबरीना पहले अहसान के बनाए पिंजरे में रहने के लिए मजबूर थी और जिसे चाहने लगी थी, उससे अपने प्यार का इजहार नहीं कर सकती थी। अहसान ने अपना मार्ग चुन लिया था, श्रेयस्कर को एक नई राह मिल गई थी पर सबरीना का इंतजार अंतहीन रहा।

इस प्रकार उपन्यास अपने लघु आकार के बावजूद समाज में फैली कई विसंगतियों को कहीं सटीक तो कहीं व्यंग्यात्मक रूप में पाठकों के सम्मुख करता है। हाँ, कविताओं की बहुलता कहीं न कहीं उपन्यास को कमजोर बनाती है। यद्यपि लेखक ने पृष्ठभूमि के साथ कविताओं को प्रस्तुत किया है, पर मुझे लगता है कि कविताएँ कम की जा सकती थी। जहाँ तक भाषा का सवाल है तो उपन्यास में कई स्थलों पर उनका राजभाषा का पद सामने आता है। पदों या भाषा का संक्षिप्तीकरण देते हुए लेखक ने पुरजोर ढंग से यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि हिंदी को यह कहकर दोयम दर्जे पर नहीं रखा जा सकता कि उसके पास शब्द भंडार की कमी है।

प्रेम रंजन अभिषेक जी का दूसरा उपन्यास है 'स्त्रीगाथा'। इस उपन्यास में स्त्री अस्मिता, विशेषतः नाम के आधार पर स्वयं की पहचान न बना पाने की पीड़ा मुखरता से व्यक्त हुई है। अड़सठ पृष्ठों का यह उपन्यास स्त्री द्वारा नाम ढूँढने की यात्रा का विवरण है। विश्व की आधी आबादी मानी जाने के बावजूद उसके अस्तित्व पर संकट के बादल छाए रहते हैं। अपने ही जीवन का निर्णय लेने का अधिकार उसे नहीं मिल पाता है। उपन्यास 9 अध्यायों में बँटा हुआ है, जिसमें पहला अध्याय नाम विहीन है। मात्र उद्धरण चिन्ह से उसे संबोधित किया गया है। अन्य अध्याय इस तरह हैं- संबंध वाचक, परिचयपत्र, अनुत्तरित, अनारक्षित, मेले में खोया बच्चा, घर का नाम प्यार का नाम, लौटती हुई नदी, पानी की पगडंडी। उपन्यास का प्रारंभ ही होता है स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ने वाली ऐसी संस्था के कार्यकर्ताओं से जिनमें तीन स्त्रियाँ हैं, जो घर-घर जाकर स्त्रियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक कराने का काम करती हैं पर उनके व्यवहार से लगता है कि वे मात्र खानापूर्ति कर रही हैं। दूसरी तरफ घरकाम करने वाली बड़का माई ऐसे पति का अत्याचार झेलते हुए अपना और अपने बेटे का पालन-पोषण कर रही है जिसका पति उसे छोड़कर दूसरी स्त्री के साथ रहने तो चला गया है पर समय-समय पर आकर अपना हक जताते हुए उसे मारता है और बचाए हुए पैसे लेकर चला जाता है। उपन्यास की नायिका बेनाम है। नाम के रूप में अपनी पहचान के लिए

वह अपने परिचितों से पूछती है पर सभी उसके पति या बच्चे के संबंधों के रूप में ही पहचानते हैं। पति के लिए भी वह मात्र उसकी पत्नी या उसके बच्चों की माँ ही है। इसके अलावा न तो उसका कोई अस्तित्व है और न ही उसका अपना कोई व्यक्तित्व। उसे ताज्जुब होता है कि जिस मस्टराइन चाची को वह उनके पति के नाम के माध्यम से जानती है, उनका भी अपना एक नाम है, भले ही वह नाम उनके पहचान का कारण न हो। जिस रिक्शे से वह सफर करती है उसका भी नाम है। नाम के संबंध में मस्टराइन चाची का यह कहना- 'अरे अपने नाम की किसे फिकर। अपना तो जीवन ही दूसरों के लिए है।....मेरा नाम कोई नहीं जानता।' (पृष्ठ-15) समाज में स्त्री जीवन की स्थिति को उजागर करता है। और फिर इसी नाम की पहचान की यात्रा उपन्यास कराता है, जिसमें कुछ वर्णन अकल्पनीय लगते हैं। वास्तविकता से दूर। नायिका जब अपने अतीत में झाँकती है तो पाती है कि पिता की मृत्यु के पश्चात उसका और उसकी माँ का जीवन कैसे नारकीय बना दिया गया। पढ़ी-लिखी होने के बावजूद अपने चाचा द्वारा उसका विवाह एक ऐसे परिवार में करवा दिया जाता है जिन्हें पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए थी। इसलिए इस झूठ का सहारा लिया गया कि वह पढ़ी नहीं है। चूंकि चाचा ने विवाह में दहेज के नाम पर वह सब नहीं दिया जिसका वादा उन्होंने किया था इसलिए उसे अपने ससुराल से माँ के जीवितावस्था तक कभी भी जाने की अनुमति नहीं मिली और उनकी मृत्यु के बाद जाने का कोई अर्थ नहीं रहा। इस आनन-फानन में विवाह हो जाने के कारण अपनी पहचान का कोई दस्तावेज उसके पास नहीं रहता। जब तक वह पति के साथ शहर में रहने नहीं आती तब तक तो तानों से उसका जीवन चलता है। शहर आने के बाद भी वह पति की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकती थी।

एक दिन वह घर में बिना किसी को कुछ बताए, बिना किसी योजना के अपने नाम का साक्ष्य ढूँढने के लिए निकल पड़ती है। वह भी मंदिर से सीधे नाम की खोज में। हालाँकि वह महात्मा से भी अपना नाम विचरवाने का प्रयास करती है पर बिना नाम के उसे महात्मा के पास भी प्रवेश नहीं मिलता। सोचती है कि वह बिना नाम की ऐसी नदी की तरह है जो बाहर से तो शांत है पर अंदर आरोह-अवरोह, चढ़ाव-उतार, लहरे हिलोरें। नदी को देखकर उसे ऐसा लगा मानो वह भी एक ऐसी नदी है जिसके हाथ-पैर जकड़े हों। यहीं पर एक और समस्या पर लेखक ने ध्यान आकर्षित कराया है कि किस तरह महात्माओं के बीच में अनैतिक काम होते रहते हैं। ये सीधे-सादे जन समुदाय के भरोसे की हत्या करने में कोई संकोच नहीं करते। मंदिर के परिसर में इस तरह के कार्य देखकर वह फारिग होने के लिए स्टेशन चली जाती है और फिर वहाँ से उसकी उस यात्रा का वर्णन है जो पाठकों को अविश्वसनीय लगता है, हकीकत से परे लगता है। रेल टिकट लेकर वह उस शहर की ओर रवाना होती है जहाँ उसका बचपन बीता था। इसी यात्रा के दौरान वह अपने अतीत की भी यात्रा करती है। वे बचपन के दिन जो उसने माता-पिता के साथ सुखमय बिताए थे, कॉलेज के वे दिन जहाँ उसका उन्मुक्त जीवन बीता था, वह दिन भी जब उसे अपने पड़ोसी लड़के से प्यार हो गया था। पर पिता के बीमार होते ही जीवन बदल गया और मृत्यु के बाद तो जीवन नारकीय बन गया। न चाहते हुए भी चाचा पर निर्भर होना पडा। इतना ही नहीं उसके विवाह के नाम पर उनके

हिस्से की जमीन भी चाचा ने हड़प ली।

बहरहाल, एक लंबी यात्रा करके वह उस कॉलेज पहुँचती है, जहाँ उसके पिता रेल विभाग में काम करते थे, जहाँ उसकी शिक्षा हुई थी। पर अन्तजार्तीय विवाह आंदोलन के कारण कॉलेज बंद था। वह अपने उस प्राध्यापक (हरिहरन) से भी मिली, जिनके तोते को उनके घर जाने वाले सभी का नाम याद रहता था। पर वहाँ न तो प्राध्यापक से और न ही उनके तोते से उसे कोई मदद मिलती है। 15 वर्ष पुरानी फाइल में भी उसे अपना नाम नहीं दिखाई दिया। थक हारकर वह उस सड़क और गली में पहुँचती जहाँ वह वर्षों अपने परिवार के साथ रही थी। विकास के नाम पर जिस तरह का बदलाव शहरों में हो रहा है, उसकी शिकार वह भी बन जाती है। अंततः वह अपनी गली और घर पहचान लेती है। उसको भी उसकी पुरानी पड़ोसन पहचान लेती है। एक स्थान पर उसे उसके नाम मीत से संबोधित किया गया है। उसके घर में रहने वाली स्कूल टीचर जब उसका वास्तविक नाम पूछती है तो वह अगली बार बताने का आश्वासन देकर वहाँ से निकल जाती है। यहीं पर उसके प्रेमप्रसंग का भी वर्णन है।

नाम की तलाश में उस स्टूडियो में भी जाती है, जहाँ बहुत पहले उसने स्कूल से जाकर रिकॉर्डिंग करवाई थी। वहाँ भी इतना पुराना रिकॉर्ड नहीं मिलता है। हर जगह से निराश लौट जाने के बाद भी वह हिम्मत नहीं हारती। वहाँ से पुनः रेलगाड़ी से अपने उस गाँव पहुँच जाती है, जहाँ पिता की मृत्यु के बाद और शादी के पहले तक का जीवन जिया था। रेलगाड़ी में बैठने के पहले वह उस कार्यालय का भी चक्कर लगाती है जहाँ उसके पिता कार्य करते थे। आशा की एक किरण उसे वहाँ भी नजर आई, पिता के कुछ पुराने साथी भी मिले जिन्होंने उसे पहचान लिया पर नाम की समस्या जस की तस बनी रही। यहाँ तक कि वह सोचती है कि उसे अपनी माँ का नाम भी याद नहीं रहा क्योंकि पिता का नाम तो अक्सर लोग ले किया करते थे पर माँ का नाम तो कभी कोई लेता ही नहीं था। वह या तो उसकी माँ थी या पिता की पत्नी। इसी तरह के उधेड़ बुन में वह अपने गाँव पहुँच जाती है। उसकी चाची उसे देखकर खुश होती हैं। ससम्मान उसको बिठाती हैं। उसकी उस कोठरी को साफ करवाकर उसमें रहने के लिए दे देती है। उसे लगा कि शायद यहाँ किसी पेपर में उसका नाम मिल जाए। कोठरी में माँ की पेटी ढूँढने की कोशिश करती है पर उसे वहाँ कुछ नहीं मिलता। वह चाची से भी अपना नाम पूछती है पर वे कहती हैं कि वे तो उन्हें बच्ची के नाम से ही जानती थीं। हाँ, चाचा की बात से यह झटका जरूर लगा जब उन्होंने उसे रोकने के कारण चाची को डाँटा क्योंकि उन्हें इस बात का डर था कि कहीं वह हिस्सा न माँगने लगे। गाँव उसका अंतिम आधार था अपना नाम ढूँढने का। वहाँ से भी वह बिना नाम के निकल जाती है। इसी अध्याय में एक लोकगीत है जो रिक्शावाला गाता है -

मैंने देखी / एक नदी / लौटते हुए / लौटते लौटते / हुए वह सोचती /
सोचते सोचते / ठिठक गई / नदी / और बेटी / का लौटना /
अच्छा नहीं / अच्छा नहीं।

यही उसके साथ होता है। कहीं भी जाकर उसे सफलता नहीं मिलती है। मायके में आकर तो बिल्कुल नहीं। यानि कहावतें भी ग्रामीण जीवन को गहराई से जानती हैं।

उसी आधार पर लोकगीतों की रचना होती है। हर जगह से निराश होकर वह अपना नाम स्वयं रखने की सोचती है। उपन्यास की कहानी का यहीं अंत होता है। किसी रचना के पीछे लेखक का अपना अनुभव होता है, उसकी अपनी रचना प्रक्रिया होती है। और उसे प्रस्तुत करने का अपना अंदाज होता है। हाँ, एक पाठक के रूप में मैं जितना समझ पाई उसके आधार पर यह जरूर कहना चाहूँगी कि एक कसाव होने के बावजूद कहानी बहुत प्रभाव नहीं छोड़ पाती। स्त्री अपने अस्तित्व के लिए जिस जद्दोजहद से लड़ती है, उसे उपन्यास समग्रता से बाँध नहीं पाया है। उपन्यास की कथा कहीं-कहीं फिल्म की रील की तरह घूमने लगती है और वास्तविकता से हट जाती है।

संपर्क : 9821371828

राजभाषा का राजपाट :

(प्रेम रंजन अनिमेष रचित ' दि हिन्दी टीचर' पर राजेन्द्र राव की टिप्पणी)

-राजेन्द्र राव

आजाद भारत में एक बड़ा काम यह हुआ कि हिंदी को राजभाषा बनाकर सरकारी कामकाज में लागू करने की जिम्मेदारी उस प्रशासनिक तंत्र को दी गई जिसे अंग्रेजों ने अपना राज चलाने के लिए बनाया था और विरासत में ज्यों का त्यों सौंप गए। पिछले कई दशक से हिंदी लागू करने के नाम पर चल रहे इस अनुष्ठान की कुछ खोज खबर कथा साहित्य में दृष्टव्य हुई है युवा कवि-कथाकार प्रेमरंजन अनिमेष की लंबी कहानी 'द हिंदी टीचर' (कथादेश-जून 2013) में। इससे पहले भी साहित्यिक रचनाओं में राजभाषा के रूप में हिंदी की अजीबोगरीब स्थिति का चित्रण होता रहा है परंतु पहली बार इसकी शक्ति और दुर्बलताओं पर गंभीरता से फोकस किया गया है।

कथा का नायक है सनातन शेषनाथ श्रेयस्कर जो राजभाषा सहायक के आरक्षित पद पर चयनित होकर एक सरकारी विभाग में आया है। वह अपने काम को बहुत गंभीरता से लेता है, क्योंकि उसे सचमुच हिंदी से लगाव है। आरक्षित वर्ग का होने और भाषा के प्रति उसके रचनात्मक दृष्टिकोण के चलते वह अपने सहकर्मियों के बीच उपहास और उपेक्षा का पात्र बना रहता है। एक सीधे-सादे भावुक और किंचित आदर्शवादी व्यक्ति के सामने क्या-क्या मुसीबतें आती हैं यह तो है ही मगर इस परिदृश्य के यथार्थ को उद्घाटित करते हुए कथाकार ने राजभाषा की दुर्गति का चित्रण बहुत पैनेपन से किया है, जहाँ अंग्रेजी के घटिया और फूहड़ अनुवाद के जरिये कागजी खानापूर्ती की जा रही है। एक राजभाषा सहायक (पंडित जी) अंग्रेजी के शब्द मैनहैंडिल का अनुवाद 'पुरुषसंचालन' करते हुए अपनी अधिकारी से प्रशंसा चाहते हैं। इस लंबी और रोचक कहानी का ताना-बाना बड़ी कुशलता और सूझ-बूझ से कुछ इस तरह बुना गया है कि अंग्रेजी और हिंदी की भाषाई सामर्थ्य का तुलनात्मक विवेचन बीच-बीच में आता रहता है। एक उदाहरण भाषा चाहे कोई भी हो, आदत की बात होती है। आदत लगने और लगाने की। बांगला में अपढ़ लोग भी, घरों में काम करने वाली बाई तक, सफाई को परिष्कार कहते हैं। भीषण, प्रचंड, दारुण, सांघातिक, व्यथा, अल्प आदि शब्दों का असाक्षर भी अपनी बातचीत के बीच सहज व्यवहार में करते हैं। ये दिमागी घोड़े दौड़ाने वाले जायें और इन शब्दों के बदले 'प्रचलित' अंग्रेजी शब्द क्लीनिंग, स्प्लेंडिड, ट्रेमॅडस, स्टुपेंडस, ट्युमुल्टस, वोल्प्सस, ग्रीफ, एगोनी, आयोटा, स्लाइटली आदि डालकर उनकी बोली और जिंदगी आसान कर दें। खूबी यह कि अवरोध न बनते हुए, हिंदी के पक्ष में एक जीवंत और सार्थक बहस अंतधार्रा के रूप में अंत तक चलते रहती है। सरकारी ढोंग और आडम्बर से ऊबकर श्रेयस्कर नौकरी छोड़ सड़क पर आ जाता है तो कुछ दिन की बेरोजगारी के बाद हिंदी की वास्तविक शक्ति से रूबरू होता है जो ग्लैमर की दुनिया के विराट बाजार के रूप में उसकी प्रतिभा का दोहन करती है। राजभाषा के अवतार में हिंदी की जो भी दशा हो, बाजार में वह एक बहुत बड़ी भाषा है। अनिमेष चूँकि स्वयं जाने-माने कवि हैं। अतः कहानी में श्रेयस्कर की मनोस्थिति को बताने के लिए उन्होंने उसके द्वारा रचित छोटी-छोटी कविताओं का बहुत कारगर प्रयोग किया है।

(जागरण, 18 जुलाई 2013 से साभार)

प्रेम रंजन अनिमेष का उपन्यास '.....' (स्त्रीगाथा): स्त्री-अस्मिता का अविरत अन्वेषण

- डॉ. नियति कल्प

स्वानुभूतिपरक साहित्य और सहानुभूतिपरक साहित्य, उक्त दो विचारधारओं से जुड़े शब्दों को लेकर विद्वानों के मध्य बहस होती आई है। एक वर्ग का कहना है कि स्वयं के द्वारा भोगी या सही गयी वेदना और टीस की सटीक अभिव्यक्ति कोई दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता। वहीं दूसरा वर्ग, सहानुभूति के आधार पर रचे गए साहित्य को भी उतना ही संवेदनशील और मर्मस्पर्शी मानता है जितना कि स्वानुभूतिपरक को। लंबे समय से विविध विमर्शों पर आधारित साहित्य की सर्जना हो रही है जिनमें स्त्री विमर्श मुख्य है। इस विमर्श पर भी वही पुरानी बहस छिड़ी हुई है कि जितना एक स्त्री को स्वयं स्त्री-मनोविज्ञान की परख और पकड़ हो सकती है, उसका अंदाजा एक पुरुष सटीक ढंग से नहीं लगा सकता, क्योंकि भोगे हुए यथार्थ के चित्रण में अधिकाधिक जीवंतता और सजीवता का एहसास पाठकों को होता है। कमोबेश एक स्त्री होने के नाते मेरी भी धारणा यही बनी हुई थी जब तक मैंने प्रेम रंजन अनिमेष के उपन्यास '.....' (स्त्रीगाथा) को नहीं पढ़ा था। अनिमेष जी की उक्त रचना को रचनाकार का बगैर नाम या लिंग जाने कोई पाठक यदि पढ़े तब मैं यह बात दावे के साथ कह सकती हूँ कि यह कोई अनुमान भी नहीं लगा पायेगा कि उक्त उपन्यास का लेखन किसी पुरुष ने किया है। स्त्री मन के कोने-कोने तक झाँक आना, उसे समझना, परखना बहुत बड़ी बात है। स्त्री लेखिकाओं की रचना की दृष्टि में यह सामान्य बात प्रतीत होती है। परंतु एक पुरुष का इस कदर संवेदनशील होकर, उसकी स्त्री मन विषयक रचना में जीवंतता और सजीवता की प्रस्तुति देख कर यह अनुभव होता है कि उसे स्त्री मन और स्त्री मनोविज्ञान की कितनी गहरी पकड़ है। एक पुरुष लेखक द्वारा स्त्री-मनोविज्ञान की यही गहरी और सूक्ष्म पकड़-परख एक स्त्री को आश्वस्त करती है कि स्त्री तुम अकेली नहीं हो। तुम्हें समझने वाला, तुम्हारे मन की अन्तर्वेदना और गहराई को समझने वाला, तुम्हारा साथ निभाने वाला पुरुष है। अपनी पुस्तक 'मीरा नाची : स्त्री-मन की कहानियाँ' की भूमिका में प्रसिद्ध लेखिका मृदुला गर्ग ने लिखा है- 'वैयक्तिक धरातल पर प्रेम का प्रतिफलन, आर्थिक निर्भरता, प्रकृति का साहचर्य, पुरानी और अगली पीढ़ी से संघर्ष या सहयोग, मुझे उसी तरह प्रासंगिक लगते हैं जैसे अन्य संवेदनशील मनुष्य को, पुरुष हो अथवा स्त्री। यानी कसौटी लिंग नहीं, संवेदनशीलता है। स्त्री का अनुभव संसार पुरुष के अनुभव संसार से भिन्न तभी माना जा सकता है जब हम मान कर चलें कि स्त्री-पुरुष की संवेदन शक्ति के बीच नैसर्गिक अंतर होता है। ऐसा मानने के लिए मेरे पास कोई वैज्ञानिक या तर्कसम्मत कारण नहीं हैं।'

भारतभूषण अग्रवाल और कृष्ण प्रताप स्मृति पुरस्कार से सम्मानित प्रेम रंजन अनिमेष की मुख्य तौर पर कवि के रूप में प्रसिद्धि रही है, परंतु कथा-साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी लेखनी उतनी ही प्रखर, प्रभावपूर्ण और धारदार है। सरल और सहज बोलचाल की भाषा का पुट लिए उनकी कहानियाँ हों या फिर उपन्यास, पाठक एक साँस में उन्हें

पढ़ने के लिए बाध्य हो जाता है। यों तो उन्होंने उपन्यास कई लिखे हैं परंतु प्रस्तुत आलेख में मैंने उनके उपन्यास '.....' (स्त्रीगाथा) को लिया है। कारण भी वाजिब है कि उक्त उपन्यास का शीर्षक औरों से भिन्न और अनोखा है। जैसा कि 'स्त्रीगाथा' के पहले इकहरे उद्धरण चिह्न में मात्र बिन्दु संकेतों का होना, जो खाली जगह को द्योतित कर रहे हैं। या तो वे इस बात के प्रतीक हैं कि लिखी गई गाथा किसी भी स्त्री की हो सकती है या फिर स्त्री-जीवन के उस खालीपन के द्योतक हैं जो पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करते-करते उसके अपने अस्तित्व को खतरे में डाल देते हैं- कि उसे अपना नाम तक याद नहीं रह जाता! प्रसिद्ध विचारक राजकिशोर अपनी पुस्तक 'स्त्री-पुरुष कुछ पुनर्विचार' में, किंचित् तिक्तता के साथ लिखते हैंः 'विवाहित स्त्री का कोई अपना नाम भी है, उसकी कोई अपनी पहचान भी है, यह जानने की कोई जरूरत नहीं है। वह तो बस श्रीमती है– किताब पर चढ़ी हुई जिल्द की तरह, अँगूठी में जड़े हुए नग की तरह, शरीर के साथ चलने वाली छाया की तरह या बहुत कड़वे ढंग से कहा जाये तो कुत्ते के साथ उसकी हिलती हुई दुम की तरह।' देखा जाय तो एक स्त्री की अस्मिता, उसकी पहचान यही है कि वह किसी की बेटी है, बहन है, पत्नी है या माँ है। उक्त रिश्तों के मध्य उसकी सारी दुनिया सिमटी हुई है। वह स्वयं क्या है, उसे पता ही नहीं है। स्त्री के खुद को, स्व को पहचानने की तलाश पर केन्द्रित है यह उपन्यास।

उपन्यास की पूरी कथा कुल नौ अध्यायों में विभाजित है, जिसमें पहले अध्याय को छोड़कर बाकी सभी के नाम यानी शीर्षक हैं। पहला अध्याय रिक्त यानी बेनाम है। दूसरा 'संबंधवाचक', तीसरा 'परिचयपत्र', चौथा 'अनुत्तरित', पाँचवाँ 'अनारक्षित', छठा 'मेले में खोया बच्चा', सातवाँ 'घर का नाम प्यार का नाम' ,आठवाँ 'लौटती हुई नदी' और नौवाँ और आखिरी अध्याय 'पानी की पगडंडी' है।

आलोच्य उपन्यास का कथानक एक आम घरेलू स्त्री के इर्द-गिर्द बुना गया है। औपन्यासिक तत्त्वों के आधार पर वह उपन्यास के चरित्र-पात्रों में मुख्य भूमिका में है। आम दिनचर्या में घर के कामकाज में रत 'स्त्री', जिसे पति से लेकर बच्चों तक की जिम्मेदारी और बच्चों से लेकर पूरे घर-संसार के भार का निर्वहन करना है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो स्त्री है तो घर है। स्त्री के घर की डोरबेल बज रही है। वह बर्तन माँज रही है। इसी दृश्य से प्रथम अध्याय का आरंभ होता है। पानी लगने से उसके हाथ के नाखून खँदड़ जाते हैं। इसके बावजूद वह पानी से दूर नहीं रह सकती...कारण कि वह एक 'स्त्री' है। दरवाजा खोलने पर तीन औरतों का समूह 'जागो बहना' नामक मोर्चे से उससे मिलने घर आता है। उनका ध्येय औरतों के हक में आवाज उठाना, उनके खिलाफ अनाचार रोकना, दुराचारियों को फाँसी की सजा दिलवाना आदि है। इस अपील के पक्ष में कई स्त्रियों के हस्ताक्षरों के पृष्ठ में वे स्वयंसेविकाएँ उस स्त्री को भी अपना हस्ताक्षर कर उस कतार में जुड़ने को कहती हैं। परंतु हस्ताक्षर करने को ज्यों ही स्त्री कलम उठाती है उसका निर्णय पलक झपकते बदल जाता है। अपने पति से पूछकर ही वह हस्ताक्षर करेगी, ऐसा कह वह उन लोगों से माफी माँगती है। महिलाएँ हतप्रभ रह जाती हैं कि आखिर उसने अपना निर्णय अचानक ही क्यों बदल दिया? वे उसे समझाने की कोशिश करती हैं पर स्त्री स्पष्ट उनसे कहती है- 'जी...मैंने कह दिया। अभी...

हस्ताक्षर मैं नहीं कर सकती। अपना निर्णय मैंने बता दिया। इसका तो....अधिकार है न मेरा? अब आप कृपया... मुझ पर और दबाव ना डालें। प्लीज! फिलहाल मैं इस पर और बात करना नहीं चाहूँगी।' महिलाएँ अपना- सा मुँह लेकर लौट जाती हैं।...कारण सिर्फ और सिर्फ उसे पता है कि वह हस्ताक्षर क्यों नहीं कर पायी...। क्या वह अपढ़ या निरक्षर है, इस कारण?...नहीं, क्योंकि वह अपना नाम ही भूल गयी है! स्त्रियों की दशा पर विचार करते हुए अपने लेख 'महिला दिवस के मायने' में सामाजिक कार्यकर्ता एवं लेखिका स्व. कनक ने लिखा था- 'हम औरतें (यहाँ संदर्भ हिंदू औरतों से है) सदियों से तीज, करवा चौथ, जितिया और तरह तरह के व्रत त्योहार करती रही हैं। कभी निराहार, तो कभी पानी तक नहीं पीतीं कि पति और पुत्र तथा परिवार (जिसमें बेटियाँ शामिल नहीं हैं) सुखी हों। इसी को स्त्री पर्व कहा जाता है।' घर के प्रति जिम्मेदारियों के निर्वहन में ही स्त्रियों का जीवन-मूल्य मान लिया जाता है।

नाम को भूल जाना यानी स्वयं को भूल जाना। नाम पर्याय है व्यक्ति के अस्तित्व का। कारण है उसके जीने का। नाम बनता भी है, बिगड़ता भी है। बदलता भी है। गुम भी हो जाता है। यही कारण है कि मानव जीवन के सोलह संस्कारों में नामकरण संस्कार एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। पहले अध्याय के शीर्षक न होने का अर्थ अध्याय के अंत में समझ में आता है कि शीर्षक की जगह मात्र बिंदु संकेतों से काम लेखक ने क्यों लिया है! इकहरे उद्धरण चिह्न में प्रयुक्त शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा होता है। परंतु यहाँ व्यक्ति तो है पर उसकी संज्ञा नहीं है। उद्धरण चिह्न में बेनाम चंद बिन्दु....इससे बेहतर प्रतीक अपने नाम का विस्मरण कर जाने वाली स्त्री के लिए क्या हो सकता है! यह बिल्कुल सार्थक और सटीक है।

उपन्यास के नौ अध्यायों में दूसरा शीर्षक 'संबंधवाचक' है, जिसमें बड़का माई के भोजपुरी संवादों में स्वाभाविकता लक्षित होती है। एक संवाद द्रष्टव्य है-

स्त्री कहती है- 'अभी क्यों जा रही हो माई! बुखार उतर गया पूरा?

बड़का माई- 'हँऽ! अब नीके बा। चलीं। लरिका फरिका के आवे के बेर भइल।'

स्त्री के नाखूनों में पानी लगने के बाद बड़का माई और पन्नी-चिमचिमी ही उसके साथी हैं। उक्त दोनों उसके घरेलू काम-काज में हाथ बँटाते हैं। जहाँ पन्नी उसके हाथों का, पानी से बचाव का सुरक्षा कवच है, वहीं बड़का माई उसके घर के काम कर उसकी मदद करती है। स्त्री संवेदनशील है, जिस कारण वह बड़का माई के बीमार होने पर उसे अपने घर में ही रोक लेती है और उसकी दवा करती है। बड़का माई का पति शराबी है। साथ ही उसने दूसरी शादी भी कर रखी है। बड़का माई को मार-पीट कर वह उसके पैसे छीन लेता है। जितना स्नेह वह बड़का माई से करती है, उतना ही बड़का माई उससे। वह उसे मलकिन कहकर पुकारती है। पर स्त्री का मन करता है कि वह उसे उसका नाम लेकर पुकारे... उसका नाम! रात में पति शराब के नशे में उससे प्यार करने के समय दुनिया की सारी खूबसूरत चीजों की उपमा उसे देता है पर उसका मन उन उपमाओं से तुष्ट नहीं होता। वह चाहती है कि पति उसे उसके नाम से संबोधित करे, उसे अपने नाम की तलाश है। उसके मन में सबसे बड़ा प्रश्न यह अवस्थित है कि वह कौन है, क्यों है और किसलिए? अपने नाम यानी अपनी पहचान से वह दुनिया में जीना

चाहती है, पर उत्तर उसे मिल नहीं पाता है। पूर्णमासी के स्नान के लिए जब मस्टराइन चाची उसके दरवाजे पर दस्तक देती है तो वह जान-बूझकर दरवाजा खोलने में वक्त लगाती है ताकि वे उसे आवाज देकर बुलायें। पर चाची की पुकार में भी उसकी इच्छा पूरी नहीं होती...। चुन्नू की माँऽ ...तक ही बात रह जाती है। स्नान के लिए नदी पर जाने के लिए रिक्शावाले को रिक्शा पुकारा जाना उसे अच्छा नहीं लगता है। इस कारण वह रिक्शेवाले से उसका नाम भी पूछती है। परंतु रिक्शा वाला भी यही कहता है कि नाम से अपना क्या लेना देना! मस्टराइन चाची भी उससे कहती हैं- 'नाम से कुछ नहीं होता। आदमी अपने काम अपने बात व्यवहार से जाना जाता है। अपने कुल शील खानदान बंस बिरादरी से...।'

स्त्री मस्टराइन चाची का भी नाम जानना चाहती है, पर मस्टराइन चाची ने भी परिस्थितियों से समझौता कर लिया है या फिर उन्होंने कभी इस बात पर गौर ही नहीं किया है। पति मास्टर जी हैं, इसीलिए उनका नामकरण पति के आधार पर मस्टराइन हो गया है। उनका मानना है -'अपना तो जीवन ही दूसरों के लिए है। 'वैसे उनका नाम गिरिजा है, जो उनके पति द्वारा बनवाये गये मकान का 'गिरिजा भवन' नाम रखने का आधार है। इसमें भी पति का ही बड़प्पन है। पति अपने बड़प्पन को दर्शाते हुए कहता है-'अरे भाई...तुम्हारा ही नाम है.! घर तुम्हारे नाम कर रहा हूँ।' समाज की इसी पुरुष-अहंवादी सोच की ओर इशारा करते हुए विचारक राजकिशोर ने भी कहा है- 'जो सामाजिक स्थितियाँ रही हैं, उन्हें देखते हुए स्त्री का नाम महत्वपूर्ण था (है) भी नहीं। नाम की जरूरत उसे पड़ती है, जिसके पास कुछ भौतिक संपदा हो। स्त्री इस मामले में सच्ची सर्वहारा है। पति का नाम जगह-जगह दर्ज होता है, क्योंकि घर उसके नाम से होता है, जमीन उसके नाम से होती है, वंश वृक्ष उसके नाम पर चलता है। स्त्री का तो उस धन पर भी वश नहीं रहता, जो वह अपने शरीर के साथ मायके से ले आती है। फिर वह उठाऊ चीज भी है। पुरुष अपनी जगह पर स्थिर होता है - स्त्री को विवाह के बाद उसके पास आना पड़ता है। एक चलती-फिरती चीज को नाम की जरूरत ही क्या है!' हालाँकि तेजी से बदलते हुए सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में चीजों में बदलाव आ रहा है, परंतु स्त्रियों की स्थिति, उनका परिचय अभी भी परावलंबी ही है।

अध्याय के तीसरे क्रम का शीर्षक 'परिचयपत्र' है। स्त्री स्वयं को पुकारना चाहती है, जानना चाहती है, परंतु अफसोस इस बात का है कि उसके पास उसके नाम का कोई भी साक्ष्य नहीं है। चूँकि लड़का यानी उसका पति मैट्रिक फेल था, इस कारण उसके ससुराल वालों को कम पढ़ी लिखी लड़की चाहिए थी जो सुशील हो और घर के कामों में कुशल। इसी कारण स्त्री के घर वालों ने उसके बीए में पढ़ने की बात लड़के वालों से छुपा ली थी और साथ ही छुपा लिया था उसका परिचय... क्योंकि उसके पास ऐसा कोई प्रमाणपत्र नहीं था जिस पर उसका नाम हो। वह राशनकार्ड में, अपनी शादी के कार्ड में, यहाँ तक कि रेडियो के फरमाइशी गानों में, बक्से पेटी में अपना नाम ढूँढती है। बक्से में खोजबीन के दौरान काफी कुछ मिलता है पर उसका नाम नहीं। लेखक की भाषा की लाक्षणिकता, उसकी चित्रोपमयता उक्त संदर्भ में दर्शनीय है। 'खोजबीन में बच्चों की एक मनोहर पोथी हाथ आयी। लेकर बैठ गयी। कितने अक्षरों का था उसका

नाम! तीन...? चार...? कौन सा स्वर था उसमें? पहले पृष्ठ पर एक अक्षर था। अक्षरों को एक दूसरे से जोड़कर हटा कर देखना शुरू किया। कितने सारे मंत्र बन गये पर एक नाम नहीं बना। एक उसका नाम! सारे स्वर व्यंजन खड़े थे ग्लानि में सिर झुकाये हुए.....।' वह अपना नाम जितना याद करने की कोशिश करती उतना ही उसे वह याद नहीं आता। अपनी माँ की चिट्ठी रूपी अंतिम निशानी में उसे सुख-दुःख सब मिलते हैं पर अपना नाम नहीं, क्योंकि चिट्ठी पर पता उसके ससुर के नाम से था। नींद में, सपने में भी उसे अपने नाम की तलाश है। विवाह के समय उसकी ससुराल की परंपरानुसार उसके गोदने में भी जो उसकी बाँह पर था, उसका पति ही विराजमान था - क्योंकि उस पर खुदा नाम उसका न होकर उसके पति का था। उपन्यास के चौथे अध्याय का शीर्षक 'अनुत्तरित' है। स्त्री, मंदिर में महात्मा जी से अपना नाम भूल जाने की समस्या का निराकरण चाहती है। महात्मा जी स्त्री के नाम भूलने की समस्या पर कहते हैं- 'यह तो... यह तो वह महान अवस्था है जो ऋषि मुनियों को भी दुर्लभ होती है....। नाम से कौन उबर पाता है इतनी जल्दी! जो सब भुला देता है, वही उसे स्मरण कर पाता है धन्ये! अपने आपको पूरा खोकर ही उसे पा सकोगी। जय हो! समझो यह निर्वाण की पहली सीढ़ी है।' परंतु स्त्री की समस्या हल नहीं होती। वह अनायास मंदिर से घर जाने की बजाय स्टेशन पहुँच कर एक महिला की मदद से रेलगाड़ी के डिब्बे में बैठ जाती है। अपनी तलाश में भटकती स्त्री अपनी चप्पलें तक लेने का इंतजार नहीं करती जो उसने मंदिर के बाहर उतारी थीं।

पाँचवाँ अध्याय 'अनारक्षित', गाड़ी के चल पड़ने से आरंभ होता है। अपने ख्यालों में खोई पहली दफा वह घर से भाग रही होती है...अपने शहर की ओर। शहर में पली-बढ़ी, पढ़ी लड़की अपनी सारी सुख-सुविधाओं और अपनी स्वतंत्रता को भूल, विवाह के बाद गाँव में मात्र एक बंद कोठरी में रहने को मजबूर होती है क्योंकि वह वहाँ बहू की भूमिका में होती है। ससुराल की यादों की श्रृंखला उसकी तब टूटती है, जब टीटीई, टिकट बनाने के लिए उस बेनाम स्त्री का नाम पूछता है क्योंकि वह आरक्षण वाले डिब्बे में बैठी होती है। वह 'बेनाम' स्त्री टिकट बाबू की सलाह से साधारण डिब्बे में जाने को तैयार हो जाती है क्योंकि वहाँ टिकट के लिए नाम की दरकार नहीं होती।

छठे अध्याय 'मेले में खोया बच्चा' में गाड़ी उसके शहर में दाखिल होती है। पंद्रह साल बाद अपने शहर में कदम रख अपने लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाने से पहले चप्पलें खरीद कर वह चल पड़ती है अपने कॉलेज की ओर। कॉलेज किसी छात्र-छात्रा के प्रेम-प्रसंग के बढ़ते विवाद को लेकर लंबे समय से बंद था। बूढ़े चपरासी की मदद से वह कक्षा में पहुँचकर बेंचों पर चढ़ी धूल को हटा-हटाकर कुरेदे गये नामों में अपना नाम ढूँढने की कोशिश करती है, परंतु वहाँ भी उसे अपना नाम नहीं मिलता है। हरिहर बाबू जो इतिहास के प्राध्यापक थे, उसे कॉलेज की वार्षिक पत्रिका के पिछले पच्चीस वर्षों के अंक भी दिखाते हैं। वह जानती है कि पत्रिका में उसने कभी कुछ लिखकर नहीं दिया था फिर भी वह अंकों को उलट कर देखती है कि क्या पता....? सातवें अध्याय 'घर का नाम प्यार का नाम' में अपने शहर में अपने घर को ढूँढ़ने के क्रम में उसकी मुलाकात गुमटी में बीड़ियाँ बनाते मौलवी साहब से होती है जो उसे रोककर बीड़ी का

एक मूठा पकड़ा देते हैं क्योंकि स्त्री के पिता के कुछ पैसे मौलवी साहब के पास रह गये थे। उसे याद आता है कि उसके पिता की बीमारी के बाद डॉक्टर ने उन्हें दिन में दो से अधिक बार धूम्रपान करने को मना कर दिया था। घर पहुँचने पर दरवाजे पर ताला लटकता मिलता है, फिर भी वह एक उम्मीद से घंटी बजाती है। वह दरवाजा न खुलना था और न ही खुला...। उसकी बगल का दरवाजा खुला क्योंकि नीचे के हिस्से में दो किरायेदार थे। बगल की स्त्री उसे पहचान जाती है और 'ओ राधे!' कहकर उसके गले से लिपट जाती है। बहुत पुराना परिचय था दोनों का- राधा-कृष्ण सरीखा। घर में भीतर प्रवेश करने पर वह रंग रोगन वाली दीवारों की भी जाँच करती है कि शायद उन दीवारों पर भी कहीं उसे अपना नाम मिल जाय। सुबह नहाते समय उसे याद आता है अपना पहला प्रेम! उसके घर के सामने ही रहता था वह, जिसने उसे काम पर जाते समय इंतजार करने को कहा था। परंतु पिता की मृत्यु के बाद सब कुछ बदल गया। उसकी पढ़ाई छूट गयी, शहर भी छूट गया और साथ में छूट गया उसके प्रथम प्रेम का इंतजार...। अपनी माँ के साथ वह गाँव आ गयी, जहाँ उसके चाचाजी की छत्रछाया थी। चाचा ने अपना वास्तविक रूप उजागर कर दिया। उसके पिता के हिस्से के खेत बेचकर पिता की बीमारी के इलाज के लिए दिये गये रुपये वसूल लिए और बाकी के पैसों से भतीजी की शादी ठीक कर दी। लड़के वालों को झूठ बोला गया कि लड़की मैट्रिक पास नहीं है। चाचा ने लड़के वालों से विवाह-संबंधी किया वादा निभाने में भी कमी-कटौती कर दी, जिसकी सजा भतीजी को ऐसी मिली कि फिर वह अपनी माँ से कभी भी नहीं मिल पायी। छह महीने बाद उसकी माँ के गुजरने की खबर आयी जिसके साथ ही उसे गाँव से जोड़े रखनी वाली डोर ही टूट गयी। वह उसका अपना गाँव उसके लिए अस्तित्वहीन हो गया। आठवें अध्याय 'लौटती हुई नदी' में स्त्री अपना 'परिचयपत्र' और 'प्रमाणपत्र' माँ की पेटी में होने की आशा में गाँव जाने का मन बनाती है। वहाँ जाने के पूर्व वह आकाशवाणी केंद्र जाती है, इस आशा के साथ कि शायद उसकी पंद्रह साल पहले की रिकॉर्डिंग का कोई रिकॉर्ड हो, जिसमें शायद उसका नाम हो। परंतु वहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगती है।

'पानी की पगडंडी' शीर्षक अंतिम अध्याय में वह गाँव पहुँचती है। रास्ते में एक लड़के को चावल के दानों पर लोगों के नाम लिखते देख उसका मन होता है कि वह अपने माता-पिता का नाम लिखवा ले। पिता का नाम उसे याद है क्योंकि ससुराल में सास के ताने अक्सर उसे उसके पिता के नाम से मिलते रहे। '...रामलच्छन की बेटी ऐसा नहीं चलेगा....रामलच्छन की बेटी ने ये कर दिया.... रामलच्छन की बेटी के यही लच्छन हैं....!' लेकिन माँ का नाम लाख कोशिश करने के बाद भी उसे याद नहीं आता है। घर का दुआर वैसा ही होता है जैसा पहले था। चाचाजी पास के गाँव गये हुए होते हैं। चाची उसे घर के भीतर ले जाकर गले लग कर कुछ देर तक रोती रहती है। रात में चाची और चाचाजी की बातचीत से उसकी नींद खुलती है। चाची-चाचा को बता रही होती हैं कि बच्ची जी अपनी माँ की पेटी के बारे में पूछ रही थीं। चाचा साफ शब्दों में कहते हैं- 'माँ की पेटी रखी है अब तक? उसके गुजरने पर ही दान कर दिया था सब! कौन से जेवरात भरे थे उसमें! बाकी चीजें राख के साथ बहा दी थीं। कह देना। अब

कुछ नहीं मिलने वाला...! 'चाची उन्हें समझाने की कोशिश करती है कि घर आई बेटी को कैसे सीधे चलता कर देती! चाचा का चाची को दिये गये जवाब को सुन वह सकते में आ जाती है। चाचा कहते हैं- 'मैंने तो सोचा मर खप गयी होगी। फिर प्रकट हो गयी जाने कहाँ से। अकेले आयी है। पता नहीं दिमाग में क्या है! आज माँ की चीजें माँगी हैं....कल माँ का हिस्सा माँगेगी। कुछ इंतजाम करना होगा इसका। दिमाग ठिकाने लगाना होगा। कल ही रास्ता दिखाता हूँ मैं! 'चाचा-चाची की बातचीत सुन वह अस्तित्वहीन स्त्री काँप उठती है। उसके चोट खाये हुए मन में विचार उठता है- 'इन्हीं अपनों के बीच अपनी पहचान तलाशने आयी थी वह? अपने अंतिम आश्रय....आखिरी आसरे की तरह...। यहाँ तो अपना चेहरा भी खो देगा कोई! ...अपनी पहचान पर से गुजर कर चली गई थी जहाँ भेजा गया था...चुपचाप...। पहचान खत्म होने के बाद भी वह बची हुई है। इसे देखकर कोई खुश नहीं है। पूरा खत्म कर देने की साजिश हो रही है...।' सुबह होते ही वह चाची से मिली और घर से निकल गई। अब उसे अपना नाम जानने की कोई इच्छा नहीं थी। उसके मन में विचार आता है कि अगर उसे माँ की पेटी में उसका नाम मिल भी जाता तो वह भी किसी के द्वारा दिया गया नाम ही होता। एक नई सोच के साथ वह एक संकल्प लेती है- 'वह खुद अपना एक नाम रख लेगी। आप अपना नामकरण! अनामा ही सही...या स्वनामधन्या...! सोचेगी पहले अच्छी तरह। और चावल के दाने पर लिखवा लेगी। या बाँह पर जो फूल और मछली के बीच किसी और का नाम है उसे मिटाकर...उसकी जगह...। फिर नहीं भूलेगा उसका नाम कभी...!' उधर चाची अपने छोटे बच्चे को घर के अंदर बुलाकर पूछती है- 'क्या तुम्हें मेरा नाम मालूम है...?' इन्हीं पंक्तियों के साथ उपन्यास की कथा का समापन होता है।

रचनाकार अपने आस-पास के परिवेश से गहरे रूप से संबद्ध होता है। चाहे किसी घटनाक्रम का चित्रण हो, पात्र-विशेष के चरित्र-चित्रण की बात हो या फिर मानव मन की थाह का बारीक अभिचित्रण। उसकी सूक्ष्म पर्यालोचना, उसके अनुभव ही उसकी रचना को मौलिकता और नवीन चेतना से युक्त करते हैं। उपन्यास को पढ़ने के बाद यह सहज अंदाजा लगाया जा सकता है कि लेखक ने कितनी बारीकी के साथ स्त्री-मनोविज्ञान को समझ कर उसे रोचक ढंग से पकड़ने की चेष्टा की है। सहज-सरल भाषा-शैली और हर अध्याय में उपस्थित रोचकता ने कथाक्रम को विश्रृंखल होने नहीं दिया है। भोजपुरी संवादों से यह सहज पता चलता है कि लेखक को भोजपुरी भाषा की गहरी पकड़ है। अंतिम अध्याय में टमटम पर रिक्शावाला द्वारा गायी जाने वाली सुंदर पंक्तियाँ लेखक के कवि होने का भी पर्याय हैं। उपन्यास के नौ अध्याय यानी स्त्री अस्मिता की तलाश के नौ चरण! पहले अध्याय से यानी बेनाम स्त्री की गाथा अंततः नौवें अध्याय में स्त्री द्वारा स्वयं का स्वयं द्वारा किये गये नामकरण से समाप्त होती है। समग्र रूप से उक्त उपन्यास स्त्री-अस्मिता को व्याख्यायित कर पाने में पूर्णतः सक्षम है। लेखक अपनी रचना में सफल तब होता है जब उसकी मनोभावना और मनोधारा को पाठक उसी तरह से आत्मसात कर ले। प्रेम रंजन अनिमेष उक्त निकष पर बिलकुल खरे उतरते हैं।

- सहायक प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

गहरे मानवीय सरोकारों से भरी 'चंद खिलौनों की दास्तान...'

– चंदकला त्रिपाठी

सुप्रसिद्ध रचनाकार प्रेम रंजन अनिमेष की ' चंद खिलौनों की दास्तान...' में वस्तुतः कई छोटी-छोटी कहानियाँ हैं, जो अपनी स्वयं संपूर्ण पहचान के साथ सघन मानवीय सरोकारों वाली वृहत कथा में विन्यस्त होती हैं। कविताओं के क्षेत्र में अनिमेष का नाम बहुत जाना पहचाना है- और इस बड़े कैनवस वाली कथा के भीतर रची बसी कहानियों को एक कवि की गद्य रचना के रूप में पढ़ना अलग तरह का अनुभव प्रदान करता है। कवि की कहानी से तात्पर्य एक ऐसी काव्य-भाषा से है, जो प्रायः इतिवृत्तात्मक नहीं होती, तथा ठोस ब्योरे और विवरण जिसमें बँधे बँधाये तरीके से नहीं आते और जो जीवन, अनुभव और सार तत्वों को अपनी भावात्मक लय में पिरो कर रखती है। कहानियों को पढ़ते हुए उनका विशिष्ट शिल्प भी आकर्षित करता है, जिसे अनिमेष ने अपनी मिट्टी और लोक-परंपरा से जुड़कर अन्वेषित किया है।

अनिमेष के पास कि स्सागोई का बड़ा लोक-रंग-रूप-राग है, जो इन्हें अपनी मिट्टी और जमीन से जोड़ता है। यहाँ ऐसे बड़े फलक की और कहानियाँ याद आती हैं, जैसे- 'अरेबियन नाइट्स'। उसमें भी जागने के लिए और जागे रहने के लिए कहानियाँ सुनायी गयी हैं। अनिमेष की रचनात्मकता के साथ जीवनमूल्यों और जीवनानुभवों के कई गहरे रंग जुड़े हुए हैं, जिन्हें अपनी रचनात्मक प्रविधि में बड़े कायदे से वे सामने रखते हैं। इनमें सबसे गहरा और गाढ़ा रंग है भूमंडलीयकरण के विस्तार का - जिसकी अपनी राजनीति है, अपना सामाजिक पक्ष है, और साथ ही साथ मानवीय संबंधों और संवेदनाओं पर उसके दूरगामी प्रभाव भी। अनिमेष उनकी भी सटीक पहचान और गहरी पड़ताल करते हुए उन्हें अपने सृजन के जरिये सामने लाते हैं ।

दरअसल 'चंद खिलौनों की दास्तान' के मुख्य कथा सूत्र से जुड़कर उसकी सभी कहानियाँ आगे बढ़ती चली जाती हैं - उन खिलौनों के मार्फत, जो चारागर के निर्देश के मुताबिक बूढ़े बाबा को बचाने की खातिर रात भर चलने वाले इलाज के दौरान बारी-बारी से कोई न कोई कहानी सुनाते हैं। गौरतलब है कि अनिमेष अपने भाषायी व्यवहार और बर्ताव के जरिये स्मृतिकोश के उस हिस्से तक भी पहुँचते हैं, जिसमें वैद, हकीम, चारागर और ऐसे ही कितने ही शब्द साँस ले रहे हैं। कोई रचनाकार अगर भाषा में उसकी स्मृतियों को लाता है, उसकी परंपरा को रखता है, और उसके 'विजन' को पुनर्जीवित करता है, तो यह बहुत बड़ा काम है। खासकर आज के इस दौर में, जब इतनी ज्यादा विस्मृति है, बहुत जरूरी है उस परंपरा के साथ भाषा और उससे जुड़ी संवेदना को ज़िंदा रखना। कहानियों में बहुत सारे शब्दों को पढ़ते, उनकी अनुगूँजों को सुनते गुनते बहुत कुछ याद आता है। इस चारागर की अपनी शर्तें हैं। वह कहता है- मुझे रात भर जाग कर इलाज करना है। तो जगाने वाली, जगाये रखने वाली कहानियाँ चाहिए! यहाँ एक दुनिया खड़ी होती है - जिसमें कुछ बच्चे हैं और कुछ खिलौने। ये खिलौने बीड़ा उठाते हैं कभी उस बूढ़े बाबा से ही सुनी कहानियाँ एक-एक कर सुनाते हुए रात

भर जगाने और उसकी डूबती हुई साँसों को सहेजने का! इस तरह खिलौनों के भीतर मनुष्य को बचाने का विवेक भरना दरअसल उस कलाकार को बचाने का यत्न है, जिसने बाजार की चमक दमक और चकाचौंध को छोड़ कर अपनी मिट्टी से उन्हें गढ़ा है। यहाँ जो एक प्रतिरोध का पक्ष है, वह बड़ी सूक्ष्मता से तमाम कहानियों में उभरता चला जाता है। वह अपने समय की विसंगतियों की बड़ी गहराई से पड़ताल करते हुए उनसे टकराता है- और वहाँ भी पहुँचता है, जहाँ तक आम तौर पर निगाह नहीं जाती ।

समय का उलथा तो सभी कर रहे हैं, अखबार भी। लेकिन कथाकार, कवि या साहित्य की किसी भी विधा से जुड़े व्यक्ति का काम समय का उलथा करना नहीं है। उसका काम कुछ इस तरह का है, जैसे पूरा का पूरा कपड़ा उधेड़ना और फिर से बुनना। अनिमेष की कहानियाँ भी पूरे परिदृश्य के पट परिधान के कमजोर धागों की पहचान करते हुए वहाँ तक पहुँच कर सार्थक हस्तक्षेप करती हैं। समय के कपड़े में जहाँ भी कमजोर धागे हैं, और जिस तरह समाज के आम जन को कई स्तरों पर बेदखल किया जा रहा, पूरे परिदृश्य से परे हटाते हुए- ये कहानियाँ कहीं सम्पूर्ण व्यंजना से उन्हें अभिव्यक्त करती हैं तो कहीं गहरी करुणा के साथ। मिसाल के तौर पर कहानी 'अगले जनम...', में धोबी इस डर से मर जाता है कि अगले जनम में उसे गधा न बनना पड़े। पत्नी आश्वस्त करती है कि अभी तो उसे स्त्री बन कर मानुस जनम पूरा करना है, इसलिए निश्चिंत रहे। अगला जनम उसका गधे वाला होगा ही नहीं। यह सुन कर पहले तो तसल्ली होती है उसे, मगर फिर आँखों से नींद उड़ जाती है (कि अब उसकी औरत होने की बारी है, जो शायद कुछ भी और होने से कहीं अधिक भारी है)!

'चंद खिलौनों की दास्तान' जीवन जगत की विसंगतियों की पड़ताल कई रूपों में करती है और यह भी गौरतलब है कि बूढ़े और बच्चे इस कहानी में बड़ा काम कर जाते हैं। एक बूढ़ा है, जिसको बच्चे बचाना चाहते हैं, खिलौने बचाना चाहते हैं। एक बूढ़ी है, जो बहुत असहाय है। बिछावन के नाम पर उसके पास एक कथरी है। जब वह मैली कुचैली होकर गँधाने लगती, तो बादल का पानी उसे धो देता और धूप उसे सुखा देती है। पात्रों या परिस्थितियों को ऐसी सघन मार्मिकता और संवेदनशीलता से जोड़ने का काम अनिमेष सरीखा कोई कवि-कथाकार ही कर सकता है!

इस रचना को पढ़ते हुए कितनी ही लोक कथाएँ याद आ जाती हैं। ऐसी ही कथा है एक छोटी बच्ची की। वह अकसर सतायी जाती है अपने घर में। उसे कहा जाता है कि बिना ओखल मूसल के धान से चावल निकालो। उसे रोता देखकर चिड़ियाँ आती हैं। पूछती है कि रो क्यों रही हो? वह कहती है कि मेरी भाभी ने कहा है, मुझे धान से चावल निकालना है- लेकिन मेरे पास न ओखल है और न मूसल! तो चिड़ियाँ कहती हैं कि चिंता की कोई बात नहीं- हम हैं न! फिर वे मिलकर धान से चावल अलग कर देती हैं। यह जो एक रंग है लोककथा का, बार बार झाँकता है इस वृहद्कथा के भीतर गुँथी हुई कहानियों में। अनिमेष ने बहुत ही उम्मीद के साथ जीवन के कुछ गहरे रंग और जीवंत टुकड़े चुने हैं। यही कारण है कि तमाम कठिनाइयों और विडंबनाओं के बीच भी ये कहानियाँ उस उम्मीद को नहीं छोड़तीं, जो चारागर की चारागरी और अपनी मिट्टी के खिलौने बनाने वाले बूढ़े की साँसों की तरह इस जीवन जगत को बचाने वाली नेकी,

सच्चाई और संवेदना से जुड़ी हुई है। यही तो साहित्य का काम है सबसे बड़ा!

उल्लेखनीय है कि कवि के रूप में प्रेम रंजन अनिमेष अपनी बड़ी सशक्त और महाकाव्यात्मक कविता श्रृंखलाओं के लिए भी ख्यात हैं। यहाँ अनिमेष की इन बहुत ही गहरी और सारगर्भित कहानियों की इस श्रृंखला में भी एक से एक अद्भुत कहानियाँ हैं। इनमें एक अत्यंत विलक्षण कहानी 'कुछ लेना न देना' भी बहुत ही प्रभावित करती है। इस कहानी का विषय भाषा के क्षरण से जुड़ा हुआ है। अभी एक तरह के अपसंस्कृतिकरण का दौर चल रहा है, जिसमें बाजार अश्लीलताएँ थोप रहा है। जिस तरह से आज मनुष्य एक नंगी और अश्लील भाषा का सामना कर रहा है, उसे रेखांकित करती, बहुत गहराई तक असर डालने वाली कहानी है यह। 'मॉब लिंचिंग' का, उसकी क्रूरताओं का जो पूरा का पूरा एक रूप तैयार हुआ है, और मनुष्य को उसके सहज मानवीय सरोकारों से बेदखल करने का जो आलम बना हुआ है, वह कहानी में पूरी तरह से उभर कर आता है। पाठकों को देर तक सोचने पर मजबूर कर देती है यह कहानी।

अनिमेष की यह नायाब कहानी स्मृति में दर्द भर देने वाली है। कैसे हमलोगों के बीच का, एक सामान्य घर का लड़का, बहनों के साथ बड़ा हुआ भाई और माँ का लाड़ला एक संस्थान में पढ़ने जाता है और एक बहुत ही अश्लील भाषा से उसका सामना होता है। फिर वह किस तरह उसके मन मस्तिष्क, चेतना और भाव व्यवहार पर हावी हो जाती है- इसे बड़े ही बेधक ढंग से उद्घाटित करती है यह रचना। कहानी के नायक के पास बहुत कम उपाय हैं- दुनियाई चतुराई और 'सयानापन' भी नहीं, जिनके साथ वह उस भाषा का सामना कर सके। इसके कारण बहुत बड़ी मुसीबत में पड़ जाता है वह। कहानी सब कुछ ठीक कर स्थितियों का समाहार करती है- मगर इस अन्तर्निहित संकेत के साथ कि सच में हालात कितने विकट और जटिल हैं!

दरअसल इन कहानियों के केन्द्र में हक से बेदखल किया गया हमारी दुनिया का आखिरी आदमी है, जो अकसर समय और राजनीति के प्रपंच का शिकार होता है। आखिर में चारागर अपनी बात रखता है कि वह एक मुस्लिम परिवार का बच्चा था, जिसमें कई भाई बहन थे। उसे एक वैद्य ने पाला, जिसने उसके पिता से वादा किया कि कभी उसका धर्मांतरण नही किया जायेगा। फिर देश बँट जाता है- और उस बँटवारे पर ही न भूलने वाली कहानी 'पतंगबाज' भी है, - कथा क्रम के साथ सलीके से जुड़ी। यह कहानी भी बहुत ही प्रभावपूर्ण तरीके से अपने शिखर पर पहुँचती है।

इस तरह 'चंद खिलौनों की दास्तान' की सारी कहानियाँ मुख़्तलिफ तरीके से हमारे समय और समाज की विसंगतियों की पड़ताल कर मानव संवेदना के सूत्रों को सँजोते हुए आगे बढ़ती हैं। कथा के भीतर की ये कहानियाँ किसी 'कैप्स्यूल' में नहीं हैं, बल्कि कठोर यथार्थ को साहस के साथ सामने रख कर व्यवस्था व आधुनिकता की बहुत सारी विषमताओं को उजागर करती हैं- उन पर चढ़े मुलम्मों को सफाई से उतारते हुए। कवि होने के नाते भाषा पर भी अनिमेष की पकड़ काफी मजबूत है और स्वाभाविक तौर पर 'चंद खिलौनों की दास्तान' बहुतेरी खोयी हुई उम्मीदें जगाती है। यह विश्वास भी सुदृढ़ होता है कि प्रेम रंजन अनिमेष इसी तरह अपनी सच्ची सधी सतत रचनात्मकता के माध्यम से साहित्य के फलक पर नये प्रतिमान रचते रहेंगे!

'सात सहेलियाँ खड़ी-खड़ी' अर्थात पितृसत्ता के दुर्ग द्वार पर एक साझा दस्तक

कविता

इस दुनिया में अपना होना हमें कैसे पता चलता है? अपनी देह के जरिए ही न! इसी पर धूप लगती है, बारिश पड़ती है, इसी को दर्द होता है, भूख-प्यास लगती है और कामनाएँ इसी में तो जगती हैं। इस दुनिया को महसूस करने का जरिया स्त्री के पास भी देह ही तो है। इसी से महसूस करती है वह अपना होना। खुश, उदास याकि दुखी होना। मन, दिमाग सब इसी देह में तो वास करते हैं।

लेकिन वे अक्सर अपने मन को मारती हैं, देह को दबाती हैं, दिमाग को कहती हैं -'उन्हें कोई दुख नहीं, वे बेहद खुश हैं अपने जीवन से। उनके जैसा जीवन कितनी स्त्रियों के हिस्से होगा? बड़भागी हैं वे कि उन्हें इतना सुंदर संसार और परिवार मिला! इस झूठ को वे खुद से और जगत से इतनी बार दुहराती हैं कि वह किसी सच से भी अधिक सच मालूम होने लगता है। मिथ्या के इस संसार का रचा जाना आज तमाम औरतों के जीवन का न सिर्फ हकीकत है, बल्कि एकमात्र जीवन-स्थिति भी।' महलों का राजा मिला कि रानी बेटी राज करेगी' ऐसे ऐसे गीत सुना कर ही लड़कियों को निकम्मा किया गया और वे शेखचिल्ली की तरह राजा और उसके महल के इंतजार में रहीं....

और फिर ससुराल में बन्धुआ मजदूर सी जुती रहीं ...। उस राजा ने पीट पीट कर भूसा भर दिया शरीर में नौकरों के सामने .... सर उठा कर महल के गुम्बद देखने तक कि हिम्मत न रही जिन्दगी भर.... लेकिन वफादार इतनी कि बाप की पगड़ी और पति का पद सँभालते सँभालते आखिरी हिचकी लेती हैं ' निर्भर स्त्री धोबी का कुत्ता है ....मायका ससुराल के बीच न उसका कोई घर न घाट ...'

'स्त्रियाँ जो तिरस्कार को अपनी आदत बना कर जीती हैं, इसे पलायन कहना भी किन्हीं अर्थों में सही नहीं होगा। पलायन के साथ जो एक सहज रूप से भाग लेने और रणछोड़ होने का भाव होता है, इनके जीवन के वह ठीक विपरीतगामी है। यहाँ तो ठीक इसके उलट कहीं यह शूरता होती है - जो भी होगा देखा जायेगा या फिर उसे झेल लेंगे! जब ओखल में सर दिया तो मूसल से डर कैसा?

'नारी होना दुख है', बुद्ध ने कहा था। साहित्य में भी स्त्री की हँसी से ज्यादा उसके आँसुओं का मोल रहा। भारतीय साहित्य का एक तिहाई हिस्सा सिर्फ नख-शिख वर्णन से भरा मिलेगा। हिंदी कवियों के यहाँ उनकी उदास प्रेमिकाएँ मिलेंगी, तो नाज़िम हिकमत और निजार कब्बानी के यहाँ प्रेमिकाएँ फलों की टोकरियों जैसी होती हैं। वे धरती जैसी रहीं जो सहारा देती हैं। मनुष्य नहीं होतीं वे। उनका एक अदद मनुष्य होना साहित्य और साहित्यकारों को भी गवारा नहीं। ठीक इसी संदर्भ में मुझे कालिदास की कृति 'रघुवंशम' की एक पंक्ति याद आती है :

सीता ने दो तेजस्वी पुत्रों को जन्म दिया, जैसे पृथ्वी अपने राजा के लिए धन तथा सेना उत्पन्न करती है। (15वां सर्ग, श्लोक संख्या-13)

मनुस्मृति का एक श्लोक है - स्त्री धरती है, पुरुष उसमें बीज बोता है। (9वाँ

अध्याय) वह खुद धरती है, इसलिए धरती पर उसका होना दिखाई नहीं देता।

आखिर क्या चुनाव है उसके सामने? इन संरचनाओं ने उसके लिए कौन से विकल्प छोड़े हैं? अगर विवाह स्त्री के लिए नर्क बन सकते हैं तो उसके बाहर उसके लिए और बड़ा नर्क है।

आधुनिकता के तमाम दावों के बाद भी स्त्री के लिए न बन्धन में सुख है, न मुक्ति में। मुक्ति जैसी कोई चीज फिलहाल स्त्री के लिए दूर-दूर तक नजर नहीं आती है। उसके लिए हर नया दिन काट लेना, जीवित रह पाना भी बड़ी उपलब्धि है।' सात सहेलियाँ खड़ी-खड़ी' इसी आदिम ओर तत्कालीन सच का एक अभूतपूर्व बयान है। यह विशिष्ट इस नजरिये से भी है कि स्त्री को फूलों की डाली, फल, प्रेरणा और शृंगार समझने वाले लेखक याकि कवि के द्वारा इस अंतहीन कथा का वर्णन हुआ है। जो पितृसत्ता का वाहक और उससे पोषित होने के बावजूद उसकी कमियों-दुरभिसंधियों और कंडीशनिंग को न सिर्फ बूझता है वरन् जिस व्यंजनात्मक शैली में और बखूबी बयान करता है, उसके लिए उसकी जितनी भी सराहना की जाये, बेहद कम है। क्योंकि इसे पुरुष दृष्टि से देखना याकि लिखना यदि असंभव नहीं तो बहुत कठिन तो अवश्य था।

'सात सहेलियाँ...' अर्थात् विधाता फिल्म के एक द्विअर्थी गीत के मुखड़े से लिये गये शीर्षक वाली इस कहानी का विषयवस्तु जितना अधिक व्यंजनात्मक है, उससे कहीं अधिक मारक और संवेदनशील रूप से सजग। जो पढ़ने वालों की चेतना पर किसी हथौड़े का सा असर करता है। काश कि इस इतनी प्रभावी कहानी का शीर्षक भी लेखक की तमाम लम्बी कहानियों की तरह उतना ही प्रभावशाली होता।

किस्सा यहाँ बड़ा मुख्तसर-सा है। पर वर्णनात्मकता इसमें गजब की है। शैली कथा सरित्सागर और विक्रम-बेताल के कथाओं जैसी। एक से निकलती और अलगती दूसरी कहानियाँ, जिनका सार कहीं एक में हीं समाहित है। लम्बे तामझाम में कहीं जाकर समाप्त होती है ये कहानी। और खत्म भी कहाँ होती है। त्रिशंकु की तरह सवाल बनके अटकी रह जाती है पाठकों के मन में - लड़की होश आने पर क्या निर्णय लेगी। आखिर उसका क्या होगा?

प्रेम रंजन अनिमेष दिल से कवि और कहानीकारों में लम्बी कहानियों के सिद्धहस्त कथाकार रहे हैं। मेरे लिए समकालीन के साथ-साथ विषय-व्यापकता की दृष्टि से भी मेरे प्रिय कथाकारों में से एक।

कहानी के शुरुआत में ब्याह वाला एक घर है, जिसमें परिवार की कई पीढ़ियों की स्त्रियाँ गीत गाती हुई लड़की को हल्दी लगाने की तैयारी कर रहीं। संख्या में 'वे सात हैं, सात का बड़ा महत्व है। विशेषकर जीवन के इस गठबंधन में। शायद इसलिए कि साथ और सात की ध्वनि एक सी है। फेरे भी सात ही होते हैं...।

तभी लड़की मना कर देती है कि उसे यह ब्याह नहीं करना। कि अब तक उसने यही सुना और देखा है - वे (पुरुष) पीटते हैं, मारते हैं... उसमें उतनी हिम्मत नहीं।'

वे औरतें उसे भरसक समझाने की कोशिश करती हैं - 'किसने तेरे जी में यह डर भर दिया? ऐसा कुछ नहीं। जी से यह काँटा निकाल दे।' 'बेकार के डर का कोई ओर न छोर। कि नीचे बैठा कोई सोचे कि पंखा गिरेगा। चोट आयेगी। पलस्तर चढ़ेगा। यह

डर होता है इसी तरह का। भीतर की इस भीत के मारे क्या कोई पंखे के नीचे बैठेगा ही नहीं?... कभी किसी के साथ हुआ हो तो हुआ हो, क्या जरूरी है लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि और कहीं यही सब होगा?'- ब्याह कराना वह भी किसी लड़की का यह तो सबसे बड़ा पुण्य का काम है। और किसी ब्याह में शरीक होना, और उसे सफल बनाना भी। जिसके लिए वे सब यहां जुटी हैं।' और अपने तईं वे इस काम को सफलतापूर्वक मुकम्मल करना चाहती हैं।

लड़की उनसे कहती है कि यदि यही सच है तो वे सब उसके सर की कसम खाये कि अपने पति के हाथों कभी नहीं पिटी? उनके पति ने उन पर कभी हाथ नहीं ऊठाया। फिर वे सब उसे एक एक करके अपने (जीवन) अनुभव सुनाती और बताती हैं, जिसमें विवाह संस्था को महिमामंडित करती हुई कहती हैं कि, नहीं शादी तो बड़ी अच्छी चीज है, जिसके कारण उनके सिर पर छत, बदन पर सुंदर रेशमी वस्त्र और खाने को नानाविध पकवान मिलते हैं। उनके पति उन्हें बहुत प्यार करते हैं और उनकी देख भाल भी ...' और सुनो, -' जो हँसाता है। क्या वो कभी रुला नहीं सकता?' (सातवीं सहेली)

छठी सहेली - 'पति की हर चीज की तरह उसकी दी चोट पर भी पत्नी का ही हक है। सिर्फ उसी का। वह चोट मैंने उसी हक से अपने ऊपर ले ली।'

'बार-बार कहने पर भी कोई मानेगा नहीं, करेगा नहीं, सुधरेगा नहीं तो कहने वाला बिगड़ेगा ही'।(पाँचवीं सहेली)

'घरवाले ने हाथ भी उठाया तो यह इसमें उसकी गलती न थी। दरवाजे की थी या कहो फिर मौसम की जिसमें वह ऐसे बंद होने लगा था। उसी से गलतफहमी हो गयी, कभी-कभी हो जाती है। कहीं भी हो सकती है। किसी को भी। नहीं तो देखा तुमने दोनों में कितना प्यार था। और है भी।' (तीसरी सखी)

दूसरी सखी कहती है -'पहले प्रहार के बाद उसे छोड़कर जाने का खयाल एक बार जी में आया था। अपने प्रण के शब्द याद किये - 'अगर एक बार भी उसने हाथ उठाया तो उसे छोड़कर चली जाऊँगी।' लेकिन ध्यान आया। पति ने मुझ पर हाथ तो उठाया नहीं था (उसने दोनों बार बस लातों से मारा था)। इसीलिए नहीं गयी... इसीलिए सब्र और सुलझे दिमाग से काम लेना चाहिए। हड़बड़ाहट-घबड़ाहड से बना हुआ या आगे बननेवाला काम भी बिगड़ जाता है।। जो जीवन के नियम है, वही दाम्पत्य के भी...।

ये निशान हमेशा के लिए मुझ पर रह गये। आगे हरदम याद दिलाने के लिए। तो यह मेरे हक में रहा। मेरा ही फायदा हुआ। छोटी-छोटी बातें भूलने और ध्यान न रहने की उस बुरी बीमारी से उबर गयी मैं। (पहली सखी)

इस तरह क्रमशः सारी सखियाँ जीवन में एक या दो बार मार खाने की बात स्वीकारती तो हैं पर इसमें भी वो अपनी ही.गलती मानती हैं - पैसे निकालने के कारण। रूखी रोटी सास और दूसरी बार चुपड़ी रोटी माँ को देने के कारण। दरवाजा तेजी से बंद किये जाने के कारण। दरवाजा खुद से न खोलने और बिना देखे बोलने के कारण। ब्रा खोलकर न सोने और तौलिए याकि चम्मच के सही समय या सही जगह पर न होने के कारण।

यह भी कोई कम अजूबा नहीं कि उनके जीवन में ऐसी दुर्घटनाएँ सिर्फ एक या दो बार घटित हुई है। जबकि तमाम आँकड़ें कहते हैं, 95 प्रतिशत स्त्रियाँ अपने जीवन में कम से कम पाँच बार अपने पति से पिटी होती हैं। तो ऐसे में उनका खुद को सौभाग्यशाली समझा जाना भी अतिशय या अतिशयोक्ति जैसा भी कुछ नहीं।

हाँ मारपीट का एक वृहत कारण याकि पक्ष जो कि लेखक से इस कहानी में अछूता रह गया है, वे हैं बच्चें, या फिर बच्चों के कारण। उनकी आदतें, उनकी कमियाँ, उनकी पढ़ाई-लिखाई जैसी हजार बातें होती हैं, महायुद्ध की पूर्वपीठिका तैयार करने को। और जाहिर है इस सबकी जिम्मेदार माँ ही होती है - सिर्फ और सिर्फ माँ...। एक जगह बच्चों की चर्चा जरूर है जो बहुत सारगर्भित बन पड़ी है -' बच्चे बहुत समझदार थे। गरमागरम माहौल भाँप कर नींद आने की भावमुद्रा दिखाते दूसरे कमरे में चले गये। उनका अंदेशा सही था। जैसे चींटियों को आने वाली बारिश का आभास हो जाता है।

सच है कि विवाह अगर सही न हुआ, (जोकि अक्सर नहीं ही होता है) तो वह स्त्री के लिए जीते जी रौरव नर्क है। फिर झेलते रहने और उसमें मरते दम तक घुटते रहने के सिवा साधारण स्त्रियों के पास और कोई चारा नहीं बचता है। खासकर उनके पास जिनके पास न कोर्ट कचहरी जाकर अपने हिस्से की लड़ाई लड़ने की ताकत है और न उतने पैसे। सम्भव है यह स्थिति कुछ पुरुषों की भी होती हो, पर सामान्यतः स्त्रियाँ ही इसकी भुक्तभोगी होती हैं।

'लाली नहीं लगानी चाहिए...काजल से आँखों को नुकसान पहुँच सकता है...पाऊडर-क्रीम से कैंसर होता है...और सुंदरता के बहुत सारे बनावटी साधनों में मासूम जानवरों की जान जाया करती है। सहज प्राकृतिक सुंदरता हीं असली सुंदरता है। मगर चूड़ियाँ, कंगन, बाजूबंद,करधन ये सब अच्छे हैं...अपनी चुभन से एक्यूप्रेशर का लाभ देते हैं।' पितृसत्ता की ये चालाकियाँ अक्सर औरतें समझते ना समझते इसे आया-गया कर देती हैं कि भरम में रहना और जीना ज्यादा बेहतर है तिल-तिल कर मरने से।

स्त्रियों के पास भी जबाब में अपने कुछ (निजी) अस्त्र हैं। कुछ भोली और कुछ समझदार खुशफहमियाँ याकि चालाकियाँ, जिसके सहारे वे कई बार अपने जीवन मोर्चे पर बेधड़क अड़ी खड़ी रहती हैं - 'बावरी! अभी से रोने लगी। ये आँसू सँभाल। सहेज कर रख एक एक। यही तो हथियार हैं हमारे। बहुत कीमती हैं। आगे काम आयेंगे।'

'भीतर से खुशी हो तब भी बाहर से कड़ाई बरतनी चाहिए...।'

वैवाहिक जीवन में चढ़कर रहने का यह मेरा स्वयंसिद्ध सूत्र था। मैं सदा सकारात्मक (और आक्रामक) रहने में विश्वास करती हूँ। आक्रमण ही रक्षण की सबसे अच्छी नीति है। ये नीतियाँ या कि अस्त्र कितनी दफा और कितने मुआमलों में काम आते हैं या आ सकते हैं, यह एक अलग जेरे-बहस मुद्दआ है लेकिन बात यह भी है कि लेखक ने इस बहाने स्त्री-प्रवृत्तियों की भी अच्छी पड़ताल की है।

यह कहानी हमें किसी निष्कर्ष पर ले जाकर नहीं छोड़ती। विवाह संस्था अगर बुरी है तो उसके समकक्ष किसी दूसरी याकि समानांतर व्यवस्था के चुनाव पर भी नहीं। सभी लड़कियाँ अगर शादी से इंकार करती गयीं तो एक दिन मानव जाति और दुनिया ही खत्म समझो! और अगर 'लिव इन' में रहीं तो रिश्ता टूटने पर बच्चे की जिम्मेदारी आखिर

किसकी होगी? स्त्री की ही न? इस क्रांतिधर्मिता का भी आखिरी निष्कर्ष क्या निकलने वाला है, वही न जो अक्सर असफल शादियों में होता है? उल्टे शादी से निकलने से भी ज्यादा असुरक्षाबोध, दायित्व और आर्थिक तंगियाँ और जिम्मेदारियाँ आ जाती हैं उसके हिस्से।'

यह कहानी परोक्ष रूप में यह कहती है कि आज जरूरत आनेवाली पीढ़ियों को अपने हक और अधिकार के प्रति सचेत किये जाने की है। यह लाज़िमी है कि उन्हें शिक्षित और आत्मनिर्भर बनाया जाये। उन्हें एक ऐसी परवरिश दी जाये जिसमें न सिर्फ अपना करियर, जीवनशैली और साथी चुनने की आजादी और बराबरी हो, बल्कि किसी कारणवश अपने निर्णय के असफल होने पर उन्हें किसी अपराधबोध या समाजप्रदत्त अकेलेपन से न गुजरना पड़े...।

कहानी के अंत में लड़की बेहोश है और इंतजार यह है कि वह जागने पर क्या निर्णय लेती है। यहाँ लेखक ने जागना शब्द का प्रयोग किया है। उठने याकि होश में आने का नहीं। इस शब्द में तमाम अर्थ और ध्वनियाँ समाहित हैं। जागना अपने आप में एक संभावना है, एक महाकाव्यात्मक ध्वनि। कहानी का सार लड़की के जागने में ही तो निहित है।

मेरे हिसाब से यह जागना विवाह संस्था का विकल्प खोजने की बजाय उसकी टूट फूट और दरारों की मरम्मत तथा कटे-फटे हिस्से की रफू और तुरपाई में है, इसके लिए जरूरी है कि लड़ाई पितृसत्ता से हो न कि पुरुषों से। दोस्त और साथी पुरुषों को खोजना और चिह्नित करना इसके लिए बहुत ही जरूरी है।

यह कहानी उसी साथी पुरुष की तलाश की कहानी भर नहीं, एक स्त्रीमना साथी पुरुष के द्वारा लिखी गयी कहानी भी है - जिसके लिए लेखक को दिल से धन्यवाद। आभार!

दूरभाष 74618 73419

सार्थक सिने संभावनाओं से भरा प्रेम रंजन अनिमेष का कथा संसार

- विनय रंजन

वैसे तो हर कहानी पर फि ल्म बनायी जा सकती है, क्योंकि फि ल्म एक कहानी ही तो होती है ! परन्तु यह बात भी सही है कि गद्य साहित्य और सिनेमा, दोनों कहानी कहने की अलग-अलग विधाएँ है - कथात्मकता या कहानीपन को अपनी विशिष्टता के अनुरूप बनाये रखते हुए। जहाँ सिनेमा के आने के बाद गद्य साहित्य से अनगिनत कहानियाँ लेकर फि ल्में बनायी गयी हैं, वहीं सिनेमा ने गद्य साहित्य के अन्तर्गत कहानी लेखन के अंदाज को भी कहीं न कहीं प्रभावित किया है। सिनेमा ने भले ही गद्य साहित्य को कथानक मुहैया न कराया हो, पर सकारात्मक रूप से गद्य साहित्य में कहानी कहने की एक चलचित्रात्मक प्रविधि जरूर उभर कर आयी है। समय के साथ कुछ कथाकारों ने, जिन्हें दोनों माध्यमों की गहरी समझ है, इस विशिष्टता को भी गहराई से आत्मसात किया है।

वैसे रचनाकार, जो मूलतः कवि हैं या फिर कवि और कथाकार दोनों ही, उनमें सार्थक सिनेमाई संभावनाओं का उभार ज्यादा सहज और स्वभाविक होता है। जहाँ काव्य रचना होती है, वहाँ बिंबों की प्रमुखता होती है। कुछ उसी तरह सिनेमा में भी बिंब महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए कवि होना भी कथाकार के अंदर चलचित्रात्मक शैली की सहज क्षमता विकसित होने का एक कारक है। प्रेम रंजन अनिमेष जितने अच्छे कवि हैं, उतने ही अच्छे कथाकार भी। कविता इनका पहला कर्मक्षेत्र रहा, इसलिए इन्हें मूलतः कवि कह सकते हैं, परंतु कथाकार के तौर पर भी इन्होंने अपनी खास पहचान बनायी है। कवि रूप ने इनके अंदर सिनेमाई किस्सागोई की शैली को बहुत अच्छी तरह पोषित किया है।

शुरुआत, निर्माण (मध्य) और उत्कर्ष या परिणति वाले तीन चरणों में बँटी फिल्मांकन योग्य कहानी के जरूरी अवयवों - विषयवस्तु यानी मुद्दा (Theme), कथानक (Plot), विषय और कथानक का शिल्प विन्यास (setting), चरित्र विन्यास (Characterisation), संवाद (dialogue), निहित टकराव व संघर्ष (con ict) तथा उत्कर्ष व परिणति (climax) के साथ कायदे से बर्ताव बेहतर फि ल्म निर्माण को सुनिश्चित करता है। वैसे तो हर कहानी में अमूमन ये चीजें मौजूद होंगी ही, लेकिन अगर कोई कहानी सीधे तौर पर सिनेमा के लिए नहीं लिखी गयी हो तो संभव है, ये अवयव सुदृढ़ रूप में उपस्थित न हों। तब उस कहानी में इन अवयवों को अतिरिक्त प्रयासों के साथ तरीके से उभारा या मजबूत बनाया जाता है।

सार्थक सशक्त सिनेमा के लिए मुफीद कहानी के लक्षण के तौर पर जो विशेषतायें हैं, उनमें एक यह भी है कि कथा वृत्तांत वर्तमान काल में हो। कहानी लिखने और कहने सुनने के स्तर पर हम प्रायः भूत काल या भविष्य काल में गमन कर रहे होते हैं। पर सिनेमा देखना वास्तविक समय, यानी वर्तमान काल में गमन करने जैसा होता है। वर्तमान काल में कथा वृत्तांत एक सहज सिनेमाई अंदाज लिये हुए होता है। अन्य विशेषतायें

कहानी में 'मोंताज' शैली के होने, चित्रण और संग्रंथन के जरिये कहानी के विषय और कथा विन्यास को उभारने, पाठ में सहज दृश्यत्व का एहसास होने तथा पात्रों और स्थितियों के संतुलित दृश्यपरक निरूपण से जुड़ी रहती हैं। फिर कथा वृत्तांत का विन्यास ऐसा होना चाहिए कि पढ़ते समय मन की आँख कैमरे में परिवर्तित हो जाये।

वैसे, यह भी नहीं कि हर बार चलचित्रपरक कहानी के लिए सभी अवयवों का होना अपरिहार्य है। कहानी की विषय वस्तु और कहानीकार के हिसाब से कुछ अवयव हो सकते हैं, और कुछ नहीं भी। साथ ही कुछ अवयव ज्यादा हो सकते हैं, और कुछ कम। यह भी संभव है कि किसी कहानी में सिर्फ.एक अवयव मौजूद हो, फिर भी वह सिनेमाई मापदंड पर खरा उतरे। दरअसल कहानी की सिनेमाई स्थितियों के साथ एक तरह की शक्यता या संभावना जुड़ी होती है। उसे सिनेमा में ढालने के लिए मेहनत तो करनी ही पड़ती है। फिर यह भी जरूरी है कि कहानी पढ़ते समय एक सर्जनात्मक सिनेमाई एहसास जगे, और लगे - अरे, यह तो सिनेमा में ढलने लायक है!

प्रेम रंजन अनिमेष की ज्यादातर कहानियों को पढ़ते समय इसी तरह की सुंदर, सार्थक और सृजनात्मक सिनेमाई संभावनाओं तथा दुर्लभ चलचित्रात्मकता का एहसास होता है। मिसाल के तौर पर, अनिमेष की एक महत्वपूर्ण कहानी है - 'पानी-पानी'। शीर्षक पढ़ते ही जैसे एक विहंगम दृश्य उभर आता है - जहाँ चारों तरफ पानी ही पानी और पूरी जीवन-व्यवस्था सैलाब की जद में! कहानी के भीतर, उसका मध्य आते न आते यह पूरी तरह प्रतिरूपित भी हो जाता है। पूरा शहर, जिला तथा सूबा बारिश और सैलाब की चपेट में आ जाता है - ज़िंदगी मानो थम जाती है। इसके बावजूद इस कहानी में नायकों की ज़िंदगी की 'चित्रकारी' बदस्तूर जारी रहती है। फिर इनके जीवन में एक नई गति आ जाती है - एक नये पात्र, या कहें कि एक पात्र के नये तरीके के साथ प्रवेश से। भारी बरसात और सैलाब में भी इनसानों वाली सीमा में नहीं बँधने वाली वह किरदार है - डूसी नाम की एक बिल्ली।

डूसी के आगमन के साथ ही बाकी किरदारों के सफर में भी अलग तरह की हलचल पैदा हो जाती है। उधर डूसी में मनुष्य जैसी संवेदना नये स्तर पर जगी हुई दिखने लगती है, जो आज के दौर में चलते फिरते यन्त्र बने अधिकतर लोगों में छीजती जा रही है। गतिकीय गुणात्मकता के साथ उभर कर सामने आयी डूसी की संवेदना के साथ जानवर और मनुष्य का एक सहभागीदार स्वरूप प्रकट होता है - चित्रमय तरीके से सबकुछ घटित होने के बीच। डूसी द्वारा तीनों नायकों की स्थिति और मजबूरी को समझा जाना, फिर मदद की कोशिश - लगता है जैसे लिखित कला ने चलचित्र का रूप ले लिया है। पहले डूसी अपनी पसंद और प्रवृत्ति के हिसाब से सहायता करना चाहती है, मगर धीरे धीरे समझदारी बढ़ने पर वह ऐसे काम करती है, जो तीनों नायकों की जरूरत के मुताबिक सही हों।

इस तरह 'जलमग्न' किंतु एकरस सी जिंदगी में एक बिल्ली के माध्यम से कहानी के 'चलचित्र' को गतिमान बनाये रखा जाता है। इस कहानी में चित्रमय अनुक्रमों की कोई कमी नहीं है। रंगमंचीय भाषा में कहें तो भिन्न पृष्ठभूमियों के तीनों नायकों और उनके पिताओं के जीवंत प्रदर्शन से सजे एक नायाब रंगमंच की तरह है यह कहानी!

इसका कैनवस इतना बड़ा है और हर पात्र इतना जीवंत, कि सम्पूर्ण जीवन ही अपने तमाम रंगों के साथ साकार हो उठता है। कहानी की गतिशील चित्रात्मक गुणवत्ता की वजह से इस पर एक सुंदर लघु फिल्म भी बन सकती है - हालात के मारे तीन युवकों के जीवन पर, जो कुछ बेहतर करने का संकल्प लेकर दृढ़ इरादों के साथ सूबे की राजधानी पहुँचते हैं।

घटनाएँ दरअसल चलचित्र जैसी होती हैं। फिर अगर कोई कहानी दिलचस्प घटनाओं का सिलसिला हो तो वह एक अच्छी फिल्म का स्रोत होती ही है। 'पानी पानी' संघर्षशील युवा किरदारों से जुड़ी ऐसी ही क्रमबद्ध और दिलचस्प घटनाओं का बहुस्तरीय सफर है। गाँव में रहते हुए नायकों की पढ़ाई जारी रखने की जद्दोजहद, सूबे की राजधानी पहुँच कर जीवन में कुछ हासिल करने की अथक कोशिशों के बीच सीमित पैसे में रहने-खाने की व्यवस्था, अतिरिक्त पैसों के इंतजाम के लिए 'ट्यूशन' का काम करना, अपनी परीक्षा की अच्छी तैयारी के लिए खुद भी कोचिंग का फायदा उठाना, शादियों में बिन बुलाये मेहमान की तरह घुस कर भोजन करना और पकड़े जाने पर पिटाई का सामना करना, विवाह समारोहों में 'खुशबू वाले फूल' बाँटने से लेकर मुखौटे पहन कर आगंतुकों के दिल बहलाना, डूसी बिल्ली का तीनों युवकों के जीवन में 'सहृदय सहायिका' के रूप में आगमन, बाढ़ की विभीषिका में पीड़ितों की सहायता के लिए चंदा इकट्ठा करना, मंदिरों में भंडारे के समय लगी कतार में भिखारियों द्वारा अपमानित होना, काव्य गोष्ठियों और मुशायरों में हिस्सा लेना व पुरस्कार जीतना - ऐसी कितनी ही रोचक घटनाओं के चित्रण के जरिये कहानी अपनी यात्रा पूरी करती है।

कहानी में घटनाओं का चित्रण व स्थापन इस तरह का है कि न सिर्फ.एक मोंताज शैली का एहसास होता है, बल्कि कहानीकार दृश्यों के माध्यम से कथा कहता नजर आता है - या फिर, दृश्यों के मध्य से कहानी उभरती प्रतीत होती है। दरअसल भूख से लड़ाई और पढ़ाई के जरिये भूख से निजात पाने की जद्दोजहद का सत्यान्वेषण है यह कहानी। हर दृश्य भूख से लड़ाई लड़ रहा होता है या फिर संघर्ष को सही मकाम तक पहुँचाने का उद्यम कर रहा होता है। कहानी के सटीक संवाद भी इस संघर्ष और उद्यम को गति प्रदान करते हैं। भारी बारिश और सैलाब से चारों तरफ पानी-पानी हो जाना और इसके बीच तीनों नायकों का भूख से मुकाबला यदि कहानी का मध्याह्न है तो परीक्षा के ठीक पहले भूख के साथ 'आखिरी' लड़ाई इसका उत्कर्ष है। उत्कर्ष के अनुक्रम में दृश्य और संवाद का अच्छा तारतम्य है - निर्णायक तौर पर शिखर तक ले जाते हुए।

प्रेम रंजन अनिमेष की एक और महत्वपूर्ण कहानी है - ' कुत्ते की मौत'। इस कहानी की शुरुआत का दृश्य ऐसा है, मानो किसी फिल्म की ओपनिंग हो रही हो। जिस तरह कहानी का मुख्य किरदार संशय के साथ आगे बढ़ रहा है और प्रतिवेश-परिवेश का वर्णन है यहाँ , वह किसी सशक्त फिल्म के लिए बिल्कुल सटीक शुरुआत की स्थिति है। जो गति और समय महसूस होता है और जिस तरह प्रतिवेश को प्रस्तुत और समाविष्ट किया जा रहा है, वह दर्शकों को फिल्म की विषय-वस्तु के साथ जोड़ने का बहुत नायाब तरीका है। जब किरदार अस्तबल के मालिक के सामने होता है, तब चिट्ठी पढ़े जाने के दौरान परिवेश तथा मनोभावों का वर्णन, 'प्रॉप्स' के रेखांकन के साथ पेपरवेट का

चित्रांकन, उसे खास तरीके से नचाये जाते समय प्रभावी चित्रात्मकता का उभरना तथा इन सबके बीच नपे-तुले संवाद - सब कुछ बिल्कुल ऐसा है, जैसे कोई प्रभावशाली फिल्म खुल रही हो और हम उसमें प्रवेश कर रहे हों।

इस कहानी की शुरुआत का यह परिचयात्मक दृश्यपरक वर्णन गौर करने लायक है - 'कंपनी के कर्ताधर्ता को अपने निवर्तमान मालिक का अनुशंसा पत्र उसने दे दिया। इतना बड़ा तो पत्र नहीं था कि पढ़ने में इतना समय लगे सामने वाले को। तब तक वह कक्ष की सजावट देखने लगा। प्रायः सब कुछ श्वानमय - पोस्टरों और चित्रों से लेकर मेज पर रखे पेपरवेट तक। उन्हीं में से एक पत्रभार को हलके से नचाया कुत्ता कंपनी के स्वामी ने। भान हुआ मानो कोई नन्हा कुत्ता नाच रहा हो बड़े ही कौशल से! आखिर नचा उसे कौन रहा था? 'तजुर्बा है कुछ? इससे पहले कहीं काम किया?', कंपनीपति ने पूछा। 'कथा का यह हिस्सा ही जैसे पूरे परिदृश्य और परिवेश के बेहद जरूरी सूत्र सौंप देता है पाठकों को।

'कुत्ते की मौत' एक शानदार कहानी होने के साथ नायाब फिल्म की विषयवस्तु भी है - भरपूर सिनेमाई संभावनाओं और सामर्थ्य को साधे सँभाले हुए। भारत में कुत्तों को लेकर या कुत्तों पर कोई संपूर्ण फि ल्म बनी ही नहीं है शायद - कुत्तों का बाकी कई जानवरों की तरह फि ल्मों में इस्तेमाल भर हुआ है और वह भी ज्यादातर बेढंगे तरीके से। विदेशों में कुत्तों को लेकर अच्छी फि ल्म बनाने का दावा ठोंका जा सकता है, पर अधिकतर फि ल्में बस उनके कौशल और शक्ति को ही प्रदर्शित करती हुई दिखती हैं। 'कुत्ते की मौत' वाली हिन्दी कहावत अंग्रेजी के साथ दूसरी भाषाओं में भी होगी, पर इसे निरूपित और परिपूरित करती कोई फि ल्म बनी हो, इसका प्रमाण नहीं मिलता। परन्तु अनिमेष की कहानी 'कुत्ते की मौत' मुहावरे को जैसे एक हृदयविदारक मर्मस्पर्शी चलचित्र के साँचे में ढालती है। कैसे कोई व्यक्तिगत, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण शनैः शनैः मुहावरे वाली 'कुत्ते की मौत' की तरफ बढ़ता जाता है, यह कहानी बड़ी मार्मिकता और संवेदनशीलता के साथ इसका चित्रण करती है।

कहानी जहाँ एक तरफ 'कुत्ते की मौत' को चरितार्थ करती है, वहीं दूसरी ओर एक और गहरे आयाम को खोलती है - जहाँ मानवता और पशुता का एक तरह से विलय हो जाता है। एक तरफ किरदार अपनी जीविका के लिए कुत्ता बन जाता है, तो दूसरी ओर कुत्ता उसकी अजीबोगरीब स्थिति के प्रति संजीदा हो उठता है, और मानवीय चेतना के आसपास पहुँच जाता है। यह कहा जा सकता है कि 'मानव' और 'जानवर', दोनों एक अलग तरह की चेतना से जुड़कर एक-दूसरे के जीवन के लिए संवेदनसिक्त हो उठते हैं। इस जटिल परिघटना को अनिमेष ने बखूबी शब्दों और दृश्यावलियों के जरिये किसी सुकल्पित सुनिर्मित चलचित्र की तरह उभारा है।

यह महत्वपूर्ण रचना वस्तुतः मानव और कुत्तों के अंतरफलक (interface) की कहानी है। इसे बड़े ही दिलचस्प तरीके से चित्रमय ढंग से उकेरा गया है। पहला अंतरफलक कुत्ते के काटे जाने को लेकर आदमी के पुराने डर से सम्बद्ध है। इसे उचित विस्तार और सटीक संवादों के साथ प्रस्तुत किया गया है। कहानी के मुख्य किरदार का सामना शाम के झुरमुट में एक कुत्ते से हो जाता है। वह कुत्ते से अपने को बचाने का

प्रयास करता है, पर अंततः कुत्ता उसे काट ही खाता है। कुत्ते द्वारा काटे जाने के बाद तकलीफदेह सूइयाँ लेने के भय और दर्द का भी वर्णन है। फिर कहानी के मुख्य किरदार के अंदर भयानक डर बैठ जाता है, और वह उसके साथ परिगमन करता रहता है।

कहानी का आरोहण बड़ा दिलचस्प और रचनात्मकता को महत्वपूर्ण दिशा देने वाला है। यहाँ नायक को जीविकोपार्जन के लिए दो प्रशिक्षित कुत्तों की देखभाल का काम मिलता है। काम भले ही एक है, पर मानवीय स्तर पर चित्रित किये गये दोनों कुत्ते मन-मिजाज के मुताबिक एक जैसे नहीं। इसी कारण ब्लैकी और स्नोई का नया नामकरण उनके 'व्यक्तित्व' के हिसाब से बमसूँघू और गमसूँघू किया जाता है। दरअसल यह नायक और कुत्तों के अंतरफलक के नये आयाम में प्रवेश करने का प्रस्थान विन्दु भी है।

इसके बाद तीनों के बीच एक नये खूबसूरत बंधन और भाव संवेदन की शुरुआत होती है - एक-दूसरे के दर्द को समझने और उसमें साझेदारी की कोशिश के साथ। एक कुत्ते की तबीयत खराब होने पर और दूसरे के थक जाने के बाद खुद कुत्ते का भेस धारण कर ज़िम्मेदारी निभाना नायकत्व को एक अलग मकाम पर ले जाता है। अपनी नौकरी को लेकर डर के साथ कुत्ते की बीमारी के प्रति चिन्ता और संवेदनशीलता - सबका बहुत ही सजीव आलेखन है यह कहानी।

कहानी में मार्मिक पड़ाव तब आता है जब नायक की माँ मर जाती है और गाँव में श्राद्ध कर्म से लौट कर जब वह शहर आता है तब गमसूँघू भी ज़िंदा नहीं रहता। फिर वह गमसूँघू के स्थान पर खुद ड्यूटी करने का निर्णय लेता है। इसके लिए वह कुत्ता बनने वाली पोशाक ले आता है। सूँघने की कला तो वह बमसूँघू और गमसूँघू से सीख ही चुका होता है। फिर भी जल्दी ही उसकी नौकरी चली जाती है। बचे खुचे पैसे वह ठगी में खो देता है। सबकुछ छिन जाने के बाद वह सड़क पर आ जाता है और कुत्ते का भेष धारण कर अपने खाने का जुगाड़ करने लगता है।

चीजों को सूँघ कर पहचानने में पारंगत होने के कारण उसे यही काम ठीक लगता है। इसी सिलसिले में एक दिन उसे एहसास होता है कि एक आदमी के थैले में बम है। किसी बड़े खतरे की आशंका से वह सतर्क हो जाता है और थैले वाले आदमी के पीछे पड़ जाता है। वह पुलिस को भी इत्तिला करता है, लेकिन उसके अंदर साँस ले रहे कुत्ते पर यकीन करे भी तो कौन! कुत्ते वाली पोशाक में वह उस ऑटो रिक्शा के पीछे बेतहाशा भागता रहता है, जिस पर बम वाला सवार है। वह अपनी पूरी शक्ति से दौड़ते हुए रिक्शा तक पहुँच कर उस आदमी के हाथ से बम वाला थैला छीनने लगता है। इसी बीच एक तेजरफ़्तार गाड़ी के धक्के से वह सड़क पर गिर पड़ता है और उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। कहानी का उत्कर्ष अत्यन्त मार्मिक, प्रभावपूर्ण और विचलित करने वाला है। अंत में भागती दौड़ती सड़क के बीच एक जगह जैसे अवाक होकर थिर हो जाती है - जहाँ लाश पड़ी रहती है ... एक आदमी की ....एक कुत्ते की!

इस खास कहानी की सिनेमाई प्रस्तुति में विशेष प्रभाव, यानी 'special effects' की भी पूरी गुंजाइश है। मानव द्वारा कुत्ते का किरदार निभाना और कुत्ते का मानव संचेतना के करीब पहुँच जाना, दोनों की प्रस्तुति में इस प्रभाव की अहम भूमिका

हो सकती है। संपादन के हिसाब से भी कहानी 'sharp cuts' वाली है। वैसे, किसी कहानी को सिनेमा के लिए पटकथा में ढालते समय अपने हिसाब से नये 'कट-प्वाइंट' बनाने पड़ते हैं, लेकिन यदि कहानी में पहले से ऐसे स्थल मौजूद हों तो बड़ी आसानी होती है। साथ ही साथ कहानी के संवाद बहुत ही सारगर्भित और प्रभावपूर्ण हैं, जो गतिशीलता बनाये रखते हैं। प्रेम रंजन अनिमेष की एक अप्रतिम कहानी है - 'ए आजी'। वैसे तो दादा-दादी तथा नाना-नानी के साथ पोता-पोती और नाती-नातिन के रिश्तों पर कई ठीक-ठाक और अच्छी फिल्में बन चुकी हैं, लेकिन यह कहानी एक बेहतरीन फिल्म की संभावना से युक्त है। प्रायः बच्चों वाली फिल्म बाल मनोभावों से दूर वयस्कों के जंजाल में उलझी होती है, लेकिन 'ए आजी' एक बच्चे के खेल के बीच आगे बढ़ती जाती है - आकर्षक दृश्यता से भरपूर कथाफलक रचते हुए।

परिवार चाहे कितनी भी निर्धनता में फँसा हो, रहन सहन उससे प्रभावित हो भी तो क्या - बालपन तो खेल ढूँढ़ ही लेता है, अपनी हर गतिविधि को खेल बनाते हुए। इस कहानी की भी शुरुआत होती है एक ऐसी ही गतिविधि से, जो खेल तो नहीं है, पर बल्लू उसे खेल बना डालता है। आजी नहा रही है, बल्लू आजी के लिए चापाकल चला रहा है। चापाकल चलाने को भी उसने खेल बना लिया है। चापाकल चलाना, साथ-साथ आजी के साथ मजाक करना और बालसुलभ तरीके से तंग करना फिल्म के परिवेश का अच्छा दृश्यात्मक परिचय देता है।

दादी के साथ चुहल और खेल में बल्लू का समय अच्छी तरह कट रहा होता है - खेल खेल में कुछ न कुछ सीखते समझते हुए । इसी बीच उसे आजी की आँखों की रोशनी कम होने का एहसास होता है। उसे लगता है कि इस वजह से उसके खेल की दुनिया भी सिमट जायेगी। वह सोचने लगता है- काश, आजी की आँखें ठीक हो जातीं और वह पहले की तरह मस्ती कर पाता उनके साथ - वह भी खुल कर हिस्सा ले पातीं इसमें। इस विचार के साथ वह आजी की आँखें बनवाने का निश्चय कर लेता है - जैसे यह काम उसके लिए एक मिशन हो। इस अभियान को भी बल्लू एक खेल की तरह ही बड़ी चालाकी से पूरा करता है। फिर आजी और बल्लू, दोनों खुश हो जाते हैं । बल्लू की खेल वाली शरारतें बढ़ जाती हैं, पर दादी की रोक-टोक भी उसी अनुपात में बढ़ती है। साफ दिखने की वजह से वह बल्लू की हर शरारत पर नजर रखने लगती है।

अब यह बहुत ही सशक्त सिनेमाई संभावनाओं से भरी कहानी एक नये चरण में प्रवेश करती है। बल्लू के सामने समस्या आ खड़ी होती है - यही कि वह पहले की तरह निश्चिन्त होकर शरारत कैसे करे! इस समस्या का समाधान भी वह 'बच्चे वाली समझदारी' के साथ खेल-खेल में तलाशता है। वह चश्मे का एक शीशा गायब करने की सोचता है ताकि दादी को आधा दिखेगा तो आधी शैतानियों (खेल) पर ही रोक लगा पायेंगी, आधी तो वह फिर भी कर पायेगा। इस समाधान में अपने लिए आजादी और आजी के लिए रोशनी, दोनों का बराबर खयाल रखता है वह। लेकिन इसके बावजूद बल्लू की परेशानी कम नहीं होती। वह इस वयस्क समझदारी से वंचित रहता है कि जितना दो आँखों से दिखता है लगभग उतना ही एक आँख से भी नजर आयेगा। दरअसल कोई भी अपनी आजादी नहीं खोना चाहता, और बच्चे की स्वतंत्रता में तो

उसके खेल, उसकी शैतानियाँ शामिल हैं। आजी की आँखों की रोशनी बल्लू को प्यारी है, पर वह एक तरह से उसके लिए बंदिशों का बायस भी बन जाती है। फिर वह दूसरे शीशे को तोड़ने की योजना बनाता है और कामयाब भी हो जाता है।

ये सारे दृश्य चंचल बाल मन की चंचल आँखों से दिखाता जाता है रचनाकार। कहानी का हर दृश्य बाल मन का एक खेल है, हर संवाद एक बालक और बूढ़ी दादी के बीच का सटीक, चुटीला, मनोरंजक संवाद - सहज, संक्षिप्त, प्रवाहपूर्ण और चित्ताकर्षक! फिल्म बनने की सूरत में संपादन के लिहाज से भी यह कहानी बहुत चुस्त दुरुस्त और माकूल है। एक कहावत है - फिल्म 'संपादन मेज' (Editing Table) पर बनती है। मतलब यह कि अगर फिल्म संपादन के हिसाब से कहानी पहले से अनुकूल हो तो न सिर्फ.संपादन सहल और अच्छा होगा, बल्कि फिल्मांकन भी आसान और सटीक। इस कहानी की बड़ी खूबी यह है कि इसकी लय और गति का बिल्कुल किसी बालक के खेल की गति और लय के आसपास है।

जब आजी के चश्मे के दोनों शीशों को ठिकाने लगा दिया जाता है और बालक बल्लू को रोक टोक से निजात मिल जाती है तब यह आजादी उसे खटकने भी लगती है - इसलिए कि इसकी कीमत बहुत बड़ी है - आजी का फिर से रोशनी से वंचित हो जाना! फिर बल्लू के भीतर बड़प्पन जागता है। उसे पछतावा होता है और वह इस सोच में घुलने लगता कि कैसे आजी के लिए फिर से चश्मे की व्यवस्था की जाये! इस बीच बल्लू के मामा की शादी तय हो जाती है और उसे माँ के साथ ननिहाल जाना पड़ता है। शादी का घर और माहौल तथा उसमें बल्लू का चिंतित बाल मन मनोहारी दृश्य अनुक्रम उपलब्ध कराते हैं। विवाह उपरांत अपने मामा के साथ बल्लू मामी के यहाँ गया होता है कि इसी बीच आजी के गिर कर घायल हो जाने की खबर आती है। माँ जल्दी से गाँव चली जाती है। तय होता है कि गर्मी की छुट्टियों के बाद मामा बल्लू को पहुँचा जायेंगे।

दादी के गिरने की खबर सुन बल्लू बेचैन हो उठता है। वह मन ही मन संकल्प लेता है कि ननिहाल से लौटने से पहले हर हाल में दादी के लिए चश्मे का इंतजाम करेगा। शादी में मिले पैसे वह गिनता है, जाते समय जो पैसे नाना, नानी, मामा, मामी से मिलेंगे उन्हें भी जोड़ कर देखता है; मगर वे काफी कम पड़ते हैं। इस बीच संयोग से उसे नाना की मदद के लिए दुकान पर बैठने का मौका मिलता है। दरअसल वह जूते बनाने और बेचने की छोटी सी दुकान है। एक उपाय उसके मन में कौंधता है। वह जूता बनाना सीखता है और नन्हे सजावटी जूते बनाने लगता है। बल्लू का यह प्रयास फलीभूत होता है।

समय कम रहता है,मगर अतिरिक्त पैसे की जरूरत बनी रहती है। पर बाल मन की उड़ान का दुकानदार की सहृदयता साथ देती है और वह अपनी आजी के लिए चश्मा हासिल कर लेता है। वह घर पहुँचता है तो आजी खाट पर निश्चेष्ट पड़ी हुई मिलती है। बल्लू का दिल भर आता है और वह दादी को चश्मा पहना कर, आजी-आजी पुकारता हुआ उससे लिपट कर रोने लगता है -'ए आजी! देखऽ ना... ए आजी...!'

बाल फि ल्मों की मुहिम को आगे बढ़ाने की दृष्टि से यह अपने आप में एक बेहतरीन फिल्म की (पट) कथा है, तथा अपनी समग्रता में एक बहुत ही गहरी, नायाब और

अविस्मरणीय कहानी - बेमिसाल किरदारों, स्थितियों, चित्रण, संवादों और संवेदनाओं से एक आदर्श यादगार चलचित्र का संपूर्ण आधार और परिवेश प्रस्तुत करती हुई। सार्थक सिनेमा की अपार संभावनाओं से भरी प्रेम रंजन अनिमेष की कहानियों की श्रृंखला में से अगली कड़ी है -'अलविदा'! यह कहानी इस कदर कसी हुई है, मानो अपने आप में एक मुकम्मल पटकथा हो - जिस पर सीमित संसाधनों में भी एक सुंदर फिल्म बनायी जा सकती है। जिस तरह से यह कहानी लिखी गयी है, वह पन्नों से उठ कर हर्फों के जरिये सीधे मन-मानस में प्रक्षेपित होती हुई चित्रावली जैसी लगती है। फिर यह भी कि 12-14 घंटे के अंदर घटित होने वाली कहानी स्वाभाविक तौर पर एक सुगठित और गतिमान कथानक पिरोये हुए है।

अमल और विरुदा, जिन्हें अल और विदा के नाम से पुकारा जाता है, कथा के मुख्य चरित्र हैं, जो मिल कर इसका शीर्षक रचते हैं और साथ ही साथ कथासूत्र भी। दोनों प्रेमी-प्रेमिका हैं और खासे वक़्त से सहजीवन शैली में रह रहे हैं, बगैर विवाह बंधन के। अमल सहजीवन में तो रह रहा है, लेकिन किसी 'ठेठ पति' सा, सुस्त और आश्वस्त - इस 'रिश्ते' को लगभग 'फॉर ग्रांटेड' लेते हुए। वह इस बात से पूरी तरह बेपरवाह है कि सहजीवन का आधार ही है सहमति व समभाव, और किसी बंधन या पक्की गाँठ के बिना वह राह-द्वार खुला रखना, जो पारंपरिक विवाह में व्यवहारतः बंद होता है या फिर सबकुछ खत्म होने का पर्याय जैसा। यह नव-व्यवस्था है ही दोतरफा संभावनाओं को जीवित रखने का साझा उपक्रम, और अमल जिसे असंभाव्य मान बैठा था, वह अचानक एक दिन बड़े झटके से सजीव हो उठता है। इसके पहले कि वह अपनी नींद से उठे, उसका 'सहजीवन' उससे दूर जा चुका होता है। फिर किसी हद तक उसका 'स्व' भी जाग उठता है, जो सालों के रुटीन या रोजमर्रा जीवन चक्र में मृतप्राय हो चुका था।

ऐसी ही कुछ शिकायत रहती है विरुदा की। वर्षों से अमल व्यस्तताओं में डूबा रहता है, जहाँ काम और कमाई के बीच जीवन नीरस हो चुका है। विरुदा जीवन जीना चाहती है और अमल उसकी बातें सुन - समझ नहीं पाता। इस चक्कर में वह आम पतियों की तरह गुस्सैल और चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है। बात-बात पर चिल्लाना, ऊँची आवाज में बोलना अमल की आदत हो चुकी होती है। विरुदा कितनी ही बार टोकती और समझाती है, पर अमल पर असर नहीं होता! फिर एक दिन उसे एहसास हो जाता है कि अब कुछ ठीक होने वाला नहीं। फिर वह सुबह-सुबह अमल को सोता छोड़, उसके नाम एक चिट लिख कर चली जाती है।

उधर विरुदा जाती है और इधर अमल की ज़िंदगी से मुलाकात, या दूसरे शब्दों में कहें तो मुठभेड़ शुरू हो जाती है। विरुदा के रहते उसकी जो दिनचर्या सरपट दौड़ा करती थी, अब डगमगाने लगती है। उसे सूझता नहीं कि वह कहाँ से, कैसे शुरू करे। किस तरह अपने को तैयार कर काम पर भेजे! पर घड़ी की सुई आगे खिसके न खिसके, जीवन की गति तो थमती नहीं। धीरे-धीरे अमल का सामना अपने जीवन के उन पृष्ठों से होता है, जिन्हें अब तक उसके बदले विरुदा पलटती रही थी। ये पन्ने सिनेमा के दृश्यों की तरह खुलते जाते हैं - भावपूर्ण चलचित्रात्मकता के साथ।

विरुदा के बिना अमल का जो दिन होता है, उसमें उसे कदम-कदम पर ठेस लगती है, और कोई काम वह कायदे से नहीं कर पाता - चाहे कपड़े धोना हो, कचरा देना हो या किसी से बोलना बातें करना। और तो और, खेल खेल में खिड़की का शीशा तोड़ने वाले शरारती बच्चे गेंद न वापस करने पर उसके आगे विरुदा आंटी की 'विरुदावली' गाने लगते हैं! उधर एक महिला पुलिस भी आ धमकती है - 'घटना' घटित होने से पहले पहुँचकर संभावित 'पीड़िता-प्रताड़िता' को बचा लेने के पुण्य लक्ष्य से प्रेरित! अमल को आटे दाल का भाव मालूम पड़ना शुरू होता है। उस किसी तरह गुजरते दिन के साथ यह एहसास गहराता है कि दरअसल अमल के सुकून की छाँव अब तक इसीलिए थी कि विरुदा दोनों के हिस्से की धूप सह रही थी। दोहरी ज़िम्मेवारी उस पर डाल वह आत्मकेन्द्रित हो गया था। लेकिन कोई एक कब तक दोनों का बोझ अपने काँधों पर सँभाले रह सकता है। इसीलिए तो वह चली गयी... उस असह बोझ को परे झटक कर, दबाव और घुटन से निकल कर शायद कहीं ज़िंदगी को अपनी शर्तों पर जीने...!

इस तरह विरुदाविहीन अमल का पूरा दिन चलचित्रावली-सा हो जाता है। वह खयालों में भटकता है, हकीकत से उलझता है! जीवन के ठोस खुरदरे क्षणों और उमड़ते घुमड़ते एहसासों की आवाजाही में थका-माँदा अमल शाम को जब बिस्तर पर गिरता है तो फर्क.नहीं कर पाता कि जागा हुआ है, सो रहा या सपना देख रहा। इस बीच ट्रेन के अतिविलंबित होने और दिन भर स्टेशन पर प्रतीक्षा कर लेने के बाद विरुदा के अंदर एक 'द्वितीय सोच' या 'पुनरानुभूति' का आविर्भाव होता है और वह वापस आती है। लेकिन अमल तो उस वक़्त सच और सपने में अंतर न कर पाने वाली नींद के आगोश में झूल रहा होता है। घंटी की आवाज उसके कानों तक आती है, वह सपने और जागने में भेद करने की कोशिश करता है। उधर देहरी पर खड़ी खयालों में उलझी में विरुदा अंततः यह अपनी कोशिश भी असफल होते देख लौट जाती है...। इधर अमल अपने सपने में वापस आ चुकी विरुदा के साथ लिपट कर सो जाता है! इस 'अलविदा' के बावजूद क्या दोनों के बीच कोई दरवाजा खुला रह जाता है, जिससे अमल के ख़्वाबों वाली विरुदा जा सकती है और असली विरुदा आ सकती है...?

लीक से हट कर बिलकुल ही अलग अंदाज में रची गयी अनिमेष की यह कहानी इतनी चित्रमय और अनुक्रम में है, मानो पटकथा पूरी तरह तैयार हो - रंगमय, सजीली, सुगढ़, सशक्त! जब कहानी ऐसी हो तो दृश्यांकन और संपादन भी काफी हद तक पहले से परिभाषित हो जाता है। संवाद भी सटीक, चुस्त व चुटीले हैं। साथ ही साथ, गीत-संगीत के लिए अत्यंत उपजाऊ भूमि प्रदान करती है यह कथा। दृश्यांकन के हिसाब से यह चुनौतीपूर्ण अवश्य है। इसके निहितार्थों और अन्यार्थों के संस्तरों को खोलना और बहुआयामी कथाफलक के जरिये पूरी रोचकता के साथ जीवन का अनूठा दर्शन इस कहानी के फिल्मांकन का बड़ा उद्देश्य होगा और ध्येय विधेय भी।

अब तक चर्चित कहानियों से एकदम जुदा कहानी है 'चंद खिलौनों की दास्तान'। सिनेमा में नए प्रयोग और नए आयाम रचने के हिसाब से बेहतरीन कथानक है यह - परंपरागत कथनात्मकता (narrative) से भिन्न। ऐसा नहीं कि इस तरह का प्रयोग

हिंदी सिनेमा में नहीं हुआ है, लेकिन इस कहानी का फिल्मांकन बेशक इस प्रयोग को और आगे ले जाएगा।

यह ऐसी कहानी है जो एक कहानी से प्रस्फुटित होती कई कहानियों के माध्यम से अलग-अलग दिशाओं, कालखंडों, घटना-परिघटनाओं, चरित्रों, मनोदशाओं व भाव-संवेदनाओं के जरिये कई यात्राएँ करती है। इन तमाम स्त्रोतों से अनुभव-अनुभूतियाँ और सीख-सबक संचित कर यह कथा-श्रृंखला वर्तमान के देश-काल को व्यापक कैनवस पर प्रस्तुत करती है तथा उसकी समझ को समृद्ध करती हुई कई तहों में दबी असलियत को सामने लाती है। दरअसल ऐसी कहानियाँ किसी व्यक्ति, घटना, स्थान, समय या मनोभाव विशेष की नहीं होती। इनका किरदार होता है एक कालखंड। प्रायः उस कालखंड को हम उसमें हो रही घटनाओं-परिघटनाओं, व्यक्तियों व स्थितियों से प्रदर्शित करते हैं, तो कई बार उसे उस कालखंड के परे जाकर। दूसरे कालखंड, उसके चरित्रों, मनोभावों, परिघटनाओं, दूसरी प्रजातियों की कहानियों के माध्यम से हम वर्तमान को बेहतर चित्रांकित कर पाते हैं। ऐसी कहानी या फि ल्म एक एंथोलॉजी या गद्यावली होती है जिसमें कई कहानियाँ मिलकर एक वृहत्तर विषयवस्तु व भाव को चित्रित करती हैं। 'चंद खिलौनों की दास्तान' एक ऐसी ही कहानी या कथाकार के शब्दों में ही कहे तो 'कथावली' है।

आज के देशकाल में एक गरीब बूढ़ा अपनी मिट्टी के खिलौने बना कर बेचता और अपना गुजारा करता है। जबकि सारा देश सस्ते और 'आकर्षक' विदेशी खिलौनों और साजो-सामान का आदी हो चुका है, यह खिलौनेवाला खुद से खिलौने गढ़ता और बनाता है। ऐसे में देश की अर्थव्यवस्था ही नहीं, उसकी माली हालत भी खस्ता हो गई है। लेकिन उसका अपनी कृतियों (खिलौनों) के साथ अनन्य सजीव संबंध है। खिलौने उसकी बात समझते हैं, वह भी उनकी बात समझता है। आधुनिक तंत्र के बीच पुरानी रूह सँजोये उस बूढ़े की तबीयत अचानक खराब हो जाती है। नुक्कड़ के एक अनाथ बच्चे की मदद से खिलौने उसे लेकर पहुँचते हैं एक चारागर के पास। चारागर का तो काम ही है नादुरूस्त को दुरूस्त करना, मुश्किलों में राह निकालना। उसका मेहनताना रुपया पैसा नहीं, वरन एक रूहानी आपसदारी! तय होता है पूरी रात इलाज चलेगा, तब तक कोई सोयेगा नहीं, और बारी-बारी से हर खिलौना एक कहानी सुनायेगा। कहानी ही इलाज की कीमत होगी - वही अपनी मिट्टी की कद्र करनेवाली और उसके लिए जी-जान लगाने वाली उन साँसों को उबारेगी तथा उनमें नयी संजीवनी का संचार करेगी।

यूँ शुरू होता है कहानियों का सिलसिला। पहली कहानी 'आगे बढ़ो' वर्तमान देशकाल में दीन-हीन जन के हालात, विडंबनाओं और जद्दोजहद को दर्शाती है। इस तंत्र में कैसे वंचित और अशक्त हर बार मोहरा बनता है, और शिकार भी - और उसे हासिल कुछ नहीं होता। जहाँ शांति और उत्सव हो वहाँ सबसे पीछे छूट जाता है वह और जहाँ बबार्दी हो वहाँ सिर्फ.वही दिखता है।

दूसरी कहानी 'पतंगबाज' एक देश के दो टुकड़े हो जाने के बाद जीवन की त्रासदी को बिंबित करती है। कैसे दिल सब बंधनों को तोड़ कर और हर बाधा को पार कर दूरियों के दरिया पर पुल बाँध लेता है और जीवन का सहभागी हो जाता है! लेकिन दिलों

को बाँटने वाली ताकतों को यह संगम नहीं सुहाता। वे फिर से इस पुल को छिन्न-भिन्न कर देना चाहती हैं।

तीसरी कहानी है 'खेल'। खेल हमारे जीवन का सहज, स्वतःस्फूर्त हिस्सा होता है। बचपन के जवान होने की तो सीढ़ी ही होता है खेल, जो खेल-खेल में जीवन के हर पाठ सिखा जाता है। कहानी दिखलाती है कि आज हमारे जीवन का वह हिस्सा किस कदर न सिर्फ. पूँजी, बाजार और व्यवसाय की भेंट चढ़ गया है, बल्कि राजनीतिक चालाकियों और आर्थिक सौदेबाजी का अड्डा भी बन गया है! इतना ही नहीं, अपनी मनलुभावन चकाचौंध से इसने युवा मन को एक तरह से सम्मोहित और स्तंभित कर रखा है।

चौथी कहानी है - 'कुछ लेना न देना'। जीवन की बढ़ती जा रही अर्थहीनता ने भी हमें वृहत स्तर पर कुंठित कर रखा है। दिन-दिन फैलता जाता यह खोखलापन अपनी सहज भाषा में गलीज या अश्लील अभिप्राय गढ़ने की ओर ले जाता है, जिसे समाज अपने स्खलित आनंद का स्रोत बना लेता है। ऐसे ही माहौल में घिरे एक संजीदा युवक की कचोटती संवेदनाओं की कहानी है यह।

अगली कहानी 'आत्मा का अंगोछा' केवल एक कथा नहीं, कविता और विंब भी है। कितना दुखद और संत्रासजनक है आत्मा का अधःपतन, इतना कि वह शातिर दिमाग के काबू में आ जाये! कहते हैं - 'तोरा मन दर्पण कहलाये' - लेकिन जब मन आत्मा को प्रतिबिंबित करना बंद कर दे, तब आत्मा शातिर जेहन के पूर्ण नियंत्रण में आ चुकी होती है। ऐसी ही स्थिति को उद्घाटित करती है यह कहानी। फर्श से अर्श पर पहुँचने वाले एक राजा को इस क्रम में बहुत सारे युद्धों को ही नहीं, मन और आत्मा को भी जीतना होता है। आत्मा अमर होती है, लेकिन अगर उसे कोई बंधक बना ले तो फिर क्या हश्र होगा, इस तरफ इशारा करती है यह गहन रचना।

'अगले जनम' शीर्षक कहानी एक इंसान (पुरुष) के अतंर्मन को परिलक्षित करती है। एक धोबी अपनी पत्नी और गधे के साथ सुकून से रह रहा होता है। उसे रत्ती भर भी भान ही नहीं कि उसके सुकून के पीछे गधे और औरत का कितना शोषण छिपा है! अचानक एक दिन उसे आभास होता है कि अगले जनम वह गधा भी हो सकता है। तब गधे के प्रति उसकी सारी क्रूरता आँखों के सामने नाचने लगती हैं। उसे महसूस होता है किस कदर दुश्वार बना रखी है उसने ज़िंदगी गधे की। उसकी हालत और बुरी हो जाती है जब दिलासा देती पत्नी कहती है कि पहले तो उसे स्त्री बन कर मानुस-जनम पूरा करना होगा! अब एक बार फिर से औरतों के प्रति क्रूरता की तस्वीर उसके सामने खुलने लगती है और वह और बेचैन हो जाता है।

कहानी 'नरबर' मात्र एक 'बर्बर' राजा की कहानी नहीं, बल्कि मानव सभ्यता के सनकी हो जाने की कहानी है। एक राजा (या कि मानव) सर्वशक्तिमान हो जाने का अहं में सोचता है कि वह सबसे बड़ा है और कुछ भी कर सकता है। जब राजा को 'महान' न मानने-कहने के 'अपराध' में गुप्तचरों की शिकायत पर पकड़ी गयी वृद्धा बेलाग बोल देती है कि उससे तो महान गाय है जिसका गोबर भी पवित्र होता है - तो वह येन-केन-प्रकारेण इस सच को भी झुठलाने और अपनी महानता को साबित करने में

भिड़ जाता है। मदांधता में रत्ती भर विवेक शेष न रह जाने और खुद को खुद से अमरत्व प्रदान करने के पागलपन को संभवतः संपूर्ण विश्व वाङ्मय की एक अनन्य कथा की तरह चित्रांकित करता है यह आख्यान।

इस कथा-क्रम की आठवीं कहानी है 'चटनी'। यह नारी शक्ति को रेखांकित करती, नारी प्रकृति को जाग्रत करते हुए शाश्वत सत् चित् आनंद को प्राप्त कर लेने की अवस्था में पहुँचने की कथायात्रा है। औरतों के लिए कहावत है - मर्द के दिल का रास्ता उसके पेट से होकर जाता है! पेट के रास्ते पहुँचे जाने वाले दिल को ठुकरा कर और अपने को सबल बना कर कैसे एक औरत पुरुष के इन्द्रजाल से मुक्ति पाती है और स्वयं अपनी पहचान भी - बड़ी ही अच्छी तरह दर्शाया है इस कहानी ने।

इस कथा-श्रृंखला की आखिरी कहानी है 'बिछौना' - जो इस सिलेसिले को शाश्वत शक्तियों व मूल्यों के पुनर्स्थापन के साथ उत्कर्ष तक ले जाती है। बिछौना, जो मानव वर्ज्य और दुगंधों से त्याज्य हो गया था, कुछ दिनों की खुली हवा, बारिश और धूप से पुनः संपोषित करने वाली जमीन के रूप में तैयार हो जाता है। जीवनदायिनी तो सचमुच धूप, हवा, पानी, मिट्टी और आकाश ही हैं, सांसारिक कृत्रिमतायें और बाधायें तो उन सत्वों का दूषण और क्षरण ही करती हैं। थोड़े शब्दों में बहुत बड़ा आशय और अभिप्राय समेटे हुए है यह कथा। अंततः चारागर मुख़्तसर में अपनी 'रामकहानी' सुना कर कथासूत्र को देशकाल के वर्तमान में वापस ले आता है। ' चंद खिलौनों की दास्तान...' इस बात की निशानदेही करती है कि मेल-जोल और प्रेम से भरा हँसता-खेलता जीवन किस तरह बार-बार खींची जाने वाली लकीरों के कारण आहत हो जाता है! इन दास्तानों से गुजरने वाले वापस पहुँचते हैं वहाँ, जहाँ से चले थे - लेकिन इस बीच अनुभव, समझ, जिजीविषा और जीवन-मूल्यों से भरी झोली भर लाते हैं।

कोई शक नहीं कि इस कहानी या कथाक्रम को पटकथा में ढालने में मशक़्क़त करनी पड़ सकती है, पर यह मेहनत रंग लायेगी इसमें भी संदेह नहीं। प्रचलित और स्वीकृत सामान्य अवधारणा से इतर होने के बावजूद इस पर निर्मित फिल्म नायाब होगी। यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि अनिमेष की इस अनूठी 'चंद खिलौनों की दास्तान...' से कला-कौशल, कल्पनाशीलता, रचनात्मकता व प्रयोगधर्मिता को नया आयाम मिलेगा।

एक से बढ़कर एक अनिमेष की लाजवाब कहानियों के कोश में से बरबस ध्यान खींचने वाली एक कहानी है, 'उसने नहीं कहा था'! कहानी का शीर्षक याद दिलाता है गुलेरी जी की उस प्रसिद्ध कहानी की जिसका शीर्षक था, 'उसने कहा था'। उसी नाम से ही उस पर फिल्म भी बनी थी। 'उसने कहा था' में प्यार की एक रूहानियत है और 'उसने नहीं कहा था' में भी! अंतर बस प्यार को जाहिर करने और उसके 'प्यार तक पहुँचने' का है! 'उसने नहीं कहा था' इस मायने में और मार्मिक है कि इसके नायक का केवल अपनी ओर से एकतरफा प्यार आखिर तक चलता (और बढ़ता परवान चढ़ता ही) चला जाता है, और नायिका को उसका पता भी नहीं चलता! मगर इस कदर 'अकेला' होकर भी यह प्यार भरा पूरा और पूरी तरह सकारात्मक है, उसमें कहीं से भी कोई रिक्तता या तिक्तता नहीं।

'उसने नहीं कहा था' एक अकथ प्रेम कथा है, जिसे नायक भले नायिका से कह नहीं पाता, लेकिन हर पढ़ने सुनने देखने वाला अपने सीने से लगाना चाहेगा! खासकर इसलिए कि आज के दौर में भी कोई इतना भला चाहनेवाले हो सकता है और मुमकिन हो सकती ऐसी नायाब प्रेम कहानी! नायक को तो उसका नाम भी नहीं पता, बस अनुमान से रख लिया नाम अनुमा। वैसे अनुमा को जताने की मासूम-सी कोशिश तो कभी उसने की, पर संदेश उस तक पहुँच पाया या नहीं, पहुँचा तो क्या वह समझ पायी - इतना भी कि वह कौन है? पता नहीं। लेकिन 'लड़की' यानी नायिका ने तो कभी ऐसा कुछ नहीं कहा था यह तय है।

यह कहानी भी चित्रमय है, किसी बेजोड़ क्लासिक के दृश्यों की तरह! कथा के हर अनुक्रम में बिंबों को माध्यम बनाया गया है। बिंब एक घटना के रूप में या कोई घटना ही बिंब की तरह कहानी को उकेरती जाती है। दृश्यावली की तरह घटनायें उभरती हैं। इस कहानी की कथनात्मकता फ़्लेशबैक वाली शैली में है लेकिन हम इसे बिल्कुल अभी शुरू होती हुई कहानी के रुप में भी ढाल सकते हैं। दोनों ही शैली में कहानी की शुरूआत किसी यादगार और बेमिसाल फिल्म के बिल्कुल माकूल है। फ़्लैशबैक वाली शैली में - दृश्य खुलता है, एक युवक (लगभग 25 साल का) गलियों और सड़कों पर अपनी 'प्रेमिका' की शादी के लड्डू बाँट रहा है, 'प्रेमिका' की शादी हो रही है पर दूल्हा वह नहीं है।

अगर सीधी शुरूआत वाली शैली लें तो फिल्म शुरू होगी - बारह साल की एक बच्ची और एक थोड़ा बड़ा बच्चा सड़क पर 'टकरा' जाते हैं। लड़की ठोकर खाकर गिर पड़ती है, हाथों की जलेबियाँ बिखर जाती हैं। बच्चा ठहर कर उस बच्ची की मदद करता है। मदद क्या करता है, वह जैसे उसकी नजरों में छप सी जाती है। दिनों तक वह घटना उसे झूलों में झुलाती रहती है। वह उसके प्यार में डूब चुका होता है। कुछ गलियों के फासले पर एक ही मुहल्ले में रहते हैं दोनों। आते-जाते मुस्कुराना, हाथ हिलाना; फिर सिर्फ.मुस्कुराना; लड़की का पता नहीं पर लड़का तो डूबा चला जाता है उस अनुराग-राग में। समय के साथ 'जीवन कक्षा' में दोनों दसवीं पार पहुँचते हैं।

हालात तो वैसे ही हैं, पर अब तो लड़का प्रेम में ओत-प्रोत हुआ जा रहा है। वह उससे दिल की बात बता देने की सोचने लगता है पत्र के द्वारा। लिख तो लेता है लेकिन खत उस तक पहुँचे कैसे? हिम्मत करते-करते भी जब सीधे दे नहीं पाता तो एक जुगत बिठाता है। अली चा माध्यम बनते हैं। वे उसकी गली के कोने पर, जहाँ लड़की का घर है, फुटपाथ पर रहते हैं और मोची का काम करते हैं। पहली बार, जब वह प्रेम पत्र उसकी बालकनी में पहुँचाने की (असफल) कोशिश कर रहा होता है, अली चा खुद आगे बढ़ कर मदद का जिम्मा लेते हैं। फिर पैरों से लाचार अली चा उसके हमराज और मुहब्बत के उस अजीम मुकाम के 'हमसफर' से बन जाते हैं।

इसी बीच अनुमा के घर एक हादसा होता है। शोक में शामिल होने वह भी पहुँचता है। पहली बार कदम रखता है उसके घर, वह भी ऐसे माहौल में। कहना तो बहुत कुछ चाहता था पर कह नहीं पाता। अनुमा के परिवार के लिए न्याय माँगने की कोशिश में पुलिस का डंडा भी खा जाता है और दर्द से बेहाल होता है। फिर भी, अपनी आवाज

उस तक नहीं पहुँचा पाता। लेकिन यह सोचकर संतुष्ट है कि उसके पत्र उस तक 'पहुँच' जा रहे हैं और अनुमा ने उन पत्रों को 'कभी' कचरे के डब्बे के सुपुर्द नहीं किया!

इसी तरह मौसम आते जाते हैं और आगे जब वह गर्मी की छुट्टियाँ मामा के यहाँ बिता कर लौटता है तो अली चा अनुमा की सगाई की खबर देते हैं। उसका दिल टूटता तो यकीनन है, लेकिन एक बड़े हादसे के बाद अनुमा के साथ कुछ अच्छा हो रहा है, यह सोच सहारा देती है! वह तय करता है उस खुशी में शरीक होने और उसे हर ओर पहुँचाने का। यह काम वह अली चा, मित्रों और सड़कों पर गरीबों के बीच मिठाई बाँट कर पूरा करता है। अपने प्यार की खुशी में वह खुश है। इससे अच्छा प्यार क्या हो सकता है भला, कुछ ऐसे ही भाव तैर रहे होते हैं उसके अंदर! लेकिन अभी अंत कहाँ? 'उसने नहीं कहा था', फिर भी वह अपने प्यार का मान रखता है! अभी तो उसे वे वादे भी निभाने होते हैं जो उससे उसने कभी लिये भी नहीं!

प्यार के प्रति भरसक अपना फर्ज. निभाने के बाद नायक एक ठीक-ठाक नौकरी पकड़ लेता है। कुछ समय बाद वहीं, उसी कार्यालय में, वरिष्ठ पद पर पदस्थापित होता है रणजीव, जो बेहद ही बददिमाग, बदमिजाज और अंदर से डरपोक किस्म का इंसान है। कार्यालय में नोंक-झोंक, बदमाशियों, दुर्व्यवहारों के उसके किस्से फैले हुए हैं। आते-आते खुद नायक के साथ भी बदतमीजी कर डालता है वह।

इसी बीच चुनाव आ जाता है। सबकी ड्यूटी लगती हैऔर रणजीव का भी नाम होता है उसमें। रणजीव के तो पसीने छूट जाते हैं, वह डर से अंदर तक हिल जाता है। लाख कोशिश पैरवी से भी नाम उसका हट नहीं पाता। वह बुरे सपने देखने लगता है, घर पर पत्नी से बदसलूकी करने लगता है। हरकतें अजीबो-गरीब हो जाती हैं। पत्नी इतनी परेशान कि एक दिन खुद पहुँच जाती है ऑफिस, लोगों से मिन्नतें करने कि किसी तरह इनकी मदद कीजिए, इन्हें बचा लीजिए। नायक देखता है कि यह तो अनुमा है! वो शायद नहीं पहचानती या ध्यान में उसके नहीं आता। वह अपने को तसल्ली देता है कि खुद भी उसे तुरत कहाँ पहचान पाया! कुछ कहता नहीं उसे टोकता नहीं। अब तक ही कहाँ कुछ कहा था! लेकिन बड़ा अफसोस होता है दिल ही दिल में जान कर कि रणजीव जैसा पति मिला उसे। दुख की एक तह बैठ जाती है मन में। अनुमा को भले अहसास न हो, लेकिन 'कभी दिये नहीं गये' वादे को पूरा करने का वक़्त आ चुका होता है नायक के लिए! संयोग से उसका नाम 'चुनाव-कार्यभार' की सूची में शामिल नहीं होता।

वह दिन आता है जब चुनावी ड्यूटी के लिए क्षेत्र का निर्धारण हो रहा होता है। रणजीव की बदहवासी और कातरता अपने चरम पर है। यह देख नायक के अंदर अपना उत्तरदायित्व निबाहने और अनकहे प्यार की ही तरह 'अनकिये' वादे को पूरा करने के 'संकल्प' का भान होता है। वह अधिकारियों के समक्ष रणजीव के बदले अपनी सेवा देने का प्रस्ताव रखता है और उसके इस तरह लगातार आग्रह करने पर अधिकारी मान जाते हैं। रणजीव की जान में जान लौट आती है। और नायक की आँखों में अनुमा का चेहरा कौंधता है।

फिल्म के हिसाब से कहानी के संवाद सटीक हैं। गीत-संगीत का भरपूर सुअवसर भी है। इह हृदयस्पर्शी कहानी में हास्य का भी समुचित समावेश है, जो कथाकार अनिमेष

की एक और खासियत और खूबी है। बहुत गहरी और करुणा से भरी उनकी कहानियों में भी हँसी या कॉमेडी अंतरलहर या अंडरकरेंट की तरह उस पैथॉस को और गहराती उभारती चलती है - कॉमिक रिलीफ प्रदान करने के साथ-साथ अंदर से झकझोरते और कथ्य को गहराते हुए। कहानी में वह लचीलापन भी है फिल्मांकन के मुताबिक यथावश्यक समायोजन किये जा सकते हैं। जैसे कि, फिल्म का क्लाइमेक्स कुछ इस तरह बुना जाये कि नायिका भी हो वहाँ, और नायक को पहचान ले। फिर उसकी आँखों में पत्रों के दृश्य घूमें और वह बोध और अनुभूति जागे कि उन पत्रों वाला अनाम तो यही है!

वैसे तो प्रेम रंजन अनिमेष की लगभग सारी कहानियाँ ही इतनी गहरी, दिलचस्प , नये मानवीय संवेदनाओं, जीवनानुभवों व संभावनाओं से भरी, रोचक एवं जीवंत होती है, कि उनकी डोर थामे यह चर्चा चलती ही जाये। इस भावयात्रा में कहीं अल्पविराम लेना भी कठिन है, किंतु समय व स्थान की सीमाओं को देखते हुए उनका विस्तृत विश्लेषण आगे कभी फिर। फिलहाल यहाँ 'दि हिंदी टीचर' का उल्लेख आवश्यक है। कहा जा सकता है कि यह उपन्यासिका यहाँ चर्चित रचनाओं में सर्वाधिक सिने संभावनायुक्त या 'चलचित्र' हेतु मुफीद है - हमारे समय की एक ऐसी गाथा जिस पर बनी फि ल्म जितनी कलात्मक एवं रचनात्मक हो सकती है उतनी ही जनप्रिय व हर दृष्टि से सफल या कामयाब भी।

'दि हिंदी टीचर' एक उपन्यसिका है जिसे दो हिस्सों में देखा जा सकता है। नायक दोनों जगह तो एक ही है लेकिन कहानी का परिवेश, गतिकी, मूड यह सब बिल्कुल अलग। नायक के अलावा उभयनिष्ठ है इस उपन्यसिका का सूत्रधार, जो दोनों अंश में स्वयं एक पात्र है, साथ ही नायक का शुभचिंतक भी। यह एक लासानी प्रेमकथा भी है। कई तरह की समस्याओं और उथल पुथल से घिरी प्रेम कहानी! अगर वह दो असमान के बीच हो तो उस प्रेम और उसकी कहानी का वितान और प्रभामंडल बहुत ही विस्तृत हो जाता है। ऐसा ही एक अनुपम व अद्भुत आख्यान है 'दि हिंदी टीचर'!

समाज के वंचित वर्ग के प्रतिनिधि कथा नायक सनातन शेषनाथ श्रेयस्कर यानी 'सशेष' जी की प्रेमिका किसी और के लिए उन्हें छोड़ जाती है। एक गाँठ सी बन जाती है उनके अंदर और बरसों बरस खुलने का इंतजार करती है। यह उत्सुकता जागती है कथाक्रम से गुजरते हुए कि क्या कभी खुल पायेगी वह गाँठ?

आगे चल कर 'राजभाषा सहायक' के पद पर नियुक्ति हो जाती है उनकी। नौकरी उनके मान-अपमान-स्वाभिमान की दास्तान है। हर 'विपत्ति' झेलते और आने वाली हर चुनौती का सामना सविनय 'सहर्ष' करते वे अपने हर अनुभव को एक पाठ के रुप में सँजोते जाते हैं। बचपन से अभी तक के अनुभव को उन्होंनें कई 'मूलमंत्रों' में ढाल रखा है। इन मूलमंत्रों को साझा करने का सुअवसर मिलता है जब कथा-सूत्रधार उनके कार्यालय और जीवन में प्रवेश करता है। इसके पहले कि श्रेयस्कर को पूरी तरह जान पाये, सूत्रधार नयी नौकरी में मुंबई पहुँच जाता है। लेकिन तब तक दोनों इतने परिचित हो चुके हैं कि बार-बार मिल सकें और एक दूसरे पर भरोसा कर सकें। इस बीच श्रेयस्कर जी मन न जम पाने के कारण नौकरी छोड़ देते हैं। फिर काम की तलाश में एक दिन वह

मुंबई पहुँच जाते हैं, जहाँ एक ही दरवाजा था जिसे वे खटखटा सकें - सूत्रधार 'मित्र' का। सूत्रधार उन्हें यहाँ मुंबई आया देख कर अचंभित भी होता है और प्रसन्न भी।

फिल्म की कहानी यहीं से शुरू होगी, जरूरत के हिसाब से फ्लैशबैक में जा सकते हैं। मुंबई में कई तरह के अनभवों से गुजरने के बाद उन्हें वह नौकरी मिलती है जो न सिर्फ शानदार फिल्म के लिए पटकथा तैयार करती है बल्कि श्रेयस्कर जी को उनकी गाँठ से भी मुक्त करती है।

श्रेयस्कर को भाषा कुशलता के दम पर सबरीना को हिंदी में दक्ष बनाने का काम मिलता है। सबरीना हिंदी सिनेमा की आज की सर्वाधिक लोकप्रिय हीरोइनों में से एक है। उसके माता-पिता प्रवासी यानी एनआरआई हो गए थे। सबरीना खोज है अहसान अली की, जो न सिर्फ चोटी का हीरो है बल्कि लंबे समय से शिखर पर बना हुआ है। वह दबंग भी है, जिसका दबदबा चारों तरफ है। अहसान अली को सबरीना पसंद आ जाती है। वह उसे फिल्मों में स्थापित करता है, दिल में तो खैर पहले ही बिठा चुका है। 'दिल में बिठा लेना' मतलब उसके पूरे जीवन को नियंत्रित करना!

सबरीना का हिंदी-अज्ञान उसके कैरियर की राह में रोड़ा बन रहा था, सो अहसान अली अपना फर्ज.समझता है कि किसी तरह यह बाधा दूर करे। तभी एक दिन श्रेयस्कर पर उसकी 'नजर' पड़ती है। वह उसे बुलावा भेजता है और सौंप देता है सबरीना को उसके हाथों, हिंदी में कुशल बनाने के लिए - वह भी मात्र चार महीनों में। एक हल्की चपत के साथ 'पते की बात' भी समझा देता है उसे अहसान!

अब इन चार महीनों में क्या-क्या और कैसे-कैसे होता है, यह तो फिल्म में देखने की बात होगी। बिल्कुल दो छोर के दो जातक, अपनी-अपनी 'ताकतों' और मजबूरियों में बँधे, एक आजाद आकाश की तलाश में हैं, जहाँ उन्मुक्त वे अपने जीवन को जी सकें और स्पंदन उसका सुन सकें! उनके देहावरण अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन दिल का वे क्या करें? दिल पर गर्द जमा हो सकती है, पर खुली हवा के झोंकों में वह झट उड़ भी तो जाती है! क्या श्रेयस्कर और सबरीना के बीच ऐसा ही कुछ होता है? फिर अहसान अली का आतंक भी तो है उनके दरमियान ...।

इसी दौरान अहसान अली अपने एक नये प्रोजेक्ट के सिलसिले में लंबे समय के लिए बाहर जाता है। जाने से पहले वह श्रेयस्कर को समझा जाता है कि अब उसके पास अधिक समय नहीं। वह लौटते ही सबरीना से ब्याह कर नयी दुनिया बसा लेगा। इधर अहसान की अनुपस्थिति में परन्तु उसके आतंक की मौजूदगी में श्रेयस्कर और सबरीना के दिल 'उन्मुक्त' उड़ान भरते हैं, मगर डोर तो फिर भी कहीं और है। चार महीने पूरे होते हैं और दोनों भरे दिल से एक दूसरे से विदा लेते हैं। अगले दिन सबरीना के पास अहसान का संदेश आता है - उसे वहाँ एक नयी 'सबरीना' मिल गयी है और वह उसके प्रेमपाश में बँध चुका है। वे जल्दी ही शादी करने जा रहे हैं और अब यह सबरीना आजाद है उसकी तरफ से...!

इस कथाकृति की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह एक 'खुले अंत' (जिसे रचयिता अनिमेष 'अंत अनंत' कहते हैं) या ओपन एंडेड कहानी की तरह है। इसे पटकथा की रूपरेखा की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं और अपने हिसाब से इसका अंत ही नहीं, बीच

का ग्राफ भी तय कर सकते हैं और कई विकल्पों पर काम कर सकते हैं - कहानी के मर्म को समझते और अक्षुण रखते हुए। संवादों में भी नये प्रयोग के अवसर हैं। नायक नायिका के बीच संवाद अधिकतर कविता के माध्यम से हो रहा है, अतः यहाँ गीत संगीत के प्रयोग के लिए भी नये आयाम हैं। कुल मिला कर यह एक बड़ी ही दिलकश और अपार संभावनाओं से भरी महागाथा है - अंदर से जितनी करुण व मार्मिक, ऊपर से उतनी ही हँसोड़, जीवंत और गुदुगुदाने वाली, सरोकारों से भरपूर एवं जीवन रस से सराबोर - और इसे एक यादगार सिनेकृति में ढालने का अनुभव भी उतना ही रोचक और स्मरणीय होगा। यह सम्यक और समीचीन ही है कि सार्थक सिने-संभावनाओं के संदर्भ में अनिमेष की कथाकृतियों के विवेचन का आरंभ सुख्यात पुरस्कृत कृति 'पानी पानी' से होता है तो उसका समाहार उनके बहुप्रशंसित आख्यान 'दि हिंदी टीचर' से। फिल्म अनुकूलन के हिसाब से एक छोर पर 'पानी पानी' है, जो पटकथा के रूप में लगभग हर कदम और मोड़ पर सुनिश्चित और परिभाषित है, तथा जिसमें कथाक्रम के साथ ज्यादा छेड़छाड़ या कुछ अधिक जोड़ने या हटाने की गुंजाइश बहुत कम या न के बराबर है। दूसरी तरफ 'दि हिंदी टीचर' है, जिसका मर्म और पूरी रूपरेखा परिभाषित है।

सिनेमाई संभावनाओं से भरपूर किसी कहानी, उपन्यास, या नाटक को परदे पर उतारना, या फिर जीवन्त कृति को रंगमंच तक लाना कोई आसान काम नहीं। दरअसल लिखित कला को क्रियात्मक कला में ढालने के लिए शब्द कर्म से जुड़े सक्रिय और गतिशील तत्वों की पहचान कर उन्हें पूरे अवधान से बरतना पड़ता है - इस तरह कि पन्नों पर रचे बसे सधे शब्द परदे पर प्राणवान होकर बोलने बतियाने लगें... किरदार बन कर सच और सपनों को सजीव साकार कर दें! साहित्य को सिनेमा की शक्ल देने के लिए कुछ छूट भी ली जा सकती है - लेकिन बस इतनी कि रचना की आत्मा अनाहत रहे। इस आपसदारी की खातिर सिनेमा और रंगमंच से सम्बद्ध लोगों के लिए जरूरी है कि वे साहित्यकारों से जुड़ें और उनसे संवाद करें। साथ ही शब्दसाधकों का भी सिनेमा और रंगमंच से रचनात्मक रिश्ता इस पारस्परिकता को आगे बढ़ाने हेतु हितकर है। यही बात कला की अन्य विधाओं के लिए भी समीचीन और श्रेयस्कर है।

प्रेम रंजन अनिमेष की उल्लिखित कहानियों के साथ कई अन्य गद्य रचनाओं में भी साहित्य जगत के साथ साथ सिनेमाई क्षेत्र को भी आलोकित करने की क्षमता है - यदि इनका रूपान्तरण सलीके से किया जाये। उत्कृष्ट कालजयी फिल्में बनाने के लिए इन कहानियों में बहुआयामी विविधता, सशक्त कथानक व किरदारों के साथ साथ हृदयस्पर्शी संवादात्मकता, अन्तर्निहित लयात्मक संगीतात्मकता तथा चित्ताकर्षक चलचित्रात्मकता - सबकुछ सार्थक सन्तुलन के साथ विद्यमान है। सकल कला के विस्तृत बहुस्तरीय फलक पर अनंत संभावनाओं का संसार है, जहाँ समय के साथ असाधारण सृजन आयाम जुड़ते रहते हैं। पारखी कलावन्तों की सुदृष्टि और साझेदारी रही, तो इनमें जन साधारण और वंचित अतिसाधारण की असाधारण कथा कहने वाले प्रेम रंजन अनिमेष की भी अनेकानेक रचनायें हो सकती हैं - उनकी सतत, सशक्त, सार्थक और नवोन्मेषी सृजनात्मकता निश्चय ही यह विश्वास दिलाती है।

दूरभाषः 9870563558

प्रेम रंजन अनिमेष के साथ चेतन कश्यप के कुछ सवाल-जवाब

प्रश्नः अपने जन्म और बचपन के बारे में कुछ बताइए। जन्म कहाँ हुआ? घर में कौन-कौन थे? बचपन संभवतः आरा में बीता आपका। उस समय के बारे में कुछ बताइए। माहौल, परिवेश कैसा था?

उत्तरः जन्म आरा (भोजपुर) में हुआ जो पटना से लगभग 50-60 किलोमीटर दूर है। बचपन भी वहीं गुजरा- बड़ी मठिया के पास किराये के एक बहुत ही पुराने घर में। विद्यालय तक का विद्यार्जन भी वहीं हुआः (हर प्रसाद दास) जैन स्कूल में। वहाँ दसवीं कक्षा तक पढ़ाई करने के बाद पटना आना हुआ। पटना महाविद्यालय और विश्वविद्यालय से स्नातक और स्नातकोत्तर किया अंग्रेजी भाषा व साहित्य से। भाषाशास्त्र मेरा विशेष विषय रहा।

बचपन की पहली स्मृति दादाजी के जाने की है, जिन्हें हम सब 'बाबा' कह कर बुलाया करते। दोमंजिले पुराने घर की ऊपरी कोठरी में छज्जे की ओर खुलने वाले दरवाजे के पास वे शांत निर्विकार पड़े हुए और उन्हें घेरे परिजन सारे व्याकुल विह्वल रोते हुए! तब मैं कोई तीन बरस का था- जिस वय में एक बच्चा अपनी जमीन पर पाँव टिकाकर आसमान की तरफ देखना शुरू करता है- चाँद खिलौने की माँग करते हुए। संभवतः इतना भावावेग भरा वह दृश्य था कि बाल-मन में प्रथम स्मृति की तरह अंकित हो गया और मैं बहुत दिनों तक चुहल और ज़िद से दूर रहा। पेशे से बाबा अधिवक्ता यानी वकील थे पर मन से साधु संत फकीर की तरह। सत्य के इतने बड़े पक्षधर कि कितने भी प्रलोभनों के बावजूद झूठों और अपराधियों का कोई केस कभी हाथ में नहीं लिया तथा सच्चाई के लिए निःस्वार्थ और निःशुल्क भी लड़े। यही संस्कार आगे पिताजी और फिर हमसे जुड़ा।

पिताजी पटना में रहते और बतौर प्राध्यापक बीएस कॉलेज, दानापुर में अंग्रेजी पढ़ाते। आरा और पटना, दोनों शहरों में जो घर रहे हमारे, उनकी खासियत थी कि वे किराये के थे और पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं से पूरी तरह भरे हुए! यहाँ तक कि पिताजी (जिन्हें 'बाबूजी' बोलते हम) की शय्या (चौकी) भी किताबों से ऐसे भरी हुई कि रात सोने के लिए सहेज कर उनके बीच से जगह निकालनी पड़ती। हमारे बचपन में माँ का सबसे बड़ा डर यही रहा कि किसी रात किताबों की ऊँची अट्टालिकाएँ कहीं से न सरकें और कभी धोखे से कोई बच्चा इनके तले न दब जाये!

साहित्य के साथ-साथ संगीत भी था हमारे घर की रगों में दौड़ता। सात सुरों से लगाव और गाने का शौक परिवार में प्रायः सबको ही रहा- ननिहाल में भी। उसी तरह लिखावट भी लगभग सभी की बहुत अच्छी! मतलब यह कि घर में शुरू से ही पढ़ने-लिखने, सुनने-कहने, गाने-गुनगुनाने का माहौल रहा। अवश्य उसी ने मेरी कलात्मकता को सींचा सँवारा होगा!

प्रश्नः स्कूल की पढ़ाई कैसी थी, आप कैसे विद्यार्थी थे। पढ़ने-लिखने का माहौल तो आपको घर में ही मिला, स्कूल में साहित्य को लेकर कैसा माहौल था?

उत्तर: जैसा पहले ज़िक्र किया है, विद्यालय की शिक्षा आरा के हर प्रसाद दास जैन स्कूल में हुई। मैं सबसे छोटा था और इस नाते घर-परिवार में सबका और भी प्यारा-दुलारा। तो घर में कुछ समय और रखने के मोह में स्कूल किंचित देरी से भेजा गया किंतु विद्यालय में वह देरी अग्रता में बदल गयी। दरअसल भेजा गया था मुझे पहली कक्षा में प्रवेश के लिए लेकिन वहाँ पहुँच कर पता चला कि (जैन) स्कूल में तो पढ़ाई चौथी जमात से है। अब आया ही था तो परीक्षा की चुनौती मैंने स्वीकार की और प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण भी हो गया। याद है, चौथी कक्षा के हिसाब से तब वय में इतना छोटा था कि बैठ कर बेंच तक पहुँच नहीं पा रहा था। इसलिए खड़े होकर ही वह पूरी परीक्षा दी थी। विद्यार्थी मैं अच्छा था। शुरू से पढ़ने-लिखने में प्रवृत्त और रचनात्मक। दो वर्ष बाद, अर्थात छठी कक्षा में विद्यालय के तब तक के सारे कीर्तिमान मैंने ध्वस्त कर दिये तो धूम मच गयी। जहाँ तक मुझे याद है, तब जबकि सारे दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हुआ करते और परीक्षा विषयनिष्ठ, छह सौ में से पाँच सौ छियासी अंक मिले थे। प्रधानाचार्य गिरिराज बाबू स्वयं कक्षा तक आये थे यह घोषणा करने और बधाई देने के लिए। यह भी कहा सबके सामने कि इतने अधिक अंकों के कारण मेरी सारी उत्तर पुस्तिकाओं का स्वयमेव पुनर्परीक्षण किया उन्होंने, किंतु कहीं से कोई अंक काट सकने की गुंजाइश नहीं मिली। गले लगाते हुए इस उपलब्धि हेतु पुरस्कार देने की भी घोषणा उन्होंने की (जो प्राप्त न हो सका)। प्रधानाचार्य एक समारोह कर पिताजी को यह पुरस्कार प्रदान करना चाहते थे ताकि अन्य बच्चे भी प्रेरित हों लेकिन पिताजी को वह अवकाश और सुयोग न मिल सका क्योंकि वे दानापुर-पटना जाते-आते हुए पढ़ने-पढ़ाने में ही पूरी तरह व्यस्त रहते। बड़ी दीदी ने जाकर एक बार प्रधानाचार्य से अनुरोध भी किया कि बड़ी होने के नाते बतौर अभिभावक यदि पुरस्कार उनकी उपस्थिति में दिया जा सके! किंतु प्रधानाचार्य ने पुनः पिताजी के आने को आवश्यक बताया। इस मामले में वे काफी सख़्त और अनुशासनप्रिय थे।

चौथी कक्षा के मेरे कक्षा-शिक्षकसे ही पहले दिन प्रथम परिचय हुआ। उस दिन पूरे समय कक्षा में वही रहे। इतना संकोची था मैं उस समय (अब भी बहुत अधिक नहीं 'सुधरा' हूँ) कि मनाता रहा आगे भी सारे समय वही रहें कक्षा में। ऐसा होना संभव न था। नये शिक्षक आये, उनसे परिचय हुआ और अच्छा लगा। लगभग सारे शिक्षक स्नेहिल थे। हुसैन सर खास कर बहुत मानते थे और हरफनमौला या ऑलराउंडर बुलाते मुझे, क्योंकि पढ़ाई लिखाई के साथ साथ खेलकूद और गीत संगीत में भी अच्छा था। समय-समय पर पूरी कक्षा को मेरा गीत भी वे सुनवाते। आगे उच्च कक्षाओं में भी जानने-मानने वाले शिक्षक मिले, किंतु सहज स्नेहपूर्ण आत्मीयता सातवीं तक के शिक्षकों में अधिक थी।

आपने स्कूल के साहित्यिक माहौल की बात पूछी है तो उन दिनों अपने विद्यालय के साहित्य-संबद्ध हिन्दी शिक्षकों में एक थे अजित सिंह जो प्राथमिक कक्षा में पढ़ाया करते और दूसरे मधुकर सिंह जो उच्चतर कक्षाओं में। अजित सिंह बहुत मानते, बहुत स्नेह करते। पढ़ाते भी थे बड़े प्यार से। उनकी एक कहानी 'धर्मयुग' में आयी थी, जहाँ तक मुझे याद है। वे प्रतिभाशाली थे पर उस तरह प्रतिष्ठित नहीं। प्रतिष्ठित थे मधुकर

सिंह, किंतु स्वभाव, लगाव और अध्यापन में शुष्क उचाट। कक्षा में अपना झोला लिये आते और कोई पाठ खुलवा कर पहली बेंच से बारी-बारी से एक-एक अनुच्छेद का पाठ करने को कह कर अपने साहित्यिक काम में लग जाते। जानना-मानना तो दूर, वे बतौर विद्यार्थी मुझ जैसों को पहचानते भी नहीं थे। अब मुड़ कर देखते हुए कह सकता हूँ कि संभवतः साहित्य में जो सियासत, विरोधाभास और आत्मीयताविहीन अग्रता की महत्वाकांक्षी होड़ जहाँ-तहाँ दिखायी देती है, उसकी एक झलक उस समय भी मिल गयी थी इस बहाने।

प्रश्न : उन दिनों की पढ़ी कोई रचना या लेखक जिन्होंने आपको प्रभावित किया हो?

उत्तर : बालसुलभ खेलकूद के अलावा, बचपन में हमारे मनबहलाव का एकमात्र साधन पढ़ना- लिखना ही था। सिद्धांतों के खरे पक्के बाबा और पढ़ने-पढ़ाने, शिक्षा और साहित्य को समर्पित संतस्वभाव पिता की विरासत में अधिक साधन सुविधाएँ तो नहीं लेकिन किताबें थीं चारों ओर। पाठ्य पुस्तकों से जी हलका करने और मन बहलाने का साधन थीं पाठ्येतर पुस्तकें, जिनका हमारे औपचारिक पाठ्यक्रम से कोई जाना-सुना नाता न था। विशेष कर महीने भर से अधिक गर्मियों की छुट्टियाँ साहित्यावगाहन में ही गुजरतीं। याद है एक गर्मी की छुट्टी में अमृत लाल नागर रचित 'बूँद और समुद्र' एवं 'विष और अमृत' पूरा पढ़ गया था और एक और छुट्टी में तीन खंडों में प्रकाशित 'मोहन राकेश की इक्यावन कहानियाँ' जो बड़ी दीदी अपने महाविद्यालय के पुस्तकालय से ले आयी थीं। सातवीं-आठवीं कक्षा के विद्यार्थी जीवन में इन कृतियों को सराहने विश्लेषित करने की समझ क्या होगी, किंतु कुछ बड़ा और अच्छा कैसे लिखते हैं, अवचेतन में इनकी सीख और प्रेरणा अवश्य मिली होगी कहीं...!

प्रश्न : 'संगत' की भूमिका में आपने लिखा है कि लिखने की आदत आपके पिता जी ने ही डाली। वे पढ़ाते भी थे। वे कौन सा विषय पढ़ाते थे? आपने लिखना हिन्दी में ही शुरू किया?

उत्तर : पिताजी अंग्रेजी के प्राध्यापक थे और स्वयं लिखते थे हिन्दी में। पठन-पाठन के लिए प्रतिबद्ध समर्पित ऐसे गुरु जो कक्षा में ही नहीं, उसके पहले-बाद कहीं किसी के लिए भी कुछ बताने-पढ़ाने के लिए पूर्णरूपेण और निःशुल्क उपलब्ध! अंग्रेजी का उस समय बड़ा क्रेज था और अंग्रेजी जानने और पढ़ा सकने वालों की बहुत माँग। विद्यालय-महाविद्यालय से जुड़े 'पेशेवर' अंग्रेजीदां ट्यूशन, छात्रोपयोगी लेखन व मार्गदर्शन के जरिये अपार अर्जन संभावनाओं का दोहन कर साधन-संपन्न हो जाया करते देखते-देखते। चाहते तो पिता ऐसा कर सकते थे, परंतु उन्होंने निःस्वार्थ निःशुल्क पठन-पाठन जीवन शिक्षण का मार्ग चुना। 'बिना मुँडेर की छत' संग्रह की कविता 'पिता चाहते' में इसी की झलक है।

प्रश्न : आपके प्रकाश्य कविता संग्रहों 'नींद में नाच' एवं 'कुछ पत्र कुछ प्रमाणपत्र और कुछ साक्ष्य' के समर्पण से यह लक्षित होता कि बहनों और भाइयों के साथ भी बहुत गहरा लगाव है आपका। इस विषय में कुछ बताइये। क्या वे भी साहित्य से जुड़े हुए हैं? आपकी कविता और आपके व्यक्तित्व के निर्माण में उनका क्या योगदान रहा है?

उत्तर : बहनों और भाइयों में सबसे छोटा हूँ मैं। घर परिवार में सबसे छोटे का बड़ा सौभाग्य होता है कि ढेर सारे प्यार दुलार के साथ बहुत कुछ उस वृहद विरासत से अपने आप मिल जाता है। जो थोड़ी रोक-टोक पाबंदी-मनाही जैसी 'असुविधाएँ' कभी कभार हो सकती हैं। ऐसे में, उनसे मैं आजाद रहा। ऐसा इसलिए कि अपना परिवार आकार ही नहीं, हृदय से भी उदार है। बड़ी, मझली और छोटी दीदी ने बचपन में माँ के साथ मिल कर बड़े लाड़ प्यार से मुझे पाला पोसा- घर के काम करते और साथ ही साथ पढ़ते-लिखते आगे बढ़ते हुए। आर्थिक अभावों के बावजूद घर का माहौल सहज शालीन सुसंस्कृत था, जिसने मुझे आगे बढ़ने का अवसर दिया। दरअसल हमारे व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में माँ-पिता और गुरुजनों के अलावा घर परिवार के अन्य सदस्यों का भी योगदान होता है।

बताते हैं कि जब मैं बहुत छोटा था तब सड़क के उस पार गली में कुछ दूर पर मौजूद कुएँ तक ले जाये बगैर अकसर खाना नहीं खाता। तब मुझे घुमाने की ज़िम्मेदारी बहनें निभातीं। परीक्षाओं के दिनों में भी मुझे गोद में लिये हुए पढ़ती रहतीं। कुछ इसी तरह वनस्पति शास्त्र की छात्रा मझली दीदी द्वारा अपनी परीक्षा के लिए याद किये गये कई वनस्पतियों के नाम अनायास ही मुझे भी स्मरण हो गये। फिर जब मैं बाकायदा विद्यार्थी हुआ तो मुझे अच्छी तरह पढ़ाने बताने और मेरा मार्गदर्शन करने के लिए सारे भाई बहन लगे रहते। बड़ी दीदी, बड़े भैया और उनसे छोटे भैया (मनु भैया), इन तीनों के संगीत सीखने और रियाज करने का प्रभाव यह कि संगीत मेरे अवचेतन में उतर गया और उन्हें सुनते गुनते हुए बिना सीखे ही मैं बहुत कुछ जान समझ गया। साहित्य संगीत रंगमंच आदि से हम सब भाई बहन किसी न किसी रूप से जुड़े रहे हैं और कहा जा सकता है कि कला की ये विधाएँ हमारे गुणसूत्रों का हिस्सा हैं। एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी कि मेरा बालपन अनगिन लोरियों, लोकगीतों और गाथाओं से भरा रहा तथा इनकी अनुगूँजें अकसर सुनायी पड़ती हैं मुझे।

बड़े भैया शरद रंजन शरद को तो साहित्यकार व पत्रकार के रूप में हिन्दी जगत जानता ही है। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित उनका कविता संग्रह 'एक ही तो है आखर' काफी सराहा गया और उस पर एक बहुत ही अच्छा आलेख 'अक्षर के अक्ष पर टिका कवि' शीर्षक से लीलाधर मंडलोई जी ने 'इंडिया टुडे' के लिए लिखा है (जबकि व्यक्तिगत रूप से दोनों सर्वथा अपरिचित हैं)। कविता का ककहरा तो बाबूजी और बड़े भैया से ही सीखा- सांस्कृतिक और रचनात्मक परिवेश के बीच। भाई बहनों में सबसे बड़ी सुशीला दीदी स्वयं हिन्दी की प्राध्यापिका रहीं और स्वभावतः कला साहित्य से लगाव जुड़ाव रहा उनका। कई साहित्यिक कृतियों को अपने पुस्तकालय से लाने और पढ़ने-पढ़ाने वाली तो वही रहीं। एक और अनूठी बात कि उनकी लिखावट पिता जी से बहुत हद तक मिलती जुलती। सच तो यह भी कि उनके पूरे व्यक्तित्व पर माँ-पिता जी और दादा-दादी जी का बड़ा प्रभाव रहा। हमारे घर परिवार में शिक्षा और ज्ञान का जो विस्तार प्रसार हुआ, उसका आधार और सूत्रधार हमारे दादाजी या बाबा रहे। पिछली सदी के तीसरे दशक में उन्होंने जो 'रचनात्मक विद्रोह' किया, उसका ताप आज भी हम महसूस करते हैं। तब मैट्रिक की परीक्षा बहुत अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण होने के

बावजूद फरमान जारी कर दिया गया कि अब वे आगे पढ़ने के बदले घर का काम काज सँभालें। उन्होंने इसका विरोध किया और एक दिन बिना किसी को बताये पटना चले आये तथा बी एन कॉलेज में उच्च शिक्षा की बाकायदा शुरूआत की- जहाँ से कई दशक बाद शरद भैया ने भी कॉलेज की पढ़ाई प्रारम्भ की। बाबा ने आगे कानून की पढ़ाई पूरी कर वकालत का पेशा अपनाया और इस रूप में भी उन्होंने ईमानदारी, सत्य निष्ठा और शुचिता का अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। तत्कालीन शाहाबाद जिला, जिसका एक हिस्सा अब भोजपुर कहलाता है, वहाँ के महरजा (हमारे गाँव) को आज भी कई लोग वकील साहब का गाँव कहते हैं। शहर से हम जब कभी अपने गाँव जाते हैं, कई बड़े बुजुर्ग हमारी पहचान करते हुए कहते हैं- अच्छा तो आप वकील साहब के परिवार से हैं...उनके पोते! बड़े भैया ने महात्मा गाँधी और कस्तूरबा गाँधी के बारे में जितना पढ़ा सुना और जाना समझा है, उसके आधार पर वे अकसर बाबा और दादी, यानी आजी की खास तरह की छवियाँ बनाते हैं- खान पान, रहन सहन, आचार विचार और बात व्यवहार में एकाधिक स्तरों पर समानता वाली।

बड़े भैया के बाद मनोरंजन भैया या मनु भैया वैज्ञानिक होने के बावजूद न केवल संगीत और साहित्य से बल्कि नाटकों से भी जुड़े हुए हैं। संस्कृत में स्वयं नाटक लिख कर मंचित करने का महत्कार्य भी उन्होंने किया है। मुझसे ठीक पहले वाले गिरिजा रंजन भैया लगभग समवयस्क होने के कारण बचपन से दोस्त की तरह रहे हैं। अभियंत्रण की दुनिया में आने से पहले खुद लिखते भी रहे और कई हस्तलिखित पत्रिकाएँ तैयार करने में योगदान दिया। मझली बहन मीना दीदी और उनसे छोटी चन्द्रावती दीदी के पास भी लोरियों और लोकगीतों का अथाह कोश है तथा बुनने बनाने का अद्भुत हुनर और सत। मैं इन्हें बड़ा और खरा कलाकार मानता हूँ। यही वह अक्षय स्रोत है, जिससे कला साहित्य संगीत छनता निथरता मुझ तक पहुँचा है। पहले कविता संग्रह 'मिट्टी के फल' की समर्पण पंक्ति लेकर कहूँ तो 'कवि नहीं... कविता मैं इनकी'!

आज भी हम भावनात्मक स्तर पर बहुत गहरे जुड़े हुए हैं एक दूसरे से- जिस तरह हमसे पहले की पीढ़ी में माँ-पिताजी का अपने बहनों-भाइयों, रिश्तों-नातों, हित-कुटुम्बजनों से आजीवन जुड़ाव रहा, वृहत्तर परिवार के इस संवेदनात्मक सम्बल को हम अपनी सबसे बड़ी पूँजी मानते हैं। मेरी रचनाओं में यदि संवेदनात्मक समृध्दि और भावनात्मक गहराई व विस्तार के साथ औदात्य, औदार्य और वृहत्तर लगाव है तो उसके स्रोत में भी जड़ों से यही जुड़ाव और उसकी मजबूती रही है। बाबा, बाबूजी और बड़े भैया के रूप में अनवरत तीन पीढ़ियों की त्यागशीलता, तपस्या, सज्जनता, सत्यनिष्ठा, न्यायप्रियता, आदर्शोन्मुखता, उसूलपरस्ती और अपने समय समाज से जुड़कर सर्वहित करने की प्रतिबद्धता सदैव प्रकाशस्तंभ की तरह रही मेरे लिए, जिससे मेरा पथ प्रशस्त होता रहा। संयोग सुयोग से सहधर्मिणी भी ऐसी मिलीं, जिनसे मेरी रचनात्मकता व सृजनशीलता को सतत सम्बल मिला और संपूर्ण सहयोग समर्थन भी। मैं जो भी और जितना भी हूँ, उसमें सबका सम्मिलित श्रेय है- जैसा अपनी कविता 'निब' में कहने का प्रयास किया है : 'मैं तो बस नोक भर / जिससे उभरते अक्षर...'!

सीधे सच्चे लोगों का संघर्ष तो माता पिता के जीवन और अभावों में खूब देखा है

और उनसे सीखा भी है। दिनोदिन और कठिन होते जा रहे समय समाज में सच्चाई, अच्छाई और आदर्शों के साथ जीने वाले की पीड़ा और लड़ाई का जीवन्त उदाहरण पिछले कई दशकों से बड़े भैया के रूप में देख रहा हूँ। देख रहा हूँ जान-समझ और सीख रहा हूँ- कि किस तरह राम के वनवास से भी दुगने और सीता के वनवास यातना-काल सरीखे लम्बे समय से संवेदना और मूल्यों के साथ जीने वालों को तोड़ने को तत्पर सतरहित स्वत्वहीन तंत्र से लगभग अकेले जूझने के बावजूद मन से वे हारे नहीं कभी। दूसरी तरफ रंगीन मुखौटे पहने धूर्तता-क्रूरता के साथ असत्य तथा अन्याय का अमानवीय कारोबार करने वाले तात्कालिक रूप से भले विजयी कहाएँ, अन्ततः हारते हैं, यह विश्वास भी डिगा नहीं है।

प्रतिकूलताओं और कठिनाइयों के बावजूद सतकर्म और सृजनकर्म का साथ हो तो इंसानियत पर विश्वास बचा और बना रहता है। बड़े भैया से अब भी कोई पूछे कि कैसे हैं तो मुसकुरा कर कहते हैं- लड़ रहा हूँ और लिख रहा हूँ! भाषा के ऐसे जानने बरतने वाले कि केदारजी एक बार उनसे मिले तो फिर मुझसे बोले- तुम्हारे भैया जैसा भाषा को जानने और बोलने वाला फिलहाल मेरे जानते बिहार में तो कोई नहीं और भारत में भी शायद ही होगा! और आदर्श बरतने वाले ऐसे कि रचना कहीं भेजने के बाद फिर फोन से उसके बारे में पूछना भी ठीक नहीं समझते। मेरी रचनाओं को उत्तरोत्तर वृहत्तर, महत्तर और मनुष्यतर बनाने में इन प्रकाशस्तंभों का अनवरत और अमूल्य योगदान रहा है। इनकी किरणें सदैव मेरे अन्तस को आलोकित करती रहती हैं तथा पुण्यपथ को प्रकाशित और प्रशस्त। ऐसी ही रश्मियों के साथ कला संस्कृति का पथ परिदृश्य सदैव जीवन्त और जाज्वल्यमान रहता है।

प्रश्नः पत्नी और बच्चों के विषय में भी कुछ बताइए। उनकी साहित्यिक अभिरुचियाँ क्या हैं और आपके लेखक रूप के बारे में उनकी क्या राय है?

उत्तरः जीवनसंगिनी सुशिक्षित, सुशील, सुभाषिनी हैं- थोड़े में कहूँ तो सर्वगुणसम्पन्न! अपने आपको सचमुच सौभाग्यशाली समझता हूँ कि ऐसा साथ मिला। प्रथम श्रेणी स्नातकोत्तर हैं वे। चाहतीं तो आसानी से नौकरी भी कर सकती थीं लेकिन पूरे अवधान से दोनों बच्चों की एक साथ अच्छी तरह देखभाल और परवरिश कर सकें, इसलिए स्वेच्छा से उन्होंने कोई चाकरी नहीं स्वीकारी मगर सहज कौशल, प्रवीणता और दक्षता से जितनी तरह की अनूठी चीजें वे रचती बनाती और बना सकती हैं, उनमें सार्थक सृजनात्मकता व सफल उद्यमिता की समस्त सम्भावनाएँ हैं। साहित्य में भी उनकी अच्छी रुचि है। मेरी अधिकांश रचनाओं की पहली पाठिका और प्रथम प्रतिसाद प्रदाता वही हुआ करती हैं। इस तरह मेरी सृजनात्मकता का बहुत सारा श्रेय उन्हें भी है। इसीलिए स्नेह से 'श्रेयसी' कहता हूँ उन्हें! वैसे भला प्यारा सा नाम है उनका श्वेता 'प्रियेषा'! मेरे घर शुभागमन हुआ उनका कविताओं की डायरी के साथ। उनकी अपनी कविता पांडुलिपि भी है- 'लीपा हुआ आकाश'! सम्भवतः कभी प्रकाशित हो।

मेरे सृजनकर्म में एक और महत्वपूर्ण सहयोग है उनका- इस पुण्यकाज के लिए समय प्रबन्धन में सम्पूर्ण सहकार! शुरू से एक लगन रही है मेरे भीतर- यही कि जो कुछ करूँ, उतनी ही अच्छी तरह, उतनी ही शिद्दत से और कार्यालय में भी अपने

उत्कृष्ट कार्य के लिए जाना पहचाना जाऊँ। इस तरह सप्ताह के सारे कार्य दिवस तो उधर समर्पित हो जाते हैं। फिर सप्ताहांत के बचे दो दिन सर्जना और रचनात्मकता के लिए सहेजता साधता हूँ- इतर माया मोह जाल जंजाल से स्वयं को बचाते हुए। अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद यह सब घर परिवार के पूरे सहयोग के बगैर तो सम्भव नहीं हो सकता- कहीं न कहीं समय समंजन करना ही होता है! बाहर वाले समझें न समझें, घरवाले इसे बखूबी समझते हैं और भरपूर सहयोग भी करते हैं। इसमें उनकी तप साधना के साथ-साथ बहुतेरी अपेक्षाओं का त्याग भी शामिल है।

हमारे बच्चे भी बड़ी समझदारी दिखाते हैं और भरसक सहायता करते हैं- हर आवश्यक कार्य को अपनी जिम्मेदारी समझकर। सोच-विचार की क्षमता के साथ जीवन के प्रति उनकी दृष्टि अभिनव है- साथ ही साथ यह भी लगता है कि कम वय में ही उन्होंने व्यक्तित्व को विकसित परिमार्जित करने वाला अनुभव भी बहुत हद तक प्राप्त कर लिया है। मेरी रचनाओं के पाठक भी हैं वे और कई बार उनके सद्भावमय सुविचार मेरे शब्दकर्म को दिशा देते हैं। पिता होने के नाते मेरी विश्वास भरी शुभेच्छा यही है कि हर समय, हर हाल में मनुष्यता से जुड़कर ये बच्चे शौर्य और धैर्य सहज समन्वयित करते सहेजते निरन्तर आगे बढ़ते रहें। जीवन की राह तय करते हुए उनकी कार्यकुशलता और क्रियाशीलता का नव उन्मेष उन्हें उत्कर्ष प्रदान करेगा- यही आशा है और भरोसा भी!

प्रश्न : इंटर से लेकर नौकरी में आने तक आप पटना में रहे। इस शहर ने आपको क्या दिया? उस दौरान के पटना के साहित्यिक माहौल के बारे में कुछ बताइए।

उत्तर : अपने आप को सौभाग्यशाली समझता हूँ कि छात्र जीवन में आलोक धन्वा जी, अरुण कमल जी, मदन कश्यप जी जैसे सुकवियों सुचिंतकों तथा आदरणीय नंदकिशोर नवल जी जैसे मनीषी साहित्य मर्मज्ञ का स्नेहिल सानिध्य मिला। उस समय पटना का परिवेश जीवंत और साहित्यिक था। आदरणीय खगेन्द ठाकुर, कर्मेन्दु शिशिर, ह्रषिकेश सुलभ, अपूर्वानन्द, प्रो. तरुण कुमार, प्रो. गोपेश्वर सिंह सरीखे सुधी साहित्यानुरागी सक्रिय रूप से साहित्यिक कार्यक्रमों का आयोजन और उनमें सक्रिय भागीदारी किया करते थे। इन आयोजनों में नामवर जी, केदार जी, परमानंद जी, कमला प्रसाद जी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी जैसे पुरोधाओं के आगमन और सम्मिलन का सुयोग अब भी स्मृति में है। सत्यनारायण जी, रेवती रमण जी आदि भी बड़े स्नेह से मिला करते। बद्री नारायण, निलय उपाध्याय, संजीव, आशुतोष, धर्मेन्द्र सुशांत, अविनाश, रमेश, शहंशाह, संजय शांडिल्य, राकेश रंजन, हरे प्रकाश उपाध्याय आदि आत्मीय मित्रों से मेल मुलाकातों की स्मृतियाँ अब भी ताजा हैं। संजय कुंदन और संजय कृतांत तो सहपाठी ही थे। नाम लेने में स्वाभाविक तौर पर कई नाम छूट जाते हैं लेकिन उस दौर में जितने लोगों का जितनी भी देर साथ रहा, उन सबने संवेदनात्मक और साहित्यिक स्तर पर समृद्ध किया और मेरी यात्रा में मुझे आगे बढ़ाया। मैं उन सभी का हृदय से आभारी हूँ। यदि मैं कुछ भी बन सका हूँ तो उस समय, उस दौर और अपनी जड़ों और जमीन से जुड़े उन तमाम लोगों का सकारात्मक और सार्थक योगदान रहा है।

प्रश्न : कॉलेज के दिनों में ही संभवतः आपकी 12 कविताएँ एक साथ 'हंस' में छपीं। लेकिन आपकी पहली प्रकाशित रचना, अगर याद हो, तो उसके विषय में भी

बताइए। यह पूछ्ना भी रह गया कि आपको कब लगा कि अब आप बाजाब्ता लिखने लगे हैं?

उत्तर : जैसी पहले चर्चा हुई, पढ़ना लिखना और संगीत साधना भी एक तरह से विरासत में मिले। लिखने की लत भी बचपन से ही लग गयी। संभवतः इसलिए भी कि कुछ अधिक ही सोचता और महसूस करता, मगर कहने में संकोच होता। सो, जो अनकहा रह जाता लिख लेता। कागज के पन्नों पर, छोटी छोटी डायरियाँ बना कर, पत्र पत्रिकाओं में छपे बड़े-बड़े पोस्टरों के पीछे के सादे हिस्सों में भी छोटी-बड़ी रचनाएँ टाँकता रहता। बाबूजी देखते तो प्यार से सहेज कर रख लेते और साथियों समाजियों को सगर्व दिखाते। उससे हौसला मिलता। पहली ढंग की कविता मेरे खयाल से वह थी जो उनके आग्रह पर अपने प्रधानाचार्य गिरिराज बाबू को सुनायी थी। दसवीं तक आते-आते पत्र-पत्रिकाओं में कुछ रचनाएँ आने लगीं। कॉलेज के शुरुआती दिनों में प्रारंभिक रचनाएँ प्रभात खबर, ब्लिट्ज, प्रिया, पब्लिक एशिया, उद्भावना, आजकल, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, हिन्दुस्तान आदि में आयीं। शायद यही समय, प्रवेशिका के आसपास का, बाकायदा लेखन का एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक समय माना जा सकता है। फिर जैसा आपने सही ही कहा, 1990 में 'हंस' में एक साथ आयी बारह कविताओं ने सबका ध्यान खींचा और उनसे मुझे भी बल मिला।

प्रश्न : आपने 'अनिमेष' नाम कब अपनाया? इसके पीछे क्या प्रेरणा थी?

उत्तर : यह भी छात्र जीवन के समय की ही बात है, महाविद्यालय काल की। अर्थ, ध्वनि और संगीत, सबमें 'अनिमेष' श्रेयस्कर लगा। फिर अगर गौर करेंगे तो एक आंतरिक लय और अंतर्क्रम भी है इसमें : प्रेम में तीन मात्राएँ हैं, रंजन में चार तो 'अनिमेष' में पाँच! उपनाम , सहनाम या साहित्यिक नाम रखना ही है- यह इसलिए सोचा क्योंकि आस पड़ोस, हित नातों में ही कुछ और 'प्रेम' थे। तो इस 'प्रेम' को किंचित अनुपम-अनूठा-अद्वितीय करने के बालसुलभ आयास में 'अनिमेष' की युति कर ली...! यहाँ प्रसंगवश मन में यह बात आ रही है कि संभवतः अंतश्चेतना में पिताजी के साहित्यिक नाम का प्रवाह या उसकी अंतर्लय हो कहीं! पिताजी, जिन्हें हम सब बाबूजी बोलते-बुलाते, रमाकान्त 'राकेश' नाम से कविताएँ लिखते और पत्र पत्रिकाओं में छपते। तो कहीं अवचेतन ने 'राकेश' के बतर्ज.'अनिमेष' चुन लिया होगा! साथ ही यह भाव भी कि एकटक अपलक दृष्टि रहे जीवन सृजन को साधते- इस पुण्य अनुष्ठान में एक पल को भी पलकें क्यों झपकें, क्यों नहीं रहे अंतर्दृष्टि समग्र, एकाग्र, अनिमेष ...!

प्रश्न : कॉलेज की पढ़ाई के लिए अंग्रेजी विषय चुनने के पीछे कोई खास वजह?

उत्तर : बाबूजी अंग्रेजी के प्राध्यापक रहे। हिन्दी से तो अटूट लगाव था ही, हिन्दी में ही रचा भी करते। स्नातकोत्तर के लिए अंग्रेजी अपने बाबूजी, यानी हमारे बाबा के बढ़ावे पर उन्होंने चुनी। उनकी संततियों में, बड़ी दीदी और मैं प्राध्यापन की ओर प्रवृत्त हुए। पिताजी की शिक्षण परंपरा आगे बढ़ाते हुए बड़ी दीदी हिन्दी की व्याख्याता बनीं तो उनकी इच्छा हुई कि मैं अंग्रेजी का व्याख्याता होकर उनकी परंपरा को आगे बढ़ाऊँ। स्नातक स्तर पर बतौर विषय तो तीनों भाषाओं (हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी) को चुनने का मन बनाया पर विश्वविद्यालय वालों ने बताया कि दो से अधिक भाषाएँ पाठ्य-विषय

के रूप में रखने का प्रावधान नहीं। चूँकि हिन्दी से स्वाभाविक लगाव और नैसर्गिक जुड़ाव था ही, इसलिए हिन्दी और संस्कृत में से संस्कृत को चुना ताकि उसे बेहतर जान सीख सकूँ। बाबूजी की विरासत को आगे बढ़ाने के इरादे से अंग्रेजी से एम. ए. किया। उसके बाद हिन्दी से दोहरा परास्नातक यानी डबल एम ए करने का इरादा था, उसके लिए जेएनयू की प्रवेश परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली, पर सत्र और परीक्षाफल विलंबित होने के कारण दाखिला नहीं मिल सका।

प्रश्न : आप के पास तीन भाषाओं - अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन है। इसने आपको अपनी साहित्यिक यात्रा में किस तरह लाभान्वित किया?

उत्तर : भाषाएँ जितनी जान सकें, श्रेयस्कर है। बाहर की भाषाएँ ही नहीं, अपने आसपास की भी- क्षेत्रीयभाषाएँ और लोकभाषाएँ तो जरूरी हैं ही। यह ज्ञान ही साहित्य के साथ-साथ समय, समाज और संस्कृति को समझने में सहायक होता है। साहित्य को मैं 'ऊँची सोच' कहता हूँ- वह सोच जिसे दूसरे सुन-समझ सकते हैं और जो दूसरों को जानने-समझने में सहायक है। इससे भी आगे बढ़कर कहा जाये तो सच्चा साहित्य दरअसल यह बताता-सिखाता-समझाता है कि दूसरा कोई है ही नहीं- सब अपने जैसे, अपनी तरह ही हैं। यह सोच ही जरूरी समझ तक ले जाती है। जैसे शाश्वत और मूल मानवीय मूल्य और भावनाएँ कहीं न कहीं एक जैसी होती हैं और एक दूसरे से जुड़ी हुई, उसी तरह हर भाषा के साहित्य में भी कुछ ऐसा होता है जो सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वजनीन होता है और सबको अपनी ओर आकर्षित करता है। उसके कहने का ढंग (कहन) भिन्न हो सकता है और होना भी चाहिए।

किसी भी समय विशेष में दुनिया के अलग-अलग कोनों में क्या-क्या लिखा पढ़ा गया, इससे सीधा साक्षात्कार अपने आप में बहुत ही दिलचस्प होता है और एकाधिक भाषाओं का ज्ञान इसका सुअवसर व सौभाग्य प्रदान करता है। एक साथ कालिदास और शेक्सपियर सरीखे अप्रतिम रचनाकारों के अनुभव संसार से गुजरना अपने आप में एक अद्भुत, अनूठा और समृद्ध-सम्पन्न करने वाला अनुभव है। साथ ही, किसी भाषा-साहित्य के भीतर के वैविध्य विस्तार को देखना जानना समझना भी कि भास का लिखा कालिदास से कैसे भिन्न है और जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने शेक्सपियर से परे अपना पथ किस तरह प्रशस्त किया (उनका मशहूर कथन है कि किसी रास्ते पर शेर बैठा हो तो फिर दूसरी राह लेने में ही समझदारी है)।

प्रश्न : परंपरा से समझते सीखते और उसका श्रेयस्कर अंतरित, अनुग्रहित, आत्मसात करते हुए भी आप अपनी अलग नयी राह बनाने का आयास कैसे करते हैं? विविध भाषाओं और उनके साहित्य का अध्ययन दृष्टिपरिधि का विस्तार करते हुए, इसकी वृहत्तर समझ देता है? अंग्रेजी के अपने कुछ प्रिय लेखकों के नाम बताइए, पुराने और समकालीन। अंग्रेजी की कोई एक कविता और कहानी (उपन्यास) जो आपको सर्वाधिक प्रिय रही हो और अभी याद आ रही हो?

उत्तर : रचनाएँ और कृतियाँ कई हैं और लेखक भी। उन सबका सर्वश्रेष्ठ आपके अवचेतन का हिस्सा बनता जाता है। अंग्रेजी पढ़ने का एक लाभ मिला, उसके जरिये अन्य विश्वभाषाओं का साहित्य पढ़ पाने का- मार्खेज की 'लव इन टाइम्स ऑफ कॉलरा'

और 'हंड्रेड इयर ऑफ सॉलिट्यूड' जैसी कृतियाँ भी। दूसरी किताब इंटरमीडिएट में पढ़ते समय मेरे सखा सहपाठी अमिय ने भेंट की थी। अब तो खैर, अनेक श्रेष्ठ कृतियों के हिन्दी अनुवाद उपलब्ध हैं, जिनसे जुड़ना अपेक्षाकृत आसान हो गया है। कुछ रचनाकारों- जैसे अमरीकी कवि विलियम कार्लोस विलियम्स और नोबल पुरस्कार विजेता आयरिश कवि सीमस हीनी की कई कविताओं का उसी समय (पटना कॉलेज में पढ़ते वक़्त) अनुवाद भी किया। भाषाशास्त्र मेरा विशेष अध्ययन रहा स्नातकोत्तर में। विभिन्न भाषाओं के भाषाविज्ञान की समझ भी आपकी सोच और दृष्टि को महत्तर और वृहत्तर बनाती है। आपको यह बोध होता है कि साहित्य सृजन के सारे उपादान तो वस्तुतः निमित्त मात्र हैं- जो कहा जाने योग्य है, उसे सबसे अच्छी तरह कहने का शिल्प या रूप-विधान साधन या आवरण भर है और कहीं यदि निर्वाह के लिए किसी को लचीला या नम्य होना चाहिए तो कथनीय को नहीं, रूपशिल्प को ही। वैज्ञानिक तथ्य यह है और भाषावैज्ञानिक सत्य भी। भाषाशास्त्रों का अध्ययन और अवगाहन आपकी इस अंतर्दृष्टि को और प्रखर करता है। इस लिहाज से सीमित सँकरी सोच वालों की हठधर्मिता देखकर हँसी आती है और अफसोस भी होता है। कभी किसी कालखंड विशेष में कोई कुछ कह गया, उस लकीर के फकीर बने वे रूढ़ियों और जंजीरों को जेवर की तरह गले में डाले घूमते हैं और जबरन दूसरों के गले में भी डालने को आमादा रहते हैं। इस अतिवाद के दूसरे छोर पर वे हैं जो भाषा की ही तरह साहित्य और किसी विधा के व्याकरण को जानने-समझने-सीखने की जहमत उठाये बिना और जरा भी मेहनत किये बगैर 'ये आजादी वो आजादी' जैसे नारे बुलन्द करने के शगल में शामिल हो जाते हैं।

प्रश्न : संस्कृत की वर्तमान स्थिति पर आप क्या कहना चाहेंगे?

उत्तर : संस्कृत को देवभाषा से अधिक 'भाषाजननी' कहना उचित है। भारत ही नहीं, विश्व भर की कई भाषाओं का उत्स है वह। लेकिन जैसे गंगोत्री कम ही जाते हैं लोग और गंगा को अपनी-अपनी जगह पर ही पा लेने में विश्वास करते हैं या उस प्रयास में लगे रहते हैं, कुछ- कुछ वैसी ही स्थिति आज संस्कृत की है। कई हिंदीभाषी भी शौक से उर्दू में मशक्कत ज्यादा करते हैं - संस्कृत तक पहुँचने और उसे समझने के आयास अभ्यास के बनिस्बत। लेकिन संस्कृत की जरूरत तो दुनिया भर को है। इस तरह की वैज्ञानिक भाषा कोई और कहाँ है? धर्म कर्म अध्यात्म योग ही नहीं, विविध विधाओं और ज्ञान विज्ञान चिंतन दर्शन सहित लोक व्यवहार से सम्बद्ध अथाह राशि इसमें है, जिसके लिए बाहर वाले भी उस तक जाना चाहते हैं। जैसा लिखें, वैसा ही बोलने की सहजता और मंत्र सरीखी अभिव्यक्ति और किस भाषा में है? अनहद और नाद का ऐसा सार्थक और प्रभावी प्रयोग कहीं और कहाँ! हमारे यहाँ कई स्तरों पर जड़ जमा चुकी पराधीन प्रवृत्ति जनता को परभाषा की ओर मोड़ती और परोन्मुखी या परमुखापेक्षी अधिक बनाती है। जो मान अपने यहाँ होना चाहिए, वह तो हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का भी नहीं। संस्कृत और संस्कृति को तो संभवतः अतीत की वस्तु जान कर त्याज्य मान लिया गया है। पाखंड और कर्मकांड से परे रहना ठीक है, लेकिन अपनी मिट्टी और जड़ों से जुड़ा जो सत्य और सत्व है, उसकी उपेक्षा और अवहेलना स्वयं

अपने को नकारने जैसा है। लोग कभी कभार प्रचलनवश अपने बच्चों के विशेष नाम ढूँढ़ निकालने के लिए संस्कृत की ओर अभिमुख होते हैं। कोई अपने बच्चे का नाम श्लोक, दर्शन या वेदांत रख लेता है, किंतु सच में उनका किसी श्लोक-सुभाषित, जीवन-दर्शन या वेद-उपनिषद-वेदांत से दूर दूर तक कोई रिश्ता या वास्ता नहीं होता। यही हमारे समय-समाज की विडम्बना है।

प्रश्न : आपने अंग्रेजी और संस्कृत में भी लिखा है? अगर हाँ तो, कुछ उदाहरण दीजिए।

उत्तर : रचना उसी भाषा में श्रेयस्कर है, जिसमें वह (अनायास) आती हो! भोजपुरी शुरू से सुनता बोलता रहा हूँ घर में, और अंग्रेजी कार्यालय में। हिन्दी तो हर जगह रची बसी है ही- बाहर और भीतर भी। कुछ रचनाएँ मन मानस में स्वतः हिन्दी के अलावा इन भाषाओं में आयीं तो उन्हें उसी तरह रख लिया अपने पास। पत्रिकाओं संकलनों के लिए अपनी कुछ कविताओं रचनाओं के अनुवाद भी किये हैं इन भाषाओं में। वैसे, संस्कृत और उर्दू की भी जो जानकारी है, वह तो हिन्दी में काम आ ही जाती है। अंग्रेजी में या द्विभाषी कुछ उपन्यासों के कथानक जेहन में हैं, जैसे' वर्ल्ड ऑफ वीमेन', 'टियरलेस', 'डू नाट लेट द डस्ट डाइ', 'द एविडेंस' आदि।

इनमें से 'द एविडेंस' का अच्छा खासा हिस्सा लिख भी चुका हूँ। देखें, पूरा होकर प्रकाशित होने में कितना वक़्त लगता है! लेकिन प्राथमिकता ही नहीं, पहला प्रेम भी हिन्दी में लिखना ही है! और अंग्रेजी में लिखने छपने और रातोंरात लोकप्रिय होने के उन तात्कालिक खतरों से भी वाकिफ हूँ, जिनसे भरसक और सायास बच कर रहता हूँ। जैसे अपनी गजलों की कोई किताब भी अब तक जान बूझ कर नहीं छपवायी, जबकि कॉलेज के दौर में ही सैकड़ों हो गयी थीं। उस समय की शायरी की डायरियाँ इतनी होंगी कि गिनें जोड़ें तो शायद हजार बारह सौ भी ज्यादा निकल आएँ गजलें।

प्रश्न : आपकी प्रसिद्धि मूलतः कवि के रूप में है, लेकिन आपने अच्छी-खासी संख्या में कहानियाँ भी लिखी हैं। इस संदर्भ में राजेश जोशी जी का एक कथन याद आ रहा है-'कवियों का काम बिना गद्य लिखे नहीं चल सकता, लेकिन गद्यकार के कविता लिखने की कोई बाध्यता नहीं होती'। आपकी टिप्पणी?

उत्तर : मेरा यह भी मानना है कि यदि रचनाकार खुले दिल दिमाग और सोच वाला हो तो उसके लिए तो रचना खुद तय करती है कि वह किस विधा या रूप शिल्प में आये। सौभाग्यवश शुरू से गद्य पद्य छंदयुक्त छंदमुक्त सबसे सहज सुयोग संयोग रहा। मगर कुछ अत्यंत आदरणीय और वरिष्ठ साहित्यकारों की आत्मीय सलाह पर तथा कुछ अपने आकलन और प्राथमिकताओं के आधार पर किस विधा को कब और कितनी तवज्जो और तरजीह देनी हैं, इस बारे में स्वयं कुछ वृहत्तर निर्णय लिये। जैसे, साल में तकरीबन पाँच कहानियों से अधिक न लिखना- तब तक जब तक कविताओं की कुछ(पाँच से अधिक) पुस्तकें न प्रकाशित हो जाएँ। एक महत्वपूर्ण वरीय कवि ने समझाया था कि हिन्दी पाठकों की स्मृति बहुत अधिक प्रगाढ़ नहीं होती और कविताओं के साथ-साथ लगातार कहानियाँ भी आती रहने से वे उलझन में पड़ जाएँगे कि लिखने वाला कवि है या कहानीकार! शायद यह सच हो, मगर है तो यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण और विडंबनामय,

क्योंकि स्वयं हिन्दी में और अन्य भारतीय एवं दूसरी विश्वभाषाओं में भी एक साथ अनेक विधाओं में रचने वाले सफल और महान रचनाकार हैं- बल्कि अधिकांश बड़े व महत्वपूर्ण रचनाकारों ने ऐसा ही किया है। फिर भी जिन्होंने यह कहा था, उनके कहे का मान रखना उचित जाना। लिहाजा, कहानियाँ लिखता तो रहा, पर उन्हें सबके सामने न आने दिया शुरुआत के वर्षों में। छपने भेजीं गिनी चुनी ही पहले पहले। एक दूसरा निर्णय भी सोच समझ और जान बूझ कर लिया। संभव है, बहुत तात्कालिक लोकप्रियता मिल जाये, और साथ ही साथ चाहत शोहरत और मुहब्बत भी। लेकिन फिर शायद मेरा गहन गंभीर लेखन उनकी ओट में आ जाये और उस पर वांछित ध्यान न जाये! ऐसी स्थिति में उस किशोर युवा वय के हिसाब से बड़ा फैसला लिया। छंदों के संग कई प्रयोग करता रहा और गीतों के साथ-साथ गजलें भी हजार से ऊपर लिखीं तब- पर डायरियों में ही रहने दिया उन्हें, छपवाने कहीं नहीं भेजा। अब जाकर कभी कभार मन लगाने के लिए उस पुराने खजाने में से कुछ निकालता हूँ यदा कदा।

विधाओं की अंतःक्रिया और समय समय पर उनके भीतर आवाजाही परस्पर सहायक होती है और एक दूसरे को सम्पन्न समृद्ध भी करती है। गद्य और पद्य लेखन के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, जैसे- पोयट्री इज, प्रोज डज! या यह कि गद्य लेखन कविकर्म की कसौटी होता है। विशेष कर अभी की; छंदरहित आधुनिक कविता, बोलचाल की भाषा यानी कह सकते हैं कि नाट्य या गद्य की ही विशिष्ट लयों, छटाओं और अभिव्यक्तियों का अधिकाधिक प्रयोग करती है। यह भी कहते हैं कि कविता अंतरभाषा है- भाषा के भीतर की भाषा। तो, जो उस भाषा को अच्छी तरह जानता होगा, वही उसके भीतर की तहें खोल कर उसका सार्थक उपयोग कर सकेगा। अच्छा गाने के लिए उस भाषा को अच्छी तरह बोलना समझना जरूरी होता है- उसी तरह और उतना ही, अच्छे पद्य के लिए अच्छा गद्य भी। हालाँकि ऐसे कई हैं, जो कुछ बोलने में तो हिचकते, लेकिन गाते बहुत ही बढ़िया...!

प्रश्न : एक दूसरी बात यह भी कही जाती है कि कविता लिखना कुछ विशेष श्रम का काम नहीं है। असली काम तो गद्य है। कविता की स्थिति तो खाने के साथ अँचार जैसी है- यह सारे काम करते हुए भी की जा सकती है। इस प्रश्न के आलोक में अगर आप अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बता पाएँ।

उत्तर : अपने भीतर पकाना तो हर रचना को पड़ता है- चाहे कविता हो या कहानी। और यह काम निरंतर चलता रहता है- कुछ और कर रहे हों तब भी परोक्ष रूप से या अवचेतन में। रचनाकार के भीतर और उसके समानांतर रचना अपने को बुनती चलती है। बस एक रचनाकार की हैसियत से उतना अधिकार, मान और स्थान देना पड़ता है रचना को। फिर कई बार तो उससे स्वतंत्र और स्वायत्त रचना अपना निर्माण कर लेती है। जब तक रच नहीं लेते, रचना से पीछा नहीं छूटता- अकसर रच कर भी। आप नींद में होते हैं तो वह जगती है और कई बार जगाती भी। आप चलते हैं तो वह आपके साथ चलती है। इसलिए अपने एक आलेख में मैने लिखा है कि लेखक को पदचारी होना चाहिए। पैदल चलना कई तरह से लेखक के काम आता है- साइकिल चलाना भी। यह अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह रहा हूँ। इसके सिवा कोई वाहन चालन जान

बूझ कर नहीं करता। नहीं तो औरों की जान भी खतरे में आ जायेगी, क्योंकि अकसर कुछ सोचता-गुनता-बुनता रहता हूँ- चलते हुए भी। पैदल या साइकिल पर ऐसा करना चल सकता है, क्योंकि उससे अपने को ही खतरा हो सकता है- दूसरों के लिए नहीं। हिन्दी में रचनात्मक लेखन रोटी नहीं दे सकता, इसलिए रोजी या रोजगार जरूरी है गंभीर हिन्दी रचनाकार के लिए आज के दौर में। नहीं तो फिर आर्थिक आवश्यकताएँ सृजनकर्म पर अनावश्यक दबाव व भार डाल सकती हैं, जिससे वह लिखना दुष्कर हो सकता है जो लेखक लिखना चाहता है। इसलिए काम और लेखन के बीच समय का बँटवारा करना पड़ता है ताकि वे एक दूसरे को अतिक्रमित न करें। छुट्टियों के दिन साहित्य साधना को समर्पित रहते हैं- और सब इच्छाओं खिंचावों प्रलोभनों को परे कर। इसमें अपना त्याग उत्सर्ग तो है ही, उससे भी अधिक श्रेय, सहयोग और समर्थन परिवार का है। हाट-बाजार, खरीददारी, सैर-सपाटे - इन सबके लिए नहीं जाता तो वे समझते हैं। अंततः यहीं कहीं से तो समय जुगाना है सृजन के लिए।

किस रचना के पकने में कितना समय लगेगा, यह रचना विशेष पर निर्भर करता है- उसके कविता या कहानी होने पर नहीं। लावे-मूढ़ी की तरह फूट उठती है फौरन कोई रचना तो कोई दाल की तरह गलने में समय लेती है। कई ऐसी कविताएँ हैं जो अरसे से भीतर हैं, लेकिन कागज पर उतरने से पहले शायद कुछ और पकना चाहती हैं। वृहद कविता श्रृंखलाएँ रचना मुझे पसंद हैं, जिन्हें 'हमारे समय का महाकाव्य' कहता हूँ। उनमें से कई को रचने में बरसों लगे और कई का रचाव अब भी जारी है। कहानियाँ भी मेरी अकसर बड़े फलक वाली उपन्यासिकाओं की तरह हो जाती हैं। यह जरूर है कि समय के चलते अन्यतम अनूठे कथानक वाले अनेकानेक उपन्यास, पटकथाएँ, नाटक आदि प्रतीक्षा में हैं रचे जाने के लिए। प्रकाशन की राह देख रहे कई कविता संग्रहों के साथ-साथ अपने इन आगामी गद्य पुस्तकों के लिए भी अत्यंत उत्सुक और उत्साहित हूँ।

प्रश्न : आपने गीतों के अलावा गजलें भी लिखी हैं। समकालीन हिंदी कविता के परिदृश्य में क्या छंद का निर्वाह संभव है? अरुण कमल जी ने कहा है- 'छंद बहुत बड़ा खजाना है, जिसका उपयोग हम नहीं कर रहे'। आप इस विषय में क्या सोचते हैं?

उत्तर : छंद भी कविता का एक साधन और उपकरण है तथा कवि के लिए कविता का कोई मार्ग या माध्यम त्याज्य नहीं होना चाहिए- न कोई विधि या विधा ही। रचना को चुनने देना चाहिए कि वह किस रूप में आना चाहती है और कवि-रचनाकार को अपनी ओर से सारे द्वार खुले रखने चाहिए। अकसर ऐसा होता है कि लिखने का कोई खास ढंग प्रचलन या परिपाटी की तरह आम हो जाता है। इन रूढ़ियों को तोड़ना और धारा के विरुद्ध जाने का साहस अच्छे या सार्थक सृजन-कर्म का अनिवार्य अंग है। जो खुले हृदय या विचार वाले होते या कहलाते हैं वे भी कई बार अपने-अपने पूर्वाग्रहों के शिकार रहते हैं अथवा हो जाते हैं। जिस तरह समाज में आज तक कई तरह के भेदभाव हैं, साहित्य भी इनसे अछूता नहीं है। मैं साहित्य में किसी भी अस्पृश्यता के खिलाफ हूँ। किसी रचयिता के लिए कुछ भी अस्पृश्य नहीं। सच्चे सर्जक के लिए सृजन की सारी संभावनाएँ और उसके सारे विकल्प खुले रहें, यही बेहतर है। छंद भी कविता की एक समयसिद्ध प्रविधि है। छंद और नाद का कितना अच्छा, सच्चा और सार्थक प्रयोग किया

जा सकता है, संस्कृत काव्य इसका अप्रतिम उदाहरण है। वहाँ तो ज्ञान विज्ञान भी छंद में है। इस छंद में कविता को मंत्र बना सकने की सिद्धि या शक्ति है। यह जरूर है कि किसी भी प्रविधि, उपकरण या माध्यम की तरह छंदोबद्ध कविता की भी अपनी सीमाएँ और बंधन हैं। उनके पार और परे भी भावों, अभिव्यक्ति और सृजन संभावनाओं का अपार संसार है। उसी के अन्वेषण अनुसंधान हेतु मुक्तछंद या छंदमुक्त कविता का आविर्भाव हुआ- जो अभिव्यक्ति और सृजन के सारे आयाम खोलती और खोजती है।

ध्यान रहे कि मुक्तछंद या छंदमुक्त में भी' छंद' तो है। ऐसी कविता अभिव्यक्ति और बोलचाल के अनेक संस्तरों, लयों, अन्तर्लयों, तुकों, यति और अन्तरालों का सधा और सूझ बूझ भरा उपयोग प्रयोग करती है। लेकिन उसके लिए कवि में उस सूझ समझ का होना आवश्यक है। चूँकि छंद की तरह तो इसका लिखित या तय विधि विधान नहीं, अस्तु यह और कठिन और साधना का काम है। जो इसे एक आसानी की तरह लेते हैं और मनमाने ढंग से ऊपर नीचे पंक्तियाँ रख कर अपने कवि कर्म की इतिश्री करते हैं, वे अपना और कविता, दोनों का अहित करते हैं। प्रत्यक्षतः छंद के बिना कविता रचने के लिए और अधिक साधना जरूरी होती है और छंदों की समझ भी। पारंपरिक छंदों से परे कोई अच्छी कविता किसी बाहरी बनाव श्रृंगार से अलग सहज सुंदर स्त्री की तरह होती है लेकिन उसके लिए उतना ही आंतरिक सौंदर्य भी तो होना चाहिए।

प्रश्न : ऊपर के प्रश्न से ही यह प्रश्न भी निकलता है कि अभिव्यक्ति की रूढ़ियों को तोड़ने के लिए कविता छंद से मुक्त हुई थी। क्या यह 'मुक्ति' अब खुद ही रूढ़ि नहीं बन गई है?

उत्तर : जैसा पहले भी कहा है, कुछ हद तक यह सही है, या कहना चाहिए कि काफी हद तक। ज्ञान के बिना मुक्ति कहाँ? छंद से मुक्त होने के लिए, और उससे पहले, उसे जानना जरूरी है। तभी यह जान सकेंगे कि उससे कहाँ, कितना और क्यों मुक्त होना है। अभिव्यक्ति के लिए है यह मुक्ति, क्योंकि वह सर्वोपरि है। यह मुक्ति इस हेतु है कि हर घड़ी हर हाल में किसी बँधे दायरे में रहने की बाध्यता न हो। लेकिन छंद तो एक साधन या उपकरण है- जो जहाँ कहने योग्य को बेहतर कहने में सहायक हो, वहाँ उसका प्रयोग करना चाहिए। जैसे जीवन के लिए चाहिए विविध उपकरण, उसी तरह सृजन के लिए भी। जिस माध्यम से वह सबसे अच्छी तरह सामने आये, कविता को उसे चुनने देना चाहिए। स्वतंत्रता या मुक्ति दरअसल विकल्पों और चयन की वही आजादी है। 'स्वछंद' में भी 'छंद' तो है ही, जैसे 'स्वतंत्र' में 'तंत्र'! सच्चे संबंधों में भी कुछ लिखित-अलिखित अनुबंध तो होते ही हैं, जो सदा और सर्वथा त्याज्य नहीं होते। कहते हैं कि सच्चा रिश्ता वही है जो दूसरे को मुक्त करता है। लेकिन संबंधों में उस सीमा तक तो बंध अंतर्निहित है जो जोड़े रहने को आवश्यक है। बिना जाने समझे छंदों से पूरी तरह किनारा करना कुछ वैसा ही है जैसे संसार को पहचाने बिना किसी संन्यासी का उसे असार करार देते हुए छोड़ने की बात करना।

प्रश्न : यह शैलेन्द्र की जन्मशती का वर्ष भी है। खास तौर पर उनके लिखे गीतों और उनके साथ हिन्दी फिल्मों के गीतों के साहित्यिक महत्त्व पर भी यदि आप कुछ कहना चाहें?

उत्तर : गीत तो लोक और चेतना में पूरी तरह बसे हुए हैं। हमारा कोई संस्कार या उत्सव- अनुष्ठान गीत या काव्य (मंत्र, श्लोक, कीर्तन, प्रार्थना आदि) के बगैर पूरा नहीं होता। उसी तरह अमूमन हमारे चलचित्र भी गीतों के बिना अधूरे लगते हैं। अन्य देशों की फिल्मों में ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं। हालाँकि यह भी सच है कि हमारे यहाँ भी कुछ अच्छी फि ल्में बनी हैं गीतों के बिना। यह सही है कि गीत चलचित्र की कहानी या स्थितियों के हिसाब से रचे जाते हैं। उसमें आवश्यक नहीं कि गीतकार के 'अपने अनुभव' हों- होते भी हैं तो पात्र, परिस्थितियों और संगीत के अनुसार छन-निथर कर आते हैं। यह बहुत हद तक नाटकों की परंपरा जैसा है। गौर करेंगे तो कालिदास, शेक्सपियर सरीखे विश्व के कुछ महानतम कवि मूलतः नाटककार रहे हैं। लेकिन उनमें वह मेधा थी कि पात्रों और परिस्थितियों के अनुरूप गीत-कविता रच सकें। 'रामचरितमानस' या 'महाभारत' सरीखे महाकाव्य भी तो गाथा के आधार पर रचे गये हैं। आमतौर पर फिल्मों में वैसे ही गीतकार सफल हुए, जिनके पास प्रसंगों के अनुरूप और प्रदत्त धुनों में अपने कवित्व को ढालने की क्षमता थी, या इस क्षेत्र में आने से पहले ही गीत-कवित्त-शायरी का विशाल बहुरंगी खजाना था उनके पास, जिसका सूझ-बूझ भरा उपयोग वे समय और सदृश स्थितियाँ आने पर सुचारु रूप से करते रहे।

अगर देखेंगे तो पुराने जमाने के ज्यादातर गीतकार, मूलतः या प्रथमतः कवि या अदीब रहे और फिर फि ल्मों में आये। इसलिए उनके फि ल्मी गीतों में भी रचनात्मकता या काव्य साहित्य के गुण मौजूद हैं। शैलेन्द्र भी एक ऐसे ही गीतकार हैं- कविमन वाले 'साहित्यकार गीतकार' ! उनका 'रमइया वस्ता वइया' जैसा गीत इस बात की बानगी है कि रचनात्मक प्रतिभा या सृजनात्मक सूझ-बूझ कैसे निरर्थक लगने वाली पंक्तियों से भी अर्थ निकाल सकती है ! यह भी कि शब्द कर्म के साथ सहज सरल रिश्ता हो तो कई बार किस तरह अतिसाधरणता बदल जाती है असाधारणता में ! वह जिसे स्वर्णिम काल माना जाता है हिन्दी सिने गीतों का, उसमें एक साथ एक से एक श्रेष्ठ गीतकार मौजूद थे और कई चलचित्र तो विषयवस्तु और अन्य पक्ष सामान्य होने के बावजूद गीत-संगीत के दम पर चले और खूब चले। पिछली सदी का पाँचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ दशक हिन्दी फिल्मों में गीत-संगीत तथा गायन के लिहाज से अनुपम और अविस्मरणीय रहा है। आज भी उस काल खंड के गाने सबसे अधिक गाये गुनगुनाये जाते हैं- लोगों के दिलों के बहुत ही करीब हैं वे।

फिल्मों के गीतों ने भी हिन्दी को जाने अनजाने दुनिया भर में दूर दूर तक फैलाने का भला काम किया है। रूस और जापान सहित कई देशों में भारत तथा भारतीयता की पहचान इन गीतों के साथ भी जुड़ी हुई है। हिन्दी सिने गीतों की महत्ता, उपादेयता व प्रासंगिकता पर गंभीर समग्र और सिलसिलेवार शोध एवं अध्ययन होने पर कितने ही ऐसे आयाम सामने आएँगे जो अब तक तहों में दबे छिपे हुए हैं। फिर जो हम जानते भी है, उसके दूसरे पक्षों से रूबरू होंगे- कितने ही नये मुहावरे मिलेंगे और नये नये पहलू खुलेंगे- किसी सुखद आश्चर्य की तरह ! जिन चार दशकों की चर्चा मैंने की है, उस दौरान कला के मापदंडों पर खरे उतरने वाले कई गीतकारों, संगीतकारों और गायकों का प्रादुर्भाव हुआ। उस काल खंड के गीतों को ही ध्यान से देखें तो उनमें बोलचाल,

बातचीत और परस्पर संवादात्मकता का जैसा प्रयोग हुआ है, वह सराहनीय है। फिर संगीत और गायन ने उन्हें ऐसी ऊँचाई दी कि वे यादगार बन गये। यहाँ यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि फि ल्मी गीत अकसर साझे या सहभागिता से जुड़े प्रयास हुआ करते हैं। ऐसे बहुतेरे गीत हैं, जिनके बनने, बुने जाने की भी अनजानी-अनसुनी कहानियाँ होती हैं। उनके मुखड़े या महत्वपूर्ण अंश कहीं और से आये या किसी के सुझाये हुए होते हैं- कई दफा तो संगीत या उसके भरवा शब्दों या 'डमी वर्ड्स' से निकले या पात्रों के संवाद, अभिनय या तकियाकलाम से जुड़े। ऐसी स्थिति में गीतकार परिस्थितियों के अनुसार उन्हें कायदे से पिरोने का काम करता है जबकि उनके वास्तविक सृजन स्रोत कुछ और होते हैं- 'नानापुराण निगमागम सम्मत...' !

प्रश्न : धूमिल के बाद की पीढ़ी के कवियों में किन्हीं 3-4 कवियों के नाम बताइए, जिनसे समकालीन कविता को पढ़ने की शुरुआत की जा सकती है।

उत्तर : संभवतः आपका आशय ऐसे कवियों से हैं जो किशोर और युवा मन को कविता की ओर खींचें अर्थात छात्र जीवन में उसकी ओर प्रवृत्त करें। यह सब इस बात पर भी निर्भर है कि अभी उन विद्यार्थियों का सही अर्थों में कविता से संपर्क कितना है। दुर्भाग्यवश ऐसा बहुत कम है और इस कमतरी के साथ बहुत कुछ खाली भरा हुआ है। यदि गूगल बताता है कि बतौर हिन्दी कवि नयी पीढ़ी द्वारा सर्वाधिक सर्च किये, यानी जोहे जाने वाला कवि कोई कुमार कोई विश्वास है तो वर्तमान पीढ़ी के 'दुर्भाग्य' पर अविश्वास होता है। अपने अनुभव से बता सकता हूँ कि छात्र जीवन, यानी नवीं दसवीं कक्षा के आसपास ही बच्चन जी के काव्य ने मुझे खींचा। जैसा पहले कहीं बताया है मैंने, किताबों से भरे पूरे घर में हमारे मनोरंजन के साधन भी रचे हुए अक्षर ही थे। विशेष कर महीने भर से अधिक की ग्रीष्मकालीन छुट्टियाँ तो इन्हीं 'विशिष्ट खिलौनों' से मन बहलाते और बहुत कुछ सीखते हुए बीतती थीं। जहाँ तक बच्चन साहित्य की बात है, खासकर निशा निमंत्रण, एकांत संगीत और आकुल अंतर की त्रयी ने सहज शिल्प, भाषा और संवेदना की वजह से बहुत प्रभावित किया। बाल-सुलभ उत्साह के साथ यह सवाल भी जुड़ा कि उन्होंने 'मधुशाला' क्यों लिखी- हाला, प्याला, मधुबाला की बातें क्यों रखीं? शायद 'सामाजिक सरोकार' उसी समय से जाग रहे थे भीतर। सो आनन फानन में उसके समानान्तर अपनी महाकाव्यस्वरूप 'पाठशाला' रची और दुस्साहसपूर्वक उसे भेज भी दिया।

अच्छे कवि का लेखन ही नहीं, उसका जीवन भी कवितामय या काव्योचित होता है। आजकल तो नयी पीढ़ी के 'रचयिताओं' में भी ऐसे स्वनामधन्य मिल जाएँगे जो बार-बार 'पुकारने' (कॉल करने) और संदेश देने (मैसेज करने) पर प्रतिसाद तक नहीं देते लेकिन जैसा सब जानते हैं, बच्चन जी अपार लोकप्रियता के बावजूद, हर पत्र का उत्तर अपने हाथों से लिख कर देते। उस विद्यार्जन काल में ही मैंने भी जितने पत्र भेजे, सबके उत्तर दिये उन्होंने और यथासम्भव मार्गदर्शन तथा उत्साहवर्धन किया। उनके कुछ पत्र आज भी सुरक्षित हैं मेरे पास। दरअसल कोई बड़ा और सच्चा रचनाकार दूर से भी आशीष देता साथ हो तो आपको साहित्य की ओर खींच सकता है। दूसरा हाथ है आसपास के परिवेश का। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान परिवेश में किताबें

उपलब्ध हैं? संयोग सुयोग से हमें वैसा माहौल मिल सका। प्राध्यापक पिता अपने वेतन का अधिकांश भाग पुस्तकें खरीदने और बाँटने में लगा देते। ऐसा परिवार भी था- विशेष कर माँ, जिन्होंने सारे अभाव सहते हुए भी कभी इस पर एतराज नहीं किया। दिये और लालटेन की रोशनी में परिवेश और पुस्तकों ने अंतर को प्रकाशित किया और भीतर तक संवेदनाओं और मानवीय मूल्यों का उजास भरा। सच यही कि इस तरह का माहौल मिलना बहुत जरूरी है। कई देशों में अब भी, घर के बैठकखाने या बाहरी कमरे (ड्राइंग रूम) में पुस्तकों की अलमारी प्रतिष्ठा का विषय मानी जाती है और बतौर उपहार किताबें लेने-देने की परिपाटी भी है। दुर्भाग्यवश 'आधुनिक विकसित' होते अपने देश में ऐसा नहीं। अब हैसियत और औकात बताने वाली (स्टेटस सिंबल) चीजें कुछ और हैं तथा किताबें (वह भी हिन्दी या अन्य भारतीय भाषा साहित्य की पुस्तकें) पिछड़ेपन का सबूत समझी जाती हैं।

परिवेश और प्रवृत्ति में परिवर्तन के लिए साहित्य और दूसरी कलाओं के भी साधनों की उपलब्धता बहुत आवश्यक है ताकि छात्र जीवन से ही बाल, किशोर और युवा मन को कला और सर्जना से जोड़ा जा सके। अच्छे संस्कार विकसित करने में ऐसे सच्चे साधन बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। दूसरी तरफ जन्म से लोरियों के बदले मोबाइल और टीवी पर अंग्रेजी नर्सरी राइम सुन कर बड़ी होने वाली पीढ़ी स्वतंत्र सोच, समझ, संवेदना और वैचारिकता कैसे विकसित कर पायेगी- यह प्रश्न विचारणीय है और यही आज का 'यक्षप्रश्न' भी। इन सवालों को उठाना और इन कठोर सच्चाइयों से मुठभेड़ भी आज कवियों कलाकारों का एक जरूरी काम है।

प्रश्न : आपकी समझ से कविता को (मंच पर इन दिनों सुनायी जाने वाली कविता के अलावा) अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने और लोकप्रिय बनाने के लिए क्या उपाय किये जा सकते हैं? इसी से जुड़ा एक और प्रश्न कि आज की किशोर और युवा पीढ़ी, खास तौर पर आठवीं से बारहवीं तक के छात्रों के बीच कविता की पहुँच बढ़ाने के लिए कौन से तरीके अपनाने जरूरी हैं?

उत्तर : अभी की कविता अधिकाधिक छंदमुक्त है। लेकिन जैसा पहले कहा, यह लयतालसुरविहीन कविता हो, यह जरूरी नहीं- बल्कि इस तरह सपाट और नीरस होना उसके लिए सांघातिक सिद्ध हो सकता है। अच्छी छंदमुक्त कविता 'मुक्ति का उत्सव' है। हमारे समाज में तो जीवन, राग और रस रास से उमगते और 'नवगति नवलय तालछंद नव' से भरकर छलकते उत्सवों की परम्परा रही है। सही ढंग से रची गयी छंदमुक्त कविता दरअसल मुक्तछंद होती है। ऐसी रचना कहन की बारीकी और बोलचाल की लयों का उपयोग करती है, जहाँ सीमित छंद या छंदों की सीमाएँ नहीं, वरन अपार संभावनाएँ हैं। एक तरह से देखें तो छंदमुक्त कविता सादगी की सुंदरता है- ऐसी खूबसूरती जहाँ ऊपरी या बाहरी (आरोपित) किसी साधन प्रसाधन अलंकार आभूषण या बनाव साज श्रृंगार की जगह आंतरिक सौंदर्य अनिवार्य है। असल में बिना आलेपन विलेपन या कृत्रिम बनावट-सजावट के सुंदर वही होता या लगता है जो अंदर से सुंदर हो, सच में सुंदर हो- अपने समग्र व्यक्तित्व और चरित्र में। ऐसी ही छंदमुक्त कविता सच में सुंदर होती है- किसी बाह्य वरण या भूषण-आभूषण से नहीं, अपने अंदरूनी गुणों या

अंतर्जात सत्व से लेकिन इसे कायदे से साधना छंद-बंद साधने से भी कठिनतर और साधना की माँग करने वाला है। दुर्भाग्यवश इस बात को समझ सराह पाने वाले कम हैं- पढ़ने सुनने वालों में भी और लिखने वालों में तो और कम! गद्य यदि लिखने की आजादी है तो पद्य या कविता लिखने की सूझ और समझ।

मेरे आने वाले कविता संग्रहों में से एक 'स्त्रीसूक्त' की एक कविता पंक्ति है- 'प्यार की तरह ही / स्त्री भी / वह बोली / जाने समझे बिना जिसे / हम सब बोलते आये...!' मेरे विचार से छंदमुक्त कविता पर भी यह बात लागू होती है। दरअसल थोड़ी सी अधीरता और बेपरवाही भी कविता को हृदय, मन और संवेदना से दूर ले जाती है। किसी रचना को कविता बनने के लिए उसका सचपने के साथ अन्तस तक पहुँचना आवश्यक है- सच और सपने के सुयोग से बने सचपने के साथ! सच तो यह भी है कि आज की अधिकांश कविताएँ दिमागी और यांत्रिक हो गयी हैं- किसी तथाकथित आधुनिक प्रचलन, ढर्रे, परिपाटी के तहत आयास और अभ्यास से लिखी या फिर हड़बड़ी में दर्ज. पंक्तियों की तरह। सच्ची कविता तो इस तुमुल कोलाहल कलह में धड़कते हृदय की गहरी 'बात' है। यह 'बात' नहीं होगी तो बस कोलाहल रहेगा और इसे सुनने वाला कोई नहीं। कुछ इसी संदर्भ में, मेरी प्रकाश्य कविता-पुस्तक 'नयी कवितावली' की यह कविता प्रश्न करती है :

सहानुभूति भी / असह / विषम / संवेदना ही /
कहो / यह कैसी / कविता लिखी जा रही / अभी...?

कविता को लोगों से जुड़ने के लिए हृदय, मन और संवेदना से जुड़ना होगा। चिंतन मंथन, विचारपरकता या वैचारिकता हो भी तो शरबत में शर्करा या माँ के दूध में मिठास की तरह स्वाभाविक रूप से घुली मिली। ऐसी ही कविता होगी तो लोगों को अपनी ओर खींचेगी, वरना नये प्रचलन या आधुनिक रूढ़ि के तहत लिखी अधिकांश रचनाएँ तो ऐसी होती हैं कि रचने वालों को भी अरुचि हो जाये–पढ़ने-सुनने वालों तक पहुँचना तो दूर की कौड़ी या टेढ़ी खीर! दूसरी तरफ अच्छी और सच्ची कविता तो इतनी सुग्राह्य होती है कि आम जन भी पढ़ समझ ले। एक कठिनाई यह है कि ऐसी कविताओं के साथ उनकी सही परख रखने वाले भी बहुत कम हैं। यह स्थिति बदले तो कविता 'जहाँ न जाये सविता' वहाँ तक पहुँचे।

इसका दूसरा पहलू भी है। कविता को अंतभार्षा कहते और मानते जानते हैंः भाषा के भीतर की भाषा। फिर सवाल यह है कि हम भाषा कौन सी सींच रहे हैं अब अपने यहाँ? कुकुरमुत्तों की तरह तो फैल गये हैं परभाषा माध्यम विद्यालय! वहीं हिन्दी या भारतीय भाषायी विद्यालय चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी मिलने मुश्किल। यहाँ तक कि केन्द्रीय विद्यालयों में भी निचली कक्षाओं से ही पढ़ने-लिखने का जरिया अंग्रेजी हो गया है! अब हिन्दी माध्यम विद्यालय कहीं हैं भी तो वहाँ केवल हिन्दी ही हिन्दी माध्यम से पढ़ायी जाती है। बाकी विषय वहाँ भी अंग्रेजी में ही पढ़ाये जाते हैं। जापान, जर्मनी, रूस, चीन आदि अनेक देशों के उदाहरण न देख हमारी पराधीनतापरक अनीति ने मान लिया है कि विश्वगुरु होने और दुनिया में आगे आने का रास्ता अपनी भाषा और अपनेपन को छोड़ कर ही मिलेगा। धर्मांतरण पर तो शोर शराबे से भरी राजनीति होती है, लेकिन इस

'भाषांतरण' पर अकसर मौन की चादर ओढ़ ली जाती है। जब अपनी भाषा ही अपने आसपास नहीं, वरन दिन-दिन दूर की जा रही- फिर 'भाषा के भीतर भाषा' यानी कविता की सूझ-समझ कहाँ से आयेगी और कैसे बढ़ाना संभव होगा उससे नयी पीढ़ी का लगाव जुड़ाव? फिर तो वह उसे ही असली साहित्य मान बैठेगी जो मंच या सामाजिक माध्यमों से थोक भाव में परोसा जा रहा।

इस परिस्थिति के लिए नयी नस्लों का उत्तरोत्तर चाक्षुष दर्शक और अकर्मक श्रोता होते जाना भी उत्तरदायी है। किसी किताब के पन्ने पलट कर पढ़ना और ठहर कर सोचना आज के तेजरफ़्तार दौर और फास्टफूड कल्चर की नयी बेखयाली में पुरातनपंथी सा प्रतीत होता है। यह सोच, या कहें कि सोच का अभाव 'रैप' के प्रलाप की ओर अधिक और कविता से परे करता जा रहा है। साहित्य की सियासत भी (जिसके लिए कहीं कहा है मैंने कि 'इस मुहब्बत में भी सियासत है') अपने सीमित और संकीर्ण अर्थ में उतने ही जबरदस्त ढंग से समायी हुई है। जितना इस समय और समाज के बाकी हिस्सों में- और उतनी ही तेजी से दीमक की तरह खोखला कर रही है बहुत कुछ! ये बड़े ही गंभीर मुद्दे हैं और कई स्तरों पर सबको मिल कर काम करना होगा ताकि सृजनात्मकता या रचनाशीलता हृदय, मन, धड़कनों और शिराओं में रक्त और प्राणवायु की तरह प्रवहमान रहे क्योंकि इससे कटना अपनी मिट्टी, अपनी जड़ों, अपनी संस्कृति से दूर होना और मानसिक रुग्णता, पराधीनता, हीनता और क्षरण की ओर उन्मुख होना है। इस गम्भीर विषय पर काफी कुछ कहा जा सकता है, लेकिन कहने से ज्यादा जरूरी कुछ करना है ताकि साहित्यिक परिवेश बेहतर हो सके।

कविता हृदय में कंघी करती है

(प्रेमरंजन अनिमेष से कुणाल सिंह की बातचीत)

प्रश्न : प्रेमरंजन जी, आप हमारे समय के एक प्रमुख कवि हैं। शिम्बोस्क ने लिखा है कि जो सबसे कठिन सवाल होता है, वह अपने स्वरूप में सबसे सीधा (Direct) होता है। तो बातचीत की शुरुआत एक बहुत ही सीधे प्रश्न से कि आप कविता क्यों लिखते हैं?

उत्तर : यह समझने से पहले कि कोई कविता क्यों लिखता है, वह कविता लिखना शुरू कर चुका होता है। यह बहुत कुछ प्रेम की तरह होता है- होने के बाद पता चलता है। दोनों एक साथ उसी दीवानगी और धैर्य की माँग करते हैं। अंतर यह है कि प्रेम लगभग सभी करते हैं, कविता कुछ लिखते हैं बाकी सबकी ओर से प्रेम सबकी कविता है और कविता सबके हिस्से का प्रेम जो कुछ लोग करते हैं। कविता आदमी को बेहतर आदमी और इस तरह दुनिया को एक बेहतर दुनिया बनाने में मदद करती है। चूँकि कविता यह काम करती है इसलिए कविता का काम करता हूँ। इसके अलावा लिखकर और बहुत बार लिखते हुए भी एक आनंद, एक सुकून मिलता है- इसलिए भी कविता लिखता हूँ। शायद कवि, लेखक, कलाकार के लिए यह जरूरी भी होता है क्योंकि यही उसका टॉनिक है, उसकी ऊर्जा, उसकी स्फूर्ति।

मेरी एक कविता में यह सवाल है। शाम को पतंग उड़ाने जाता बच्चा कविताओं से जूझते कवि से पूछता है यह दिन भर क्या करते रहते हो? वह चाहता है, वह भी चले पतंग उड़ाने उसके साथ-साथ। कवि जवाब देता हैः जिस तरह तुम पतंग उड़ाते हो... उसी तरह मैं कविता लिखता हूँ। तो यह कवि का खेल... उसका शगल भी है और एक काम जो वह कर सकता है और कोई काम मैं नहीं कर सकता... नहीं करता- दुनियादारी के ढेर सारे काम। मेरी समझ में यही एक काम है जो कुछ अच्छी तरह कर सकता हूँ। मैं मानता हूँ हर इंसान कुछ अच्छा कर सकता है। सबमें कोई विशिष्ट प्रतिभा होती है। जैसे मोची जूते बनाता है, जुलाहा कपड़े बुनता है, कारीगर घर जोड़ता है, कुम्हार मिट्टी गढता है। मैं कविता बुनता बनाता जोड़ता गढ़ता हूँ। यदि मोची जूते बनाये, जुलाहा कपड़े बुने, मिस्त्री घर जोड़े, कुम्हार मिट्टी गढ़े बिना पैसे की चिंता या किसी दबाव के तो वह कविता है। आदर्श स्थिति तो यही है कि जिसको जो काम पसंद हो, जो उसे मन भाता हो, वह करे दुर्भाग्य से हमारे समाज में ऐसा नहीं है। बिना रोजी-रोटी की चिंता के काम कम हैं या नहीं हैं। इसे सौभाग्य या सुयोग कहेंगे कि कविता रोटी नहीं देती। पैसे नहीं देती। प्यार भी नहीं देता। इसलिए वह कविता होता है। इसलिए उसके कविता होने की संभावना होती है। इस तरह हम कह सकते हैं जैसे बढ़ई लकड़ी का काम करता है मैं कविता का काम करता हूँ।

प्रश्न : आप अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बतायें।

उत्तर : कविता से मुलाकात का कोई तय ठिकाना नहीं होता। कई बार तो वह दैनंदिन के किसी 'चमत्कार' सी मिल जाती है जैसे रास्ता चलते पेड़ से पककर गिरा कोई आम मिल जाये। कई मौकों पर कवि को लगभग ठीक-ठाक पता होता है कविता कहाँ मिलेगी- वह झाड़ियों में जाता है, कहीं कुछ ईंटें हटाता है और वहाँ दुबकी हुई

कविता उसे मिल जाती है। कभी केवल एक आभास पर वह निकल पड़ता है जंगल में उस अदृश्य चिड़िया को ढूँढता जिसकी बस आवाज उसने सुनी है। कई कविताएँ बहुत छकाती हैं- नहा- धोकर निकले बच्चे की तरह, कपड़े लिये जिनके पीछे हम भागते रहते हैं और वे आसानी से हाथ नहीं आते। सबके बीच मैं सोच सकता हूँ...पर लिखता अक्सर अकेले में हूँ। और कविता ज्यादातर सवेरे उठकर लिखता हूँ खुली हवा में छत पर जाकर या किसी खुली जगह में बैठकर...यदि संभव हो। नहीं तो एक बार लिखना शुरू करने के बाद यों भी हम खुली जगह में पहुँच जाते हैं दूसरी दुनिया में लिखने के बाद छत के किनारे जाते या तुरंत सीढ़ियाँ उतरते अंदेशा होता है कदम इधर-उधर पड़ने का क्योंकि तब तक उस दूसरी दुनिया से पूरी तरह वापस नहीं आया होता हूँ। लिखने के बीच-बीच में उठकर टहलता हूँ। टहलते हुए सोचता हूँ। ...तो कुल मिलाकर बहुत खतरनाक रचना प्रक्रिया है।

प्रश्न : प्रेमरंजन जी, हर कवि का कोई न कोई एक कवि-आदर्श होता है। ऐसा भी हो सकता है कि कोई खास रचना (कविता) हो जो आपको किसी विशेष अर्थ में प्रभावित कर गई हो तो आप यह बतायें कि आप किस कवि से प्रभावित हैं या रहे हैं। उनकी कुछ ऐसी उल्लेखनीय रचनाएँ जिनसे आपके लेखन को गति या दिशा मिली हो।

उत्तर : कवि नहीं, कविताओं से प्रभावित होता हूँ। मैं एक कल्पित कवि को मानता हूँ जिसने सारी महान कविताएँ लिखी हैं। उसी से प्रेरणा ग्रहण करता हूँ। चूँकि कविता की प्राथमिक पाठशाला (अपना बोरा लाकर बिछाकर बैठनेवाली शाला) की पहली कक्षा का छात्र समझता हूँ अपने आपको इसलिए पूरी विनम्रता और कृतज्ञता से सबसे सीखने की कोशिश करता हूँ। मन ही मन पढ़ी- सुनी अच्छी कविताओं की एक किताब बना ली है जो दिन-ब-दिन और बड़ी होती जाती है। कविता अपनी सहजता में हमारे आसपास जगह-जगह बिखरी पड़ी रहती है। जरूरत बस उस कविता को देखने पहचानने चुनने सहेजने की है।

प्रश्न : एक और सीधा प्रश्न कि कविता से आप अपना व्यक्तिगत संबंध किस स्तर पर पाते हैं?

उत्तर : प्यार का रिश्ता मनुष्यता का रिश्ता जैसे माता-पिता, भाई-बहन रिश्तों के नाम हैं, उसी तरह कविता भी एक रिश्ता है जो अपने से, अपनों से और पूरी दुनिया जड़-चेतन सभी से जोड़ता है। प्यार से एक साम्यता यह भी है कि इस रिश्ते में भी बहुत कुछ अपरिभाषित और अनकहा है।

प्रश्न : आपके तईं ऐसे कौन से तत्व हैं जो कविता को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं? इसी से जुड़ी हुई यह बात कि अब तक लिखी अपनी कविताओं में ऐसी कौन-सी कविता है जिसे आप महत्त्वपूर्ण मानते हैं? मैं यहाँ पहले यह स्पष्ट कर दूँ कि मेरा आशय आपकी प्रिय कविताओं को जानने का नहीं प्रिय कविता और महत्त्वपूर्ण कविता में अंतर है। अंततः महत्त्वपूर्ण कविताएँ ही टिक पाती हैं प्रिय कविताएँ शायद नहीं।

उत्तर : एक सान्द्रता- उसके स्रोत कई हो सकते हैं- कथ्य, शिल्प, भाषा कोई आवेग, कोई छटपटाहट, कोई बेचैनी। कविता में एक जीवंतता, एक ईमानदारी होनी

चाहिए। जीवन-संघर्षों से वह अपनी ताकत ग्रहण करती हो और उन्हें ताकत देती हो। कविता भीतर की रोशनी है। इसलिए अपना शीशा झलकता होना चाहिए कि वह रोशनी साफ हो और दूर तक जाये। इसलिए मैं मानता हूँ किसी और विधा में जरूरी हो न हो, एक कवि के लिए प्रथमतः और अंततः सहृदय या अच्छा आदमी होना लाजमी है। क्योंकि कविता स्वभाव से पाखंड, बनावट और छल-छद्म को तोड़ती है। इसलिए अपने भीतर कोई पाखंड उसे रच नहीं सकता। तब उसमें वह ईमानदारी, वह आँच, वह ताप, वह संघर्ष नहीं होगा जो अच्छा आदमी होने का हिस्सा होता है। अपनी कविताओं में कौन महत्त्वपूर्ण है यह पाठकों आलोचकों और समय को तय करने देना चाहिए।

प्रश्न : प्रेमरंजन जी कृपया यह बताएँ कि क्या एक कवि के लिए वैचारिक प्रतिबद्धता की दरकार है?

उत्तर : देखो कुणाल, कविता लिखना भी अपने आप में एक प्रतिबद्धता है। जो सचमुच कवि है उसके लिए लिखना उसका साहस भी होता है और अनिवार्यता भी। लेकिन यह ध्यान रहे कि वैचारिक होने से पहले कविता हार्दिक होती है। जीवन जगत और मनुष्यता कविता के सरोकार होते हैं और इनका शुक्ल पक्ष ही कविता का ध्येय होता है और उसका पक्ष उसके मूल में हमेशा एक मूल्य बोध होता है। इस अर्थ में हर अच्छी और सच्ची कविता गहरे स्तर पर राजनैतिक और समाज नैतिक होती है। तात्कालिक अर्थों में राजनीतिक न होना अच्छा है। जैसा हाल ही में अपने एक साक्षात्कार में राजेश जोशी ने कहा है- ऐसी 'राजनीतिक' कविताएँ बहुधा वास्तविक राजनीति को छिपाने की राजनीति होती हैं। कविता एक गहरी साँस है। क्षणिक उबाल या उबासी नहीं। उसका आवर्त बहुत बड़ा है और कुछ भी उसके लिए अस्पृश्य नहीं अनुभूति भी उसमें सन्निहित है, विचार भी, भाषा, शिल्प और क्रीड़ा भी यही उसे एकरस होने से बचाता है।

प्रश्न : काव्य-विमर्श के प्रदेश में अक्सरहाँ 'विजन' की चर्चा की जाती है। आपसे जानना चाहूँगा कि एक कवि के लिए विजन या जीवन-दृष्टि का क्या अर्थ है?

उत्तर : मेरा मानना है कुणाल कि 'विजन' या जीवन-दृष्टि बहुत बड़ी और दुर्लभ चीज है। अक्सर जब अधिकांश या लगभग पूरा जीवन व्यतीत हो चुका होता है तब उसे ठीक से देखने समझने की दृष्टि मिलती है। जीवन को बेहतर देखा जा सके तो अच्छा है लेकिन आज का संघर्ष जीवन को जीवन की तरह और मनुष्य को मनुष्य की तरह देख और रख पाने का संघर्ष है- जीवन को उसके पूरे फलक में और मनुष्य को उसकी पूरी संवेदना के साथ।

प्रश्न : प्रेमरंजन जी, आज के काव्य परिदृश्य को आप किस तरह देखते हैं?

उत्तर : मेरे विचार से हिन्दी कविता निस्संदेह विश्व की किसी भी भाषा की श्रेष्ठ कविता के समकक्ष है। आज के हिंदी कवियों की विशेषता यह है कि वे इस कठिन समय में कविता को संभव करने के लिए तमाम औजारों का प्रयोग कर रहे हैं, किसी आग्रह विशेष से मुक्त। और इसी में इस कविता की जीवंतता और विशिष्टता है। एक अन्य विशेषता हमारे समय की हिन्दी कविता की यह है कि इसमें एक समय एक साथ कई पीढ़ियाँ सक्रिय और सृजनरत हैं। कविताओं का यह संगम अद्भुत है। हिंदी कविता

का एक और गुण है उसको उदारता और उसका खुलापन (आप इन पदों को प्रचलित 'अर्थपदों' के संकुचित और किंचित विरूपित दायरे में न लें)। हिंदी कविता न सिर्फ लगभग सारी भारतीय भाषाओं बल्कि विश्व के हर श्रेष्ठ काव्य-साहित्य से भी बड़ी उत्सुकता, विनम्रता और खुले हृदय से जुड़ती है, उनके गुणों, विशेषताओं का साक्षात्कार और समाहार करती है। हिन्दी कविता की यह हार्दिकता, ऊष्मा और मिलनसारिता एक रेखांकित करने वाला गुण है। इसी उदारता और सदाशयता का दूसरा पहलू यह है कि हिंदी के पुराने सद्यः सक्रिय कवि भी सबसे नये कवियों के बरक्स अपनी कविता को माँजते हैं और नयी ऊर्जा के साथ काव्यधारा से जुड़ते हैं। यह अंतःक्रिया उनकी कविता को निरंतर नयापन, ताजगी और स्फूर्ति प्रदान करती है।

प्रश्न : पहले के दोनों प्रश्नों को समेटता एक और प्रश्न करना चाहता हूँ ...देखिए, मुझे लगता है कि आज की कविता से आख्यान मिट सा गया है। केदारनाथ सिंह तक की जो पीढ़ी थी उसने थोड़ा-बहुत काम किया था। उदाहरण के लिए हम उनकी 'बाघ' श्रृंखला की कविताओं को देख सकते हैं। बाद की पीढ़ी के कवि अथवा एकदम आपके समय के कवियों की कविताओं में न कोई आख्यान रह गया है और न ही कोई विचार आदि। कहने का गरज यह कि आज के कवि का कोई संकलन पढ़ा जाए तो समूची किताब को पढ़ने के बाद भी कोई विजन बनेगा ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। किसी एक बात को ही नये तरीके से कह देना और इसी भर से संतुष्ट रह जाना आजकल के कवियों में बढ़ा है। बस एक कौंध जगा देना ही पर्याप्त समझा जाने लगा है। आपकी दृष्टि में इस शिफ्ट की वजहें क्या हैं?

उत्तर : जैसा मैंने तुमसे कहा कुणाल कि आज के हिंदी काव्य परिदृश्य की यह विशेषता ही है कि कवि कविता को संभव करने के सारे तौर-तरीके, उपकरणों और औजारों का इस्तेमाल कर रहे हैं। कोई पूर्वाग्रह या दुराव या अस्पृश्यता नहीं है। यह कहना सही नहीं कि आख्यान कविता से मिट सा गया है। सरसरी नजर से ही देखें तो कई कवियों में यह आख्यान मिलेगा। विष्णु खरे की कविताओं में राजेश जोशी की कविताओं में अपने बारे में कहना ठीक नहीं होगा। लेकिन कई कविताएँ हैं ऐसी... ध्यान देने या ध्यान जाने की बात है। कविता में निहित आख्यान कविता को संभव करने वाले कई रास्तों, कई उपकरणों में से एक है जरूरी नहीं है सब एक ही रास्ता अख्तियार करें यह अच्छा भी नहीं है। एक कवि हर बार शून्य से शुरू करता है। इसलिए बराबर जोखिम उठाने की जरूरत होती है। कविता या शब्दकर्म साहस का दूसरा नाम है लेकिन जो मँजा हुआ होता जाता है। उसमें इस साहस या जोखिम की जगह युक्ति या तरकीब आने लगती है। जो अब तक किया या हुआ है उसे ही बचाने का जुगाड़ देखा-देखी अपेक्षाकृत नये भी इस प्रवृत्ति को अपनाने लगते हैं तो कवियों को इस तरह 'मंजने' से बचना पड़ेगा ताकि वे हमेशा नये की तरह लिख सकें और नयी शुरुआत कर सकें और नये लोगों को सामने आना पड़ेगा, उन्हें तरह-तरह के जोखिम उठाने होंगे। फिर नये खून के रंग देख पुराने भी शायद अपने दायरों से निकलें।

अच्छी कविता अच्छे शर्बत की तरह होती है। भली तरह हिली मिली विचार उसमें रखे की तरह तैरते नहीं होते। अन्तर्निहित होते हैं और यह भी सच है कि अच्छी कविता

पहले कविता होती है। जीवन की तरह जीवन का एक हिस्सा एक धड़कती हुई कोशिका और सब कुछ इस जीवन में ही है- अन्तर्निहित विचार भी लेकिन वह पैबंद या लेबल की तरह चिपका हुआ नहीं होता उसमें। जहाँ तक एक ही बात को नये तरीके से कहकर संतुष्ट होने की बात है तो उसके दो आयाम हैं। संतुष्ट तो कोई लेखक कलाकार नहीं होता फिर कवि कैसे हो सकता है। और कुल मिलाकर बात तो एक ही है कि जीवन को जीवन होना चाहिए और संभव हो तो बेहतर जीवन मनुष्य को मनुष्य होना चाहिए और बेहतर मनुष्य इसी को सब कहते हैं। अपनी-अपनी तरह से कविता के बारे में कहा जाता है कि वह दो काम करती है, कर सकती है। या तो वह कुछ नया सामने रखती है या फिर जो देखा-जाना पुराना है उसी को इस तरह नये ढंग से रखती है जैसे उस रूप में आप उससे पहली बार मिल रहे हों। अर्थात् वह नया करती है या नयी तरह करती है। और फिर जो नया नहीं है वह भी वस्तुतः किसी के लिए नया होता है किसी काल, किसी स्थान, किसी समूह, किसी सन्दर्भ के लिए उसका अदेखा अजाना कविता एक काँध जगाती है तब भी अपना काम करती है। जरूरी नहीं कि वह लँप पोस्ट की रोशनी ही हो जिसके नीचे बैठकर आप जीवन की किताब पढ़ें या अपना काम करें वह एक जुगनू की चमक भी हो सकती है जिसमें उसका खाका तैयार करें आप जो अंधेरे के खिलाफ करनेवाले हैं। कविता कई बार ऐसा इशारा ही करती है।

प्रश्न : आपके साथ ही कई युवा कवि मोहनकुमार डहेरिया, संजय कुंदन, हेमंत कुकरेती, सविता सिंह, आशुतोष दुबे, गिरिराज किराडू, पवन करण, सुंदरचंद ठाकुर, चेतन क्रांति आदि कविता फलक पर नमूदार हुए। कृपया यह बतायें बिल्कुल अपनी पीढ़ी के किन कवियों से आप प्रभावित हुए और किस तरह?

उत्तर : सबकी अपनी-अपनी खासियत है। सब अलग रंग-रूप आस्वाद की कविताएँ लिखते हैं। सब मेरे दोस्त मेरे हमराह हैं। सब एक दूसरे से सीखते हैं प्रेरित होते हैं। यह किसी पीढ़ी के लिए अच्छा होता है कि उसमें एक साथ कई अच्छे कवि हों। इस अंतःक्रिया, इस समवेत से पूरा कविता समय ऊपर उठता है। कविता एक वचन में अच्छी हो सकती है लेकिन कवि हमेशा बहुवचन में अच्छे होते हैं।

प्रश्न : क्या आप यह पाते हैं कि इधर लिखी जा रही हिंदी कविता अपने सौंदर्य बोध, अपनी भाषिक संरचना और अपने अभिव्यक्ति पैटर्न में अधिक विविध और संपन्न हुई है। या इसमें एकरसता आई है?

उत्तर : अब एक पूरा खुला मैदान है कविता का जीवन जितनी ही उसकी संभावनाएँ अथाह अनंत असीम हो गयी हैं। बोलचाल और चुप्पी, कही-अनकही की अनंत लयों का उपयोग वह कर सकती है। इस कविता में बुनावट है लेकिन बनावट या बनावटीपन नहीं। अब उसका मूल, उसका सत्व, उसकी आत्मा ही उसे कविता बना सकती है- अपने भीतर की कविताई के बूते ही वह कविता हो सकती है। छंद भी वर्ण्य नहीं है, लेकिन वह तभी तक और उतने ही तक वरेण्य है जब तक और जहाँ तक वह कविता की स्वाभाविक सहजता को बाधित नहीं करता। हमारे लोकगीतों में छंद और शिल्प का जो खुला समागम और सामंजस्य है हमारी कविताओं में भी लाया जा सकता है। यह बात जरूर है कि खुले मैदान में भी पगडंडिया बन जाती हैं और चलने वाले उसी से

आने-जाने लगते हैं बाकी घास- झाड़ियों काँटों वाली जमीन पर चलने की तकलीफ से बचते हुए। तो सैर की, तफरीह की, भटकने की एक नई भावना अपने में भरनी होगी... अलग-अलग रास्तों से गुजरते हुए कविता को संभव करने की... उसकी अनेक अशेष संभावनाओं के बखूबी उपयोग की...।

प्रश्न : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में आज की कविता की क्या भूमिका होनी चाहिए? मेरे मन में भी यह भी एक प्रश्न है कि क्या कविता एक हथियार के तौर पर इस्तेमाल होने वाली चीज है?

उत्तर : कविता का परिवर्तन का रास्ता अपने आप से होकर जाता है अपनी मनुष्यता और संवेदना से। उसका असर धीरे-धीरे और परोक्ष होता है। वह बहुत कुछ होमियोपैथ जैसी है। हमारे देखने सोचने समझने महसूस करने की शक्ति हमारी प्रतिरोध क्षमता को बढ़ाकर वह अपना काम करती है एक बेहतर मनुष्य और बेहतर समाज के निर्माण का काम वक्त जरूरत मुकाबले के लिए जिसे हाथों में उठा लिया जाये वह हथियार हो जाता है- चाहे वह रथ का टूटा पहिया हो या सताये जाते निरीह के सामने पड़ा मिट्टी का ढेला। इस तरह कविता भी हथियार हो सकती किन्हीं हाथों में लेकिन उठाने वाले हाथों को ध्यान रखना चाहिए कि कविता कोई तेज तलवार या बंदूक नहीं होती वह एक मशाल होती है... जो राह दिखाती है, सच को दिखाती है, झूठ का तिलिस्म तोड़ती है। कविता का काम वह है जो कविता ही कर सकती है। जो किसी अन्य विधा या विधि से उस रूप में संभव नहीं। अगर किसी समय और परिस्थिति या लक्ष्य साध्य उद्देश्य विशेष की जरूरत है कि पर्चे लिखे जायें, नारे गढ़े जायें तो वही करना चाहिए। हो सकता है उन पर्चों में से कोई कालजयी रचना निकल जाये या नारों में से कविता- जैसा कि हुआ भी है। लेकिन वे रचना या कविता के उद्देश्य से लिखे नहीं गये होते इस खास संदर्भ में कहें तो नारों में कविता हो सकती है पर कविता में नारेबाजी ठीक नहीं। कविता हिंसा का विरोध भी करती है तो प्रेम को प्रगाढ़ कर प्रेम की एक और गाढ़ी रेखा वहाँ खींचकर जो बुरा है सिर्फ उसे इंगित नहीं करती क्या होना चाहिए उसे भी रेखांकित करती है।

प्रश्न : पिछले एक-डेढ़ दशक के दौरान भारतीय समाज में जिस प्रकार अर्थ और तकनीक का आतंक बढ़ा है- शहरीकरण, बाजार और उपभोक्तावाद के जो नये रूप उभर कर सामने आए हैं- एकजैसापन, सामग्रीकरण, वैश्वीकरण के सह-अस्तित्व में अंध राष्ट्रवाद, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद- अर्थात् एक वाक्य में कहें कि हमारे समाज में एक सर्वग्रासी मूल्यहीनता आकर पा रही है। इन दबावों ने आज लिखी जा रही हिंदी कविता को किस रूप में प्रभावित किया है?

उत्तर : कविता समय को परिलक्षित करती है और अतिक्रांत भी दबाव जीवन पर होगा और मनुष्य पर तो कविता पर भी लेकिन कविता उसका प्रतिकार करती है। आज के जीवन में जितनी घुटन और जटिलता है कविता में उतनी ही सहजता और सरलता कविता बाजारवाद के खिलाफ ध्वजधारक के रूप में खड़ी हुई दिखती है। बाजार का विरोध प्रचलन में है और इस 'प्रचलन' के तहत भी एक सुर की एक जैसी कविताएँ लिखी जा रही हैं क्योंकि उसमें तत्काल मान्यता और स्वीकृति है। बाजार विरोध के प्रचलन की इस कविता से जुड़ना भी बाजार के साथ जाना है। हमें देखना होगा बाजार-

वाद के खिलाफ एक स्तर की कविता कहीं बाजारवाद के पक्ष में तो नहीं जा रही।

प्रश्न : मूल्यहीनता के इस युग में कविता अपने आप में एक प्रतिरोधक मूल्य है- शब्दों के क्षरण, उनके प्रति अवज्ञा और लापरवाही के समय में कविता शब्द का शायद आखिरी शरण्य है। फिर यह भी है कि शक्ति के वर्चस्ववादी प्रतिस्पर्धा के युग में कविता ही एक स्पेस बनाती है जहाँ शक्तिमानों के लिए कोई अवकाश नहीं शायद यही वजह है कि कविता को युग निरपेक्ष अथवा इस युग के लिए सर्वथा अप्रासंगिक सिद्ध कर देने की एक मुहिम सी चलाई जा रही है। प्रश्न यह कि शक्ति के वर्चस्ववाद के विरुद्ध आज कविता की किस तरह की भूमिका आप देखते हैं?

उत्तर : शाश्वत विपक्ष की भूमिका पुराने जमाने में कवि दरबारों में होते थे, राजाओं के संरक्षण में आज भी कुछ कला विधायें हैं जिन्हें सरकार का संरक्षण / आशय मिलता है। उन्हें इसका बुरा भी नहीं लगता और बुरा होता भी नहीं लेकिन कविता का सौभाग्य है कि उसे कोई संरक्षण नहीं प्राप्त उसका बाजार में कोई मूल्य नहीं यह भी उसका एक मूल्य है। आज की राजनीति में सब एक मिट्टी के पतले हैं। मिले-जुले से अलग-अलग झंडे। अपने सत्ता क्षेत्रों और प्रभुता अवसरों में सब एक-सा ही काम-अकाज, नीति-अनीति करते हुए मिली-जुली सरकारें ही नहीं मिलीभगत की सी राजनीति भी है। ऐसे समय में सही माने में कोई विपक्ष रह ही नहीं गया है एक सजग सक्रिय सबल विपक्ष जो लोकतंत्र की आत्मा होती है। ऐसे में शब्द और कविता ही इस 'लोकतंत्र' को हमारे जीवन में बचा सकते हैं सत्ता और प्रभुता के शाश्वत विपक्ष की भूमिका निभाकर।

प्रश्न : अब थोड़ा समेटते हुए पूछूं कि इन दिनों आप क्या लिख रहे हैं? कविता को लेकर क्या कोई नई बात या कुछ नया प्रयोग कर रहे हैं?

उत्तर : मैं यह मानता हूँ कुणाल कि कविता में नया लिखना नया करना ही होता है और इस अर्थ में 'नया कवि' होना गौरव की बात होती है। कोशिश यही है कि सही अर्थों में 'नया कवि' बन सकूँ। कविता की रणनीति छापामार युद्ध ही होती है इसमें बहुत कुछ पूर्वनिर्धारित पूर्वघोषित नहीं होता चल तो बहुत कुछ रहा है भीतर कई मोर्चों पर लेकिन अपनी कविता के बारे में उद्घोषणायें करना ठीक नहीं लगता। कविता को ही बोलने देना चाहिए उस पर पूरा भरोसा होना चाहिए। देर-सबेर वह अपनी पहचान करवा लेती है, अपनी बात मनवा लेती है... अपनी जगह पा लेती है।

प्रश्न : प्रेमरंजन जी, आज के लिए आपसे यह अंतिम प्रश्न कि कविता को आप किन शब्दों द्वारा परिभाषित करना चाहेंगे?

उत्तर : रात की वह ओस जो सवेरे के प्रकाश से मिलती है, कविता होती है यह कविता की मेरी परिभाषा होगी। कविता होती है, बनती नहीं समझी जा सकती है, देखी-सुनी जा सकती है पर उस पर ठीक-ठीक उँगली नहीं रखी जा सकती। वैसे कविता की कई प्यारी परिभाषाएँ हैं- कविता हृदय में कंघी करती है। अंतिम अभयारण्य आखिरी परकोट है और मेरे लिए पहला प्यार भी अपनी वह नन्हीं सी परिभाषा भी दुहराना चाहूँगा कविता गहरी साँस है। वैसे हर सूक्ष्म व्यापकता की तरह कविता को भी इस तरह परिभाषित किया जा सकता है वह जो परिभाषाओं में अपरिभाषित रह जाती है...।

अंतरदेश : सरहदों के पार हिन्दी का संसार

हिंदीतर भाषियों की सक्रिय साझेदारी और रचनायें : मुद्रित और दृश्य-श्रव्य

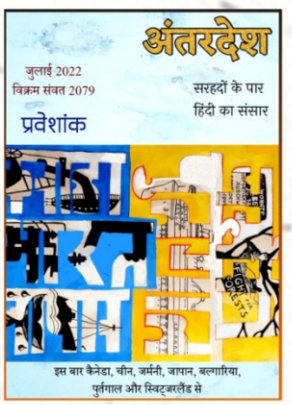

चित्र : क्रिस्टने मेत्स, हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी

प्रवेशांक में रचनाकर्म और लेखन की विविध विधायें : इतिहास, कविता, कहानी, लघुकथा, लेख, पहेली, हास्य-व्यंग्य, समीक्षा,यात्रा वृत्तांत, संस्मरण, वीडियो आदि

★ संसार के अंतिम रोबोट अन्निम पर चीन, जापान, जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड के छात्रों द्वारा लिखी पच्चीस लघुकथाएँ

★ जर्मन छात्रों द्वारा बनाए गए हिंदी वीडियो

★ जापानी समाज और संस्कृति पर जापानी छात्रों के लघु निबंध

★ बल्गारिया से हिंदी में हृदयस्पर्शी कविताएं

★ लाइप्ज़िग, जर्मनी से हिंदी में प्राय: हर विधा में उत्कृष्ट रचनाएं

★ जर्मनी के सिंती समुदाय के बारे में सिंती छात्र का लेख

★ लद्दाख पर बल्गारियाई विद्वान द्वारा हिंदी में एक वीडियो यात्रा वृत्तांत

★ जर्मनी में हिंदी अध्यापन का इतिहास

★ फणीश्वरनाथ 'रेणु' पर जर्मन व जापानी विद्वानों के समीक्षात्मक लेख

★ इतिहास और समकालीन घटनाओं पर हास्य-व्यंग्य

★ फ़िल्म समीक्षा : हिंदी और विश्व चलचित्र जगत

'अंतरदेश' यहाँ उपलब्ध है :

1. notnul.com/Pages/Preview.aspx?Shortcode=MiszEBUd
2. NotNul:Leading E-book platform in India

प्रवेशांक पर अपने सुझाव और विचार अवश्य साझा करें, हमारा ईमेल है :

antardesh.patrika@gmail.com

हमारे अगले अंक के केंद्र में है जापान

इस अभिनव परिकल्पना और प्रयास में आपका सतत सहयोग व स्नेह मिलता रहे।

पोस्टर : वेद मंदीप

आगामी अंक

जीवन के ९० वसंत पूरे करने के उपलक्ष्य में

देवेश ठाकुर की सन २००० के बाद की रचनाओं पर केंद्रित अंक

जुलाई - सितंबर 2023

शोध-समीक्षा अंक

अक्टूबर - दिसंबर २०२३

Reg. No. MAHHIN / 2008 / 26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)
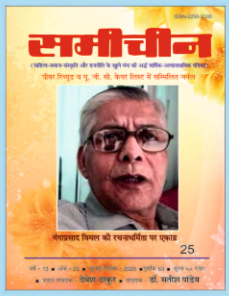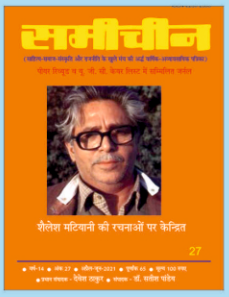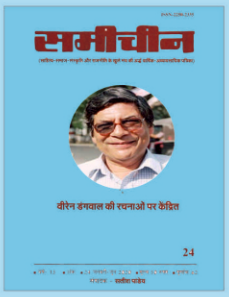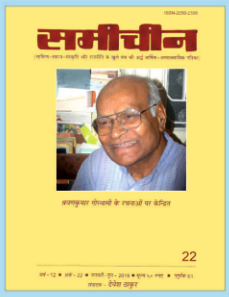
कुछ महत्वपूर्ण विशेषांक